महाशयो !

यह पुस्तक श्री१०८ स्वामी चिदानन्दस्वामीजीने समस्त जैन मतावलम्बियोंके स्याद्वाद प्राप्त्यर्थ निर्माण किया और उनके शिष्य लक्ष्मीचन्द मणोत अजमेरनिवासीजीने छपाकर प्रकाशित किया ॥

इसके सिवाय उक्त स्वामीजीने "दयानन्दमतनिर्णय" अर्थात् नवीन आर्यसमाज भ्रमोच्छेदन कुठार श्री देश सुधारके लिये रचनाकर अपने शिष्योंकी परमप्रीतिसे छपवानेकी चेष्टाकर रहे हैं, यह भी शीघ्र ही दृष्टिगोचर होवेगा ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

लक्ष्मीचंदमणोत

नयाबाजार

अजमेर

प्रस्तावना ।

भो पाठकगणों! स्याद्वादानुभवरत्नाकर नाम का ग्रंथ कि जो यथा नाम तथा गुण करिके संयुक्त है, ऐसे उत्तमोत्तम महाग्रंथके कर्त्ता महा मुनि महात्मा और पूर्ण अध्यात्मी श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्री चिदानन्दजी महाराज हैं जो सदा आत्म कल्याण करनेके और किसी वस्तु का अभ्यास नहीं करते और रात्रीको जङ्गलादि में रहते हैं और आत्मध्यान में मग्न होकर रात्री विताते हैं ऐसे २ अनेक आत्मार्थ के कार्यों से अपना अमूल्यसमय कि जिसका मूल्य ही नहीं है और जो गये के वाद पश्चात् कभी आताभी नहीं है सफलताके साथ विताते हैं ॥

सिवाय इसके कृपा कर्म आदि में भी इस प्रकार कष्टताके साथ प्रवर्त होते हैं कि जिसमें इस पञ्चम कालमें अन्य मुनि आदिकों के लिये सामान्य नहीं है अर्थात् अतिकठिन है यथा एक पात्र रखना अर्थात् उसी हीमें आहारादि लाना और सर्व को एकत्र करके भोजन करना परन्तु भोजन अर्थात् आहारभी एक ही दफै करना नतु दूसरी वक्त, इस प्रकार प्रति दिन आहार करना और उसका लाना भी ४२ दूषणों करके रहित है अर्थात् जैसे शास्त्र में कहा है उसी ही विधिपूर्वक आहार कर्म करते हैं, और शीतकालमें जैसे और साधु आदि ऊन का कम्बल तथा वनात आदि वस्त्र रखते हैं तैसे यह मुनिमहाराज नहीं रखते किन्तु दो चद्दर और एक लोवड़ी ही रखते हैं उसके सिवाय कोई भी अन्य वस्त्र ओढ़ने के वास्ते कितना ही शीत क्यों न पड़े नहीं रखते और प्रायः करके मौन भी कई महीनों तक रखते हैं और भव्यप्राणियोंको शास्त्र का रहस्य समझाकर उनको आत्मस्वरूप इस प्रकार दरसाते हैं कि जिसका वर्णन करना मुझ अल्प बुद्धिवाले के लिये सामान्य नहीं है अर्थात् वहुत कठिन है और व्याख्यान में भी श्री मुख से अध्यात्म ही वाक्य निकलते हैं और श्रोत्रों कोभी श्रोत्र इन्द्रीसे इस प्रकार पान होताहै कि मानों अध्यात्मरूपी अमृतरस का पान, इत्यादि अनेक कष्ट

कृपाओं और नियमों करके संयुक्त है कि जिनका वर्णन करना मुझ अल्प वृद्धिवाले के लिये सामान्य नहीं है ॥

अहो! इस ग्रंथ कर्त्ता की तीव्रता और वृद्धि की विचक्षणताको धन्यवाद देताहूं कि जिन्होंने भोले प्राणियों के हितके लिये यह ग्रंथ रचा और हरेक मतको उसीहीके मतानुसार निर्णय करके दिखाया,नतुः अन्य मतको स्वमतसे निर्णय करना, परन्तु किसी भी अन्य वा स्वमत के शास्त्रका रहस्य इस प्रकार समझते हैं कि मानो सरस्वती ही हृदय कमलपर स्थापितहै और इनके रचित ग्रंथकी शोभा तो हम कहांतक करैं पाठकगण आपही निर्पक्षहोकर पठनपाठन से नकि प्रबल युक्ति निर्पक्षता शास्त्र रहस्य जानीकार और अध्यात्मी जान लेंगे मुख्य अभिप्राय इस ग्रंथ रचने का यही है कि भोले प्राणियोंको अपनी बुद्ध्यनुसार ज्ञान होकर सत्यासत्यका निर्णय, जीव अजीवका स्वरूप, निर्द्वंप पना और आत्मस्वरूपका जानना प्राप्त होजाय, यद्यपि इस ग्रंथमें अनेकानेक वारीकियां ऐसी हैं कि जिसको आजतक किसी भी पण्डितने नहीं खोली सोभी तुच्छ लेखनी ने लिखी हैं और अनेकानेक अमूल्य रसों करके संयुक्त यह ग्रंथ सर्व पुरुषों के लिये हितकारी है और इसके पठनपाठन से अल्पकाल में ही हरेक पुरुष सर्व मतों का निर्णय करसक्ता है ॥

इस ग्रंथके किञ्चित् विषय ये हैं--

प्रथम प्रश्नके उत्तरमें ग्रंथ कर्त्ताने अपने जीवन चरित्रका वर्णन साधारण तौरपर किया है॥दूसरे प्रश्नके उत्तरमें न्याय वैशेषिक वेदान्त आर्य्यसमाजी ईसाई और मुसल्मान उन्हींके शास्त्र और कुरान अंजील आदि पुस्तकोंसे उनके माने हुए पदार्थ वा ईश्वर कर्त्ता होनेके दूषण दिखाय कर परार्थकी अशुद्धता बताई है. अनेक ग्रंथ कर्त्ताओंने अपनी २ युक्तिसे दूसरेके मतका खंडन किया है परन्तु इस ग्रंथ कर्त्ताने उन्हींके शास्त्र से उन्हीके मतका खंडन किया है और अपने शास्त्रको लेकर नहीं, इस लिये यह अपूर्व है, पाठकगण वांचकर देखैं मैं पूरा२बयान नहीं कर सक्ता

क्योंकि देखने और सुननेमें बड़े अन्तर पड़ जाते हैं पश्चात् सर्वज्ञ मत अनादि सिद्ध किया है॥तीसरे प्रश्नके उत्तरमें जो जैनियोमें दिगम्बर आमना है उसमें और स्वेताम्बर आमनामें फर्क बहुत बातोंका है परन्तु इस ग्रंथमें उनमेंसे पांच मुख्य बातोंका निर्णय किया है १ केवलीका आहर करना २ स्त्रीको मोक्ष ३ वस्त्रमें केवल ज्ञान ४ जैनलिङ्गके अलावे अन्य लिङ्गकोभी मोक्ष ५ काल द्रव्यकी उपचारिता इन पांच बातोंको सिद्ध करके केसर आदि चढ़ाना उनहींके शास्त्रानुसार किया है, इसके पीछे ढुंढियोंका मत दिखाय कर मूर्तिपूजन सिद्ध किया है, मूर्ति और तीर्थादि को तो आर्य्यसमाज मत निर्णयमे सिद्ध किया है परन्तु ईश्वरकी मूर्तिसे पूजन इस जगह सिद्धकी है फिर गच्छादिककी व्यवस्था कही है, इसके बाद एक समाचारी शास्त्रानुसार सिद्धकी है चौथे प्रश्नके उत्तरमें प्रथमही संबंध, विषय प्रयोजन और अधिकारीका वर्णन किया है उस अधिकारीके विषय में अनेक बातें कह कर सिद्धान्त और कर्म ग्रंथका जो आपका कर्मबंधनमें विरोध था सोभी अनुभव युक्तिसे मिटाया है फिर परीक्षाके वास्ते कुदेवका स्वरूप कहकर सुदेवका स्वरूप दर्शाया है फिर ५७ बोल अर्थात् निश्चय, व्यवहार, नय, निक्षेपा, कार्कादि अनेक रीतिसे आत्म स्वरूप ओलखनेके लिये ऐसा समझाया है कि आजतक ऐसा वर्णन हरेक ग्रंथमें न होगा फिर गुरुका स्वरूप और धर्मका लक्षण कहा है. अब संसारकी जो अनित्यता कहते हैं उसमें कोई तो जगत्को मिथ्या कहता है, कोई सत्य कहता है इसके ऊपर ६ ख्याति दिखाई हैं, उनमेंसे पांच का खंडन करके सत्यख्यातिको सिद्ध की है सो इस ख्यातिका वर्णन अपूर्व है क्योंकि भाषा ग्रंथमें ख्यातिका वर्णन आजतक किसीने ऐसा न किया होगा किसी संस्कृत ग्रंथमें होय तो मैं नहीं कह सक्ता· किन्तु इस ख्यातिकी हरेक मनुष्यको खबरभी न होगी इस अपूर्व कथनको पाठकगण बांचैंगे तबहीं मालूम होगा, इसके बाद ६ द्रव्यका स्वरूप कहा उसमेंभी जीव द्रव्यके ऊपर ५७ बोल उतार कर भव्यजीवों को आत्मस्वरूप दिखाया है; फिर समकित दृष्टिके कथनमें शास्त्रानुसार मन्दिरके पूजनेकी विधी मंत्रसहित कहकर उसमें एकान्त निर्जरा ठह-

राई है और जो अल्प पाप कहनेवाले हैं उनका अज्ञान दर्शाया है; फिर पच्चखाणकी विधी कहकर गुणठाणेके कथनमें ज्ञानगुणठाणे आदि बतलाया है और गुणठाणा कृपा करने से आताहै या गुणठाणे आये बाद कृपा करते हैं इस रीति के अनेक प्रश्नोत्तर हैं॥ पंचमें प्रश्न के उत्तर में जैन मत की रीति से ही योग सिद्ध किया है उसमें स्वर साधने की विधि और आसनादि कहेहैं फिर प्राणायाम मुद्रा और शास्त्र की रीति से चक्रों का ध्यान करना और पांखडी अक्षर आदि और उस ध्यान का फल अच्छीतरह से खुलासा वर्णन किया है फिर ग्रंथ कर्त्तापर प्रश्नों का आक्षेप किया है उनका ऐसी रीति से उत्तर दिया है कि जिसमें अहंकार क्लेश नहीं इस रीति से पंचमें प्रश्न का उत्तर पूरा करके ग्रंथकर्त्ताके बनाएहुए अध्यात्मी पद कवित्त और कुंडली दिखाईहै और उनमें मन ठहरनेकी रीति भी दर्शाई है इस रीति से इस ग्रंथमें नानाप्रकार के अमोलक रत्नभरे हैं जैसा इस ग्रंथका नाम है तैसाही इसमें लेख है इस ग्रंथकी सम्पूर्ण शोभा करने की शक्ति मेरी बुद्धि में नहीं, पाठकगण इस ग्रंथको बांचैंगे तो फिर अन्य ग्रंथ रखने की अभिलाषा नहीं रहेगी और पढ़कर कल्याण प्राप्त करैंगे ॥

पाठकगण महाशयों को नम्रता पूर्वक किञ्चित् हाल विदित करताहूं कि इस ग्रंथ में कई तरहके विघ्न हुए परन्तु आपके अत्युत्तम अधिष्ट (प्रबलपुण्य) ने इस ग्रंथके आशय को नष्ट न होने दिया हां अलबत्ता चार फार्म अर्थात् ३२ पेज तक अनुमान १०० अशुद्धियां छपगई हैं सो शुद्धाशुद्धि पत्र में देखलें और इन अशुद्धियां का रहने का कारण यह है कि जिस वक्त में यह ग्रंथ परिपूर्ण बनगया तब मैंने इस ग्रंथके आशय को देखकर सोचा कि यह ग्रंथ शीघ्र छपकर इस आर्य्यावर्त्त में प्रसिद्ध होयतो पाठक गणोंको बहुत लाभ होगा ऐसा समझकर प्रश्न कर्त्ताओंसे विन्तीकर छपाने का उद्यम किया और अजमेर में इस ग्रंथ की अपूर्व रचना (अर्थात् मतमतान्तर के विषय) का शोर हुवा कि यह अपूर्व ग्रंथ बना है सो इधर तो मैं छपाने का बन्दोबस्त कररहा, परन्तु इस आर्य्यक्षेत्रमें अनुमान २० तथा २२ वर्ष से दयानन्दमत अर्थात् आर्य्यसमाजवाले

जो कि अपनेको अति उत्तम सत्यवादी प्रगट करते हैं सो उन आर्य्य समाजिओंकी सत्यता और नियम उपनियम आदिका वर्णन तो इसी ग्रंथ कर्त्ताने एक "दयानन्द मत निर्णय अर्थात् नवीन आर्य्यसमाज भ्रमोच्छेदन कुठार" नाम का ग्रंथ रचा है उसमें वर्णन किया है सो इस ग्रंथ रचने के बाद वो ग्रंथभी छपकर पाठकगणों के अवलोकन में आवेगा परन्तु इस जगह जो उन्होंने इस ग्रंथ में विघ्न किया है उसको किञ्चित् लिखताहूं कि जिस वक्त में इस ग्रंथ के छपाने का प्रबंध करताथा उस वक्त में दयानन्द सरस्वतीजीके निज शिष्य पण्डित ज्वालादत्त ग्रंथ कर्ता के पास आयकर अपनी मायावृत्तिसे उस करुणानिधि ग्रंथकर्त्ता को अपने विश्वास में लेकर ग्रंथ छपने को लिया और लिखापढ़ी अन्यके नाम से कहाई सो सँव्वत १९५० आसोज सुदी में ग्रंथ छापनेको लिया और तीन मासका करार किया परन्तु आषाढ़ तक उसके छापनेका कुछ प्रबंध उनसे न हुवा और आर्य्यसमाजका खंडन देखकर अन्तरंगमें द्वेषबुद्धिसे वैदिकयन्त्रालयके मेम्बरोंसे मिलकर ग्रंथको नष्ट करनेके वास्ते उस छापेखानेमें दूसरीवार लिखापढ़ी करायकर छापनेका बन्दोवस्त किया सो उस जगहभी उन्होंने २० पृष्ठ छापकर झगड़ा उठाया और मूषक वृत्तिसे उस ग्रंथमें अनेक तरहके शब्द काटफांस अपनी बुद्धि अनुसार कर दिये आखिरको उस ग्रंथके नष्ट करनेको उनका जोर न चला क्यों कि इस वर्त्तमानकालमें महारानी विक्टोरियाका प्रबल प्रताप होनेसे कि सिंह और बकरी एक जगह पानी पीते हैं उनका कुछ जोर न चला आखिरको सँव्वत् १९५१ कार्तिकके मासमें पुस्तक लोटा दी तब मैंने शीघ्रतासे छपनेके वास्ते पुस्तककी कापी मुम्बईको रवाने की और उनकी मूषकवृत्तिका खयाल न किया कि उन्होंने कापीमेंसे शब्दोंको अदल बदल करदिया है परन्तु जब मुम्बईमें २ फार्म अर्थात् १६ पृष्ठ छपगये और उनके प्रूफ और कापी अजमेरमें आये तब उसको देखा तो पाहिले की कापीसे अर्थात् खरा लिखा गयाथा उसमें शब्दोंका फर्क देखा तो उसीवक्त मुम्बईमें तार दिया कि छापना बन्द करो और पीछेसे उस पुस्तकका हाल उस छापेवाले महाशयको पत्रद्वारा लिखा और आर्य्य-

समाजिओंकी सत्यता और उनके यन्त्रालयमें १२ मासतक कापीका रहना सर्व वृत्तान्त मालूम हुवा, परन्तु हाल मालूम होनेके पहिलेभी२ फार्म औरभी छाप दिये थे सो यह सर्व अशुद्धियां शुद्धाशुद्धिपत्रसे शुद्ध करके पढ़ै ताकि ग्रंथका रहस्य मालूम हो और इस वेंकटेश्वर छापेखाने मुम्बईके अधिष्ठापक खेमराज श्रीकृष्णदासजीको धन्यवाद देताहूं कि इस महाशयको यथावत् हाल मालूम होनेके पेश्तर तो चार फार्म निकल गये परन्तु तिसके बाद इन महाशयने जो समाजियोंने मूषकवृत्तिसे काटफांस की थी उसको अपने प्रवंधसे शुद्ध करके छपाना प्रारंभ किया सो अवभी जो उस काटफांसके होनेसे वा दृष्टि दोषसे मात्राकी वा कमती वेसी होय तो पाठकगण महाशय सँभालकर बांचे और खबर दें कि दूसरी वार छापने मे गलती न रहै और जो इसमें अशुद्धियां होगई हैं उनके वास्ते क्षमाकरैं।।८।।

आपका कृपाभिलाषी

लक्ष्मीचन्द मणोत

नयाबाजार

अजमेर.

स्याद्वादानुभव-अनुक्रमणिका।

द्वितीय प्रश्नकी अनुक्रमणिका।

तीसरे प्रश्नकी अनुक्रमणिका।

अब इस जगह जिस पृष्ठपंक्तिसे शुरू हुआ और जिस पृष्ठपंक्तिमें समाप्त हुआ सो पृष्ठ पंक्ति लिखते हैं सो पाठक गणोंको ख्याल रहे ....

चौथे प्रश्नकी अनुक्रमणिका।

पांचवे प्रश्नके उत्तरकी अनुक्रमणिका ।

श्रीवीतरागायनमः ।

स्याद्वादानुभवरत्नाकर ।

उपोद्घात ।

छप्पय ।

मंगलमय मंगलानन्द,–प्रद परम शान्त जू ॥
सिद्धि शिरोमणि वीर, तरन तारन अशान्त जू ॥ १ ॥
जिनवर पंकज चरण, शरण गहि रहत दिवस निशि ॥
ध्यान क्रियादत्त चित्त रखत, इन्द्रिय सदा वशि ॥ २ ॥
ऐसे सतगुरु पूज्यश्री,–चिदानन्द महाराज ॥
तिन्हैं विनय युत वन्दना, करि हम पूछत आज ॥ ३ ॥

श्रीमहाराज !

वर्तमान समयके नाना प्रकारके मतमतान्तरोंके भेद और वाद विवाद सुनकर हम दीन जिज्ञासुओंके चित्त मलीन और विश्वासहीन हो गये । जिधर गये जिधर देखा जिधर सुना और जिससे पूछा यही कहते सुना कि, हमारा मत ईश्वरीय और सत्य तथा अनादि है, और सम्पूर्ण मतानुयायी अपनेही मतसे मोक्षका प्राप्त होना कथन कर अन्योन्य मतोंकी निन्दा करते और उनको असत्य बताते हुए पाये गये, जब यह देखा कि अपने तई सब बड़े और सच्चे कहते हैं तथा मानते हैं तो इससे अनुमान किया कि कोई सत्यवादी नहीं, क्योंकि जब अपने मुख अपनाही विरद बखान कर रहे हैं, तो किस २ को सच्चा कहा जावे । दूसरी बात यह है कि यदि सबके वचन माननीय ठहराये जावें तो यह भ्रम रहता है कि इनमें परस्पर द्वेषने प्रवेश कहांसे किया ? कारण यह कि सचके भेद नहीं होना चाहिये और यदि सबही ठीक मार्गपर हैं तो जिसका जिसपर विश्वास है वही ठीक है । तो फिर दूसर मतोंका खण्डन, और अपनेका मण्डन करनाही ठीक नहीं ॥ प्रायः देखा गया है कि जब ये मतवाले अपने मतकी सिद्धि करते है, तो दूसरे मतोंके दोष दिखलाकर ऐसी ऊटपटाङ्ग गाथा गाते हैं कि जिससे पूरा २ खण्डन तो होता नही केवल फूट फैलती हैं–यथार्थ खण्डन वही समझा जाता है कि जिसका खण्डन किया जाय उसी-का परस्पर विरोध प्रबल युक्ति और प्रमाणोसे दिखलाकर भली भाँति प्रतिपक्षीका मुख बंदकर दिया जावे । आज वर्तमान समयमे इस खण्डन मण्डनके झगड़े रगड़े ऐसे बढ़ गये

हैं कि जिनका वर्णन करनाहीं कठिन है ॥ अस्तु इन झगड़ोंसे ऐसा चित्त हटने लगा कि सत्य धर्मका अभावही समझने लगे—परन्तु फिर जब आपके पधारनेके समाचार और आपकी प्रशंसा सुनी तो आपके दर्शन करनेकी लालसा हुई, और यथावकाश आने जाने लगे। इस अल्पकालीन श्रीमद्दाराजके सतसङ्गसे यह अनुमान हुवा कि आपसें कदाचित् हमारी अभिलाषा पूर्ण हो सकेगी और आपका सदाचार और निष्पक्ष व्यवहार ऐसा देखा गया कि यद्यपि आप जैन धर्माचार्य्य हैं तथापि वैश्नव शैव शाक्तादि किसी मतावलम्बीसे आप की दोष नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शरावक (सरावगी) ओसवाल सबपर समान दृष्टि और सबके साथ उचित प्रेमका जो वर्त्ताव आपका है, वह हमारी आशालताको हरी भरी करनेके लिये पवित्र निर्मल जलके समान हुवा, उपदेश जो आपकी ओरसे अबतक दिया गया वहभी अपूर्व है, क्योंकि सबसे प्रथम आप दश बातकी सौगन्ध लिखाते हैं; द्यूत, चोरी, मांस,मदिरा (शराब), परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, शिकार और अपने किये उपदेशका किसीसे प्रगट करनेका त्याग तो प्रायः सबही कराते है पर विलक्षणता जो आपके उपदेशमें पाई गई वह यह है कि, एक तो आप यह फरमाते हैं कि जबतक हम कहते इस साधु वृत्तिमें रहै अर्थात् धन और स्त्रीका संसर्ग न रक्खे तबतक तो हमको गुरु मानना और भिक्षा देना और दूसरे यदि हमारी किसी साधुसे किसी कारणसे अन बनत हो जाय तो उससे द्वेष न कर जैसा हमे मानते हो वैसा उसेभी मानो। जहांतक हमने इन सब बातोंको विचार कर देखा बड़ी उत्तम और उपयोगी दीख पड़ी। यद्यपि सबही बातें उत्तम तथापि अन्तिम उपदेश, जिसके विरुद्ध कहना सब मत धारियोंका मुख्य सिद्धान्त है अति विचित्र है कि जो किसीके मुखसे नही सुना गया और जिसने फूटके बीजकोही जला डाला—

अब हमारी अभिलाषा है कि, श्रीमुखसे कुछ धर्ममर्म श्रवण कर, अपनेको कृतार्थ करें-इसलिये आप हमपर अनुग्रह कीजिये। साथही इसके हमारी यहभी अभिलाषा है कि, जो वाक्य श्रीमुखसे प्रगट होवे लेखनी बद्ध होजांय ताकि उनसे अन्यान्य जिससे कि भव्य जीवोंकोभी लाभ पहुँचे। आपने जो यह कहा कि, लिखनेका अभ्यास हमारा न्यून है सो इस विषयमें हमारी यह प्रार्थना है कि, हममेसे जिस २ का जैसा अवकाश मिलेगा वह इस कार्य्यको किया करेगा और इस प्रकार हमारा मनोरथ और आपका परिश्रम सफल होगा ॥ इसलिये हम विनय पूर्वक निम्नलिखित प्रश्नोंका उत्तर चाहते हैं और वह प्रश्न यह है—

प्रथम प्रश्न—हे स्वामिन्! पहले आपका कौनसा देश क्या जाति और क्या नामथा सो सब वृत्तान्त अपनी उत्पत्ति आदिका कहिये तथा साथही यहभी कृपाकर बतलाइये कि किस प्रकारसे आपको वैराग्य उत्पन्न होकर यह गति प्राप्त हुई?

द्वितीय प्रश्न—वर्तमान कालमें जो मत मतान्तर हैं सो सब अपनेको सत्य और दूसरोंको असत्य कहते हैं सो आप कृपा करिके प्रसिद्ध मतोंके जो उपदेशक जगह २ उपदेश देते है उन्हींके शास्त्रानुकूल उनके पदार्थोंका सत्यासत्य निर्णय कर दीजिये जिस से हमभी उन मतोंसे जानकार होजांय किन्तु उन्हींके सन्मुख होकर आपका कहना ठीक है?

तृतीय प्रश्न—जैन मतमेंभी कई भेद १ दिगाम्बर जिसके कई भेद हैं २ स्वेताम्बर इसमेंभी कई प्रकारके भेद हैं। जैसे प्रतिमाको नहीं माननेवाले बाईस टोला, तेरह पन्थी और मन्दिरके माननेवाले जिनमेंभी गच्छादिकके कई भेद हैं और सब अपनेको जैनीही कहते हैं परन्तु इनमे परस्पर भेद होनेसे सबके जैनी होनेमें शङ्का होती है और आगे समाचारी एकथी कि जुदी २ थी इसलिये शुद्ध जैनी कौन सो कृपा करिके प्रमाण सहित बतलाइये?

चतुर्थ प्रश्न—वीतरागका जिनधर्म स्याद्वाद रीतिसे अनंत धर्म वस्तु, कारण, कार्य्य, साध्य, साधन, वीतरागकी आज्ञा, गुरु, शुद्ध उपदेशादि चिह्नोंसे जिन मार्गकी उत्सर्ग अपवाद करके समकितकी प्राप्तिका मूल कारण हमारे लिये कहिये?

पञ्चम प्रश्न—हठयोग किसको कहते हैं और उससे क्या प्राप्त होता है और वह जिन मतमें है या नहीं और जो जिन मतमे है तो इस योगकी प्रवृत्ति क्यों नहीं। तथा दूसरा जो राजयोग है वह क्या है और उसका फल क्या है तथा वर्तमान कालमें है वा नहीं सोभी हमें समझाइये?

आपके चरणसेवक प्रश्नकर्ता—

कल्यानमल ओसवाल भड़गत्या अजमेर, हीराचन्द सचेती ओसवाल अजमेर, सोभागमल वेद मोहता ओसवाल अजमेर, देवकरण वेद महता अजमेर, हमीरमल साह ओसवाल अजमेर, नन्थमल गादिया ओसवाल रतलाम, जवाहरमल कठारिया ओसवाल रतलाम, हस्तीमल मूहता ओसवाल मेडता निवासी रतलाम, भगवानचन्द अग्रवाल वासल गोती आगरा, हर्षचन्द धारीवाल ओसवाल अजमेर, सौभाग्यमल हर्षावत् ओसवाल अजमेर, कन्हैयालाल हंसर अलवर, लक्ष्मीचंद भणोत ओसवाल अजमेर, वीसूलाल गुर्जरगोड ब्राह्मण अजमेर.

श्रीवीतरागायनमः ।

अथ स्याद्वादानुभवरत्नाकर ।

ग्रन्थारंभः ।

दोहा—सम्यक् दर्शनमें नमूं शासनपति श्रीवीर ।
स्याद्वाद प्रभु सुमरतां, मिटे सकल भवपीर ॥ १ ॥
गौतम स्वामी सुमिरिके. नमि सुधर्म पद माथ ।
आगम अनुभव कहत हूं, स्याद्वाद गुणसाथ ॥ २ ॥
पुनि गुरु चरण मनायके, श्रुति देवी मनलाऊं ।
स्वपर समयहिं जानके, वस्तु धर्म गुण गाऊं ॥ ३ ॥
सर्व मित्र मिल प्रश्न किय, सुनि उपजो आनन्द ।
पूछो मारग मोक्षको, तजि भवसागर फन्द ॥ ४ ॥
सुनों मित्र उत्तर कहूं, सुनत टलें भ्रम जाल ।
श्रद्धा भाषण अरु क्रिया, कर सब होहु निहाल ॥ ५ ॥

प्रथम प्रश्नका उत्तरः—भोदेवानुप्रिय ! प्रथम प्रश्नका उत्तर सुनो—कि मैं जिले अलीगढ़ (कोल)[1] व्रज देशमेंथा उस कोयलके पास एक हरदवॉ गंज कसवा अर्थात् व्यापारियोंकी मंडीथी उसमें एक लोहियोंकी जाति अगरवाले संवत् १७९४ की सालमें गुजराती लोगोंके गच्छके श्रीपूज्य नगराजजीने प्रति बोधकर उन अग्रवाले लोहियोंको जैनी स्वेताम्बर आमनावाले बनाये यती लोगोंके सिथलाचार होनेसे ढूँढिया मतमे प्रवृत्त हो गयेथे. उनमें गर्ग गोत्रका धारण करनेवाला एक कल्याणदास नाम करके वैश्य उस वस्तीमें प्रसिद्ध और सबको माननीयथा. उसकी स्त्रीका नाम ललितकुँवरि था जिसके एक देवकुंवरि नाम कन्या प्रथम हुई थी और उसके पश्चात् दो लड़के उत्पन्न हुये, परन्तु वे दोनों अल्प कालहीमें नष्ट हो गये. तब वे पुत्रकेलिये अनेक प्रकारके यत्न करने लगे थोड़े दिन पीछे मैने उनके घरमें जन्म लिया परन्तु मै अनेक प्रकारके रोगोंसे प्रायः दुःखी रहता था इसलिये मेरे माता पिता कई मिथ्या देवी देवताओंको पूजने लगे जो कि इस शरीरका आयु कर्म प्रवलथा इस कारण कोई रोग अधिक प्रवल नहीं हुआ मुझको मांगे

[1] यह कई नामो करके प्रसिद्ध है अर्थात् अलीगढ, कोल, कोयल आदि ।

हुये कपडे पहनाये जातेथे, इसी कारण मेरा नाम फकीरचन्द रक्खा गया, मेरे पीछे उनके एक पुत्र और हुआ जिसका नाम अमीरचन्दथा जब मैं कुछ बड़ा हुवा तो एक पाठशालामें बैठाया गया और कुछ दिनमें होशियार होकर अपनी दुकानोंके हानि लाभ और व्यापार आदिको भली प्रकारसे समझने लगा स्वामी संन्यासियों और वैरागियोंके पास अकसर जाया करताथा और गांजा, तमाखू आदिका व्यसन भी रखताथा गंगास्नान और राम कृष्णादिकोंके दर्शन करना मेरा नैत्यक कर्मथा और हरेक मतकी चर्चाभी किया करता था एक समय एक संन्यासी मुझको मिला और उसने कहा कि, कुछ दिन पीछे तुमभी साधु होजाओगे, मैंने यह उत्तर दिया कि मैं बँधा हुवा हूं और पैदा करना मुझे याद है फकीर तो वह बने जो पैदा करना न जाने इतनी बात सुनकर वह चुप हो गया पर कुछ देर पीछे फिर बोला कि होनहार (जो होनेवाला है) मिटनेका नहीं तुमको तो भीख (भिक्षा) मांग कर खानाही पड़ेगा तब तो मुझको उन लोगोंकी सङ्गतिमें कुछ भ्रम पड़ गया पर जो बातें उसने कहीथीं उनको हृदयमें जमा रक्खीं अब ढूंढ़ियोंकी संगति अधिक करने लगा और इससे जैनमतमें श्रद्धा बँधी परन्तु मंदिरके मानने अथवा पूजनेसे चित्त उखड़ गया थोड़े दिन बीतनेपर एक रत्नचन्दजी नामक साधु जिनको हम विशेष मानतेथे उन्हींके पोते चेले चतुर्भुजजी उस बस्तीमें आये और "दशवैकालकसूत्र बांचने लगे मैं भी वहां व्याख्यान सुननेको जाया करता था सो एकदिन सुनाताकि, जिस जगह स्त्रीका चित्र हो वहां साधु नहीं ठहरे कारण कि, उसके देखनेसे विकार जागता है यह बात सुनकर मैंने अपने चित्तमें विचार किया कि जो साधुको स्त्रीके देखनेसे विकार पैदा होता है तो भगवान् को देखनेसे हमको शक्तिरूप अनुराग पैदा होगा इतना मनमें धारकर फिर ढूंढ़िये चतुर्भुजजीसे चर्चा की तो उन्होंने भी शास्त्रके अनुसार मूर्त्तिपूजा करना गृहस्थीका मुख्य कर्त्तव्य बताया, और मुझको नियम दिलाया परन्तु उस देशमें तेरहपंथियोंका बहुत चलन था इस लिये उनके मन्दिरमें जाताथा और उन्हीकी संगति होने लगी जिससे तेरहपंथी दिगम्बरियोंकी श्रद्धा बैठने लगी कारण यह कि, भगवान्ने अहिंसा धर्म (अहिंसापरमोधर्मः) कहा है सो मूर्त्तिका दर्शन करना तो ठीक है परन्तु पुष्पादिक चढ़ानेमें तो हिंसा होती है ऐसी श्रद्धा हो गई इसी हालमें उस संन्यासीकाभी कहना मिलने लगा और बंधनसेभी छूटने लगा तब तो मुझको निश्चय हुवा कि मै किसी समय में साधु हो जाऊंगा कुछ दिवस पीछे एक दिन मेरे पिताने मुझे कुछ कहा सुना जिसपर मैंने यह कहा कि मुझे तो (यथा नाम तथा गुणः) प्रगट करना है इसीलये आपके जालमें नही फँसता मुझे तो फ़क़ीर बनना है फ़क़ीरोंको इससे क्या मतलब, उनका कहना न मानकर मै विदेश (परदेश) को चला गया और कई महीने तो कानपुरमें रहा ततूपश्चात् प्रयाग, काशी आदि नगरोंमें होकर पटने जाकर रहा कुछदिन पीछे वहांके सदर मुन्सिफ़से जो दिगम्बरीथा मेरी मुलाक़ात हो गई उसके वसतिसे मै दो वर्षतक वहाँ रहा इसी अर्सेमें वे और शहरको गये तो मैंभी उनके साथ गया वहां बीस पंथियोंका अधिक जोर था सो उनकी संगतसे कुछ शास्त्रभी उनके देखे उनमेंसे दयानतराय दिगंबरीकी बनाई हुई पूजन जिससे तेरह पंथकी ज्यादा प्रवृत्ति हुई उसमें लिखाथा कि भगवत्की केसर चन्दन पुष्पादिक अष्ट द्रव्यसे पूजा करना यह देखकर मेरी श्रद्धा शुद्ध हो

गई कि भगवत्का पुष्पादिकसे पूजन करना चाहिये ऐसा तो मेरे चित्तमें जम-गया परन्तु दिगम्बर मतकी कई बातें मेरे चित्तमें नहीं बैठीं जिनका वर्णन तीसरे प्रश्नके उत्तरमें करूंगा इसके बाद उन सदर मुन्सिफकी बदली पुर्नियांको हो गई तो मैं भी वहांसे कलकत्तेको चला गया दो चार महीने निठल्ला बैठा रहनेके पश्चात् बंगाली लोगोंके 'हाउस' में रुई व सोरेकी दलाली करने लगा और बंगाली लोगोंकी सोहबत पायकर जातिधर्मके सिवाय और धर्मका लेशभी नहीं रहा कई तरहके आच-रण ऐसे हो गये कि मैं वर्णन नहीं कर सकता कारण कि कर्मोंकी विचित्र गति है उन दिनोंमेंही मेरे हाथ एक शोरा रिफाइन करनेकी कल लगीथी उसमें दला-लीका रुपया जियादह पैदा होने लगा जिसका यह प्रभाव हुआ कि वद कामोंकी ओर दिल जियादा झुका सिवाय नरकके कर्म बंधनके और कुछ न था सो रविवारके दिन गोठ करनेको बाहिर गयाथा वहां खाना पीना और नशे आदिके पीछे नाच रंग हो रहाथा उस समय मेरे कोई शुभकर्मका उदय हुवा कि जिससे तत्काल मेरे मनमें वैराग्य उत्पन्न हुवा तो तुरन्त उस रंगमें भंग डाल अपने घर चला आया दूसरे दिन प्रातःकाल जो कुछ माल असबाबथा सो लुटा दिया फिर उस बंगालीके पास गया जिसका मैं काम करताथा और जाकर कहा कि मुझसे अब तेरा काम नहीं होगा मैंने संसारको छोड़ दिया और मे साधु बनता हूं हां तूने मेरे भरोसेपर यह काम कियाथा इस लिये एक और मातिबर दलाल मेरे साथ है लो मै उससे तुम्हारा सब वन्दोवस्त (प्रबंध) करवा देता हूं यह सुनकर वह बंगाली बहुत सुस्त और लाचार होने लगा मैं उसको समझाकर दूसरे दलालके पास लेगया और दिन भरमें उसका सब काम दुरुस्त कराकर संवत् १९३३ की साल जेठके महीनेमें सायंकाल (शाम) के समय कलकत्तेसे रवाना हुवा उस समय जो २ लोग मेरे साथ खाना, पीना नशा आदिक करतेथे वे सब साथ होगये और मेरा इरादा पैदल चलनेकाथा पर उनके जोर डालनेसे वर्द्वानका टिकट मैंने लिया उसी समय मैंने अपने घरवालोंको चिट्ठी दीकि मैं अब फकीर हो गया हूँ तुम्हारी जातिकुल सब छोड़ दिया और जैसा कहताथा कर दिखलाया है, जब मैं साधु हुवा तब एक लोटा जिसमें आधसेर जल समावे दो चद्दर एक लंगोटी और दो ढाई तोले अमल (अफीम) इसके सिवाय कुछ पास नहीं रक्खा और चित्तमें ऐसा विचार लिया कि जबतक ये अफीम पासमें है तब तक तो खाऊंगा पश्चात् ये न रहनेके और कदापि लेकर नहीं ग्रहण करूंगा. तमाखू जो पीताथा उसी समय छोड़दी और भांग (विजया) गांजाके लिये यह नियम कर लिया कि कहीं मिल जाय तो पीलेना। वर्द्वान उतर कर वैरागियोंके साथ मांगकर खाने लगा दो तीन दिन पीछे वह अमल खो गया उसी दिनसे खाना वन्द कर दिया, दो तीन दिन पीछे संन्यासियोंके साथ चल दिया पर यह विचार करतारहा कि कोई २ मुझे मेरा मत पूछेगा तो मैं क्या बता-ऊंगा मैंने सोचा कि यती लोग तो परग्रहधारी और छः कायका आरंभ करते हैं और ढूंढिया लोग जिन मन्दिरकी निन्दा करते हैं इस लिये इन दोनोंका भेष लेना ठीक नहीं और तीसरे भेदकी हमको खबर नहींथी इसी लिये यह विचार किया कि जो पूछे उसे यह कहना कि जैनके भिक्षुक हैं ऐसा निश्चय करके उनके साथ फिर मकसूदावाद आया फिर

दो चार दिवस पीछे मन्दिरकी सुनी और दर्शन करनेको गया और फिर वालूचरवडी पो सालमें शिवलालजी यती उस जगहके आदेशीथे उनसे भेट हुई, और उनके पूछनेपर अपना सब वृत्तान्त कह दिया तो उन्होंने यह कहा कि जिस मार्गमें समेगी लोग पीले कपड़ेवाले साधु है और उनमें कितनेही पुरुष शास्त्रके अनुसार चलने और पालनेवाले हैं सो उनका संयोग मारवाड़ या गुजरातमें तुम्हारे वनेगा परन्तु अब आषाढ़का महीना आगया इस लिये चौमासा यहांही कीजिये वर्षाके पश्चात् आपकी इच्छानुसार स्थानपर आपको वहां पहुंचा देंगे उनके अनुग्रहसे मैने चार महीने वहांही निवास किया, सो एकवार भोजन किया करता दूसरी वार गांजापीनेको वाहर जाता यह वात वहांके सव लोग जानते हे सिवाय यती लोगोंके और किसी साधुगण गृहस्थी वा सेठके पास जानेका मेरा प्रयोजन (इत्तिफाक) न हुवा और इसी लिये उन यती लोगोंकी सोहवत शास्त्रोंकी कई प्रकारकी वातें और रहस्य समझमें आये चौमासा वीतने पर मैंने वहांसे चलनेका विचार किया तो शिवलालजी यती वहुत पीछे पड़े कि आप रेल में वैठकर जाइये नहीं तो रास्तेसें वहुत परिश्रम उठाना पड़ेगा; पर मैने उत्तर दिया कि मै पैदलही जाऊंगा क्योंकि एक तो मुझे देशाटन (मुल्कोंकी सैर) करना है और दूसरे यात्रा करनी है, मेरी ऐसी धारणा है कि अन्न और वस्त्र तो गृहस्थी से लेना पर किसीभी कामके लिये द्रव्य कदापि नही लेना इसलिये मेरा पैदल जाना ही ठीक होगा आप इसमे हठ न करिये, फिर मै मकसूदावादसे चला. कर्मोंकी विचित्रतासे वैराग्य कर्म और चित्त चञ्चल तथा विकारवान् होनेलगा तो मैंने यह पण करलिया कि जवतक मेरी चंचलता न मिटे तबतक नित्य दो मनुष्योंको मांस और मछलीका त्याग कराये विन आहार नहीं लेऊं, इसी हालतमें शिखरजी तीर्थपर आया वहां यात्राकी और एक महीने तक रहा, वीस इक्कीस वार पहाड़के ऊपर चढ़कर यात्राकी तथा श्री पारसनाथजीकी टोंकपर अपनी धारणा प्रमाण वृत्ति धारणकी तव पीछे वहांसे आगे चला और ऊपर लिखे नियमानुसार ऐसा नियम कर लिया कि जवतक चार आदमियो को मांस और मछलीका त्याग न कराऊं तवतक आहार नहीं करूंगा । देश देशांतरोंमें भ्रमण करता और नानकपंथी, कवीरपंथी आदिसे वादविवाद करता गयाजीमें पहुंचा वहांसे राजगिरिमें पहुंचा और पंचपहाड़की यात्राकी, उस जगह कवीरपंथी और नानकपंथी वहुत थे जिनसे मिलता हुआ पावापुरीमे पहुंचा और शासनपति श्री वर्द्धमान स्वामीजीकी निर्वाण भूमिके दर्शन किये तो चित्तको वहुत आनन्द हुआ और इच्छा हुई कि कुछ दिन इस देशमें रहकर ज्ञान प्राप्त करूं, दो चार दिन पीछे जब मैं विहारमें गया तो ऐसा सुना कि राजगिरिमें वहुतसे साधु गुफाओंमें रहते है इसलिये मेरी भी इच्छा हुई कि उनसे अवश्य करके मिलूं ऐसा विचारकर उन पहाड़ोकी ओर रवाना हुआ, फिर दिनमें तो राजगिरिमें आहार पानी लेता और रातको पहाड़के ऊपर चला जाता सो कई दिन पीछे एक रात्रिमें एक साधुको एक जगह वैठा हुआ देखा, मैं पहले दूर वैठा हुआ देखता रहा थोड़ी देरमें दो चार साधु और भी उसके पास आये उनकी सब वातें जो दूरसे सुनी तो सिवाय आत्मविचारके कोई दूसरी वात उनके मुँहसे न निकली तो मैं भी उनकेपास जावैठा थोड़ी देरके पश्चात् और तो सब चलेगये पर जो पहले वैठाथा वही

बैठा रहा, मैंने अपना सब वृत्तान्त उससे कहा तो उसने धैर्य दिया और कहनेलगा तुम घबरावो मत जो कुछ कि तुमने किया वह सब अच्छाहोगा उसने हठयोगकी सारी रीति मुझे बतलाई, वह मैं पांचवें प्रश्नके उत्तरमें लिखूंगा, एक बात उसने यह कही कि जिस रीतिसे मै बतलाऊं उस रीतिसे श्रीपावापुरीमें जो श्रीमहावीर स्वामीकी निर्वाण भूमिहै वहां जाकर ध्यान करोगे तो किंचित् मनोरथ सफल होगा पर हठ मत करना उस आयास से चले जावोगे तो कुछ दिन बाद सब कुछ हो जायगा और जो तुम इस नवकारको इस रीतिसे करोगे तो चित्तकी चंचलता भी मिटजायगी और हम लोग जो इस देशमें रहतेहैं सो यही कारण है कि यह भूमि बड़ी उत्तम है जब मैंने उनसे पूछा कि क्या तुम जैनके साधुहो? परंतु लिंग तुम्हारे पास नहीं उसका क्या कारण है तो कहने लगा कि भाई! हमको श्रद्धा तो श्रीवीतरागके धर्मकी है परन्तु तुमको इन बातोंसे क्या प्रयोजन है जो बात हमने तुमको कहदीनी है यदि तुम उसको करोगे तो तुमको आपही वीतरागके धर्मका अनुभव होजायगा किन्तु हमारा यह कहना है कि परवस्तुको त्याग स्ववस्तुको ग्रहण करना और किसी भेषधारीके जालमें न फँसना इतना कहकर वह वहांसे चलागया मैंभी वहांसे सबेरा होनेपर नीचे उतरा और आस पासके गांवोमें फिरता रहा पीछे दो तीन महीनोंके विहारमें जाकर श्रावकोंसे प्रबंध करके पावापुरीमें चौमासा किया सोवन पांडे जो कि पावा पुरीका पुजारीथा उसकी सहायतासे जिस मालियेमें कपूरचन्दजीने ध्यान कियाथा उसीमें मैंभी ध्यान करने लगा दशदिन तक मुझको कुछ नहीं मालूम हुवा और ग्यारहवें दिन जो आनन्द मुझको हुवा सो मैं वर्णन नहीं कर सकता मेरे चित्तकी चंचलता ऐसे मिट गई जैसे नदीका चढ़ा हुवा पूर एक संग उतर जाय बाद उसके ध्यानमें विघ्न होने लगे सो कुछ दिनके बाद ध्यान करना तो कम किया और "गुरु अवलम्ब विचारत आतम अनुभव रसो मोहिं छावाजी। पावापुर निर्वाण थानमे नाम चिदानन्द पायाजी" इस नामको पायकर चौमासेके बाद वहांसे विहार कर घूमता हुवा बनारस (काशी) में आया और जगहकी भी यात्रा करी और उसी जगह रहताथा वहां कुछ दिन पीछे केसरीचन्द गड़िया जोधपुरवाला मुझे मिला उसने मुझसे पूछा कि आप किसके शिष्य हो और आप किधरसे आये? मैंने कहा कि मै श्रीशिवजी रामजीका शिष्य हूँ तब उसने यह कहा कि महाराज! मैं तो श्रीशिवजी रामजीके सब शिष्योंसे वाकिफ़ हूं आप कबसे हुये तब मैंने उत्तर दिया कि भाई! मैं उनकी सूरतसे तो वाकिफ नहीं पर नामसे गुरु मानता हूं तब वह जबरदस्तीसे मुझको मारवाड़में ले आया और फिर उसकी आज्ञा ले जयपुर उतर गया वहां मुझे श्रीसुखसागरजी मिले आठ दिन वहां रहा और फिर अजमेर होकर नये शहर पहुंचा वहां श्रीशिवजी रामजी महाराजके दर्शन किये उस समय मोहनलालजीभी उस जगहथे फिर श्रीशिवजी रामजीने अजमेर आकर मुझे फतेमल भड़गत्याकी कोठीमें दीक्षादी संवत् १९३५ का आषाढ़ शुदी बीज मंगलवारके दिन उस समय जब श्रीशिवजी रामजी महाराजने सर्व व्रत मुझको उच्चराते समय मुझसे पूछा कि मैं तेरेको सर्व व्रत समायक उच्चारण जावो जीवकी करता हूं उस समय बहुत शहरोंके श्रावक श्राविका चतुर्विदसिंह मौजूद था जब मैंने कहा कि महाराज साहब

मेरेको इन्द्रीका विषय भोगनेका जावोजीका त्याग है परन्तु प्रवृत्तिमार्ग अथवा कारण पड़ेतो गृहस्थियोंसे कहकर कर्म कराय लेना इसका वृत्तान्त चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखूंगा फिर मुझको दिक्षा देकर उन्होने नये शहरमे चौमासा किया परन्तु मेरी उनकी प्रकृति नहीं मिलनेसे मे अजमेर चला आया पश्चात् चौमासाके श्रीसुखसागरजी महाराज जयपुरसे आये और मे उनसे मिला और उन्होने मुझसे कहा कि भाई छः महीनेके भीतर जोग नही वहे तो समायक चारित्र गल जाता है जव मे उनकी आज्ञासे श्रीभगवान् सागरजीके साथ जाकर नागोरमें योगविद्या और वड़ी दिक्षा की उस समय मोहनजीभी मोजूदथे वड़ी दिक्षाका गुरु में श्रीसुखसागरजी महाराजको मानता हूं फिर वहांसे फलोदी जाकर चौमासा किया और उस जगह सारस्वतभी की, फिर नागौरमें चतुरमासा किया और उस जगह मेने चंद्रिकाभी देखी और फेर अजमेरमें आयकर वेदभी पढ़े और धर्मशास्त्रभी देखा वखान वानाभी वांचने लगा तथा श्रावकोंका व्यवहार उनको करने लगा मै अनेक स्वामी संन्यासी और ब्राह्मण लोगोंसे जो कि विद्वान् थे मिलता रहा और स्वमतके जती वा समेगी लोगोंसे वा ढूंढियोंसे सवसे मिलता रहा परन्तु उनके आचरण देखे तिनका हाल तो तीसरे वा चौथे प्रश्नके उत्तरमें कहूँगा लेकिन यहां कुछ कवित्त कहता हूँ॥

कवित्त—चौवे चले छव्वे होन, छवेनकी वड़ाई सुननिश्चयमें दुवे वसे दुवेही वनावे हैं। पक्षपातरहितधर्मभाषोसर्वज्ञआप, सोतो पक्षपातकरि सवही धर्मको डुवावेहैं॥ पंचमकालदोषदेतइंद्रिनकाभोगकरे, भीतर न रुचि क्रिया वाहरादिखलावेहैं। चिदानन्द पक्षपातदेखी अव मुल्कवीच समझै नहीं जैन नाम जैनको धरावेहैं॥ १॥ पांचसात वरस क्रियाकरिके उत्कृष्टी आप वनियेको वहकाय फिर माया चारी करतहै। मंत्र यन्त्र हानि लाभ कहै ताको वहु मान करे झूठ सुन आये तो आगे लेन जातहै॥ सुध प्रणति साधु रंजन ना करसके लोगोंको याते कोई मतलव विन कवहुं पास नहिं आवतहै। चिदानन्द पक्षपात देखी इस मुल्क बीच समझै नहीं जैन नाम जैनका धरावै है॥ २॥ पंचम काल दोष देत जैना उन्मत्त भये थापत अपवाद करै मौंडेकी कहानी है। द्विई विधि धर्म कह्यो निश्चय व्यवहार लियो कारण अपवाद ऐसी प्रभु आपही वखानी है॥ प्रायश्चित्त करै गुरु संग शुद्ध होय चित्त चारित्र धरे श्रद्धा और ज्ञान यही स्यादवादकी निशानी है। चिदानन्द सार जिन आगमको रहस्य यही आज्ञा विपरीत वोही नरककी निशानी है॥ ३॥

दिक् इति अलम् विस्तरेण—इति श्रीमज्जैनधर्माचार्य्य मुनिचिदानंद स्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकरे प्रथम प्रश्नोत्तरं समाप्तम्।

अथ द्वितीय प्रश्नका उत्तरः—जो तुमने मत मतान्तरके बाबत पूछा उसमें क्रिया वादी अक्रिया वादी, अज्ञान वादी और विनय वादी इनके तीनसो त्रेसठ ३६३ भेद होते हैं सो अगाडीके गीतार्थोंने केई ग्रन्थोंमें उनकी प्रक्रिया लिखी परन्तु में जो कि वर्तमान कालमें नैयायक वैशेषिक सांख्यी वेदान्ती, मीमांसक बौध चारवाक्य अर्थात् नास्तिक मत प्रसिद्धमें हैं इनमेंभी वैशेषिक और वेदान्ती दयानन्द मुसल्मान और ईसाई ये मत प्रसिद्ध हैं इन पाचोंहीके जो भेद हैं उन्हींको मैं तुम्हारे लिये वर्णन करता हूं सो तुम ध्यान कर सुनों. प्रथम नैयायिक सोलह पदार्थ मानते हैं सो वे वैशेषिकके पदार्थोंमें अन्तर भाषित हो जाते हैं इसलिये वैशेषिक कणादमुनिके रचेहुवे सूत्रोंमें जितने पदार्थ हैं उनका नाम द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष और समवाय है–१ पृथ्वी, २ अप, ३ तेज ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिग (दिशा) ८ आत्मा, ९ मन, यह नव द्रव्य मानते हैं और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार ये चौवीस गुण हैं, और उत्क्षेपण १ अवक्षेपण आकुंचन प्रसारण गमन पांच कर्म हैं और समान्य नाम जातिका है जैसे द्रव्यमें द्रव्यपन, गुणमें गुणपन ऐसे जाणों, और नित्य द्रव्योंमें रहकर उनको जुदे बतलाने वाले विशेष पदार्थ हैं और नित्य सम्बंधको समवाय कहते हैं इस रीतिसे नैयायिक इतनी वस्तुवोंको मानते हैं सो उनका मानना ठीक नहीं है, गुणको जो जुदा पदार्थ मानते हैं सो विना गुणके तो द्रव्य बनताही नहीं है और कर्मको जो पदार्थ माना है सो यह तो जीवोंके विभावका फल कर्म होता है सो कुछ पदार्थ नहीं और सामान्य विशेष दोनों कुछ पदार्थ नहीं हैं एक विवक्षा मात्र है, समवाय जो है सो तो गुण गुणीका सम्बन्ध है, सो सम्बंधको पदार्थ मानना ठीक नहीं है, जब तुम्हारे पदार्थही ठीक नहीं ऐसेही द्रव्यादिकभी ठहरते नहीं हैं क्योंकि जो द्रव्य तुम मानते हो सो तो जीवोंका अशुभ कर्म होनेसे, १ पृथ्वी २ तेज, ३ अप ४ वायु होता है इनको द्रव्य मानना यह कोई सर्वज्ञका वचन नहीं है और दिशाको जो पदार्थ मानते हो सो वह तो आकाशकेही अन्तरभाव है इसलिये पदार्थ मानना ठीक नहीं है अस्तु अब यह बात और समझो कि आदिके चार द्रव्य प्रमाणरूप सो नित्य है और कार्य्यरूप अनित्य हैं और पांचवे द्रव्यसे आठवें द्रव्यतक व्यापक और नित्य है और मन द्रव्य प्रमाणरूप है, इन नौ द्रव्योंमें चौवीस गुण रहे हैं सो द्रव्योंका तो आपसमें संयोग सम्बन्ध होता है और कार्य्यरूप द्रव्य अपने कारण द्रव्यमें समवाय सम्बंधसे रहते हैं और सामान्य नाम, जाति, द्रव्य, गुण, कर्म, इन तीनोंमें समवाय संबन्धसे रहते हैं और विशेष नित्य द्रव्योंमें समवाय संबंधसे रहे हैं अब हम तुमको पूछें हैं कि ये पदार्थ कोई प्रमाणसे सिद्ध हैं वा प्रमाण विनाही सिद्ध है जो कहो कि प्रमाण विनाही सिद्ध हैं तो ऐसे तुम्हारे कहनेको तो तुम्हारे घरकेही मानेंगे बुद्धिमान् तो कोई नहीं मानेगा जो कहो कि प्रमाणसे सिद्ध है तो ये मानेहुवे पदार्थ प्रमेय हुवे तो प्रमेय इस पदका अर्थ प्रमाणका विषय ऐसा है तो हम पूछैं हैं कि प्रमा प्रमाणसे पैदा होवे है कि प्रमाणको पैदा करे है तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि प्रमाणसे प्रमा पैदा होती है तो यह सिद्ध हुवा कि प्रमाण तो प्रमाको पैदा करै है और प्रमा पदार्थोंको सिद्ध करै है तो हम पूछैं हैं कि

प्रमाण और प्रमा यह दोनों पदार्थोंके अंतरगत है अथवा नहीं तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि मानें पदार्थोंके अंतरगतही हैं क्योकि तुम्हारे मानें पदार्थोंसे कोई वस्तु नहीं तुम्हारे माने पदार्थोंके अंतरगत हुई तो प्रमाकोभी प्रमेय माननाही पड़ेगा हम पूछें हैं कि प्रमा जो प्रमेय हुई तो इसको विषे करनेवाली पदार्थोंसे माननी चाहिये जो कहो कि माने पदार्थोंसे पदार्थ नहीं तो वहभी प्रमा इन पदार्थोंके अंतरगतही है उस प्रमाको प्रमेय कहनाही पड़ेगा इस प्रकार तो प्रमा मानते मानते अनवस्था होगी इसलिये प्रमाको प्रमेय नहीं माननी चाहिये तो यह सिद्ध हुवा कि प्रमा प्रमेय नहीं है और प्रमासे सब पदार्थ प्रमाके विषय हुए इसलिये प्रमेय हैं तो हम पूछे है कि प्रमा प्रमाणसे होवे है वा स्वतःसिद्ध है जो कहो कि प्रमाण विनाही सिद्ध है तो प्रमाणसे सिद्ध न हुई तो प्रमा अप्रमाणिक हुई तो अप्रमाणिक प्रमासे सिद्ध सारे पदार्थ अप्रमाणिक होगये जो कहोगे कि प्रमा प्रमाणसे पैदा होवे है तो हम पूछे हैं कि प्रमाण तुम्हारे माने पदार्थोंके अंतरगत है वा नहीं कहनाही पड़ेगा कि मानें पदार्थोंके अंतरगत है तो प्रमाणकोभी प्रमेय कहनाही पडेगा जो प्रमाणको प्रमेय कहोगे प्रमाण प्रमाका विषय है यह सिद्ध हो गया तो प्रमाण प्रमाके विषय होनेसे प्रमाण प्रमाको पैदा करनेवाला मानो तो सर्वथा असङ्गत है जो जिसका विषय हो सो उसको पैदा नहीं करै जैसे घट नेत्रोंका विषय है तो घट नेत्रोंको पैदा नहीं करैहै जो कहो कि प्रमा तो प्रमाण और विशेष इन दोनोंसे पैदा होती है यह अनुभव सिद्ध है तो हम कहें है कि प्रमाणका प्रमेयपणाही गया क्योकि प्रमाणको विषय करनेवाली प्रमा तो केवल प्रमाणरूप विषयसे ही पैदा हुई इसलिये प्रमा नही जो ये प्रमा नही हुई तो इसका विषय प्रमाण जो है सो प्रमेय न हुवा इसलिये माने पदार्थोंके अन्तर्गत प्रमाणको प्रमेय सिद्ध करनेवाली प्रमाका प्रमापणा सिद्ध होणेके अर्थ प्रमाण मानना ही पडेगा अब इस प्रमाणको भी माने पदार्थोंके अंतर्गतही मानना पडेगा तो अनवस्था होगी इसलिये प्रमाणकोभी प्रमेय नहीं मानना चाहिये जो प्रमाण प्रमेय न हुवा तो प्रमाण सिद्ध न हुवा इसलिये अप्रमाणिक हुवे जो कहो कि इस सामान्य कथनसे तो अर्थकी विधि समझ में आई नही इस लिये विशेष कथनसे समझाइये तो तुम्ही ही कहो कि तुम्हारे माने पदार्थ कौन प्रमाणसे सिद्ध हैं और तुम प्रमाण कितने मानते हो जो कहो कि हम १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द यह चार प्रमाण मानते है तहां घट आदिक पदार्थोंका ज्ञान तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे मानते हैं और धूम हेतु देख करिके परवतमें अग्निका ज्ञान अनुमान प्रमाणसे मानें हैं और गोसादृश्य ज्ञानसे गवयको उपमान प्रमाणसे माने हैं और गो लावो ऐसा शब्द सुनके जो ज्ञान होवे है उस ज्ञानको शब्द प्रमाण से माने है सो घटादिकके समान तो सारे पदार्थोंका ज्ञान होय नही इसलिये माने पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो सिद्ध नहीं हैं और कोई हेतु देख करके इनका ज्ञान होवे नहीं इस लिये यह अनुमान प्रमाणसे सिद्ध नहीं है और यह कोईके सदृश्य नहीं है इसवास्ते उपमान प्रमाणसेभी सिद्ध नहीं है अब शेष रहा शब्द प्रमाणसे सारे माने पदार्थ सिद्ध हैं शाब्द प्रमाणसे शाब्दा प्रमा होय है सो प्रमा माने पदार्थोंको विषय करे है इसलिये सारे पदार्थ प्रमेय हैं तो यह सिद्ध हुवा कि शब्द प्रमाणसे तो शाब्दी प्रमा और शाब्दी प्रमास

पदार्थोंकी सिद्धि है इसीलिये माने पदार्थ शब्दप्रमाण सिद्ध होनेसे प्रमाणिक सिद्ध है तो इस जगेभी जैसे प्रमाण और प्रमासे पदार्थ सिद्ध नहीं हुये वैसेही इस जगहभी जिस रितिसे पहले विकल्प किये हैं उस रीतिके विकल्प करनेसे शब्द प्रमाण और शाब्दी प्रमा सिद्ध न हुई इसके सिद्ध न होनेसे तुम्हारे माने पदार्थ सिद्ध न हुये तो तुम्हारे सिद्ध सारे पदार्थ अप्रमाणिक हुये तो यह कथन सर्वथा अप्रमाणिक है जो कहो कि पदार्थ सामान्य सिद्धि न हुये तो हम विशेष करके पदार्थ सिद्ध करेंगे हम कहते हैं कि यह कथन तुम्हारा तुम्हारे मतसेही सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि तुमनेही ऐसा माना है कि प्रथम सामान्य रूप करिकै पदार्थोंका ज्ञान होता है पीछे विशेष जिज्ञासा होती है तो जो पदार्थ सामान्य सिद्ध न हुये तो विशेष रूप करिकै जाननेकी इच्छा नहीं होती तो विशेष करके पदार्थ सिद्ध करैंगे सो सम्भवही नहीं ? खैर जो तुम कहो कि हम पदार्थ सिद्ध करेंगे तो कहो आदिके चार द्रव्य पृथ्वी, १ जल, २ तेज, ३ वायु, ४ परमाणुरूप तो नित्य कहे हैं और कार्य्यरूप अनित्य कहे हैं वहां परमाणु माननेमें क्या प्रमाण है जो कहो कि परमाणुका प्रत्यक्ष तो नहीं इसलिये परमाणु माननेमें अनुमान प्रमाण है तो यहभी कहो कि तुम प्रमाणु किसको मानों हो जो कहो कि जालीके प्रकाशमें सबसे सूक्ष्म जो रज मालूम होती है उसके छठे भाग (हिस्सा) को परमाणु मानते हैं, तो हम कहते हैं कि तुम उस छठे भाग परमाणुको जिस अनुमानसे सिद्ध करते हो सो अनुमान कहो परंतु प्रथम प्रकाशमें जो सबसे सूक्ष्म रज मालूम होती है सो छःपरमाणुओंसे पैदा हुवा द्रव्य है उसका नाम क्या है सो कहो तो अणुक ऐसा कहोगे तो उसकी उत्पत्ति तुमने कैसे मानी है सो कहो जो तुम कहोगे कि प्रथम सृष्टिके आदिमें परमेश्वरकी इच्छासे परमाणुमें क्रिया होती है पीछे दोनों परमाणुओंका संयोग होता है पीछे द्व्यणुक उत्पन्न होता है पीछे तीन द्व्यणुकोंसे एक त्र्यणुक पैदा होता है उसका प्रत्यक्ष होता है तो हम पूछते है कि तुम्हारे मतमें कार्य कितने कारणोंसे पैदा होता है तो तुम कहोगे कि न्यायशास्त्रमें तीन कारणोंसे सब कार्य्य पैदा होते हैं तिनमें एक समवायि कारण है दूसरा असमवायि तीसरा निमित्त कारण है जैसे कपाल घटका समवायि कारण है और दोनों कपालोंका संयोग घटका असमवायि कारण है और कुम्हार दंड चक्रादि घटके निमित्त कारण है तो हम पूछैं हैं कि सृष्टिके आदिमें परमेश्वरकी इच्छासे परमाणुमें जो प्रथम क्रिया पैदा होती है यह तुमने माना है तो वह क्रियाभी पैदा हुई इसलिये कार्य माननाही पड़ेगा जो वह क्रिया कार्य्य हुई तो उसके कारण तीनोंही होंगे तो परमाणु तो उस क्रियाका समवायि कारण होगा और परमेश्वरकी इच्छा उसकी निमित्त कारण होगी और असमवायि कारण यहां कोई नहीं बन सकता है तो कारण एकभी न होनेसे कार्य पैदा होता नहीं तो परमाणुमें प्रथम क्रिया मानना सिद्ध न हुई जो परमाणुमें प्रथम क्रिया सिद्ध न हुई तो उस क्रियासे दो परमाणुका संयोग पैदा होता है सो न हुवा जो संयोग न हुवा तो द्व्यणुक पैदा न हुवा तो तीन द्व्यणुकोंसे एक त्र्यणुक होता है सो न हुवा शेष तो ऐसे कार्य्य द्रव्य मात्र सिद्ध न हुवा तो कार्य्य द्रव्यों की उत्पत्तिके अर्थ परमाणु माना सो तुम्हारे मतसेही उसकी कल्पना व्यर्थ हुई अब हम यहभी पूछते हैं कि तुमने कार्य्य द्रव्योंकी उत्पत्तिके अर्थ परमाणु स्वरूप मूल समवायि

कारणकी कल्पना की है तो यह कहो कि तुम कार्य्य द्रव्य किसको मानों हो जो कहो कि हम घटादि पदार्थको कार्य्य द्रव्य कहते हैं तो हम पूछें हे कि अवयवि द्रव्य और कार्य द्रव्य एकही है अथवा विलक्षण है जो कहो कि एकही तो उस कार्य द्रव्यका उपादान कारण अवयव होगा तो हम पूछे हे कि तुम्हारा माना कार्य्य द्रव्य अवयवरूप कारणोका समुदाय है अर्थात् अवयवोंका समूहरूप है अथवा अवयवोंसे जो कार्य होता है सो अवयवोंसे विलक्षण पैदा होय है जो कहो कि अवयवोका समूहही कार्य है तो हम पूछते हैं कि तुम समुदाय पदार्थ किसको कहते हो? जो तुम कहो कि समुदाय पदार्थ जुदा तो है नहीं किन्तु प्रत्येक अवयवरूप है तो हम कहे है कि समुदाय जो प्रत्येकरूप होय तो प्रत्येक अवयवमे समुदायकी बुद्धि होनी चाहिये इसलिये समुदायको प्रत्येकरूप मानना असङ्गत है और दूसरा दोष यहभी है कि समुदाय प्रत्येकरूप होय तो घटका प्रत्यक्ष नहीं होना चाहिये क्योंकि तुम घटको परमाणु समुदायरूप कहोगे समुदाय तुम्हारे मतमें प्रत्येकरूप है तो घट प्रत्येक परमाणुरूप हुवा इसलिये घटका प्रत्यक्ष होता है सो नहीं होना चाहिये और प्रत्येक परमाणु बहुत है और घट प्रत्येक परमाणुरूप हुवा इसलिये घटरूप कार्य बहुत मानना चाहिये और परमाणुरूप हुये इस लिये नित्य मानने चाहिये जो नित्य हुये तो कार्य द्रव्य मानना असङ्गत है जो कहो कि जैसे दूर देशमें स्थित एककेशका प्रत्यक्ष नहीं होता है तोभी केशोंके समूहका प्रत्यक्ष होता है तैसेही एक परमाणुका प्रत्यक्ष नहीं होता हैं तोभी परमाणुसमूह जो घट उसका प्रत्यक्ष होता है तो हम कहें हैं कि केशोंका प्रत्यक्ष तो समीप देशमें होता है औरका तो तुम्हारे मतमे प्रत्यक्ष है नहीं इसलिये दृष्टान्त और दार्ष्टान्त विषम होनेसे घटका प्रत्यक्ष कहा सो असङ्गत है। औरभी सुनो कि जिस देशमे स्थिति एककेशका प्रत्यक्ष नहीं होता है उस देशमे स्थित केशों समूहका प्रत्यक्ष होय है सो नहीं होना चाहिये क्योंकि तुम समूहको प्रत्येकरूप मानों हो सो केशोंका समूह प्रत्येक केशस्वरूप हुवा और प्रत्येककेशका प्रत्यक्ष होना नहीं इसलिये केशोंका समूहकाभी पत्यक्ष नहीं होना चाहिये वा उसी देशमें केश समूह बहुत दीखने चाहिये क्योंकि तुम समूहको प्रत्यक्ष मानों हो तो केशोंका प्रत्यक्ष दीखे है सो समूह प्रत्येक स्वरूप है और प्रत्येक केश बहुत हैं इसलिये केश समूह बहुत दीखने चाहिये अब विचार दृष्टिसे देखो कि केश समूह प्रत्येक केशकेरूप तो हुवा नहीं और तुम समूहको प्रत्येकसे जुदा मानों हो इस लिये केश समूह प्रत्येक केशसे जुदा हो सकते नहीं तो केश समूह सिद्ध न हुवा तो केशरूप दृष्टान्तसे घटमें प्रत्यक्षपना सिद्ध किया सो नहीं हो सकै जो कहो कि कार्यको अवयव समूह मानना असङ्गत हुवा क्योंकि समूहको प्रत्येकरूप माननेसे तो हम ऐसा मानेंगे कि अवयवरूप कारणसे जो कार्य होता है सो अवयवरूप कारणोंसे विलक्षण पैदा होता है ऐसा माननेमें यह गुणभी है कि कार्य और कारणका लोकमें जुदा व्यवहार है सो बन जायगा तो हम पूछें हैं कि उपादान कारणसे कार्य विलक्षण मानो हो तो तुम आरंभवाद मानोंहो वा परिणाम वाद मानोंहो जो पूछो कि आरम्भ वाद क्या और परिणाम वाद क्या? तो हम कहते हैं कि आरंभ वाद मतवाले ऐसा कहते हैं कि उपादान कारण अपनेसे विलक्षण कार्यको पैदा करता है आप अपने स्वरूपसे बना रहता है जैसे तंतुरूप

उपादान कारण आपसे विलक्षण पट स्वरूप कार्यको पैदा करता है और आप तंतु अपने स्वरूपसे रहते है सो तंतु पटके शरीरमें मालुम होता है, ये आरंभवादमते है इस मतमें तंतुओंसे पट स्वरूप कार्यका आरम्भ किया इसलिये तन्तु औरभी कारण हुये और पटकार्य आरब्ध हुआ और परिणामवाद मत जिनका है वे ऐसा कहें हैं कि उपादान कारणहीका कार्य्य स्वरूप परिणामकूं प्राप्त हो जाता है और कार्य्य अवस्थामें अपने स्वरूपसे नहीं रहता है जैसा दहीका उपादान कारण दुग्ध है सोही स्वरूप परिणामको प्राप्त होता है और दधि (दही) अवस्थामें दुग्ध अपने स्वरूपसे नहीं रहता है इससे ही दहीके स्वरूपमें दुग्ध नहीं मालूम होता है यह परिणामवाद मत है इस मतमें दुग्धरूप कारण दहीरूप परिणामको प्राप्त हुआ सो दुग्ध परिणामी कारण हुआ और दही रूप कार्य्य दुग्धका परिणाम हुवा ऐसे उपादान कारण मात्रको परिणामवाद माने और आरम्भवाद मतमें आरब्ध माने हैं अब कहो तुम कौनसा मानोगे जो कहो कि अवयवरूप कारणसे विलक्षण कार्यकी उत्पत्तिमें आरम्भवाद मत मानते हैं तो हम कहते हैं कि आरम्भवाद मतमें अवयवरूप कारण कार्य्यको पैदा करै है सो कार्य्य अपने कारणोंमें जुदाही मानना पडेगा तो कारण जैसे कार्यको आपसे जुदाही पैदा करै है यहभी मानोगे वैसे कारणके गुण कार्यमें आपसे जुदे आपके सजातीय गुणोको पैदा करै है यहभी तुमको माननाही पडेगा तो हम तुमको पूछै है कि घटके अवयव दो कपाल हैं तो यही घटके उपादान कारण होंगे अब कहो कि प्रत्येक कपाल घटका कारण है वा दोनो कपाल मिले घटका कारण हैं जो कहो कि प्रत्येक कपाल घटका कारण है तो हम कहेगे कि प्रत्येक कपालसे घटरूप कार्य्य होना चाहिये जो कहोकि प्रत्येक कपालसेही घट होता है तो हम कहे हैं कि प्रत्येक कपाल दो हैं सो दो घट होने चाहिये दो घट होवे तब तुम्हारा यह नियम बने कि परमाणुका स्वभाव यह है कि आपके समान जाती और आपसे अधिक ऐसे परमाणु को कार्यमें पैदा करे है परन्तु यह नियम तब बने कि वे दोनों घट अपने कारण कपालोंकी अपेक्षा कुछ परमाणवाले होवें देखो कल्पना करो कि मानो कपाल १० दश अंगुल है तो उससे घट पैदा हुआ तो घटमें २० वीस अंगुलसे अधिक परमाण ज्ञात होना चाहिये क्योंकि १० अंगुलसे कुछ अधिक तो होगा घटका परमाण और आरम्भवाद मतमें कारण आपके स्वरूपका त्याग नहीं करके कार्य्यके शरीरमें मोजूद रहे है सो १० अंगुल हुवा कपालका परमाण ऐसे घटमें २० वीस अंगुलसे कुछ आधिक परमाण ज्ञात होना चाहिये और दो घट दो कपालोंसे बने नहीं इसलिये प्रत्येक कपालको करण मानों हो सो असंगत है जो कहो कि उपादान कारण तो प्रत्येक कपालही है परन्तु अवयव संयोग कार्य द्रव्यका असमवायि कारण होता है सो अवयव संयोग १ एक कपालसे होवे नहीं सो दूसरे कपालसे अवयव संयोगरूप असमवायि कारण सिद्ध करनेकेलिये द्वितीय कपाल है और उपादान कारण एक कपाल है इसलिये एकही घट कार्य्य हुवा और द्वितीय कपाल तो केवल असमवायि कारण सिद्धि करनेके अर्थ अपेक्षत है इसलिये दो घट होनेकी आपत्ति दी सो असंगत है अजी कुछ विचार तो करो कि द्वितीय शब्द तो सापेक्ष है क्योंकि प्रथमकी अपेक्षा द्वितीय होता है और विन गमना अ-

र्थात् एक पक्षको सिद्ध करनेकी कोई युक्ति हैनही सो तुम असमवायि कारण सिद्ध करनेके अर्थ जिस कपालकी अपेक्षा कीहै उस कपालको तो हम घटका उपादान कारण मानेंगे और तुम्हारे मानें उपादान कारणको उसकी अपेक्षा द्वितीय मान करिके अवयव संयोगरूप असमवायि कारण सिद्ध करनेवाला मानेंगे तो १ एक घट तो प्रथम प्रक्रिया जो तुमने कही उससे सिद्ध हो गया और दूसरा घट हमारे कहीं दुसरी प्रक्रियासे सिद्ध होगा प्रत्येक कपालको कारण माने तो दो कपालोसे दोही घट होने चाहिये और पहले कहे तुम्हारे नियमसे प्रत्येक घटमें एक कपालके परिमाणकी अपेक्षा दूनेसे अधिकही परिमाण मालुम होना चाहिये इसलिये प्रत्येक कपाल घटका कारण माननाही असंगत हुवा जो कहो कि, दोनों कपाल मिले घटका कारण मानेंगे तो हम तुमको पूछें हैं कि दोनों कपाल मिले घटके उपादान कारण हैं तो दोनों कपाल मिले इसका अर्थ क्या है जो तुम कहो कि संयोगवाला ऐसा अर्थ है तो हम कहें कि जैसे कपालोंमें कपालोंका रूप विशेषण है वैसे संयोगभी कपालोका विशेषण हुवा तो तुम कपालोंके रूपको घटकाकारण नहीं मानों हो तैसे संयोगकोभी घटका कारण नहीं मानसकोगे क्योंकि तुमने पांच प्रकारकी अन्यथा सिद्धि मानीवो अन्यथा सिद्धि जिसमें रहे उनको अन्यथा सिद्ध बता करके कारण नहीं माने है वहां दूसरा अन्यथा सिद्ध कारणके रूपको कहा है तहां कारणके रूपको अन्यथा सिद्ध इस प्रकारसे बताया है कि जो अपने कारणके साथही कार्य्यके पूर्ववर्त्ती होय और आपने कारण विना जो कार्य्यके पूर्ववर्त्ती नहीं हो सो उस कार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध होय है सो रूपके कारण होंगे दण्डकपाल चक्र चीवरादिक उनके साथही रूप घट कार्य्योंके पूर्ववर्त्ती हो सके है और उनके विना घटकार्योंके पूर्ववर्त्ती हो सके नहीं इसलिये दण्डकपाल इत्यादिकका रूप घटकार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध होनेसे घटका कारण नहीं तो हम कहें है कि कपालोंका संयोगभी अपने उपादान कारण जो कपाल उनके साथही घटकार्य्य पूर्ववर्त्ती हो सके है उनके विना पूर्ववर्त्ती हो सके नही इस लिये कपालोका संयोग घट कार्य्यकेप्रति अन्यथा सिद्ध होनेसे घटका कारण नहीं मानसकोगे जो कहो कि यह कथन अनुभव विरुद्ध है क्योंकि दोनों कपालोंका संयोग होतेही घटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष दीखे है इसलिये दोनों कपालोका संयोग घटका कारण नहीं मानें यह नहीं हो सके तो हम कहे है कि कपालोंके संयोगकोही घटका कारण मानों कपाल तो अन्यथा सिद्ध है जो कहो कि कपाल तो घटका कारण है यह कौनसा अन्यथा सिद्ध होगा तो हम कहे है कि कपालोंको तीसरा अन्यथा सिद्ध मानो क्योंकि जिसको औरके प्रति पूर्ववर्त्ती जान करके कार्य्य के प्रति पूर्ववर्त्ती जाने वो उस कार्यके प्रति अन्यथा सिद्ध है जैसे आकाश शब्दका समवाय कारण है इसलिये आकाशको शब्दके प्रति पूर्ववर्त्ती जान करिकेही घटके पूर्ववर्त्ती जानते हैं इसलिये आकाश घट कार्य्यके प्रति अन्यथा सिद्ध है तैसेही कपालोको जो संयोग उसका समवाय कारण कपाल है इसलिये कपालोको संयोगके पूर्ववर्त्ती जान करकेही घटके प्रति पूर्ववर्त्ती जाने है इसलिये घट कार्य्यके प्रति कपाल अन्यथा सिद्ध हुवा सो घटका कारण नहीं हो सके और जिस प्रक्रियासे घट कार्य्यके प्रति कपाल अन्यथा सिद्ध हुवा उसीमें क्रियासे दंड कुलाल इत्यादिकभी अन्यथा सिद्धही होंगे तो तुमने जिनको घटके

कारण कल्पना कियेथे सो अन्यथा सिद्ध होनेसे कारण नहीं होसके जो कारण नहीं हो सके तो कार्य्यको कैसे पैदा करे तो कार्य्य मानना सिद्ध न हुवा औरभी सुनो कि तुम ऐसा मानों हो कि कार्य और कारण एक देशमें रहै तब कारण कार्य्यको पैदा करे है और एक देमशें न रहे तो कारण कार्यको पैदा कर सके नहीं इसलिये वनमें कहीं पडा हुवा जो दंड उससे कार्य पैदा नहीं होवे है और घट जहां रहते है वहांही दंड रहे तब दंड घटको पैदा करे है इसलिये दंड और घट इन दोनोंको एक जगह रखनेके अर्थ ऐसा कहा है कि कपालोंमें घट तो समवाय सबंध करके रहे है और दंड जन्य भ्रमत कपाल द्वै संयोगवत्व संबंध करके कपालोंमें रहे है तो दंड और घट एक देशमें रह गये इसलिये दंड स्वरूप कारणसे घट कार्य हुवा और तुम इतना तो विचार करो कि यह संबंध तो वृत्युभयात्मक है अर्थात् इस संबन्धको यह सामर्थ नहीं है कि सर्व कारणको कपालमें रख देवे ऐसे२ सम्बन्धोंसे तुम कारण और कार्य्यको एक जगह रखोगे तो तुम्हारा परमेश्वर और उसकी इच्छा, ज्ञान, यत्न और दिशाकाल जीवोंके अदृष्ट घटका प्रागभाव और प्रतिबन्धकका अभाव ए नव संख्या तो साधारण कारण और कुलाल दंड सूत्र, जल चक्र इत्यादिक निमित्त कारण और कपाल समवाय कारण और दोनों कपालोका संजोग असमवाय कारण है यह सब कपालों में स्थित मानने पडेंगे तो घटकार्य्य होगाही नहीं क्योंकि कुलाल चक्रादिकके भारसे कपालोंका चूरणही हो जायगा अब जो कपालही न रहे तो घट कैसे होय इसलिये कार्य्य मानना असंगत है और जो पहिले कहा कि कपालोंका संयोग होतेही घट दीखे है सो कपालोंके संयोगको कारण न मानोंगे तो अनुभव विरोध होगा तो हम क्या कहें तुमको तो वहां कुलाल चक्र दंड आदिक पर्यन्त कपालोंमें दीखे हैं हमको दीखे नहीं इसलिये तुम्हारी दिव्य दृष्टिकी हम क्या शोभाकरें परन्तु पयाघटकी स्त्रीयोंभी ऐसा कहती होंगी कि न्यायकों वैशेषिकोंने पदार्थका निर्णय करनेकेलिये ऐसी तरक की है कि मानो पहाडको खोद करके ऊंदरे (चूहों) के पगोंको निकासना इससे तुम्हारी तर्कको देखकर हम तुम्हरेसे अनुभवकी बात नहीं करते है कारणके पदार्थके निर्णयमें तुम्हारी बुद्धि नहीं पहुंचती अनुभवका विचार तो बहुत दूर है अब इतना तुमकूंभी विचार करना चाहिये कि कपालेंसे घट पदार्थ जुदा होय तो आरंभ वाद मतसें दोय सेरके दो कापलोंका बनाया घट चार सेर होय क्योंकि दो शेर भार तो कारणोंका और दो सेर भार घटका होगा ऐसे घट चार सेर होना चाहिये इसलिये उपादान कारणसे विलक्षण कार्य्य मानना असंगत् हुवा जो कहो कि आरम्भवाद मतसे स्वरूप सिद्धि न हुवा तो हम परिणाम वाद मत मान करिके घट कार्यकूं कारणसे जुदा सिद्ध करेंगे क्योंकि परिणाम वादमें दुग्धरूप उपादान कारण नहीं दहीरूप परिणामकूं प्राप्त होय है इसलिये कार्य और कारणके गुण जुदे नहीं होनेसे घट कार्यमें द्विगुण होनेकी आपत्ति नहीं क्योंकि कपालरूप उपादान कारणही घट अवस्थाकूं प्राप्त हुवा है । अब जैसे कपाल घट अवस्थाको प्राप्त हुवा तो आपसे जुदाही द्रव्यकों पैदा करदिया और आप अपने स्वरूपसे न रहा तैसेही कपालके गुणभी घट कार्यमें अपनेसे जुदेही गुणोंको पैदाकर दिये और आप अपने स्वरूपसे न रहे इसलिये घटमें द्विगुण होनेकी आपत्ति नहीं है जो ऐसा मानोगे तो कारण और कार्य जुदे

कैसे होसकेंगे क्योंकि कारण तो है दूध और कार्य है दही वह दूधही दही अवस्थाको प्राप्त हुवा तो हम कहे कि हमारे कारणकूं कार्यसे जुदा करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं कार्यकी सिद्धिसे प्रयोजन है सो कार्य सिद्धि होगया हमतो अवस्था भेदसेही कार्य और कारण इनको जुदे मानें है; और प्रकारसे जुदे माने नहीं तो हम कहे है कि ऐसे परिणाम वाद मतसे कार्य सिद्ध करो हो तो तुम्हारा नैयायक मतमें जो आरंभ वाद मानाथा सो तो मिथ्या हुवा अब तुम सांख्य मतके परिणाम वादसे कार्य सिद्ध करोहो तो इसकाभी विचार करो कि इस मतमें दही दूधका परिणाम है दूध कारण है और दही कार्य है तो जैसे दुग्ध सो दही होय है वैसे दहीसे छाछ (मट्ठा) और माखनभी होय है, परन्तु दूध होवे नहीं वैसेही जो घटभी कपालोका परिणाम होयतो कपालोसे जैसे घट होयहै वैसे घट कपाल होवे नहीं परन्तु जब कपालोका संयोग नष्ट होय है तब घटकी तो प्रतीति होय नहीं और कपालोंकी प्रतीति होयहै इसलिये परिणामवाद मत माननाभी अशुद्धहीहै जो यह मत अशुद्धहुवा तो इससे कार्य माननाभी असंगत होगया अब हम यह और पूछे है कि परिणामवाद मतमे दूधतो उपादान कारण है और दही उसका परिणाम है सो कार्य है तो यह कहो कि जब दुग्धको दही अवस्था होयहै तब प्रथम दुग्धके सूक्ष्म अवयवोंका दही रूप परिणाम होयहै वा स्थूल दूधही दहीरूप परिणामको प्राप्त होयहै जो कहो कि दुग्धके सूक्ष्म अवयवोंका प्रथमदही दहीरूप परिणाम होयहै तो हम कहे हैं कि दुग्धके अवयवोंका जो संयोग उसका नाश प्रथम माननाही पड़ेगा क्योंकि परिणाम वादमें कार्यकी अवस्थामये कारण अपने स्वरूपसे रहे नहीं इसलिये पीछे सूक्ष्म अवयवोंमें दही रूप परिणाम माननाही पड़ेगा पीछे सूक्ष्म अवयवोंके नाना संयोग मानने पड़ेगे पीछे महा दधिरूप कार्य मानोगेतो जब सूक्ष्म अवयवका संयोग नष्ट हुवा तब अवयवोंके मध्यमे जहां तहां अवकाश माना जो अवकाश मानोंतो यह तुम निश्चय करके जानो पूर्णपात्रसे दुग्धका कुछ भाग वाहर निकलना चाहिये सो निकले नहीं इसलिये दुग्धके सूक्ष्म अवयवोका दही रूप परिणाम मानना असंगत है जो कहो कि स्थूल दूधही दही रूप परिणामको प्राप्त होयहै तो हम पूछेहै कि दुग्धको सावयव मानोंहो अथवा निरवयव मानो हो जो कहो कि सावयव मानें है तो कहो कि अवयवोंमे परिणाम होकर अवयव दुग्धमे परिणाम होय है अथवा अवयवी दूधमें परिणाम होकर अवयवोमे परिणाम मानो हो अथवा अवयव और अवयवी इन दोनोमे एकही समयमे परिणाम मानोहो जो कहो कि अवयवोंमे परिणाम होकर अवयवी दुग्धमें परिणाम मानेहैं तो हम कहेहै कि अवयवोंमे परिणाम मानकर अवयवी दुग्धमे दही-रूप परिणाम मानना असंगत है क्योंकि जो प्रथम अवयवोंका दहीरूप परिणाम हुवातो क्रमसे हुवा अथवा क्रम विनाही हुवा जो कहो कि क्रमसे हुवा तो प्रथम कौनसे अव-यवसे परिणामका आरंभ होगा तो विनिगमना नहीं होणेसे कोई अवयवसो आरंभ नहीं मान सकोगे तो अवयवमें क्रमसे परिणाम मानना सिद्ध न हुवा जो कहो कि क्रम विनाही अवयवोंमे परिणाम मानेहै तो हम कहे है कि तुम्हारे कोई विनगमनातोहै नहीं इस लिये अवयवी दुग्धमे परिणाम मान करिकेही अवयवोंमें परिणाम मानो जोकहोकि ऐसेही मानेंगे तो यहांभी विनगमना नही होनेसे इससे विपरीतही मानो हम ऐसे कहेगे कि

हम अवयव और अवयवी इन दोनोंसे एक समयमें परिणाम मानेंहैं तो हम कहेंहैं कि परिणामवाद मतमें अवयवीरूप कार्य अवस्थामें अवयवरूप कारण अपने स्वरूप रहै नहीं इसलिये यह कथनभी असंगत है जो कहो कि यह कथन असंगत हुवा तो हमारा पहिला माना हुवा स्थूल दूधमें दहीरूप परिणाम सिद्ध होगया तो हम कहेंहै कि दूधमें निरवयव होनेसे नित्य पणेंकी आपत्ति हुई और प्रमाण तथा आकाश इनकी तरह अप्रत्यक्ष होनेकी आपत्ति हुई इसलिये परिणाम वादसेभी कार्य मानना असंगतहीहै अब न तो परमाणु स्वरूप मान उपादानकारण सिद्ध हुवा न घटादि स्वरूप सिद्धहुवा सो नित्य और अनित्यरूप करके माने जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सिद्ध न हुये अब कहो तुम आकाश कैसे सिद्ध करो हो जो कहो कि आकाश नित्य है और व्यापक है और नित्यरूप है इसलिये आकाशका प्रत्यक्ष तो नहीं इसलिये अनुमानसे आकाश सिद्धि होयहै तो तुह्मारा अनुमान कहो कि जिससे आकाश सिद्ध होय जो कहो कि जैसे स्पर्श चक्षुसे जाननेके अयोग्य होता हुवा बाहिरकी इंद्रियों करिके जाणांजाय ऐसी जातिवाला गुण है तैसे शब्दभी इसलिये गुण है ऐसे अनुमानसे शब्द गुण सिद्ध हुवा और जैसे संयोग गुणहै इसलिये द्रव्यमें रहे है तैसे शब्दभी गुणहै इसलिये द्रव्यमे रहे है इस अनुमानसे शब्दका द्रव्यमें रहना सिद्ध हुवा पीछे निर्णय किया तो शब्द पृथ्वी, जल, तेज, वायु इनका गुण सिद्ध न हुवा और दिशाकाल आत्मा मन इनकाभी गुण शब्द सिद्ध न हुवा इसलिये इस गुणका आधार आकाश सिद्ध हुवा सो हम कहे हैं कि ऐसे आकाशकी सिद्धि "विश्वनाथ पञ्चाननभट्टाचार्य" ने अपने बनाये मुक्तावली नाम ग्रंथमें लिखीहै सो ही तुमने मानी है परंतु विचार करो कि स्पर्शके दृष्टान्तसे शब्दको गुण मानों तो स्पर्शको किसके दृष्टान्तसे गुण मानोंगे जो कहो कि रसके दृष्टान्तसे स्पर्शको गुण मानोंगे तो हम रसमे ऐसेही पूछेगे अन्तमें मूल दृष्टान्तको गुण सिद्ध करनेको समर्थ कोई नहीं होगा जो मूल दृष्टान्त नहीं सिद्ध हुवा तो शब्द कूँभी गुणपणां सिद्ध न हुवा जो शब्द गुण न हुवा तो उसके रहनेके अर्थ आकाशका मानना असंगत हुवा जो कहो कि शब्दमें गुण पणां सिद्ध न हुवा तो शब्दतो श्रोत्रसे प्रत्यक्ष सिद्धहै इसलिये शब्दका आधार आकाश सिद्ध होगया तो हम कहेंहे कि तुम करणके छिद्रमे वर्त्तमान आकाश को श्रोत्र कहोहो और शब्दका आश्रय मान करके आकाशको सिद्ध करोहो तो शब्दको तो प्रत्यक्ष सिद्ध करनेके अर्थ श्रोत्ररूप आकाशकी अपेक्षा होगी और आकाशको सिद्ध करनेके अर्थ शब्दकी अपेक्षा होगी इसलिये आकाश और शब्द दोनों अन्योन्य सापेक्ष होनेसे इनमे एकभी सिद्ध नहीं हो सके, जो कहो कि शब्दको तो हम स्पर्शके दृष्टान्तसे गुण सिद्ध करें है, क्योंकि हमारे मतमें शब्द गुणहै, और स्पर्शको गुण माननेमें तो किसीकोभी विवाद नहीं, इस लिये स्पर्शको गुणसिद्ध करना आवश्यक नहीं, तो हम कहे हैं कि तुम जो गुण मानों हो, सो व्यवहारसे मानो हो; वा संकेतसे मानोहो जो कहो कि व्यवहारसे मानें है, तो यह कथन तो असंगत है, क्योंकि व्यवहारमें सत्यभाषण धीरपणों, उदारपणा, दया, शीलपणा, तप, दान, गान, इत्यादिकोंको गुण मानें है, और मद्यका गंध, वेश्याके कुचोका स्पर्श चुम्बन समयमें इसके अधरोंका संयोग इत्यादिकों को गुण नहीं मानें हैं

जो कहो कि हम संकेतसें गुण मानेते हैं तो तुमही कहो कि तुमारा संकेत शास्त्र सिद्ध है वा नहीं, जो कहो कि शास्त्र सिद्ध है तो तुम कहो कि कौन शास्त्रको मानते हो, जो तुम कहो कि हम श्रुति सिद्धमानें हैं क्योंकि श्रुति नाम वेदका है इसलिये वेद हमको प्रमाण है तो तुम्हारेको वेद प्रमाण है तो हम कहे हैं कि वेदमें तो कहीं भी रूपादिकोंको गुण नाम करिके कहे नहीं जब तुम्हारे माने वेदसे सिद्ध न हुवे तो अप्रमाणीक होनेसे शब्दमें गुण पणा मानना असंगत हुवा इसलिये शब्दका आश्रय आकाशस्वरूप द्रव्य मानना असंगत है और देखो कि लोकमें भी यह पृथ्वीका शब्द है, यह जलका शब्द है यह वायुका शब्द है और यह अग्निका शब्द है ऐसा व्यवहार है और यह आकाश का शब्द है ऐसा तो कोई नहीं कहता इसलिये शब्द आकाश का गुण नहीं हो सके यह तुम्हारा आकाशका मानना असंगत हुवा अब जैसे आकाश सिद्ध न हुवा तैसेही काल और दिशा भी सिद्ध न होगी क्योंकि देखो शिरोमणिभट्टाचार्यनेभी पदार्थ तत्वनामग्रंथमें "दिक्कालनेश्वरादतिरिच्येत" ऐसा लिखा है इसका अर्थ यह है कि दिश और काल यह ईश्वरसे जुदे नहीं हैं और यह भी लिखा है कि "शब्द निमित्त कारणत्वेन कल्पितस्य ईश्वरस्यैव शब्द समवायिकारणत्वम्" इसका अर्थ यहहै कि शब्दका निमित्त कारणमाना जो ईश्वर सोही शब्दका समवायिकारण है इससे यह सिद्ध हुवा कि आकाश भी ईश्वरसे जुदा नहीं है इसमे विशेष विचार देखनेकी इच्छा होय तो पं॰ रघुदेवजीकी की हुई पदार्थतत्वकी टीका है उसमें देखो इसलिये आकाश काल और दिशा यह मानना असंगत है अब कहो तुम आत्मा किसको कहो हो जो कहो कि हम आत्मा दोप्रकारकी मानें है तहां एक तो परमात्मा है और दूसरा जीवात्मा है तहां परमात्मा तो एकही है और जीवात्मा प्रतिशरीर जुदा है और व्यापक है और नित्य है और परमात्माभी व्यापक है और नित्य है और परमात्मामें संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा यत्न, ये आठ गुण है और जीवमें आठ, तो परमात्मामें गुण बताये सो रहे है और सुख दुःख द्वेष धर्म अधर्म भावना नाम संस्कार ये छः गुण सर्व मिलकर चतुर्दश गुण रहेहैं और परमात्मामें ज्ञान, इच्छा, यत्न नित्य हैं और जीवमें ये गुण अनित्य है और परमात्मा कर्त्ता है और भोक्ता नहीं है, और जीवात्मा कर्त्ता भी है और भोक्ता भी है, तो हम पूछें हैं, कि ईश्वरको तुम कौन प्रमाणसे सिद्ध करो हो जो कहो कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध करें हैं तो हम पूछे हैं कि बाह्य इंद्रियोंसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है वा मनसे जो कहो कि बाह्यन्द्रियोंसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है तो ये कथन असंगत है क्योंकि तुम बाह्यन्द्रियोंसे सावयव द्रव्यका प्रत्यक्ष मानो हो ईश्वर तुम्हारे मतमें निरवयव द्रव्य है जो कहो कि मनसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय है तोभी कथन असंगत है क्योंकि मनसे ईश्वरका प्रत्यक्ष होय तो ईश्वरमें सुखादिककी तरह अनित्यपणां मानणां पड़ैगा क्योंकि तुम्हारे मतमें सुख अनित्य है और मनसे जाना जायहै जो कहो कि अनुमानसे ईश्वरकूं सिद्ध करै है तो तुम्हारा अनुमान ऐसा है कि जैसे घट कार्य है इसलिये कर्त्तासे पैदा हुवा है तैसेही पृथिव्यादिक भी कार्य है इस लिये कर्त्तासे पैदा हुये हैं इस अनुमानसे पृथिव्यादिकमें कर्त्तासे पैदा होना सिद्ध करो हो क्योंकि और तो कर्त्ता पृथिव्यादिकका कोई बनसकै नहीं इस लिये इनका कर्त्ता ईश्वर मानों हो तो हम पूछे हैं कि तुम कर्ता किसको कहो हो जो कहो कि कृतिका

अर्थात् यत्नका आश्रय होय सो कर्त्ता तो हम पूछे हैं कि जीवका यत्न तुम अनित्य मानों हो तो उस यत्नकी उत्पत्तिभी तुम मानोंहीगे तो यत्न भी कार्य ही होगा जो यत्न कार्य हुवा तो यत्न कर्त्ता जीवको ही मानोगे जो जीव कर्त्ता हुवा तो जीवमें कर्त्ता पना सिद्ध करनेके अर्थ इस यत्नसे जुदा और ही यत्न मानोंगे वा उस ही यत्नसे जीवको कर्त्ता सिद्ध करोगे जो कहो कि और ही यत्न मानेंगे तो उस यत्नको भी कार्य मानना पड़ेगा तो अनवस्था होगी इस लिये जीवको कर्त्ता मानना सिद्ध न हुवा, जो कहो कि उसी यत्नसे जीवको कर्त्ता सिद्ध करे तो वह यत्न तो कार्यहै और कर्त्ता कार्यसे पूर्व सिद्ध होजाय तब कार्यको पैदा करैहै यह तुम्हारा नियमहै और यत्न विना कर्त्ता हो सके नहीं इस लिये जीव कर्त्ता सिद्ध न हुवा जो जीव कर्त्ता न हुवा तो ईश्वरमें कर्त्तापणां सिद्ध करनेका दृष्टान्त सिद्ध न हुवा इसलिये ईश्वरको कर्त्ता सिद्ध करनेका अनुमान किया था सो सिद्ध न हुवा और भी तुम कहो कि ईश्वरमें यत्न मान करिके कर्त्तापणां मानों होतो वह यत्न एक मानों हो वा नाना यत्न मानो हो जो कहो कि एकही यत्न माने हैं तो सृष्टि स्थिति प्रलय इनमें से एक ही निरंतर सिद्ध होना चाहिये जो कहो कि नाना यत्न माने हैं तो सृष्टि यत्न, स्थिति यत्न, प्रलय यत्न ये नित्य मानणे पड़ेंगे तो यह परस्पर विरुद्ध होनेसे सृष्टि स्थिति प्रलय इनमें से एकभी नहीं सिद्ध हो सके जो कहो कि यत्न तो एकही मानें हैं परंतु जिस क्रमसे सृष्टि स्थिति प्रलय होती है उनके अनुकूल उस यत्नका स्वरूप मानेगे तो हम पूछे है कि तुम सृष्टि स्थिति प्रलय इनको देखि करिके ईश्वरमें उनके अनुकूल यत्न कल्पना करो हो वा ईश्वरमें जैसा यत्न है इसलिये उसके अनुकूल सृष्टि स्थिति प्रलय मानो हो जो कहो कि इन तीनोंको देख करके इनके अनुकूल यत्न कल्पना करे हैं तो हम कहे हैं कि परमेश्वरके अचिंत्य अलौकिक ज्ञान जिस प्रकारसे सृष्टि स्थिति प्रलय इनको विषय कियेहैं तैसेही यह तीनोंकी होयहै ऐसा ही कल्पना करोतो क्या हानिहै जो कहो कि हानितो नहीं किन्तु गुणभी नहीं कि जिसे ऐसा कल्पना करे तो हम कहे है कि देखो ईश्वरमें यत्नभी नहीं मानना पड़ा और सृष्टि स्थिति प्रलयभी सिद्ध होगये लाभभी हुवा और कार्यभी होगया और ईश्वरको कर्त्ता भी नहीं मानना पड़ा और ईश्वर विना कार्य भी नहीं हुवे इसके सिवाय अधिक तुम और कौनसा गुण चाहो हो सो कहो जो कहो कि इस कल्पनामें गुण तो बहुतहै परन्तु हमारे मतमें ईश्वरमें नित्य यत्न होनेसे कर्त्तापणां माना है सो सिद्ध न हुवा इतनी हानि है तो हम कहे हैं कि बहुगुण लाभमें अल्प हानिकी दृष्टि कोई विवेकी मनुष्य करे नहीं इस लिये ऐसी दृष्टि तुम्हारेको भी नहीं होनी चाहिये जो कहो कि इस कल्पनासे तो हमारा मत नष्ट होय इस लिये ऐसे मानेगे कि ईश्वरमे जैसा यत्न है उसके अनुकूल सृष्टि स्थिति प्रलय होयहै तो हम कहे हैं कि उस यत्नका प्रत्यक्ष तो होयनहीं इस लिये जीवको दृष्टान्त बना करिके ईश्वरमें यत्न सिद्ध करोगे सो जीवमें कर्त्तापणां पहिली कही युक्तिसे सिद्ध नहीं इस लिये ऐसे मानणां असंगत है और भी विचार करो कि जीवकूं कर्त्ता मानभी लो तो भी जीवके दृष्टांतसे ईश्वरमें कर्त्तापणां मानना तुम्हारे मतसेही सिद्ध न होसके क्योंकि तुमनेही ऐसे माना है कि जीवमें प्रथम इष्टसाधनताज्ञान अर्थात् मेरा सुख साधनहै ऐसा ज्ञान होयहै पीछे इच्छा होयहै ता पीछे यत्न होयहै पीछे कार्य होयहै अब ईश्वरमें जीवके दृष्टान्तसे

कर्त्तापणां सिद्ध करोगेतो प्रथम इष्टसाधनता ज्ञान ईश्वरमें मानणा पड़ेगा सो ज्ञान ईश्वरमें बनसके नहीं क्योंकि ईश्वरमें तुम सुख मानो नहीं और इष्टनाम सुखकाहै सो ईश्वरमें सुख साधनताज्ञान कैसे होसके अब जो ईश्वरमें इष्टसाधनताज्ञान नहीं तो इच्छा कहां जो इच्छा नहीं तो यत्न कहां जो यत्न नहींतो ईश्वर तुह्मारे मतसेही कैसे कर्त्ता सिद्ध होसके और कहो कि तुम ईश्वरमें जो ज्ञान इच्छा यत्न है उनको समुदाय कारण मानोहो वा असमुदाय कारण मानो हो जो कहो कि असमुदाय कारण माने है तो ज्ञान, इच्छा, यत्न. इनमेंसे एकसेही जगत् होजायगा तो दो व्यर्थ होगे अर्थात् ज्ञानसेही जगत् सिद्ध होगातो इच्छा और यत्न यह व्यर्थ होंगे और इच्छासेही जगत् होगा तो ज्ञान और यत्न व्यर्थ होंगे जो यत्नसेही जगत होगातो ज्ञान और इच्छा यह व्यर्थ होंगे जो कहो कि दो व्यर्थ होते है तो हम एकसेही जगत्की उत्पत्ति मानेंगे तो ईश्वर कर्त्ता सिद्धि होगया तो हम कहे है कि विनिगमना अर्थात् प्रमाण नही होनेसे इन ज्ञान इच्छा यत्नोंमें किसीभी एकसे जगत्की उत्पत्ति नहीं होसके जो कहो कि ईश्वरके ज्ञान इच्छा यत्न यह समुदाय कारण है तो हम पूछे है कि तुमही कहो इनको समुदाय कैसे मानोहो क्या ज्ञान इच्छा यत्न ऐसा मानोहो वा इच्छा यत्न ज्ञान ऐसे मानोहो अथवा यत्न ज्ञान इच्छा ऐसे समुदाय मानोहो वा इच्छा ज्ञान यत्न ऐसे मानोहो वा ज्ञान यत्न इच्छा ऐसे मानोहो वा इच्छा ज्ञान ऐसे मानोहो तो विनिगमनानही होनेसे इनमेंसे कोई प्रकारसेभी समुदाय कारण नहीं मान सकोगे इसलिये ज्ञान इच्छा यत्न इनको समुदाय कारण मानना नही बनसके तो ईश्वर कर्त्ता कैसे होसके जोकहो कि हम शास्त्रके प्रमाणसे कहेंगे तो हम तुमको पूछे है कि वह शास्त्र कौनसे हैं तो तुम श्रुति-कोही प्रमाण होंगे सो इन श्रुतियोंमें आपसमेंही विरोधहै जो विरोधनहीं होतातो तुह्मारे जो श्रुतिके माननेवाले है वे आपसमें उपदेश जुदा २ न करते हमारेको तो आप्तके वचनका प्रमाण है सो इसका खंडन तो वेद अर्थात् श्रुतिके खंडनमें लिखेंगे परंतु तुम तुह्मारी श्रुति-सेभी ईश्वरको कर्त्ता सिद्ध न करसकोगे जो तुम कहो कि "सत्यंज्ञान मनंतं ब्रह्म" ऐसे तैत्तिरीयोपनिषदमें श्रुति है तो सत्यनाम नित्यकाहै. और ज्ञान नाम चेतनका है और अनंत शब्द व्यापकको कहे है तो इस श्रुतिका यह अर्थ हुवा कि ब्रह्मजो परमात्मा सो नित्य है और चैतन्य और व्यापकहै तो परमात्मामे ज्ञानसिद्ध होगया और ऐतरेय उपनिषदमें "स ईक्षत लोकानुसृजा" ऐसे लिखा है इसका अर्थ यह है कि वह देखता हुवा लोकोंको रचनेकी इच्छा करके तो परमात्मामे इच्छा सिद्धि होगई और तैत्तिरीयोपनिषद्-में लिखा है कि "सतपो ऽप्यतप्यततपस्त त्वा सर्वमसृजत यदिदं किंचन" इसका अर्थ यह है कि वह तप करता सो तप करिके सबको पैदा करता हुवा इससे परमात्मामे यत्न सिद्ध हो गया इसलिये ईश्वरमे ज्ञान इच्छा यत्न माने हैं तो हम कहेहे कि ऐसे श्रुतिके कथनसे ज्ञान इच्छा यत्न मानो तो हम पूछे है कि तुम अपने मतलबकेही वास्ते इन उपनिषदोमेंसे एक एक श्रुति मानो हो अथवा सर्व उपनिषदोकी सर्व श्रुतियां मानोहो जो तुम कहो कि हम तो सबहीको माने है तो हम कहे है कि उनही उपनिषदोंमे ऐसा लिखा है कि "श्वेताश्वतर शाखा है तहां कित सस्मा-न्मायी सृजते विश्वमेतत्" इसका अर्थ यहहै कि माया करिके युक्त परमात्मा इस विश्वको

पैदा करे है तो इस श्रुतिका यह तात्पर्य हुवा कि परमात्माके निजरूप करतापणा नहीं है मायारूप उपाधिकी दृष्टिसे ईश्वरमें कर्तापणाहै और तैत्तिरीयोपनिषदमें लिखाहै कि " सो ऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय " इसका अर्थ यहहै कि वह इच्छा करताहुवा बहुत होऊं तो इसश्रुतिका यह तात्पर्यहुवा कि परमात्माही बहुत जगत् रूप करके पैदा हुवा और मुण्डकोपनिषदमें लिखा है कि " तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवंते सरूपास्तथा क्षराद्विविधाः सौम्यभावाः प्रजायंते तत्र चैवा प्रिलियन्ते " इसका अर्थ यह कि सो यह सत्या है जैसे प्रज्वलित अग्निसे विस्फुलिंग अर्थात् तणगारा हजारों पैदा होय है सदृश तैसे परमात्मासे नाना प्रकारके सौम्य भाव पदार्थ पैदा होय है उसी मैं प्रवेश करजाय हैं इस श्रुतिका यह तात्पर्य हुवा कि जैसे अग्निसे उत्पन्न अग्निके कण जो हैं सो अग्निही हैं तैसे परमात्मासे उत्पन्न जो जगत् सो परमात्माही है और इन्हीं श्रुतियोंमें ऐसा लिखा है कि उसी परमात्मानेही जीव हो करके देहमें प्रवेश किया जीव शब्दका अर्थ प्राणोंका धारण करनेवाला ऐसा है इस लिये शरीरमे प्रवेश किया परमात्माने जीव नामको पाया अब जो श्रुतिके कथनसे परमात्मामें ज्ञान इच्छा यत्न मानोतो श्रुतिसे ही जीव और जगत् इनको परमात्माही मानो इसीलिये हम तुम्हारे को कहेहै कि सर्वज्ञके वचनको मानों तो परमानंदसे पूर्ण होजावो परंतु जिनके अज्ञानके संस्कार दृढ़हैं तिनको ऐसा मानना कठिन है कदाचित् कोई शुभ कर्मके उदयसे कोई प्रकारसे मानभी लेवेतो ऐसा जानना अत्यन्तही कठिन है अब कहो तुमने तुम्हारे मरजीके माफिक परमात्मामें ज्ञान इच्छा यत्न माने सो इनको नित्य कैसे कहोहो जो कहो कि जीवके ज्ञान इच्छा यत्न अनित्य है इसलिये परमेश्वरमे जीवकी अपेक्षा यहही विलक्षण पणाहै कि इसमें यह गुण नित्यहैं तो हम कहैं हैं कि तुम ईश्वर नया बनाते हो वा ईश्वर जैसा है तैसा वर्णन करो हो जो कहो कि हम तो ईश्वर बनाते नहीं किन्तु ईश्वर है तैसा वर्णन करेहै तो हम कहेहै कि तुमही विचारकरो एकमें बहुत हो जाऊं यह इच्छा ईश्वरमे प्रलय समयमें कैसे बण सकें जो प्रलयसमयमें यह इच्छा ईश्वरमे रहे तो प्रलय होवेही नही क्योंकि श्रुति परमेश्वर को सत्य संकल्प वर्णन करेहै इस लिये प्रलयकालमे सृष्टि होजाय जो कहो कि प्रलय कालमें सारे पदार्थोंके अभाव रहें हैं इस लिये अभावोंकी सृष्टि मान लेवेगे तो हम कहैं है कि प्रलय कालमें तो अभाव और भाव तुम्हारे मानें दोनोंही रहें नहीं क्योंकि सृष्टिका पूर्वकाल और सृष्टिका उत्तर काल इनका नाम प्रलय है तो सृष्टिके आदिकी ये श्रुति है कि " सदेव सौम्येद मग्र आसीत् " इसका अर्थयेहै कि पूर्व कालमें हेसौम्य ये जगत् सत्नामपरमात्माही हुवा तो इस श्रुतिमें एव शब्दहै इसका अर्थ भाषाके मांहिही ऐसा है तो इस शब्दके यह स्वभाव है कि यह शब्द जिस शब्दके आगाड़ी होय उस शब्दका जो अर्थ उससे जुदे पदार्थोंको निषेधको कहैहै जैसे यहां घटही है इस वाक्यमे ही शब्द घट शब्दके अगामी है तो घट पदार्थसे जुदे पदार्थोंके निषेधको कहै है तैसे सृष्टिके आदिकी श्रुतिमे यह शब्द अर्थात् "ही" इस अर्थका कहनेवाला एवशब्द सत् शब्दके अगाडी है तो सतसे जुदे सर्व पदार्थोंके निषेधको कहेगा तो प्रलयमें अभावोकी सृष्टि कैसे होसके और " सर्वे आत्मानः समर्पिता निरंजन परसाम्य मुपैति ये प्रलय कालकी श्रुति है इसका अर्थ यह है कि सार आत्मा अर्पण किये परमा-

त्माका पारसाम्य अर्थात् परमात्माका अभेद प्राप्त होयहै जो कहो कि साम्य शब्द तो सादृश्यपने को कहै आप इसका अभेद अर्थ कैसे कहो हो तो हम कहे है कि साम्य शब्दका अभेद नहीं कहै किन्तु परमसाम्य शब्दका अर्थ अभेद कहे है उससे भिन्न और उसके बहुत धर्मों करके युक्त होय सो तो सम और जोवोही होय सो परमसम जो कहो कि यह अर्थ आप को न अनुभव से करोहो तो हम कहे है कि सृष्टिके आदिकी श्रुतिके अर्थके अनुभवसे करैहै जो ऐसा अर्थ न करें तो सृष्टिके आदिकी श्रुति और प्रलयकी श्रुति इन दोनों श्रुतियोंकी एक वाक्यता अर्थात् एक अर्थ होय नहीं जो कहो कि यह दोनों श्रुति तो भिन्न समयकी है इसलिये एक अर्थ करना निष्फल है तो हम कहे हैं कि सृष्टिका आदि और सृष्टिका अन्त सृष्टिके न होनेमें बराबर है जो कहो कि आदि और अन्त कैसे बराबर होसके तो हम कहेहैं कि आदि अन्त व्यवहार तो आपेक्षिक है सृष्टिके न होनेकेकाल तो दोनोंही है जो कहो कि आदि अन्त व्यवहार आपेक्षित हैं तो आदि अन्तमें अन्तादि व्यवहारभी होणाचाहिये तो हम कहेहे कि देखो सृष्टिका पूर्व काल पूर्व सृष्टिकी अपेक्षा प्रलयकाल है और इस सृष्टिकी अपेक्षा सृष्टिका आदिकाल है ऐसेही भविष्यत् प्रलयमे समझो जोकहो कि इस सृष्टिके पूर्वभी सृष्टिरही इसमें क्या है प्रमाण तो हम कहे है कि " धाता यथा पूर्वमकल्पयत् " श्रुतिका प्रमाण है इसका अर्थ यह है कि परमेश्वरने जैसे पहले जगत् रचा है तैसेही जगत् रचादिया जो कहो कि भविष्यत् प्रलयके पीछे भी सृष्टि होगी इसमें क्याप्रमाण तो हम कहे हैं कि भूत प्रलयके पीछे यह सृष्टि हुई तैसेही सृष्टि भविष्यत्प्रलयके पीछे भी होगी ये अनुभवही प्रमाण है अब विचार करिके देखो कि प्रलय कालमें परमात्मामें इच्छा सिद्ध न हुई तो ईश्वरकी इच्छा नित्य कैसे मानीजाय ईश्वरकी इच्छा नित्य सिद्ध न हुई तैसे ईश्वरका यत्नभी नित्य सिद्ध नहीं होगा जो कहो कि ईश्वरका ज्ञान भी इच्छा और यत्न इनकी तरह है अनित्य मानणा पडेगा तो हम कहे है कि परमात्माका ज्ञान अनित्य नहीं है किन्तु नित्य है जो कहो कि न्याय शास्त्रका मत यह है कि विषयके नहीं होनेसे ज्ञानका ज्ञानपना रहे नहीं तो प्रलय कालमें कोईभी भाव अभाव नही होनेसे ईश्वरका ज्ञान नित्य कैसे मान्या जाय तो हम कहे है कि ईश्वरका ज्ञान प्रलय कालमें ईश्वरकोही विषय करेगा इसलिये विषयका न होना न हुवा इसलिये ईश्वरका ज्ञान नित्य है जो कहो कि परमात्माका ज्ञान परमात्माको विषय करे है इसका प्रमाण क्या तो हम कहेहे कि गीताकी दशवीं अध्यायमें अर्जुनने कहा है कि " स्वय भवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम " अर्थ यहहै कि हे पुरुषोत्तम आपही आपसे आपको जानो हो जो कहो कि इस कथनसे तो परमात्मा ज्ञान रूप सिद्धि होता है क्योंकि इस कथनमें जानना और जानने वाला और जाण्यागया ये तीनूं एक मालूम होय हैं तो ईश्वरमे ज्ञान सिद्ध न हुआ किंतु ईश्वर ज्ञानरूप सिद्ध हुवा तो न्याय शास्त्रमें ईश्वरको नित्य ज्ञानका आश्रय कहा है सो कैसे हो सके इसका उत्तर क्या तो हम कहे है कि इसका उत्तर तो न्याय शास्त्रके आचार्योंको पूछो उन्होनेही ईश्वरको ज्ञानका आश्रय कहा है अब देखो उनको इतना भी विचार न हुवाके ईश्वरको ज्ञानका आश्रय मानेंगे तो ईश्वर जड़ सिद्धि होगा क्योंकि उन्होंने ज्ञानको गुण माना है और ईश्वरको द्रव्य माना है तो ईश्वर चैतन्यसे जुदा पदार्थ होनेसे जड़ही सिद्ध होय जैसे उनके मतमें ज्ञानसे जुदा पदार्थ होनेसे जीव जोहै सो जड़है

इसीसे मुक्त अवस्था जीवकी जड़ रूप करके स्थिति न्याय शास्त्रमें माने हैं इस मुक्तिके विषयमें हम पदार्थ निरणय करके पश्चात् मुक्तिका स्वरुप लिखेंगे इस जगह तो हमको परमात्मा ज्ञानरूप सिद्ध करना था सो हो गया अब हम यह और पूछे हैं कि तुम परमात्मामें सुख नही मानोंहो सो किस प्रमाणसे नही मानोंहो जो कहो कि हमारे यहां श्रुति गतीहै "असुखम्" इसका अर्थ यह है कि परमात्मामें सुख नही है तो हम कहेहै कि "प्रज्ञान मानंदं ब्रह्म" ये बृहदारण्यककी श्रुति है इसका अर्थ यहहै कि ब्रह्म जो परमात्मा सो ज्ञानरूप है और आनंदरुपहै तो परमात्मामे आनन्द सिद्ध होगया जोकहो "असुखं" इस श्रुतिकी क्या गति होगी तो हम कहे हैं कि इस श्रुतिकी एक गतितो यह कि सुख नाम विषय सुखका है तो असुख शब्द करके श्रुति परमात्मामें विषय सुखका निषेध करे है जो कहो कि सुख आनन्द यह दोनो शब्द परयाय वाची है अर्थात् एककी अर्थके कहने वाले हो तो इस श्रुतिको दूसरी गति यह है कि परमात्मामे सुखके आधारपनेका निषेध करे है अर्थात् परमात्माको सुखरुप कहे हैं ऐसे परमात्मा सच्चिदानन्दरूप सिद्ध हुवा जो कहो कि परमात्मा सच्चिदानन्दरूप हुवा तो जीव सच्चिदानन्द कैसे होय यहतो अनित्य ज्ञानवाला है नाना प्रकारके दुःखोको भोगनेवाला है तो हम पूछेहै कि तुम जीवका स्वरूप जड़ मानोंहो तो तुमने जीवका जड़पणा देखा है वा नही जो कहो कि जीवका जड़पणा हमने देखा है तो हम पूछेहै कि तुमने जड़पणा किस समयमें देखा है जो कहो कि सुषुप्तिमें देखा है तो हम कहे है कि सुषुप्तिमे ज्ञान सिद्ध हो गया क्योंकि जो सुषुप्तिमें ज्ञान न होता तो जड़पणाको कैसे जानते जो कहो कि नहीं देखा है तो सुषुप्तिमें जीवको जड़ कहना असंगत हुवा क्योंकि जागनेके पीछे तुमको ऐसा ज्ञान होय है कि मैं जड होकर सूता रहा तो ये ज्ञान अनुभव है अथवा स्मरण है जो कहो कि अनुभवहै तो ये कथन असंगत है क्योंकि अनुभव तो विषय मौजूद होय तब होय है सो जीवका जड़पणा जाग्रत अवस्थामे मौजूद नहीं इस लिये जड होकर सूता रहे यह ज्ञान अनुभव होसके नहीं जो कहो कि स्मरण है तो हम पूछे है कि स्मरण अनुभव होय है तिसकाही होय है वा जिसका अनुभव न होय उसकाभी स्मरण होय है जो कहो कि जिसका अनुभव न होय उसकाही स्मरण होयहै तो हम कहे है कि तुमको सारे जगत्के पदार्थोका स्मरण होना चाहिये क्योकि तुमको सारे जगत्के पदार्थोका अनुभव नही है जो कहो कि अनुभव होय उसकाही स्मरण होय है तो तुम्हारा जड़पणा सुषुप्तिमें नही दीखा है ये कथन असंगत हुवा क्योंकि जो सुषुप्तिमे जड़पणेका अनुभव न होय तो जाग्रत् अवस्थामे जड़पणाका स्मरण कैसे हो सके इसलिये सुषुप्ति समयमे तुम्हारे कथनसेही जीवमे ज्ञान सिद्ध होगया अब कहो तुम जीवके ज्ञानको अनित्य मानोंहो तो जीवमे ज्ञानकी उत्पत्तिभी मानोंहोगे तो हम पूछे हैं कि तुम ज्ञानके कारण किनको मानोहो जो कहो कि ज्ञानका समवायीकारण तो जीव है और असमवायीकारण जीवका और मनका संयोग है और ईश्वरको आदि लेके ज्ञानके निमित्त कारण है तो हम कहे है कि सुषुप्तिमे ज्ञान होना चाहिये क्योंकि सुषुप्तिमें सारे कारण मौजूद है जो कहो कि और कारण तो सब मौजूद है परंतु चर्मका और मनका संयोग ज्ञान सामान्य अर्थात् सर्व ज्ञानोका कारणहै सो सुषुप्तिमे बणसके नहीं

क्योंकि उससमयमें मन पुरीततिनाम नाडी जिसमें प्रवेश करजाय है उसनाडीमें चर्म नहीं है तो हम पूछेंहें कि जब मनपुरीततिमें प्रवेश करजायहै तब ज्ञान होवे नहीं तो अज्ञान रहैगा तो अज्ञानका प्रत्यक्षतो तुम सुषुप्तिमें मानोंगेनहीं क्योंकि वाह्य प्रत्यक्षमें तुम इन्द्रिय और मन इनके संयोगको कारण मानोंहो और मानस प्रत्यक्षमें आत्मा और मन इनका संयोग और चर्म और मन इनका संयोग ऐसे दोय संयोगोंको कारण मानों हो तो अज्ञान वाह्यपदार्थतोहै नहीं इसलिये इंद्रिय और मन इनके संयोगकी अपेक्षा तो अज्ञानके प्रत्यक्षमें है नहीं तो अज्ञानके प्रत्यक्षमें मानस प्रत्यक्षकी जो सामग्री उसकी अपेक्षा होगी सो वणसके नहीं क्योंकि यद्यपि पुरीततिमें मन प्रवेश कर गया तब आत्माका और मनका संयोग तो है परन्तु चर्मका और मनका संयोग नहीं मानों हो तो कहो तुम सुपुप्तिमें अज्ञान कैसे सिद्ध करो हो जो कहो कि प्रत्यक्ष सामग्री नहीं है तो सुपुप्तिमें अनुमान सिद्धि करेंगे तो हम कहें हैं कि तुम वह अनुमान कहो परन्तु दृष्टान्त ऐसा कहो कि जो तुम्हारे और हमारे दोनोंके सम्मत होय जो कहो कि जैसे मूर्छा में द्वैतकी प्रतीति नहीं हैं इसलिये मूर्छामें अज्ञान है तैसे सुपुप्तिमेंभी द्वैतकी प्रतीति नहीं हैं इस लिये अज्ञान है इस अनुमानसे सुपुप्तिमें अज्ञान सिद्ध हो गया तो हम पूछें हैं कि तुम मूर्छा जो अज्ञान है उसकाभी प्रत्यक्ष तो मानेगे नहीं इसलिये मूर्छामें किसके दृष्टान्तसे अज्ञानको सिद्ध करोगे जो कहो कि सुपुप्तिके दृष्टान्तसे सिद्ध करेंगे तो हम पूछें है कि तुम्हारी सुपुप्तिको दृष्टान्त करोगे वा अन्यकी सुपुप्तिकूँ दृष्टान्त करोगे जो कहो कि हमारी सुपुप्तिमें तो विवाद है इस लिये अन्यकी सुपुप्तिको दृष्टान्त करेगे तो हम कहे है कि तुम्हारा अनुभव विलक्षण है कि अपनी सुपुप्तिको तो जानेंनहीं और अन्यकी सुपुप्तिको जानो हो जो कहोकि अन्यकी सुपुप्तिका प्रत्यक्ष अनुभव तो हैनहीं इसलिये ऐसा अनुमान करेंगे कि जैसे चेष्टा करके रहित हूं इसलिये सुपुप्तिवाला हूं तैसे अन्य पुरुषभी चेष्टा करिके रहित है इस लिये सुपुप्तिवाला है ऐसे अनुमानसे अन्य पुरुषमें सुपुप्तिको सिद्ध करेंगे तो हम कहे है कि तुम्हारी सुपुप्तिका अनुभव मानों सुपुप्तिका तुम अनुभव नहीं मानोंगे तो इसको दृष्टान्तसे अन्यकी सुपुप्तिको कैसे सिद्ध करोगे इसलिये अपनी सुपुप्तिमें अनुभव मानना ही पडेगा कारण सुपुप्तिमे अनुभव मानो तो उसको नित्य भी मानना ही पड़ेगा क्योंकि तुमनें जो ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण माना है वो सुषुप्तिमें नही है अर्थात् चर्मका मनका संयोग सुपुप्तिमें है नहीं अब जो सुपुप्तिका अनुभव नित्य सिद्ध हुवा तो जिसकूं जीव माना सो परमात्मा ही सिद्ध हुवा क्योंकि परमात्मा पहिले नित्य ज्ञान रूप सिद्ध हो गया है जो कहो कि जीव नित्य ज्ञानवाला हुवा तो भी परमात्मासे तो भिन्न ही है ऐसे मानेंगे तो हम पूछें है कि तुम भेद कितने प्रकारके मानों हो जो कहो कि भेद हम तीन प्रकारके माने हैं तिनमें एक तो स्वगत भेदहै जैसे वृक्षमें पत्र पुष्पादिकके कमती ज्यादा होनेसे भेद मालूम होय है और दूसरा सजातीय भेद जैसे एक वृक्षमें दूसरे वृक्षका भेद है और तीसरा विजातीय भेदहै जैसे वृक्षमें पाषाणादिक का भेद है अब देखो कि जीव सावयव नही इस लिये जीवमें स्वगत भेद वनसके नहीं और जीव परमात्मासे विजातीय नही इस लिये भी जीवमें विजातीय भेद नहीं है किन्तु सजातीय

भेद है तो हम कहैं हैं कि यह कथन तुम्हरा असंगत है क्योंकि किंचित् विलक्षणता विना भेद हो सके नहीं जो किंचित् विलक्षणता विनाभी भेद होय तो आपका भेद आपमें भी रहणा चाहिये इसलिये जीव परमात्मा ही है जो कहो कि जीव नित्य ज्ञानरूपहै तोभी जन्य ज्ञानका आश्रय है यही जीवमें परमात्मासे विलक्षणता है तो हम पूछे हैं कि तुम जन्य ज्ञानकिसकूं कहो हो जो कहो कि पुरीतति नाडीमेंसे जब मन बाहिर आवे है तव आत्माका और मनका संयोग होय है उससे जो ज्ञान पैदा होयहै सो जन्य ज्ञान है तो हम कहैहैं कि आत्माका और मनका संयोगती वनेही नहीं क्योंकि आत्मा और मन इन दोनों द्रव्योंको तुम निरवयव मानों हो और संयोगको तुम अव्याप्य वृत्ति मानो हो अर्थात् संयोगका यह स्वभाव है कि यह जहां होवै उसके एक देशमें तो आप रहै है और उसहीके अन्य देशमें संयोगका अभाव रहेहै जैसे वृक्षमें वानरका (वन्दर) संयोग है सो शाखा देशमेंहै और मूलदेशमें नहीं है अव जो आत्मा और मन इनका संयोग मानोंगे तो संयोग अव्याप्यवृत्ति नहीं हो सकेगा क्योंकि तुम्हारे मतमें आत्मा और मन इनको निरवयव मानो हो इसलिये इनमें देश वण-सकै नहीं अब जो आत्मा मनका संयोग नही होसका तो मनका मानना भी असंगत हुवा कि तुमने मनके संयोगसे आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्ति मानी है सो मनका संयोग आत्मामें बनसके नहीं इसलिये मनका मानणा व्यर्थ है अब देखो कि जो तुम मनको द्रव्य मानते हो सो नहीं वनता क्योंकि आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्तिके अर्थ तुमने मनको माना है सो ज्ञान तो नित्य सिद्ध हो गया आत्मा इसमें जुदा सिद्ध हुवा नहीं और जो इस ज्ञानमेंही मनका संयोग मान करके कोई अनित्य ज्ञानकी कल्पना करलेवो सो बने नहीं क्योंकि मनतो तुम्हारे मतमे द्रव्य है और ज्ञान जो है सो गुण है इनका संयोग वनसके नहीं द्रव्योंकाही संयोग होय है ये न्यायवालोंका नियम है इसलिये मनका मानणा व्यर्थहै और कहो कि तुम चर्म और मनके संयोग करके आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्ति मानोहो तो यह कहो कि सुषुप्तिके अव्यवहित उत्तर क्षणमें प्रथम चर्मसे मनका संयोग कौनसे देशमें होयहै चर्मतो पुरितति के विना सर्व शरीरमे है जो कहो कि मनके प्रथम संयोगका देशतो लिखा नहीं तो हम कहैं हैं कि कोई देश मानलेवो तो मन तुम्हारे मतमें परिमाणु रूप है तो ये मन जिस दे-शमें चर्म संयुक्त होगा उसही देशमें आत्मामें ज्ञानको पैदा करैगा अथवा अन्य देशमें भी ज्ञानको पैदा करैगा जो कहो कि उसही देशमें ज्ञानको पैदा करैगा तो हम कहे हैं कि ऐसे मानणा तो असंगत है क्योकि ज्ञानकी प्रतीति सर्वशरीरमें होय है जो कहो कि अन्यदेशमें भी ज्ञानको पैदा करै है तो हम कहै हैं कि आत्मा तुम्हारे मतमें व्यापक है इसलिये घट दे-शमे भी ज्ञानकी प्रतीति होनी चाहिये ये जो कहो कि जितने देशमें चर्म है उतनेही में ज्ञा-नको पैदा करै है जैसे पृथ्वी घटके पैदा करनेके योग है परन्तु जितने देशमें स्निग्ध हैं अर्थात् चिकनी है उसमेंही घट होय है तो हम कहै है कि पृथ्वीको तो तुम सावयव मानों हो इस लिये कोई देशतो घट होनेके योग्य मान सकोगे और कोई देश घट होणेके अयोग्य मान सकोगे आत्मा तो तुम्हारे मतमें निरवयव है इसके दोभाव कैसे हो सकें इसलिये ऐसे मा-नणा भी असंगतही है जो कहो कि आत्मामे आरोपित देशमानेंगे तो हम कहें है कि आरोपित नाम तो मिथ्याका है जो आत्मामें देश मिथ्या हुवा तो उस देशमें ज्ञानका मानणा भी मि-

थ्याही होगा जैसे रज्जुमें सर्प आरोपित है तो उसमें नीलपणा आदि लेकरके सारे धर्म आ-
रोपित ही है अब कहो आत्मामे ज्ञान और देश इनका आरोप कौन करेगा अर्थात् आत्मा
आरोप करेगा अथवा कहो कि दोनूंमें से चाहे जिसकों आरोपका कर्त्ता मानि लेवेंगे तो हम
कहे है कि न्यायके मतमे तो आत्मा और मन दोनोंही जड़ है ये आरोपके कर्त्ता कैसें होसकें
अब जो आरोपका कर्त्ता कोई सिद्ध न हुवा तो आत्मामें आरोपित देश मानणा असंगत हुवा
आरोपित देश मानणा असंगत हुवा तो उस देशमें ज्ञानकी उत्पत्तिके अर्थ मनका मानणा
असंगत हुवा ऐसें पृथ्वीको आदि लेके मनपर्यन्त द्रव्योका मानणा असंगतही
है अब हम तुमको पूछेंहै कि गुण जो तुम मानों हो सो प्रथमरूप किसको कहो हो जो
कहो कि रूप शब्द करके कह्याजाय सो रूप तो हम केहेहै कि रूप शब्द करके तो रूप
शब्दभी कह्याजाय है इसलिये रूप शब्दको रूप मानणा चाहिये जो कहो कि रूप
शब्दसे भिन्न और रूप शब्द करिके कहाजाय सो रूप तो हम कहे हैं कि रूप शब्द
करके तो रूप नाम जो पुरुष सोभी कहा जाय है और वो रूप शब्दसे भिन्नभी है तो
उस पुरुषको रूप मानना चाहिये और विचार करो कि व्यवहार और लक्षणतो पदार्थ
होय तबही होय है सो रूपके उपादान कारण तो है पृथ्वी जल तेज और असमवायकारण
है उपादानोंके अवयवोंका रूप सो न तो उपादान कारण सिद्ध हुवे और न उपादानोंके
अवयव सिद्ध हुवे तो कारणोंके विना रूपकी सिद्धि कैसे मानी जाय इसलिये रूपका-
मानना असंगत है ऐसेही रसना इन्द्रियो करके जानाजाय ऐसा जो गुण सो रस और
घ्राण इन्द्रियों करके जाणा होय ऐसा जो गुण सो गंध और केवल त्वगिन्द्रिय करके जाणा
जाय ऐसा जो गुण सो स्पर्श इन लक्षणो करके इन रसगंधस्पर्शोंका मानणाभी असंगतही
है अब कहो तुम संख्या किसको कहो हो जो कहो कि यह एक है येदोय है इत्यादिक
जो व्यवहार तिनका जो असाधारण कारण सो संख्या तो हम पूछेंहे कि तुम असा
धारण कारण किसको कहो हो जो कहो कि जो एक कार्यका कारण होय सो असाधारण
कारण है तो हम पूछें हैं कि यह एक है येदोय है इत्यादिक जो ज्ञान तिनका कारण
संख्या है अथवा नही तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि ये एकहै दोय है इत्यादिक जो
ज्ञान तिनका कारण संख्या है तो हम कहे है कि संख्याको यह एकहै ये दोय है इत्यादिक
व्यवहारोंका असाधारयकारण मानना चाहिये क्योंकि यह तो अपने ज्ञानकीभी कारण
हुई इसलिये यह एककी कारण न हुई किन्तु व्यवहार और ज्ञान दोनोंको कारण हुई जो
कहो कि व्यवहार और ज्ञान दोनोंको कारण हुई तोभी व्यवहारकी कारण हुई इस लिये
व्यवहारकी असाधारण कारण है तो हम कहेहै कि तुमने परमेश्वर काल इत्यादिकको भी
असाधारण कारण क्यो नहीं माने सो कहो यह परमेश्वर और काल इत्यादिकभी सर्व
कार्योंके कारण है तोभी एक एकके कारण होंगे जो कहो कि एक एक कार्यकी दृष्टि
साधारण कारणोंकोभी असाधारण कहेंगे तो हम कहें है कि सर्व कार्योंकी दृष्टिसे साधारण
कारण मानोंगे और एक कार्यकी दृष्टिसें असाधारण कारण मानोगे तो स्वरूपसे कारण
नहीं है ऐसेभी कहना पड़ेगा तो संख्याभी स्वरूपसे कारण नहीं है ऐसेभी कहणा पड़ेगा
तो संख्याको स्वरूपकारण नही होने संख्याका मानना असंगत होगा तो परमात्माका

माननाभी असंगत होगा क्योंकि परमात्माभी स्वरूपसें कारण नहीं है तो हम कहे हें कि परमात्माको तो तुम्हारी मानी हुई श्रुति सत्यरूप वर्णन करे है इस लिये परमात्मा तो है और संख्याको स्वरूपसे कुछभी कही नहीं इसलिये संख्याको स्वरूपसे कुछभी कही नहीं इसलिये संख्याका मानणा असंगतही है ऐसेही यह इतने प्रमाणवाला है इस व्यवहारका जो असाधारण कारण सो परिमाण वाला और यह इससे जुदा है इस अव्यवहारका जो असाधारण कारण सो पृथक्त्व और यह इससे संयुक्त है इस व्यवहारका जो असाधारण सो संयोग और ये इससे परे हैं इस व्यवहारका जो असाधारण कारण सो परत्व और यह इससे अपर है इस अव्यवहारका जो असाधारण कारण सो अपरत्व इनका माननाभी असंगतही है और विभागका मानणाभी असङ्गतही है क्योंकि संयोगका नाशकरनेवाला जो गुण सो विभाग है जो संयोगही नही तो इस संयोगका नाश करनेवाला गुण मानणा असंगतही है अब कहो कि तुम गुरुत्व किसको कहते हो जो कहो कि प्रथम जो यत्न क्रिया तिसका जो असमवायि कारण सो गुरुत्व. तो हम पूछें हें कि तुम असमवायिकारण किसको कहते हो तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि कार्यके समवायि कारणमें समवायिसम्बन्धकरके रहे और उस कार्यका कारण हो सो असमवायिकारण तो हम कहेंहे कि कार्यतो हुवा और तुम्हारी मानी क्रिया उसके उपादानकारण होगी तो पृथ्वी और जल सिद्ध हुये नहीं तो आधार विना गुरुत्व गुणका मानना असंगत हुवा ऐसेही द्रव्यत्वका माननाभी असंगतही है क्योंकि आद्यस्यन्दनका अर्थात् प्रथम झरणेका जो असमवायि कारण सो द्रव्यत्व ये द्रव्यत्वका लक्षण है तो झरणारूप जो क्रिया है सो यहां कार्य्य मानी जायगी उसके उपादान होगी तो पृथ्वी, जल, तेज, सोतो सिद्ध हुये नहीं इसलिये आधारविना द्रव्यत्वका मानणा निष्फल है ऐसेही चूर्णके पिण्ड होणेका कारण गुण स्नेह मान्याहे और यत्नमें उसकी स्थिति मानी है तो यत्न सिद्ध हुवा नहीं इसलिये स्नेहका मानणा असंगतही है और शब्दके गुणपणेका खण्डन आकाशके खण्डनमें विस्तारसे लिखा है इसलिये शब्दगुणका मानना व्यर्थ है और ज्ञान जो है सो परमात्मारूप सिद्ध हो चुका है इसलिये ज्ञानको गुण मानना असंगत है और सुखभी आत्मारूप है इस लिये इसको गुण मानना असंगत है और आत्मा नित्यसुखरूप है इस लिये इसमें दुःख और द्वेष येभी बन सके नहीं और पहिले आत्मामें इच्छा और यत्न इनके सिद्ध नहीं होनेसे कर्त्तापणा सिद्ध हुवा नहीं इसलिये इसमें धर्म और अधर्म्म मानना असंगत है और संस्कार तुमने तीन माने हैं १ वेग २ भावना ३ स्थितिस्थापक इनमें वेग तो तुम पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन इनमें मानोंहो सो ये सिद्ध हुये नहीं और स्थितिस्थापकको तुम पृथ्वीमें मानोंहो सो सिद्ध हुये नहीं भावना तुम अनुभवसे जन्य मानोंहो और अनुभवको तुम जन्य मानोंहो सो अनित्य ज्ञान सिद्ध हुवा नहीं और विषय कोईभी सिद्ध नहीं हुवा इसलिये इन तीनों प्रकारके संस्कारोंका मानणाभी असंगत हुवा अब जो कहो कि गुणोंका मानना असंगत हुवा तो हम कर्मको अर्थात् क्रियाको सिद्ध करेंगे तो हम कहें हें कि तुम्हारी क्रियाका लक्षण यह है कि संयोगसे भिन्न और संयोगका असमवायिकारण होय सो कर्म तो जो संयोगही सिद्ध न हुवा तो उसका कारण कर्म माननाभी असंगतही हुवा अब देखो जो तुमारे माने

हुवे पदार्थ द्रव्य गुण कर्म कोई भी सिद्ध न हुवा जो कहो कि गौतम ऋषिजी सर्वज्ञ हुएथे और कणादि मुनिनेभी पदार्थके निर्णयके अर्थ तप कियाथा फेर तुमने इनके माने पदार्थोंको युक्ति और इनके माने प्रमाणसेही तुमने खण्डन करदिया तो पदार्थ तो हमारा सिद्ध न हुवा परन्तु मोक्ष उनका कहाहुवा सिद्ध होगया तो हम कहें है कि तुम मोक्ष किसको मानोंहो और तुम्हारे ऋषियोंने मानी जो मोक्ष सो कहो जो तुम कहो कि इक्कीस गुणोका ध्वंस अर्थात् नाश होना उसीका नाम मोक्ष है तो हम तुमको पूछें है कि तुम्हारे सर्वज्ञोने आत्माको मोक्षमें गुणोंके नाश होनेसे जड़ बनाया अर्थात् पाषाण बनादिया जैसा तुम्हारे सर्वज्ञोंने पदार्थोंका निर्णय किया है तैसाही मोक्षभी हुवा परंतु उनके चित्तमें विवेक शून्य विचार हुवा क्योंकि ऐसा कोई विवेकी पुरुष नहीं होगा कि अपने को आप सत्यानाशमें मिलावे क्योंकि इस तुम्हारी मोक्षमे जाकर जड़ बनना अर्थात् पाषाणवत् होजाना इससे तो देवलोक आदिकभी अच्छे हैं इसीलिये श्रीहेमाचार्य्यकी कीहुई स्याद्वाद मंजरीकी टीकामें ऐसा उपहास किया है कि "वृन्दावनमें रमणकरण गोपियोंके साथ रहनेकी वाञ्छा करता हुवा और वैशेषककी मानी मुक्ति गौतम ऋषि जानेकी इच्छा नहींकरता हुवा" अब देखो कि आत्मा ज्ञानरूप तो पहलेही सिद्ध हो चुकी है और सुखरूपभी सिद्ध होचुकीहै तो मोक्षमें जड़रूप आत्मा कैसे बनसकेगी और जो तुमने कहा कि वे ऋषि सर्वज्ञ थे तो हम कहें हैं कि सर्वज्ञ होते तो कदापि ऐसा नही कहते कि पदार्थका निर्णय होनेसे तत्व ज्ञान होता है सो तत्व ज्ञान तो न हुवा परन्तु उलटा भ्रम ज्ञान तो फैल गया इस लिये वे सर्वज्ञ नहीं किन्तु आत्माके सर्व नाश करनेवाले थे जो तुम कहो कि आत्माका नाश कैसे किया तो हम कहे हैं कि पक्षपात छोड़कर विवेकसे विचार करो कि आत्मा ज्ञानमई आनन्दरूप परमात्म स्वरूपसे मोक्षमे विराजमान सिद्ध होना चाहिये तिसको उन्होंने जड रूप बना दिया इसलिये वे सर्वज्ञ नहींथे जो कहो कि ये तो सर्वज्ञ न ठहरे और इनके कहे हुये पदार्थ भी सिद्ध न हुये और मोक्ष भी सिद्ध न हुई तो दूसरा सर्वज्ञ कौन है सो कहो तो हम कहें हैं कि सर्वज्ञका वर्णन हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें कहेंगे अब ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसे विस्तार नहीं किया कारण यह कि पाठक गण आलस्यके वश हो पढ़ न सकेंगे

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्य मुनिचिदानंद स्वामिविरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीय प्रश्नके अन्तर्गत न्यायमत निर्णय समाप्तम् ॥

वेदान्तमत मर्दन अर्थात् खण्डन ॥

अब वेदान्तकी प्रक्रिया दिखाते हैं, जो कि वे पदार्थ मानते हैं उनकी रीतिसे ही उनकी प्रक्रिया सिद्ध नहीं होती "अध्यारूपो अपवादाभ्यां निस प्रपञ्चो प्रपंचते" ॥ दूसरे ऐसी श्रुति कहते हैं "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापीसर्व भूतान्त रात्मा कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" ॥

इसका अर्थ ऐसा लिखते है कि अध्यारोप करके अपवाद करना है जैसे एक हाथी का गज बारूदका बनाय करकें और उड़ाय देनाहै ऐसे ही ब्रह्मका जो प्रपञ्च सोनिस प्रपञ्च होना चाहिये तो अब तुमको पूछे हैं कि जैसे तुमने अध्यारोप करके अपवाद किया तो इस रीतिसे तो जो ब्रह्म निःप्रपंचथा उसका तुमने निःप्रपंचपणा अध्यारोप किया उस अध्यारोपका जब अपवाद किया तो प्रपंच सिद्ध हो चुका तो जगत् सिद्ध हो गया क्यों कि जो अध्यारोप कियाथा सो अध्यारोप तो अनहुई वस्तुका करते हैं अथवा किसी जिज्ञासूके समझावने वास्ते किसीमें किसी वस्तुका अध्यारोप करके समझाते है सो तुमने भी उस ब्र-ह्म निः प्रपंचका अध्यारोप अर्थात् मिथ्या आरोप कियाथा उसका अपवाद करनेसे तो उस ब्रह्ममे प्रपंच जो कहिये जगत् अनादि कालका सिद्ध हो चुका क्योंकि जिस ब्रह्मको तुम मानते हो जो वह अपने स्वरूपमें स्थित होता तो कदापि प्रपंचमें नहीं पड़ता जो तुम कहो कि पहले ज्ञानवान था और पीछे ज्ञानका आवरण हुवा तो अब जो तुम्हारे महा वाक्योंसे ज्ञान होकर जगत् मिथ्या जानकर ब्रह्मरूप हो जायगा तो हम कहें हैं कि जैसे तुम्हारा प-हले ब्रह्म निःप्रपंचथा अर्थात् अज्ञान नहींथा सो फिर पीछेसे अज्ञान हो करके जगत् रच-लिया तो फेर भी ऐसा ही कर लेवेगा इस लिये तुम्हारे मतमें श्रुति, स्मृति, उपनिषदआदिक सर्व निष्फल होगे इसी लिये हम तुमको कहते है कि जगत् अनादिसे है ब्रह्म जो कहिये आत्मा प्रपंचमे सिद्ध हो गया और देखो तुम्हारेभी यही सिद्धान्त है कि षट् वस्तु अना-हैं क्योंकि यह वेदन्तियोंका सिद्धान्त है कि १ ब्रह्म, २ ईश्वर, ३ जीव, ४ अविद्या, या अ-ज्ञान, ५ अविद्याका अर्थात् अज्ञानका चेतनसे संबंध ६ अनादि परस्पर इन वस्तुओंका भेद यह षट्वस्तु स्वरूपसे अनादि है जिस वस्तुकी उत्पत्ति होवे नहीं सो वस्तु स्वरूपसे अनादि कहिये है इस लिये यह छः वस्तु स्वरूपसे अनादि हैं अब देखो तुमही विचार करो कि अविद्याका चेतनसे संबन्ध अनादि मान करके फिर तुमही कहो हो कि ब्रह्म निःप्रपंचा था सो यह तुम्हारा कहना ऐसा हुवा कि "मन्मुखे जिह्वा नास्ति" ऐसा तुम्हारा वचन हुवा अब देखो दूसरा विचार करो जो तुम "एकोदेवः" इत्यादि श्रुतिका अर्थ ऐसा कहो हो कि स्व-प्रकाश परमात्मा एक है सो सर्व भूतोंमें गूढ है अर्थात् गुप्त है सर्वमें व्यापक है सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है, कर्मका अध्यक्ष है अर्थात् साधक है, सर्व भूतोंका आधार है, साक्षी है, ज्ञान रूप है, केवल है निर्गुण है, तो यह श्रुति शुद्ध ब्रह्मका प्रतिपादन करै है और दूसरी श्रुति यह हैकि "एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।एकधाबहु धा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत्" इसका अर्थ यह है कि सर्व भूतोंका आत्मा एक ही है सर्व भूतोंमें स्थित है जलमें चन्द्रमाकी तरह एकप्रकार करके और बहुत प्रकार करके दीखे है तो प्रथम श्रुतिमें निर्गुणकारके परमात्माका गूढ यह विशे-षण है और गूढ़ शब्दका अर्थ गुप्त है तो ब्रह्ममें आवरण सिद्ध होगया और दूसरी श्रुतिमें जल चन्द्रके दृष्टान्त करके ब्रह्मका एक प्रकार करके और बहुत प्रकार करके दीखना वर्णन किया है तो ब्रह्मज्ञान रूपहै और साक्षी है अर्थात् ब्रह्म जो है सो द्रष्टा है और दृश्य नहीं है और इस श्रुतिमे एक प्रकार करके और बहुत प्रकार करके ब्रह्मका दीखना वर्णन किया है तो और प्रकार करके तो ब्रह्मका दीखना बनसके नहीं इसलिये जीव और ईश्वर जो है सो ब्रह्मके आभास है जैसे जलमें चन्द्रमाका आभास होयहै जो कहो कि यहां जलकी तरह कौनहै

तो हम कहें हैं कि एक तो श्रुति यह है कि "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णवर्णांवह्वीः प्रजाः सृजमानाम्" ॥ और दूसरी श्रुति यह है कि "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" ॥ तो प्रथम श्रुतिमें तो मायाका वाचक अजा शब्द है तहां एक वचन है और दूसरी श्रुतिमें मायाभिः यहां वहु वचन है। तो मायाके अंशोंकी दृष्टि करके तो वहुवचन है और अंशिरूप जो माया तिसकी दृष्टिमे एक वचन है ये जो माया सो जलकी तरह है तो अंशिरूप जो माया सो तो समुद्रकी तरह है और अंशरूप जो माया सो तरंगोंकी तरहहै और जैसे समुद्र एकहै तैसे तो अंशिरूप माया एक है और जैसे तरङ्ग वहुत हैं तैसे अंशरूप माया वहुत है उसको ही अविद्या कहें हे उस मायामें जो आभास है सो तो ईश्वर है और अविद्यामें आभास जीव है और माया और अविद्या यह अनादि हैं ईश्वर और जीव आभासरूप है और माया कल्पित हैं इसमें माया और अविद्या यह स्वतःसिद्धहै इसमें श्रुतिप्रमाणहै कि "जीवेशावाभासेन करोति मायाचाविद्याच स्वमेव भवति" इसका अर्थ यहहै कि जीव और ईश्वर इनको अभास करके करे है और माया और अविद्या आपही होय है तो यह सिद्ध हुवा कि सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म अविद्या करके आवृत है सो अविद्या अनादि है और जीव और ईश्वर अविद्या कल्पित हैं तो हम तुमको पूछें हे कि तुम्हारी श्रुतिमे तो जीव और ईश्वर आभास कहे है तो देखो जिसजगह आभास होता है उस आभासको मिथ्या कहते हैं क्योंकि जिसजगह सत्य हेतु होता है उस जगह तो सत्य वस्तुहै और जिसजगह असत् हेतु होता है उस जगह असत् वस्तु कहते हे तो अब तुमही अपने हृदयमें नेत्रमींचकर विचार करो कि तुम्हारे उस आभासके विलासमें जोकि वेदान्तीयोंके ग्रंथोंको देखो तो तुमको आपही इनके जालकी खबर पड़ जायगी देखो कोई तो जीव ईश्वर इनको आभास मान करके मिथ्या कहे है और कोई २ आभास शब्दका अर्थ प्रतिविम्व मानकरके जीव और ईश्वर इनको तो सच्चिदानन्दरूपही कहे हैं और विम्वत्व प्रतिविम्वत्व जो धर्म तिनको कल्पित मान करके मिथ्या कहेहैं और कोई ऐसे कहे कि निरवयवका प्रतिविम्व होवे नहीं इसलिये जैसे महाकाशमे गृहाकाश और घटाकाश ये कल्पित हे तैसे ईश्वर और जीव यह कल्पित है और कोई यह कहे कि अविद्यासे ब्रह्मही एक जीवहै जैसे कुन्तीका पुत्र करणही, राधेका पुत्र हुवा है ऐसेही जीव हुवा है जो ब्रह्म उसनेही ईश्वर और जीव यह कल्पित किये हैं जैसे निद्रामें पुरुष ईश्वरको तथा अनन्त जीवोंको कल्पित करे है तो स्वप्नके कल्पित ईश्वर तथा जीव यह जैसे ईश्वराभास और जीव आभास है तैसेही आभास ईश्वर जीवहै अब विचार करके देखो जो ईश्वर और जीव ब्रह्म अर्थात् आत्मासे भिन्न कुछ होते तो यह वेदान्ती आपसमें विवाद नही करते परन्तु ये आपसमे विवाद करके अपने अपने मत सिद्धकिये चाहें इसलिये ऐसा सिद्ध होवे है कि इन्होंनेही अनहुवे जीव और ईश्वरको कल्पित किया है सो इनकी कल्पना करना असिद्ध हुई और हम जाने हैं कि ऐसेही अज्ञानियोंके वास्ते कठोपनिषद्की यह श्रुतिहै कि "अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्य मानाः। दन्द्रम्यमानाः परियंति मूढा अन्धेनैव नीय मानायथान्धाः" ॥ इसका अर्थ यह है कि अविद्याके मध्यमें वर्तमान और आपमें हम धीर है हम पण्डित हे ऐसे अभिमान करें वे अत्यन्त कुटिल हे और अनेक प्रकारकी जो गति तिसको प्राप्त होतेहुए दुःखों

करके व्याप्त होते हैं जैसे अन्धके आश्रयसे चले अंध. खैर ! अब हम तुमको यहभी कहते हैं कि ईश्वर और जीवको आत्मासे भिन्न मानभी लेवो तो भी तुमारे कहनेसेही वो ईश्वर, वा जीव आत्मासे अभिन्नही ठहरता है तुम ऐसा कहते हो कि ईश्वरको मैं ब्रह्म हूं ये अखण्ड ज्ञान है और जीवको मैं ब्रह्म यह ज्ञान है नहीं और ब्रह्मको नहीं जानों यह ज्ञानहै इस लिये जीव अविद्या अभिमानी है तो हम तुमको पूछे है कि तुम जीव समष्टिकोही ईश्वर मानों हो वा जीव समष्टि से विलक्षण मानों जो कहो कि जीव समष्टि जो है सो ईश्वर है तो हम पूछें है कि जीव समष्टि जो है सो ईश्वर है तो जीव समष्टिको सर्वज्ञ मानोगे जो जीव समष्टि सर्वज्ञ मानों तो हम पूछें है कि यह सर्वज्ञता प्रत्येक जीवकी है वा सर्व जीवोंकी मिली सर्व ज्ञताहै जो तुम कहो कि प्रत्येक जीवोंमे तो सर्वज्ञता नहीं है यह अनुभव सिद्ध है किन्तु जीव समष्टिमे सर्वज्ञता होसके है क्योंकि जैसे एक २ शास्त्रके पढ़ेहुये छः पुरुष है तहां प्रत्येक पुरुष षट्शास्त्रज्ञ नहीं है तोभी षट्समुदाय जो है सो षट् शास्त्रज्ञ कहावे है तैसेही सर्वज्ञता ईश्वरमेंभी है तो हम तुमको पूछे हैं कि प्रत्येक जीवोंको तो तुम अल्पज्ञता मानों हो और समुदायमें सर्वज्ञता मानों हो और छः शास्त्रोंका दृष्टान्त देकरके जो सर्वज्ञता सिद्ध करी सो दृष्टान्त विषम है क्योंकि षट्शास्त्रका विषय जुदा है जिसका विषय जुदा है उसकी समुदायककी एकता होना नहीं बनसके विचार करके देखो नींबू, आम, नीम, जामुन, अमरूद, अनार इन छवोंके समुदाय मिलकर एक रस होना ऐसेही प्रत्येक जीव अल्पज्ञ अविद्याभिमानीको प्रत्येक जीव माना है कि जिसको ऐसा ज्ञान है कि मैं ब्रह्मको नहीं जानूं हूं ऐसी समुदायको जो तुम सर्वज्ञ मानों हो तो हम कहें हैं कि धन्य है ! अद्वैतवादी वेदान्तियों की ऐसी मूर्ख मण्डलीको परमेश्वर मानरक्खा है अजी विचारतो कुछ करो कि एकही मूर्ख अनन्त अनर्थोंका हेतु होय है तो मूर्खमण्डलीरूप ईश्वर कितने अनर्थोंका हेतु होगा ऐसा परमेश्वर माननेका इनको यही है कि इनको आत्मज्ञानका शुद्ध अनुभव न होगा इस जन्ममें ये ऐसेही भटकते रहें तो अब जो कहो कि ईश्वरमे सर्वज्ञता है सो विलक्षण है तो हम कहें हैं कि मायाकी वृत्तिरूप कहोगे तो माया जो है सो अविद्या समष्टिरूप मानों हो तो अविद्या समष्टिकी वृत्तिरूपही होगीतो ईश्वरकी सर्वज्ञता पूर्वकही सर्वज्ञतासे विलक्षण न हुई किन्तु तद्रूपही हुई जो कहो कि ईश्वरके उपाधि तो माया है सो शुद्धसत्वप्रधान है और जीवके उपाधि अविद्या है सो मलीनसत्वप्रधान है मायामें जो आभास सो ईश्वर और अविद्यामें जो अभास सो जीव है तो शुद्धसत्वप्रधान माया ईश्वरकी उपाधि है सो उस उपाधिकी शुद्धतासे ईश्वर सर्वज्ञ है और मलीनसत्वप्रधान अविद्या जीवकी उपाधि है तो उस उपाधिकी मलीनतासे जीव अल्पज्ञ है तो ईश्वरमें जो सर्वज्ञता है सो शुद्धसत्वप्रधानमाया तिसकी वृत्तिरूप है इसलिये विलक्षण है और माया और अविद्या इनमें सत्वकी शुद्ध और अशुद्धता इनकरकेही भेदहै और वस्तुगत्या यह दोनो एकही है प्रत्येक अंशकी दृष्टिसे इसको अविद्या माने हैं और अंश समुदायकी दृष्टिसे माया माने हैं तो हम कहें हैं कि तुम इस कथनका विचार तो करो कि जैसे एक नीमका पेड कडवा है तो हजार दो हजार नीम मिलकर उन पेडोंको समुदाय मिलकर वो कडवापन मिटकर एक मीठापन होजाय ऐसा कदापि नहीं होगा तैसेही प्रत्येक अंश मलीन हैं तो

उनका समुदाय शुद्ध कैसे होसके इसीलिये सांख्यमतवाले ऐसा कहते हैं कि " ईश्वरासिद्धेः " यह सांख्य सूत्र है इसका अर्थ यह है कि ईश्वर कोईभी युक्तिसे सिद्ध नहीं होता तो अब हम कहें हैं कि तुम्हारी माया और अविद्याका कल्पा हुवा ईश्वर और जीव तो सिद्ध न हुवा अब तुम यह औरभी कहो कि अद्वैत क्योंकर सिद्ध करते हो सो कहो जो तुम कहो कि "एकोदेवः" इस श्रुतिको लेकर एक ब्रह्मको सिद्ध करो हो तो हम तुमको पूछें हैं कि ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ पदार्थ हैही नहीं ऐसा तुम्हारा सिद्धान्त है तो माया और अविद्या कहांसे उत्पन्न हुई? जो कहो कि ब्रह्मने उत्पन्न करी तो ब्रह्मको तो तुम निर्गुण मानते हो तो निर्गुणमें उत्पन्न करनेका गुण क्योंकर संभव हो सकता है जो तुम कहो अज्ञान अविद्या माया उत्पन्न कीहुई नहीं है तो तुमने अपने हाथसेही अपने अद्वैत मतकी जड़को उखाड़के फेंक दिया दूसरा भी विचार करो कि अद्वैतकोभी सिद्ध करना और षड्वस्तुका अनादि मानना अनादि शब्दका अर्थ तो तुम यही करोगे कि जिसके उत्पन्न होनेकी कोई आदि नहीं अर्थात् उत्पन्न हुवाही नहीं सनातनसे है तो जब तुम्हारे ब्रह्म ईश्वर जीव और अविद्या अर्थात् अज्ञान और चेतनका आपसमें संबंध और इन पांचोंका परस्पर भेद इसको अनादि मानते हो तो अब तुमहीं विचारको कि एक ब्रह्मके अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीहै और अपनेही सिद्धान्तमें छः वस्तु अनादि मानना यह वचन तुम्हारा कहना कैसाहुवा कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कहने लगा कि मेरी माता वांझ थी ऐसाहुवा अब देखो हम तुमको जगत्के मध्य पूछते हैं कि जगत् क्या चीज़ है और जगत् कैसे हुवा? जो तुम कहो कि अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछे हैं कि जगत् अज्ञानसे कल्पित है ऐसा कैसे माना जाय देखो इससमयके कैसे २ विचित्र पदार्थोंकी रचनाकीहै तो यह रचना ज्ञानसे हुई है अथवा अज्ञानसे हुई है तो ऐसा कोईभी विवेकी पुरुष नहीं होगा सो अज्ञानसे कहेगा किन्तु ज्ञानसेही कहेगा तो हम वेदान्ती लोगोंकी बुद्धिको धन्यवाद देते हैं कि देखो यह लोग कैसे बुद्धिके तीक्ष्णहैं कि जगत्को अज्ञानसे कल्पित मानें हैं तो अब हम तुम्हारेको यह बात और पूछें हैं कि जगत् अज्ञानसे कल्पित है तो किसके अज्ञानसे कल्पित है जीवके अज्ञानसे कल्पित है वा ईश्वरके अज्ञानसे वा ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है जो कहो कि जीवके अज्ञानसे कल्पित है तो हम कहे हैं कि अनन्त जीवोंके कल्पित अनन्त जगत् मानोंगे तो यह जगत् जो तुमको और हमको दीखे है सो किसजीवका कल्पित जगत् है यह कहो तो विनगमना नहीं होनेसे किसीभी एक जीवके अज्ञानसे कल्पित नही मान सकोगे और जो ऐसे कहो कि ईश्वरके अज्ञानसे कल्पित है तो हम कहे हैं कि ईश्वरको तो तुमभी अज्ञानी नहीं मानोंहो इसलिये ईश्वरके अज्ञानसे जगत् कल्पित है ऐसे मानणा असङ्गत है और जो यह कहो कि ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है क्योंकि जीव और ईश्वर यह तो जगत्के अन्तर्गत हैं इसलिये ये तो आपही अज्ञान कल्पित हैं तो हम पूछे है कि ब्रह्ममे अविद्या जो है सो कल्पित अथवा स्वभावसिद्धहै जो कहो कि स्वभावसिद्ध है तो हम कहें हैं कि स्वभावसिद्धिकी निवृत्ति होवे नहीं इसलिये इनके माने ज्ञानके साधन सर्व व्यर्थ होंगे क्योंकि ज्ञान साधनोंसे ज्ञान पैदा करनेका प्रयोजन इनके येही है कि अविद्या निवृत्ति होय सो अविद्या स्वभाव सिद्धि मानों तो स्वभाव सिद्धकी निवृत्ति होवे नहीं जो स्वभाव सिद्धकीभी निवृत्ति होय तो ब्रह्मके

सच्चिदानन्द स्वभावकी निवृत्तिभी होनीही चाहिये इस लिये ब्रह्ममें अविद्याको स्वतःसिद्ध मानना असगंतही है जो कहो कि कल्पित है तो हम पूछें है कि ब्रह्ममें अविद्या जो है सो अज्ञानसे कल्पित है वा ज्ञानसे ? जो कहो कि अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछें हैं कि ब्रह्ममें अविद्या जीवाज्ञान कल्पित है अथवा ईश्वराज्ञान कल्पित है अथवा ब्रह्माज्ञान कल्पित है जो कहो कि जीव अज्ञान कल्पित है तो हम पूछे हैं कि जीव और ईश्वर यह अविद्या कल्पित हैं यह तुम्हारा मत है तो यह कहो कि जीवकी कल्पिक जो अविद्या तिस ब्रह्ममें अविद्या जो है सो कल्पित है वा जीवकी कल्पिक जो अविद्या तिससे भिन्न जीवमें ब्रह्म वृत्ति जो अविद्या तिसकी कल्पिक अविद्या मानोहो जो कहो कि ब्रह्ममें जो अविद्या है सो जीवकी कल्पिक अविद्यासे कल्पित है तो हम पूछे है कि ब्रह्माश्रित अविद्या और जीवको कल्पिक अविद्या ये भिन्न हैं वा एकही हें ? तो तुम यहही कहोगे कि एकही हें क्योंकि वेदान्त वादी जीवको ब्रह्माश्रित जो अविद्या तिससेही कल्पित माने है तो हम कहे है कि ब्रह्माश्रित जो अविद्या सो जीवकी कल्पिक अविद्यासे कल्पित है यह कथन असंगत हुवा क्योंकि ब्रह्माश्रित अविद्या और जीवकी कल्पिक अविद्या तो एकही हुई इसलिये आपसेही आप कल्पित है ये अर्थ सिद्ध हुवा तो ऐसे मानना अनुभव विरुद्ध है आपसे आप कल्पित होय तो जगत् का कल्पिक ईश्वर तुम मानो हो सो बन सके नहीं और जो यह कहो कि जीवमें ब्रह्मवृत्ति जो अविद्या ताकी कल्पिक अविद्या जीवकी कल्पिक अविद्यासे भिन्न माने है तो हम कहे है कि रज्जु का जो अज्ञान तिसकरके कल्पित जो सर्प उस सर्पमे जो अज्ञान उस अज्ञान करके रज्जुमे अज्ञान कल्पित है ऐसा अर्थ सिद्ध हुवा तो तुम ही विचार दृष्टिसे देखो इस कल्पनासे अविद्या ब्रह्ममें सिद्ध होय है वा असिद्ध होय है और जो ये कहो कि ईश्वर के अज्ञान से कल्पित है तो हम कहें है कि ये कथन तो सर्वथा असंगत है, क्योंकि देखो ! निश्चलदासजीने "विचारसागर"की चतुर्थ तरङ्गमें लिखा है कि जैसे जीवन्मुक्त विद्वान्को आत्माका विषय करनेवाली अन्तःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति होय है तैसे ईश्वर को भी माया की वृत्ति रूप "अहंब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान होय है और यह कही है कि आवरण भङ्ग इस का प्रयोजन नहीं है तो यह सिद्ध होय है कि ईश्वरको अज्ञानका आवरण नहींहै अब जो ईश्वर में अज्ञान है ही नहीं तो ब्रह्ममे अविद्या ईश्वर के अज्ञान से कल्पित है ये कैसे होसके परन्तु हम यहां यह और पूछे है कि विद्वान् को जो "अहं ब्रह्मास्मि" ये वृत्ति होयहै तो यह वृत्ति अन्तःकरणकी परिणामरूप होगी तो अन्तःकरण जो है सो सावयव है तो ये वृत्ति भी सावयवही होगी जो वृत्ति सावयव भई तो अवयवीरूप वृत्तिमें आवरण भञ्ज करता होणे से वृत्तिके अवयवभी आवरण भञ्जक मानणेही पड़ेंगे जैसे सूर्यमे तमोनष्टकता होणेसे तेजः पिंडरूप जो सूर्य्य तिस अवयवों को आवरण भञ्जकता सिद्ध होगई तो ऐसे ही मायाकी वृत्तिके अवयवरूप होंगे वे जिन को तुम व्यष्टि अज्ञान मानों हो उनको आवरण भञ्जकता होगी तो ब्रह्म में आवरण कैसे सिद्ध होगा इसका समाधान क्या है सो कहो ? क्यों कि इस प्रश्नका तात्पर्य्य ये है कि ईश्वर में तो तुम अविद्या मानोंही नहीं क्योंकि ईश्वर को तुम सर्वज्ञ मानों हो और उसमें अविद्याका आवरण मानो नहीं तो उसमें जो सर्वज्ञता सो मायाकी वृत्तिरूप मानोंहो सो उस मायाको शुद्धसत्त्वप्रधान मानोंहो और उस

मायाको व्यष्टि अज्ञानकी समष्टिरूप मानों हो तो वह माया उपाधि जिसमें रहेगी उसमें स्वभाव सिद्ध आवरणका अभाव रहेगा जो माया में स्वभाव सिद्ध आवरणका अभाव रहा तो उसमायाकी अंशरूप है जीवोंकी उपाधि तो उसमे भी स्वभावसिद्ध आवरणका अभाव मानणा पड़ेगा तो हम कहेहैं कि ब्रह्म में जीव वा ईश्वरसे कल्पित अविद्या मानणी बनसके नहीं जो कहो कि ब्रह्ममें अविद्या ब्रह्मके अज्ञानसे कल्पित है तो हम पूछे है कि उस अविद्याका कल्पिक अज्ञान उस अविद्यासे भिन्न है वा उस अविद्या रूप है जो कहो कि उस अविद्यासे भिन्न है तो हम कहैहै कि उस अविद्याके कल्पिक अज्ञानकोभी कल्पित ही मानोगे तो अनवस्था होगी जो कहो कि वो अज्ञान है सो कल्पित अविद्या रूपही है तो हम कहैं हैं कि इससे तो ऐसा सिद्ध होय है कि अविद्या स्वतः सिद्ध होगई स्वतः शब्दका अर्थ स्वाभाविक है ये अपना जो भाव तो इसका अर्थ निषकृष्ट अर्थ होगया कि स्व सत्तासे जन्य होय सो स्वाभाविक तो स्वसत्ता शब्द करके अविद्यावाली हुई तो हम पूछे है कि अविद्याके ब्रह्मकी सत्ता करके सत्तावाली मानों हो वा इसमे जो सत्ता है सो ब्रह्म सत्तासे भिन्न है जो कहो कि अविद्या जो है सो ब्रह्मसत्तासे सत्तावाली है ते हम कहै है कि ये तुम्हारी मानी अविद्या ब्रह्मरूपही भई ब्रह्मसे विलक्षण नहीं हुई जैसे घट जो है सो पृथ्वी की सत्ता से सत्तावाला है तो घट पृथ्वी है जो कहो कि घट जो है सो पृथ्वी है तोभी पृथ्वीसे जलानयनादिक कार्य होवे नहीं और घटसे जलानयनादिक कार्य होवे है तैसे ही अविद्या जो है सो ब्रह्म ही है तो भी ब्रह्म से जगत् होवे नहीं और अविद्या से जगत् होय है ऐसे मानोंगे तो हम कहे है कि इतना और मानो कि जैसे घट जो है तो कुम्हारके ज्ञानसे मट्टीके घटकी उत्पत्ति होती है रज्जु सर्पकी तरह भ्रम ज्ञान जैसे नहीं है तैसे ही अविद्या जो अज्ञान है सो भी परमात्मा जो सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मके अलौकिक ज्ञानसे जो अनादि उसी रीतिसे मानो तो सारे विवाद मिटजांय क्योंकि छः वस्तु तुम भी अनादि मानते हो जो तुम कहो कि हमारे तो अद्वैत ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ पदार्थही नही है तो हम तुमको कहे है कि तुम ब्रह्मके स्वरूपभूत अलौकिक ज्ञानसे रचित मानलो तो तुमको कहना ही पड़ेगा कि अविद्याको ब्रह्मरचित मानौ तो कार्यकी उत्पत्ति उपादान कारण विनाहीं मानणी पड़ेगी सो बनसके नही क्योंकि घट आदिक कार्य जो है सो मट्टीरूप उपादान कारण विना और निमित्तकारणविना घट उत्पत्ति होय नहीं इसलिये निमित्तभी कार्य होवे नहीं अब जो अविद्याको ब्रह्म रचित मानो तो ये ब्रह्म अविद्याका उपादान कारण मानो तब तो निमित्त कारणके विना निरनिमित्त उत्पत्ति मानणी पड़ेगी और जो ब्रह्म अविद्याका निमित्त कारण मानों तो निर उपादान कार्यकी उत्पत्ति मानणी पड़ेगी और उपादान कारण और निमित्त कारण इन दोनों कारणोंके विना कार्य होवे नहीं ये अनुभव सिद्ध है इसलिये ब्रह्मसे अविद्याकी उत्पत्ति मानणा असङ्गत है तो हम तुमको पूछें है कि अहो अद्वैतवादियो! जगत्को ईश्वर करके रचित मानों हो तहां दोय कारण कैसे बने है सो कहो जो कहो कि हम माया विशिष्ट चेतनको ईश्वर माने है और ईश्वरसे जगत्रूप कार्यकी उत्पत्ति माने है तहां ऐसे कहें हैं कि ईश्वर जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वरको जगत्का कारण मानें तहां जैसे घटादिक कार्यके कारण कु-

ढाल और मृत्तिका ये भिन्न निमित्त उपादान कारण बने हैं तैसे तो बन सके नहीं किन्तु उपाधि प्रधानता करके तो उसही ईश्वरको जगत्का उपादान कारण मानै है और उसही ईश्वरको चेतनप्रधानता करके निमित्तकारण मानै है और हम यह दृष्टांत देते हैं कि मकड़ी अपने रचित तन्तुकी कारण होय है तो शरीररूप उपाधिको प्रधानता करके तो स्वतः तन्तुकी उपादान कारण होय है और चेतनप्रधानता करके वही मकड़ी स्वतः तन्तुकी निमित्त कारण होय है तो ये मकड़ी रचित तन्तुकी अभिन्न निमित्त उपादान कारण सिद्ध हुई है तैसे ही ईश्वर जो है सो जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है तो हम तुमको इतना और पूछै हैं कि जीव और ईश्वर इनको अविद्याके कार्य मानों हो तहां निमित्त कारण और उपादान कारण किसको मानो हो तो तुम यह श्रुति प्रमाण देते हो कि "जीवेश्वराबाभासेन करोति" इसका अर्थ यह है कि जीव और ईश्वर इनको आभास करके अविद्या करै हैं जीव और ईश्वर ये अविद्या रचित हैं यह अर्थ श्रुति सिद्ध हो गया तो हम इसके कारणोंका विचार करते हैं तो जीव और ईश्वर इनके कारण दोय होंगे १ तो ब्रह्म२ अविद्या तो इनको तुम उपादान कारण ही मानों हो तहां ब्रह्मको तो विवर्त उपादान मानों हो और अविद्याको परिणामी उपादान मानों हो और निमित्त कारण यहां कोई बनसके नहीं इसलिये यहां निर्निमित्तही जीव ईश्वरकी उत्पत्ति मानणी पड़ेगी तो हम कहे हैं कि यह नियम तो रहा नहीं कि निरनिमित्त कार्य होवे नहीं इसलिये अविद्याकी उत्पत्ति भी निरनिमित्त ही मानों,अब देखो जो तुम ब्रह्म अविद्यासे उसकी उत्पत्ति मानकर जो अद्वैतको सिद्ध करो हो तो तुम्हारा षट्वस्तु अनादि मानणा ये वचन अन्यथा होगा और जो षट्वस्तु अनादि मानोंगे तो अद्वैत सिद्ध कदापि नहीं होगा अब इन दोनों वचनोंका परस्पर विरोध होनेसे एकवचनकी भी प्रतीति विवेकी पुरुष न करेंगे और भी देखो कि ब्रह्मके अतिरिक्त जगत् आदिक कुछ भी पदार्थ नहीं जगत् आदिक सब आत्मासे उत्पन्न हुवा, तो हम पूछैं हैं कि इसमें प्रमाण क्या है तो तुम इस श्रुतिको कहो हो कि " आत्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुः " इत्यादि श्रुतिको प्रमाण देवो हो तो इस श्रुतिका अर्थ यह है कि आत्मासे आकाश पैदा हुवा और आकाशसे वायु पैदा हुई जो ऐसा अर्थ है तो हम तुम्हारेको पूछै हैं कि आकाश तुम किसको कहो हो तुमको कहनाही पड़ेगा कि आकाश नाम अवकाश अर्थात् जगह देनेका है तो अब तुमही नेत्र मीचकर हृदयमें विचार करो कि आकाश तो पीछे उत्पन्न हुवा तो आत्माविना अवकाशके किस जगह ठहरी विना आकाशके आत्माका ठहरना ऐसा हुवा कि जैसे कोई विचार शून्य पुरुष कहने लगा कि मेरे मुखमे जीभ नहीं है अब न तो तुम्हारा अद्वैत सिद्ध हुवा न तुम्हारा अविद्या कल्पित जगत् सिद्ध हुवा किन्तु ये जगत् अनादि स्वतःसिद्ध होगया अब देखो जो तुम जगत्को रज्जु सर्पका दृष्टान्त देकर मिथ्या कहते हो सो जगत् मिथ्या नहीं ठहरता है जो तुम कहो कि जगत् सत् असत्से विलक्षण है इसलिये मिथ्या है जैसे सत् असत्से विलक्षण रस्सीसे सर्प पैदा होता है जो तुम ऐसा कहो हो तो हम तुमसे पूछैं हैं कि तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्यातिकी व्यवस्था क्या है? सो कहो तो तुम अपनी ख्यातिकी व्यवस्था इसरीतिसे कहोगे कि अन्तःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकलके विषयाकार होय है तिससे आवरण भंग होकर विषयका प्रत्यक्ष ज्ञान होय है और जहां सर्प भ्रम होय

है तहां अन्तःकरणकी वृत्ति निकलके विषय सम्भव होय है परन्तु तिमिरादि दोष प्रतिबन्धकहैं इसलिये वृत्ति जो है सो रज्जुसमानाकार होवे नहीं इसलिये रज्जु चेतनाश्रित अविद्यामें क्षोभ हो करके वो अविद्याही सर्पाकार होजाय है वो सर्प सत् होय तो रज्जुके ज्ञानकी निवृत्ति होवे नहीं और जो वो सर्प असत् होय तो वन्ध्या पुत्रकी तरह प्रतीति होवे नही इसलिये वो सर्प सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय है उसकी जो ख्याति कहिये प्रतीति अथवा कथन सो अनिर्वचनीय ख्याति कहिये हैं और जैसे सर्प अविद्याका परिणामहै तैसे उसका ज्ञानभी अविद्याहीका परिणाम है अन्तःकरणका परिणाम नहीं क्योंकि जैसे रज्जुज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति होय है तैसे उसके ज्ञानकी भी निवृत्ति होय है वो ज्ञान अन्तःकरणका परिणाम होय तो उसका बोध होवे नहीं इसलिये वो ज्ञानभी अनिर्वचनीय है परन्तु रज्जूपहित चेतनाश्रित अविद्याका जो तमोंश उसका परिणाम सर्प है और साक्षी चेतनाश्रित जो अविद्या उसके सत्त्वांशका परिणाम उस सर्पका ज्ञानहै और अविद्यामें जो क्षोभ सो उस सर्पका और उसके ज्ञानका एकही निमित्त है इसलिये भ्रमस्थलमें सर्पादि विषय और उनका ज्ञान एकही समयमें उत्पन्न होय है और रज्जुके ज्ञानसे एकही समयमे दोनों निवृत्ति होय है ये तो बाह्य भ्रमस्थलका प्रकार है और स्वप्नमें तो साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोंश विषयाकार होय है और उसकाही सत्वांश ज्ञानाकार होय है इतना भेद है भ्रमस्थलमें सारे विषय साक्षी भास्य हैं और रज्जु आदिकमें सर्पादिक और उनका ज्ञानभ्रम कहिये है सो भ्रम अविद्याका परिणाम है और चेतनका विवर्त है उपादानके समान स्वभाववाला अन्यथा स्वरूप परिणाम कहिये है और अधिष्ठानसे विपरीत स्वभाववाला अन्यथास्वरूप विवर्त्त कहिये है और मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जूपहित चेतनहै रज्जु नहीं क्योंकि रज्जु तो आपही कल्पितहै. कल्पित जो है सो कल्पितका अधिष्ठान वने नहीं और रज्जु विशिष्ट चेतनके सर्पका अधिष्ठान मानेतो भी चेतनही अधिष्ठान है क्योंकि रज्जु आपही कल्पितहै इसलिये रज्जुमें सर्पाधिष्ठानता वाधितहै और तैसेही सर्पज्ञानका अधिष्ठान ज्ञानभीहै ऐसे भ्रमस्थलमें विषयका और उसके ज्ञानका अधिष्ठान उपाधि भेदसे भिन्नहै और विशेप रूप करिके रज्जुकी अप्रतीति अविद्यामें क्षोभद्वारा दोनोंकी उत्पत्तिमें कारण है और रज्जुका विशेप रूप करिके ज्ञान दोनोंकी निवृत्तिमें कारण है जो कहो कि अधिष्ठानके ज्ञान विना मिथ्या पदार्थकी निवृत्ति होवे नहीं ये तुम्हारा सिद्धान्त है तो सर्पका अधिष्ठान रज्जूपहितचेतन है रज्जु नहीं इस लिये रज्जु ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति सम्भवे नही तो इसका समाधान ये है कि रज्जु तो इनके मतमें अज्ञानका कार्य है इस लिये रज्जुमें तो आवरण रहे नही क्योंकि आवरण जो है सो अज्ञानकी शक्ति है और अज्ञान जड़ाश्रित रहैनही ये तुम्हारा मत है किन्तु जब साभास अन्तःकरणकी वृत्ति विषयाकार होय है तब वृत्तिसे रज्जूपहित चेतनाश्रित जो आवरण सो नष्ट होय करके अधिष्ठान चेतन तो स्वप्रकाशता करके प्रकाशै है और आभास करके विषयका प्रकाश होय है तो रज्जूपहित चेतन ही सर्पका अधिष्ठान है उसका ज्ञान हुवा ऐसे मानों इसलिये रज्जुके ज्ञानसे सर्प निवृत्ति सम्भव है जो कहो कि सर्प ज्ञानका अधिष्ठान तो साक्षी चेतन है उसका ज्ञान हुवा नहीं इसलिये सर्प ज्ञानकी निवृत्ति कैसे होगी ? तो हम कहैं है कि चेतन

में स्वरूपसे तो भेद नहीं किन्तु उपाधिके भेदसे भेद है सोभी उपाधि भिन्न देशमें स्थित होय तब तो उपहितमें भेद होय है और उपाधि एक देशमें स्थित होय तब उपहितमें भेद होवे नहीं इसीलिये वृत्ति जब विषयाकार भई तब विषय और वृत्ति एक देशस्थित होणसे विषयोपहित चेतन और वृत्युपहित चेतनका भेद नही इस कारणसे विषयाधिष्ठान चेतनका ज्ञानही वृत्युपहित चेतनका ज्ञान है ऐसे सर्प ज्ञानाधिष्ठानका ज्ञान होणेसे सर्प ज्ञानकी निवृत्ति सम्भव है अथवा जब अन्तःकरणकी वृत्ति मन्दान्धकारावृत रज्जुसे सम्बन्ध हो करके रज्जुके विषय आकारको प्राप्त होवे नहीं तब इदमाकार वृत्तिमें स्थित जो अविद्या सोही सर्पाकार और ज्ञानाकार होय है उस अविद्याका तमोंश सर्पाकार होय है और उसका सत्वांश ज्ञानाकार होय है और वृत्युपहित चेतन होनेका अधिष्ठान है और वृत्ति विषय देशमें गई इसलिये विषयोपहित चेतन और वृत्युपहित चेतन ये दोनों उपाधि द्वय एक देश स्थित होनेसे एक है तो वृत्ति जब विषयके विशेषाकारको प्राप्त हुई और उससे विषयके अधिष्ठान चेतनका आवरण हुवा और विषयका विशेष रूप करके ज्ञान हुवा तो साक्षी चेतनका ही आवरण दूर हुवा इस लिये सर्प और उस ज्ञानकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञानसे सम्भवे है जो कहो कि प्रथम पक्षका त्याग करके ये द्वितीय पक्ष कहनेमें तुम्हारा तात्पर्य क्या है? तो हम कहे है कि प्रथम पक्षमें विषयोपहित चेतनाश्रित अज्ञानका परिणाम सर्प है ऐसे माननेमें ये दोष हैं कि जहां बहुत पुरुषोंको सर्प भ्रम होय तहां एक पुरुषको रज्जुके यथार्थ ज्ञान भये सर्वपुरुषोंका भ्रम निवृत्त होना चाहिये क्यों कि विषयाधिष्ठान चेतनाश्रित अविद्याका परिणाम जो सर्प उसकी निवृत्ति एक पुरुषको रज्जुका यथार्थ ज्ञान हुवा तिससे ही होगी और द्वितीय पक्षमें ये दोष नहीं है क्यों कि जिसकी वृत्तिमें स्थित अविद्याका परिणाम सर्प और ज्ञान निवृत्ति हुवा उसका भ्रम निवृत्ति हुवा और जिसकी वृत्तिमें स्थित अविद्याका परिणाम सर्प और ज्ञाननिवृत्ति होवे नहीं उसका भ्रम निवृत्ति नहीं होवे ऐसे बाह्य भ्रमस्थलमें विषय और ज्ञान ताका अधिष्ठान वृत्युपहित साक्षी है और अन्तर भ्रम स्थलमें स्वप्न पदार्थ और उनके ज्ञानका अधिष्ठान अन्तःकरणोपहित साक्षी है इस प्रकार करके सत् और असत्से विलक्षण जे अनिर्वचनीय सर्पादिक तिनकी जो ख्याति कहिये प्रतीति वा कथन सो अनिर्वचनीय ख्यातिकी प्रक्रिया वेदान्ती मानै हैं और यह प्रक्रिया विचार सागरके चतुर्थ तरङ्गमें लिखीहै तो हम कहै हैं कि ये कथन तो तुम्हारे मतसे ही विरुद्ध है क्योंकि विचारसागरके पञ्चम तरङ्गमें ऐसा लिखैहै कि "समसत्ता" जोहै सो परस्पर साधक और बाधक होवे है तहां ऐसा प्रसंग है कि गुरु वेद मिथ्या है तो इनसे संसारकी निवृत्ति कैसे होय जैसे मरुस्थल(मारवाड़)का जल मिथ्या है तो उसका सामर्थ्य यंनहीं है कि तृषाकूं निवृत्ति करदेवे ऐसे आपशङ्का लिखकरके आप ही ऐसा समाधान लिखें है कि समसत्ता का परस्पर साधक बाधक होवै है विषम सत्ताका परस्पर साधक बाधक होवे नहीं जैसे स्वप्नमें मिथ्या जीवने राजा को सताया उस समय में बड़े २ योद्धा व्यवहारिक राजाके कुछ भी काम नहीं आये और स्वप्नके मुनि ने ही औषध दे करके राजा की पीड़ा निवृत्तकी तो सिद्ध हुवा कि समसत्ताका ही साधक होय है क्यों कि स्वप्नका प्रतिभासिकजीव ही तो राजा की पीड़ा का साधक हुवा और प्रतिभासिक औषधही राजाके पीड़ा की बाधक हुई ऐसे ही गुरु

मिथ्या वेदमिथ्या भव दुःखकूं निवृत्ति करैहैऐसा विचारसागरके पञ्चम तरङ्ग मे लिखा है तौ अब तुम ही विचार करो कि जो तुमने रज्जु सर्पकी प्रतिभासकी सत्ता मानीहै तो रज्जु प्रातिभासिक हुवा और उसका साधक रज्जुका विशेषरूप करके जो अज्ञान ताकूं मान्याहै तो इस अज्ञानके व्यवहार की सत्ता है इसलिये ये अज्ञान व्यवहारिकहै और रज्जु के ज्ञान से प्रातिभासिक सर्प की निवृत्ति मानी है तो ये रज्जुका ज्ञानभी व्यवहारिक है तो सर्प प्रातिभासिक कैसे हो सके? जो सर्प प्रातिभासिक होय तो व्यवहारिक रज्जु का अज्ञान इस सर्प का साधक हो सके नही और रज्जुका व्यावहारिक ज्ञान सर्पका बाधक होसकै नहीं ऐसे ही स्वप्नमें समझो कि व्यावहारिक जो निद्रा सो तो स्वप्न की साधकहै और व्यावहारिक जो जाग्रत् वा सुषुप्ति ये स्वप्न के बाधक है तो स्वप्न प्रातिभासिक कैसे होसके? और देखो कि ब्रह्म को तुम सर्वका साधक मानो हो तो ब्रह्मकी परमार्थ सत्ता है और सर्व जगत् की व्यवहार सत्ता है अब जो समानसत्ताकाही साधक होय तो ब्रह्म किसी का भी साधक नहीं होना चाहिये इस लिये सर्व की साधकता बाधकता को निर्वाह के अर्थ सर्व को एक ही सत्ता माना अब जो सर्व को प्रातिभासिक सत्ता मानोगे तब तो ब्रह्मको भी मिथ्या मानना पड़ेगा सो तो तुमको भी अङ्गीकार नहीं है और जो सर्वकी व्यवहार सत्ता मानों हो ब्रह्म व्यवहारिक पदार्थ सिद्ध होगा तो तुम व्यवहारिक पदार्थ को जन्य मानों हो तो ब्रह्म को भी जन्य मानणा पड़ेगा तो ये भी तुमको अङ्गीकार नहीं है इसलिये सर्वकी शास्वती सत्ता मानो इस सत्ता के मानणमे ब्रह्ममें मिथ्यात्वकीभी अपत्ति नहीं है और तैसेही ब्रह्मभे जन्यता की भी आपत्ति नहीं है जोतुम कहो कि ऐसे मानणेमें जगत् की नित्यताकी आपात्ति होगी क्योंकि शास्वति सत्ता माने तो जगत् भी नित्य होगा सो अनुभव विरुद्ध है क्योकि जगत् की उत्पत्ति नाश प्रत्यक्ष सिद्ध है तो हमतुमको कहे है कि उत्पात्त और नाश मानणा असङ्गतहै क्यो कि हम पहले तुम को षट् वस्तु अनादि तुम्हारेही सिद्धान्तमे मानी हुईका दृष्टान्त देकर खण्डनकर आये है उसको स्मरण करके संतोष करो जो कहो कि जगत् की नित्यता मे हमारे अचार्यों की सम्मति नहीं है तो हम कहे हें कि श्रीकृष्णजी महाराजने गीताके पञ्चदश अध्याय में अर्थात् १५ (पद्रहवें) अध्यायमें ऐसा कहा है कि "ऊर्द्ध्व मूल मधश्शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्" तो यहां जगत् को अव्यय कहाहै अव्यय नाम नित्यकाहै और "ऊर्द्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थस्सनातनः" यह कठोपनिषद् की श्रुति है इसमे संसार वृक्षको सनातन कहा है तो सनातन शब्दका अर्थये है कि सदा रहेतो संसार नित्य सिद्ध हो गया जो कहो कि संसार जो है सो भावरूप करके नित्य है इस लिये इस को अव्यय और सनातन कहा है तो हम पूछे है कि भावरूप करके नित्य उसका अर्थ ये है कि बीज अंकुरा न्यायसे नित्य अथवा कोई इससे भिन्नभी प्रकार कहो तो तुम येही कहोगे कि बीज अंकुरान्यायसे नित्य है यही भावरूप करके नित्य इस वाक्यका अर्थ है तो हम कहे हें कि इसका बीज जीव आत्मा है तो परमात्मारूप बीजसे तो संसाररूप वृक्षका उत्पन्न मानोंहो परन्तु संसाररूप वृक्षसे परमात्मारूप बीजकी उत्पत्ति तुम मानों नही सोभी मानणी चाहिये क्योंकि येभी तुम अपने अनुभवसे समझो कि बीज और वृक्ष दोनोंकी समानसत्ता होय है इसलिये परमार्थसेही जगत् शास्वतरूप सिद्ध होगा जो जगत् शास्वतरूप सिद्ध हुवा

तो ये रज्जु सर्पके दृष्टान्तसे मिथ्या कैसे होगा जैसे जगत् परमार्थसे सत्य है तैसेही रज्जु सर्प और स्वप्न पदार्थभी परमार्थ सत्य है जो कहो कि परमार्थ सत्य है तो इनकी निवृत्ति कैसे हो जाय है तो हम कहैं हैं कि तुम सारे जगत्की अज्ञान कल्पित मानों हो तो आकाश आदिक निरवयव और अविनाशी कैसे प्रतीत होय हैं और घटादि पदार्थ चिरस्थायी कैसे प्रतीत होय हैं और चातुर्मास (वर्षा ऋतु) में अनन्त जीव खिण विणसी कैसे प्रतीति होय हैं जो कहो कि ये अविद्या मायाकी महिमा है तो हम कहै हैं कि यह परमात्मा सर्वज्ञ अलौकिक केवल ज्ञानकी महिमा है कि जिनने अपने ज्ञानसे जैसी रचना देखी वैसीही रचना भव्य जीवोंके लिये वर्णनकी है जिनको तुम रज्जु सर्पादिक कहो हो और प्रति-भासित मानोंहो, वे शीघ्रही निवृत्त हो जांय हैं और तुम्हारे माने व्यावहारिक सर्पका जैसे मरनेके पश्चात् शरीर प्रतीति होय है तैसे रज्जु सर्पका शरीर प्रतीत होवे नहीं और स्वप्न पदार्थकोभी तुम प्रतिभास मानोंहो और स्वप्नके पुरुषका शरीर मरनेके अनन्तर प्रतीति होय नहीं और मरु भूमि अर्थात् मारवाड़के जलको तुम प्रातिभासक मानोंहो और भ्रम निवृत्तिभी हो जाय है तो भी तुमको उसकी प्रतीति होती रहे और इसी विचित्रताको तुम्हारे बाह्य नेत्र मूंदकर ज्ञानरूपी चक्षुसे विचार करके देखो और सर्वज्ञके कहेहुये वचनके ऊपर प्रतीति करो तो तुम्हारा उसी समय अज्ञान दूर होकर तुम सच्चिदानन्दरूप सादि अनन्त सुखको प्राप्त हो जावो जो तुम ऐसा कहो कि सर्व ये मिथ्या हैं ऐसी दृष्टिसे मुक्ति प्राप्त होय है इस कारणसे जगत्को मिथ्या कहै है तो हम तुमको पूछैं हैं कि तुम्हारा जगत्का मिथ्या कहनेमें अभिप्राय क्या है ? तो तुमयेही कहोगे कि ज्ञानके साधनोंमें वैरा-ग्यभी बताया है तो वैराग्यकी कारणता है और दोष दृष्टि सो जगत्में मिथ्यात्व कहनेके विना बनसके नहीं इस लिये शिष्यके ऊपर अनुग्रह करनेके अर्थ दयालु जो आचार्य तिन्होंने जगत् जो शास्वतरूप है तो भी अविद्याकी कल्पना करके उसको कल्पित रचित बताया है क्योंकि पुरुष जिसको मिथ्या कल्पित मान लेवै है उसकी इच्छा करे नहीं जैसे मरुस्थलके जलको मिथ्या जाननेवाला पुरुष जलकी इच्छा करै नहीं इसलिये शिष्यकोभी ये लाभ होय है कि वैराग्यके बलसे भोग दृष्टि निवृत्त होकरके शिष्यकी बुद्धि अन्तरमुख होजायहै उस अंतर मुखहोजाने से शुद्ध चिद्रूप आत्माका उसको साक्षात्कार जीवन मुक्तिका आनन्द प्राप्त होय है आचा-र्योंका ये अभिप्राय है, जो तुमने ऐसा निर्णय किया है तो हम कहै, हैं कि आचार्योंने ऐसा लिखा है कि अधिष्ठानके ज्ञानसे कल्पित पदार्थका त्रैकालिक अभाव होय है तो आचार्योंको सर्व अधिष्ठान सच्चिदानन्द परमात्माका साक्षात्कार रहा है ये तो तुम्हारे भी अभिमत है क्योंकि आपही उनके वचनोंको प्रमाण मानोहो अब आपही विचार करो जिन पुरुषोंको जिस वस्तुका त्रैकालिक अभाव न होवे वे पुरुष उस वस्तुको कैसे मानसकें इसलिये शिष्योंके अनुग्रहके अर्थही अलीक अविद्याको कल्पित करके उस करके कल्पित जगत् को बताय करके मिथ्या कहकरके शिष्योंको वैराग्य करावै है जो कहो कि जिस समय में उन अचार्यों को अज्ञान रहा उस समय में वो अज्ञान अलीक कैसे होगा तो हम कहैं हैं कि उनके गुरुने अलीक अज्ञान कल्पित किया है ऐसा मानों ऐसे परम्परा गुरु जो हैं तिन में मूल गुरु परमात्मा है और वेद उसका उपदेशहै तो वेदमें अविद्या वर्णन की है

अब अविद्या को अलीक नहीं मानो तो वेद अज्ञानीका किया हुवा उपदेश सिद्ध होगा जो ये उपदेश अज्ञानी का किया सिद्ध हुवा तो प्रलाप वाक्य होगा जो प्रलाप वाक्य होगा तो इस मे आत्मविद्या के लाभका असम्भव होने से ब्रह्मविद्या की सम्प्रदायका उच्छेद होगा इसलिये अविद्या अलीक ही कल्पित है जो कहो कि अलीक अविद्या प्रथम तो कल्पित करणी और पीछे इसको निवृत्ति करणे में आचार्योंका अभिप्राय कहा है देखो ये शिष्टपुरुषों का वाक्य है कि "प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्" इसका अर्थ यह है कि कर्दम को स्पर्श करके प्रक्षालन करे इसकी अपेक्षा कर्दमका स्पर्शही नहीं करे ये उत्तम है तो हम कहे है कि जैसे भार धारण करके निवृत्त करणे से पुरुष के अपना आनन्द अभिव्यक्त होय हैं तैसे सदा भाररहित पुरुष के आनन्द अभिव्यक्त होवे नहीं यह सर्वके अनुभव सिद्ध है इसलिये दयालु आचार्यों ने जगत् को अज्ञानकल्पित बताय करके मिथ्या कहा है और उनकी दृष्टि तो ब्रह्ममें ही है देखो आप उनका ये वाक्य है कि "देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनीतियत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः" इसका अर्थ येहै कि देहाभिमान निवृत्त होकर जब परमात्म ज्ञान हो जावे तब जहां जहां मन जावे है तहां तहां समाधि होय है अर्थात् परमात्मा भिन्न दृष्टि उनकी नहीं होयहै तो हम कहें हैं कि जगत् में मिथ्यात्व की भावना करानेसे जैसै वैराग्य होय है तैसे परमात्म दृष्टि करानेसे भी वैराग्य होय है इसलिये जिस उपासकों की सर्वमे परमात्म दृष्टि है वो अत्यन्त विरक्त होय है क्योंकि विरक्तमें भोग्याभाव बुद्धिकारण है सो जैसे मिथ्यात्व बुद्धिसे होयहै तैसे सर्व आत्मा भावसे भी होय है देखो ऐसे उपासकोंके अर्थ श्रीकृष्णजीने नवम अध्यायमें प्रतिज्ञा कीहै कि "अनन्याश्चिन्तयंतो मां ये जनाः पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यम्" इसका भावार्थ ये है कि सर्वमें भाव मेरा करके उपासन करै है उनका योगक्षेम मैं करूंहूं अलब्धका लाभ योग है और लब्धकी रक्षा जो है सो क्षेमहै और येभी भगवान् ने कहीं आज्ञा नही की है कि सर्वमे मिथ्यात्व दृष्टि करनेवाले को मैं योग क्षेम करूं हूं ऐसा नही कहाथा इसलिये वैराग्यके अर्थभी सर्व आत्मदृष्टिकी कर्त्तव्य है अब हम ये पूछे है कि तुमने जो रज्जु सर्प को भ्रम कल्पित कहा है और उसके दृष्टांतसे जगत् को आत्मा मे कल्पित बताया है तहाँ दृष्टान्त दार्ष्टान्त का साम्य कहा नही सो कहो परन्तु पहले ये कहो कि वृत्तिविषय देशमे गई और तिमिरादिक दोषसे रज्जु समानाकार भई अर्थात् रज्जु के सामान्य अंश के आकार को तो प्राप्त हुई और रज्जु के विशेष अंश के समानाकार भई नहीं तब रज्जु चेतनाश्रित अविद्यामे तथा साक्षी चेतनाश्रित अविद्यामें क्षोभ हो करके अथवा इदमाकार वृत्तिमे स्थित अविद्या में क्षोभ करके उस २ अविद्या का तमोंश तथा सत्वांश सर्पाकार और ज्ञानाकार परिणाम कूं सम कालमें प्राप्त होय है और रज्जु का विशेष रूप करिके अज्ञान आविद्यामें क्षोभ द्वारा दोनों की उत्पत्ति में निमित्त है और रज्जु का विशेष रूप करिके ज्ञान दोनों की निवृत्ति मे निमित्त है ऐसे मान करिके सर्प और सर्प के ज्ञान को तुम ने भ्रम कहा है और रज्जु का जो विशेष रूप करि के ज्ञान तिसकरके सर्प और ज्ञान दोनों की निवृत्ति कही है परन्तु रज्जुसर्पमें तो इदन्ता प्रतीति होय है सो सर्प की तरह कल्पित है अथवा नहीं ये तुमने पूर्व कही नहीं सो कहो जा

कहो कि रज्जु सर्पमें इदन्ता कल्पित नहीं है किन्तु रज्जु की ही इदन्ता सर्प में प्रतीति होय है और सर्पके विषय से अनिर्वचनीय इदन्ता रज्जु की इदन्ता के समान जातीय उत्पन्न होवे नही क्योंकि विचारसागरके षष्ठ तरङ्गमें ऐसे लिखा कि जहाँ दोय पदार्थ समीप देशस्थ होवें तहां भ्रम स्थलमें अन्यथा ख्याति मानणी और तहां अनिर्वचनीय ख्याति नहीं मानणी चाहिये जो कहो कि अनिर्वचनीय ख्याति नहीं मानेंगे और इस स्थलमें अन्यथा ख्याति मानेंगे तो तुम्हारे सिद्धान्तमें हानि होयगी क्योंकि तुम्हारे मतमें अन्यथा ख्याति नही मानी है इसको तो न्यायके मतवाले मानें है तो हम कहे हैं कि ऐसे स्थलमें हमारे मतमें अन्यथा ख्यातिका ही अङ्गीकार है परंतु पूर्व दो प्रकारकी अन्यथा ख्याति कही है एक तो अन्य देश स्थित पदार्थ की अन्य देशमें प्रतीति ये अन्यथा ख्याति है और दूसरी अन्यथा ख्याति ये है कि अन्यकी अन्य रूपसे प्रतीति इनमें प्रथम अन्यथा ख्यातिको तो हम नहीं मानें हैं और दूसरी अन्यथा ख्याति हम मानें है क्योंकि सन्मुखमें पदार्थ तो सुक्ति है और रजतका ज्ञान होय है तो यहां तो हम दोनो ही अन्यथा ख्याति माने नहीं किन्तु अनिर्वचनीय ख्याति ही मानें है इसमें कारण ये है कि नहीं होय उसकी भी प्रतीति यदि होय तो वन्ध्या पुत्रकी भी प्रतीति होणी चाहिये परन्तु जहां सन्मुख देशमे दोय पदार्थ होवें तिनमें एक पदार्थमें अन्य पदार्थका धर्म प्रतीति होय तहां अन्यथा ख्यातिका अङ्गीकार है जैसे स्फटिकमें जपा पुष्पके सन्निधानसे रक्तताकी प्रतीति होयहै तहां स्फटिकमें अनिर्वचनीय रक्तता उत्पन्न होवे नहीं किन्तु जपा पुष्पकी रक्तता स्फटिकमें प्रतीति होय है तो अन्यका अन्यरूप करिके भान है इसलिये अन्यथा ख्याति है परंतु स्फटिकमें जहां जपा पुष्पका सम्बन्ध होय तहां पुष्पकी रक्तताका भान स्फटिकमें होय है इसमें कारण यह है कि जहां अन्तःकरणकी वृत्ति रक्त पुष्पाकारहोय है तहांही वृत्तिका विषय रक्तपुष्प सम्बन्धी स्फटिक है इसलिये पुष्पकी रक्तताकी स्फटिकमे प्रतीति होयहै ऐसे ही जहां रज्जुमें सर्प भ्रम होय है तहां तो अन्यथा ख्याति सम्भव नहीं क्योंकि भिन्न देश स्थित होनेसे रज्जुका सर्प सम्बन्ध नहीं है और ज्ञेयके अनुसार ही ज्ञान होय है ये नियम है तो ज्ञेय रज्जु और ज्ञान सर्पका यह कथन विरुद्ध है इसलिये रज्जु देशमें अनिर्वचनीय सर्प उत्पन्न होय है ऐसे मानणा उचित है और रज्जु सर्पमें इदन्ता प्रतीति होय है सो अनिर्वचनीय नहीं है क्योंकि रज्जु और अनिर्वचनीय सर्प ये दोनो एक देशमें स्थित है इसलिये रज्जुकी ही इदन्ता सर्पमें प्रतीति होय है ऐसे मानणे में कारण यह है कि परमात्मा सत्ता सर्व पदार्थोंमें प्रतीति होयहै तो स्वप्न पदार्थों मे भी प्रतीति होय है अब उस सत्ता को स्वप्न के पदार्थों की तरह अनिर्वचनीय तो मानसके नहीं क्योंकि सत्ता परमात्मारूप है इसको स्वप्न पदार्थों की तरह अनिर्वचनीय मानणे में सत्य जो है सो मिथ्याहै ऐसा मानणा होगा सो विरुद्ध है इस लिये ऐसे मानेहै कि परमात्मा रूप जो स्वप्नाधिष्ठान तिसकी सत्ता ही स्वप्न पदार्थों में प्रतीति होय है ऐसे विचारसागर षष्ठ तरङ्गमें लिखा है इसलिये रज्जुकी इदन्ता ही अनिर्वचनीय सर्प प्रतीति होय है ये तुम्हारा मत है तो हम पूछे हैं कि रज्जु की जो इदन्ता सो अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसका विषय है अथवा सर्प विषयक जो अविद्या वृत्ति तिसका विषय है तो तुम येही कहोगे कि अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसका ही विषय है अथवा सर्प विषयक जो अविद्या वृत्ति तिसका वि-

षय है तो तुम ये ही कहोगे कि अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसका ही विषय है क्योंकि रज्जुकी इदन्ता व्यावहारिक है और प्रातिभासिक पदार्थ तिनका ये भेद है कि व्यावहारिक पदार्थ तो अन्तःकरण की वृत्ति के विषय होय है और प्रातिभासिक पदार्थ अविद्याकी वृत्ति के विषय होय है और व्यावहारिक पदार्थ तो प्रमातृ वेद्यहै अर्थात् इनका ज्ञाता तो चिदाभास है और प्रातिभासिक पदार्थ साक्षिभास्य हैं अर्थात् इनका ज्ञाता साक्षी है तो हम पूछैं हैं कि रज्जुको देख करके अल्पान्धकारावृत रज्जु देशमे अन्तःकरणकी वृत्ति गई और रज्जुके सामान्यांशाकार तो भई और रज्जुके विशेषाकारको प्राप्त भई नही तब "अयं सर्पः" अर्थात् ये सर्प है ऐसा भ्रमात्मक ज्ञान होय है ऐसे तुम मानों हो तहां दोय ज्ञान मानो हो वा एक ज्ञान मानो हो जो कहो कि दोय ज्ञान माने हे तिनमे रज्जु के समान्य अंश को विषय करनेवाला तो अन्तःकरण की वृत्ति रूप ज्ञानहे और सर्प को विषय करनेवाला अविद्याकी वृत्ति रूप ज्ञान हे तो हम कहे है कि तुम्हारा ऐसा मानणां तो असंगत है क्योंकि तुमही ऐसे कह आये हो कि ये सर्प है यहां ज्ञान एकही प्रतीति होय है इसलिये आख्याति मतका मानणा भी असंगतही हे कदाचित् ऐसा कहो कि स्मरणात्मक और प्रत्यक्षात्मक ये दोय ज्ञान "अयं सर्पः" ऐसे दोय ज्ञानका निषेध अभिमत है और प्रत्यक्षात्मक ये दोय ज्ञान सो तो हमारे अभिमत है तो हम पूछे हे कि अन्तःकरणकी जो वृत्ति सो इदन्ताको विषय करेगी तो रज्जुमें विषय करेगी सर्पमें विषय नही करसकै क्योंकि अनिवचनीय सर्प अन्तःकरणकी जो वृत्ति तिसका विषय नहीं है किन्तु अविद्याकी जो वृत्ति तिसका विषय है ऐसा तुम मानोहो अब जो धर्मी प्रातिभासिक सर्प सो तो अन्तःकरणकी वृत्तिका विषयही नहीं तो रज्जुकी इदन्ता सर्पमें कैसे प्रतीति होय तुम तुम्हारे दृष्टान्तको स्मरण करो पुष्पकी जो लाली सो तदाकार वृत्तिनेही पुष्प संबन्धी स्फटिकको विषय किया है इसलिये पुष्पकी लालीका स्फटिकमें प्रतीति होय है और यहां तो इदन्ताकार वृत्तिने इदं शब्दका अर्थ जो रज्जु उसके सम्बन्धी सर्पको विषय किया नहीं इसलिये रज्जुकी इदन्ता सर्पमें कैसे प्रतीति होवे सो कहो १ और अयं सर्प यहां ज्ञान एकही प्रतीति होय है दोय ज्ञान प्रतीति होवे नहीं और यहां दोय ज्ञान मानो हो तो अनुभव विरोध होय है इस विरोधका परिहार क्या है सो कहो २ और जब रज्जु ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति होय है तहां रज्जुका ज्ञाता तुम परमात्माको मानोंहो तो परमात्माको ज्ञान भय साक्षीको ज्ञान जो सर्प तिसकी निवृत्ति कैसे होय सो कहो जो अन्यको रज्जुका ज्ञानभये अन्यको भ्रमकी निवृत्ति होय तो हमारेको ज्ञानभये तुम्हारेको भी भ्रमकी निवृत्ति होनी चाहिये ३ और जो सर्प प्रमाताके ज्ञानका विषय नही है और साक्षीका विषय है तो प्रमाताको भय नही होणा चाहिये किन्तु साक्षीको भय होणा चाहिये सो साक्षीको भय होवे नहीं ये तुम भी मानो हो ४ और जैसे व्यावहारिक सर्पका ज्ञान प्रमाताको होवै है उस समयमें ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप जो त्रिपुटी तिसको साक्षी प्रकाश करता हुवा स्वः प्रकाश करके प्रकाश करै है तैसेही प्रातिभासिक सर्पका जो ज्ञान होवेहै तबभी साक्षी त्रिपुटीका ही प्रकाशक प्रतीति होय है ये तुमही रज्जु सर्प भ्रम होय तब अनुभवसे विचार करके देखलेवो क्योंकि जब यहां दोय ज्ञान मानो और उनके विषय दोय मानोंगे तो ये भये और एक प्रमाता है ऐसे पांचको साक्षी प्रकाशक मानणा पड़ेगा तो हम तुमको पूछैं हैं कि ऐसा

कोई ग्रन्थमें लिखा है कि नहीं क्योंकि आजतक ऐसा लेखदेखा सुनाभी नहीं कि साक्षी पञ्च पुटीका प्रकाशक है ५ अब जो तुम ऐसा कहो कि प्रमाताको जब अन्धकार वृत्त रज्जुमें इदन्ताका ज्ञान हुवा उस समयमें इदमाकार वृत्युपहित साक्षीकी भी विषयता इदन्तामें है तो जैसे रज्जुकी इदन्ता प्रमाताकी विषय भई तैसे साक्षीकी भी विषय भई अब जो अनिर्वचनीय सर्प और उसको विषय करनेवाला ज्ञानये सम कालमें उत्पन्न भये उसकालमें वोही साक्षी सर्प और ज्ञान दोनोंका प्रकाश करै है इसलिये रज्जुकी इदन्ता सर्पमें प्रतीति होय है जैसे प्रमाताकी विषय पुष्पकी लाली स्फटिकमें प्रतीति होय है ऐसे इदन्ता और सर्प एक चिद्विषय होनेसे अन्यथा ख्याति है इस प्रकारसे अन्यथा ख्याति मानणेमें स्फटिकमें भी लालीकी अन्यथा ख्याति बन जायगी क्योंकि एक प्रमातृ रूप जो चित्त तिसकी विषयता लाली और स्फटिक दोनोंमें है ऐसे तो प्रथम प्रश्नका समाधान हुवा १ और द्वितीय प्रश्नका समाधान ये है कि ज्ञान में स्वरूपसे तो भेद है नहीं किन्तु विषय भेदसे भेद है तो यहां विषय है दोय एक तो रज्जुकी इदन्ता है । और दूसरा प्रातिभासिक सर्प है ये दोनों साक्षीरूप जो ज्ञान तिसके विषय हैं यातें हमने आरोप बुद्धिसे ज्ञानदोय कहे हैं और वस्तुगत्या साक्षीरूप ज्ञान एकही है इसलिये एकही ज्ञान प्रतीति होय है २ और तृतीय प्रश्नका समाधान यह है कि यद्यपि आवरण भंग होकरके रज्जुका विशेष रूप करके ज्ञान प्रमाताको हुवा है तथापि साक्षी त्रिपुटीका प्रकाशक है इसलिये साक्षीकाभी विषय रज्जु है तो जैसे रज्जुका ज्ञान प्रमाताको हुवा वैसे साक्षीको भी हुवा इस लिये अन्यको ज्ञान हुये अन्यके भ्रमकी निवृत्ति नहीं भई किन्तु जिसको ज्ञान हुवा उसकेही भ्रमकी निवृत्ति भई इस कारणसे अन्यको ज्ञान भये अन्यके भ्रमकी निवृत्तिकी आपत्ति नही है ३ और चतुर्थ प्रश्नका समाधान यहहै यद्यपि सर्प प्रमाताके ज्ञानका विषय नहीं है साक्षीकाही विषय है तथापि अन्तःकरणकी उपादान भूत जो अविद्या तिसका परिणाम सर्प और तिसका ज्ञान है और अन्तःकरणकी उस अविद्याका परिणाम है तो उपादान ते भिन्न कार्य्य होवे नहीं ये अनुभव सिद्ध है जैसे घटकी उपादान मृत्तिका है तो घट जो है सो मृत्तिकाहीहै तैसे अन्तःकरण और सर्पज्ञान ये भी अविद्याके परिणाम है तो अविद्या इनकी उपादान भई जो अविद्या इनकी उपादान भई तो ये अविद्यारूप भये जो ये अविद्यारूप भये तो अन्तःकरणकी वृत्ति जो है तिसका उपादान अन्तःकरण है तो अविद्याही वृत्तिकी उपादान भई तो अविद्याकी वृत्तिका विषय सर्प है तो अन्तःकरणकी वृत्तिका विषय सर्प हुवा इसलिये प्रमाताको भय होय है ४ और पञ्चम प्रश्नका उत्तर यह है कि अविद्याकी सर्पका विषय करनेवाली जो वृत्ति सो तो सूक्ष्म है इसलिये प्रतीति होवे नहीं और रज्जुकी इदन्ता पूर्वोक्त प्रकारकरके सर्पका धर्म प्रतीति होय है इस लिये इस स्थलमें साक्षी पञ्चपुटी प्रकाशक है तो भी त्रिपुटी प्रकाशकतासेही प्रकाश है ५ यह तुमने जो हमारे पांच प्रश्नोके उत्तर दिये सो तुम्हारे सब उत्तर अशुद्ध हैं देखो तुमने इदन्ता और अनिर्वचनीय सर्प इनको एक चिद्विषय मान करके प्रथम प्रश्नका उत्तर कहा है तहां हम यह पूछैं हैं कि एक चिद्रूप जो साक्षी सो जो विषयका प्रकाश करै हैं सो वृत्तिकी सहायतासे प्रकाश करै है अथवा वृत्तिकी सहायता विना प्रकाश करै है जो कहो कि वृत्तिकी सहायतासे प्रकाश करै है तो हम पूछे है कि साक्षी जिस वृत्तिका सहायतासे जिस विषयका प्रकाश करै है यह उसही वृत्तिकी सहायतासे

उस विषयसे अन्य विषयकाभी प्रकाशक होय है अथवा नहीं जो कहो कि अन्य विषय काभी प्रकाशक होय है तो हम कहे हैं कि जैसे साक्षी अविद्याकी वृत्तिसे सर्पका प्रकाश करता है वा इदन्ताका प्रकाशक है ऐसे मान करके तुम अन्यथा ख्याति बनावोगे तो तैसे जीव साक्षीमें सर्व ज्ञाताकी आपत्तिभी मानणा पड़ेगा क्योंकि जैसे सर्पसे भिन्न इदन्ताहै तैसे अन्य सारे पदार्थ सर्पसे भिन्न है तो उनका प्रकाशक भी जीव साक्षीको मानणा पड़ेगा ऐसे जीव साक्षीमें सर्वज्ञताकी आपत्ति होगी जो कहो कि ऐसे माननेमें आपत्ति है तो ऐसे मानोगे कि साक्षी जिस वृत्तिसे जिस विषयका प्रकाशक होय है उस वृत्तिसे अन्य विषयका प्रकाश होवे नहीं इस लिये जीव साक्षीमें सर्वज्ञताकी आपत्ति नहीं है तो हम कहें है कि इदन्ता जो है सो अविद्याकी वृत्ति करके सर्पका प्रकाशक जो साक्षी ताकी विषय नहीं होगी तो सर्पमें इदन्ताकी प्रतीति असिद्ध होगी तो अन्यथा ख्यातिका मानणा असंगत हुवा जो कहो कि साक्षी वृत्तिकी सहायता विनाही विषयका प्रकाश करै है तो हम कहेंहै कि शुद्ध चिद्रूप जो आत्मा तिसमें साक्षी भाव जो है सो वृत्ति दृष्टिसे कल्पितहै और वृत्ति निरपेक्ष जो आत्मा तिसमें साक्षीभाव नहीं है इसलिये वृत्तिकी सहायता विना साक्षीके विषय का प्रकाशक मानणा असङ्गत है और जो प्रौढ़ वादसे वृत्ति निरपेक्ष शुद्ध आत्माको विषयका प्रकाशक मान लेवे तो वृत्ति निरपेक्ष शुद्ध आत्माही ब्रह्म है सो ब्रह्म समस्त ब्रह्माण्डका प्रकाशक है तो ये ब्रह्मरूप शुद्धात्मा जैसे रज्जुकी इदन्ताको विषय करता हुवा रज्जु सर्पको विषय करेगा इस लिये अन्यथा ख्याति सिद्ध होगी तैसे हम ऐसा कहेंगे कि ये ब्रह्मरूप शुद्धात्मावलम्बिकादि स्थानमें स्थित जो सर्प तिसका विषय करता हुवा रज्जुको विषय करै है इस लिये रज्जु सर्प भ्रमस्थलमेंभी अन्यथा ख्यातिही मानो अनिर्वचनीय ख्यातिका उच्छेदही होगा जो कहो कि रज्जु और सर्प एकदेश स्थानही है इसवास्ते रज्जु सर्प स्थलमें अन्यथा ख्याति सम्भव नही तो हम तुमको पूछे हैं कि जहां एक देश स्थित दोय पदार्थ प्रतीयमान होयहैं सो भी एकके विषय होयहै तहां अन्यथा ख्याति मानो हो वा भिन्न विषय होय है तहां भी अन्यथा ख्याति मानो-हो तो तुम येही कहोगे कि विषय होयहै तहांही अन्यथा ख्याति होयहै क्योंकि स्फटिकमें लाल रंगकी प्रतीति होय है तहां पुष्पकी लाली और स्फटिक एक वृत्ति विषय होय है इस लिये स्फटिकमें लाली की अन्यथा ख्यातिहै तो हम पूछें हैं कि जहां लालपुष्पसंबन्धी पाषाणहै तहां पाषाणमें लालीकी प्रतीति होवे नहीं इसमें कारण क्या है सो कहो तो तुम ये कहो गे कि पाषाण मलिन है इसलिये पाषाण में पुष्प की छाया होवे नहीं तो हम कहे हैं कि अन्यथा ख्यातिके मानने में छाया भी निमित्त सिद्ध भई अब हम पूछे है कि शुद्ध वस्तुमें छाया होय है ये तो तुम्हारे अनुभव सिद्ध है तो जहां पुष्पका सम्बन्ध तो स्फटिक से नहीं है और पुष्पकी छाया स्फटिकमें है तहां पुष्प और स्फटिक एक देशस्थ नहीहै तोभी लाली की प्रतीति स्फटिकमें होयहै इसलिये एक देशस्थत्व जो है सो अन्यथा ख्याति में निमित्त नहीं है किन्तु छाया जो है सोही निमित्त है ऐसा मानणाही पड़ेगा तो जहां रज्जु सर्प भ्रम होय है तहांभी रज्जु और सर्प येदोनो एक देशस्थ नहीं है तो भी जैसे स्फटिक में लाली की छायाहै तैसे रज्जुमे सर्पका सादृश्य है

इस लिये अन्यथा ख्याति ही मानों अनिर्वचनीय सर्पकी उत्पत्ति मानणेमें गौरव दोष है इस कारण से अनिर्वचनीय ख्याति का उच्छेदही होगा इस तुम्हार प्रथम प्रश्नके उत्तर में तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्याति मानणा असङ्गत है ॥ और द्वितीय प्रश्नका उत्तर तुमने ये कहा है कि आरोप बुद्धि से दोय ज्ञान कहे हैं और वस्तुगत्या साक्षीरूप ज्ञान एक है इस लिये ज्ञान एकही प्रतीति होय है तो हम कहे है कि जैसे ये रज्जु है इस ज्ञानको तुम अन्तःकरणकी जो वृत्ति तद्रूपज्ञान मानों हो और इसको साक्षी भास्य मानो हो क्यों कि ये वृत्तिरूप ज्ञान घटकी तरह स्पष्ट प्रतीति है तैसे ही ये सर्प है ये ज्ञानभी अन्तःकरण की जो वृत्ति तिसकी तरह साक्षी का विषय होकरके प्रतीति होय है इस लिये इस को साक्षी रूप मानणा अनुभव विरुद्धही है और जो प्रौढ़िवादसे इसको ही साक्षीरूप ज्ञान मानों गे तो वृत्तिरूप जो ज्ञान तिसका उच्छेदही होगा क्योंकि विषय भेद से ही ज्ञान में भेद सिद्ध होजायगा तो वृत्ति ज्ञान मानणा व्यर्थ ही है इसलिये द्वितीय प्रश्नका समाधान भी असङ्गत ही है ॥ और तृतीय प्रश्नका समाधान तुमने ये कहा है कि जैसे रज्जु जो है सो विषय रूप करके प्रमाता का विषय है तैसे साक्षीकाभी विषयहै इसलिये अन्यके ज्ञान से अन्यके भ्रमकी निवृत्ति की आपत्ति नहीं है तो हम पूछे हैं कि उपाधि भेद से तुम उपहित में भेद मानों हो अथवा नहीं जो कहो कि उपाधि भेदे से उपहित में भेद माने हैं क्योंकि विचारसागरकी द्वितीय तरङ्ग में लिखा है कि अन्तःकरणरूप उपाधियोंके भेदसे जीव साक्षी नानाहै इसलिये अन्यके सुखदुःखोंका अन्यको भान होवेनहीं और वो साक्षी जो सुखदुःखोंको प्रकाश करै है सो भी वृत्ति की सहायता से ही प्रकाश करैहै इस लिये जब अन्तःकरणमें सुख दुःख पैदा होय है उस कालमें अन्तःकरणकी सुखाकार दुःखाकार वृत्ति होय है उन वृत्तियों से साक्षी सुखदुःखोंका प्रकाश करै है कि उपाधि भेदसे उपहित में भेदहै तो अन्यके ज्ञान से अन्यके भ्रमकी निवृत्ति की आपत्ति दूर होवेही नहीं क्योंकि अन्तःकरण वृत्त्युपहित साक्षीको तो विशेष रूप करके रज्जु का ज्ञान होगा और अविद्या वृत्त्युपहित साक्षीका भ्रमनिवृत्त होगा उपाधि भेद वा साक्षी में भेद है ये तुम्हारे कथन ते सिद्ध हैइस लिये तृतीय प्रश्नका उत्तर भी असङ्गत ही है ३ और चतुर्थ प्रश्नके समाधान में तुमने ऐसे कहाहै कि उपादान कारण एक अविद्या है इसलिये अन्तःकरणको वृत्ति और अविद्या की वृत्ति एकहीहै तो सर्प अविद्याकी वृत्ति का विषय है तो अन्तःकरणकी वृत्तिका ही विषय है इस लिये प्रमाता को भयहोय है तो हम कहे है कि तुम्हारे कहे प्रकार करके तो सर्व जीवोंके अन्तःकरण कीवृत्ति सर्प विषय वृत्ति से अभिन्न है इस लिये सर्व जीवों को भय होना चाहिये सो होवे नहीं इस हेतुसे चतुर्थ प्रश्नका उत्तर असङ्गत हीहै ४ और पञ्चम प्रश्नका उत्तर तुमने ये कहा है कि सर्प को विषय करणे वाली अविद्या की वृत्ति तो अति सूक्ष्म है इस लिये प्रतीति होवे नहीं और पूर्वोक्त प्रकार करके रज्जु की इदन्ता जो है सो सर्पका धर्म प्रतीति होवै है इसलिये साक्षी पञ्चपुटिका प्रकाश है तोभी त्रिपुटी प्रकाशकही प्रतीति होय है तो हम पूछे हैं कि अविद्याकी प्रतीतिमें सूक्ष्मताहै सो किम्प्रयुक्तहै जो कहो कि अविद्या अतिसूक्ष्म है सो इसवृत्तिकी उपादान कारण है इस लिये ये वृत्ति अति सूक्ष्म है तो हम कहैं हैं कि ये कथन तो तुम्हारा

तुम्हारे मतसे ही असङ्गत है क्योंकि तुम्हारे मतमें सर्व जगत् अज्ञान कल्पितहै तो सर्व जगत्की प्रतीति नहीं होणी चाहिये जो कहो कि साक्षात् अविद्याका कार्य्य अतिसूक्ष्म होय है जैसे साक्षात् अविद्याका कार्य है इसलिये आकाश जो है सो अतिसूक्ष्म है तैसे ही सर्प विषयक वृत्ति भी साक्षात् अविद्याकी कार्य है इसलिये अविद्या सूक्ष्म है तो हम कहे है कि रज्जु सर्प जो है सो भी तुम्हारे मतमें साक्षात् अविद्याका कार्य है इसलिये इसका भी प्रत्यक्ष नहीं होणा चाहिये अब विचार करो कि तमोगुण कार्य्य रज्जु सर्प ही प्रतीति होय है तो वृत्ति जो है सो तो सत्वगुणकी कार्य्य है इसकी अप्रतीति तो कैसे हो सके और रज्जुकी जो इदन्ता है उसकी सर्पमे प्रतीति पूर्वोक्त होय करके दुर्घटहै इसलिये पञ्चम प्रश्नका समाधान भी असङ्गत ही है जो कहो कि दोय ज्ञान माननेमे पूर्वोक्त दोष होय है तो "अयं सर्पः" यहां ज्ञान एकही मानेगे तो हम कहे है कि रज्जुकी जो इदन्ता उसकी प्रतीति सर्पमें हो सके नहीं इसलिये सर्पमें जो इदन्ता है उसकूं रज्जुकी इदन्तासे भिन्न मानों क्योंकि इदन्ता जो है सो पुरोदेश वृत्ति धर्म से विलक्षण नहीं है रज्जुजोहै सो तो पुरोदश जो भूतल तद्वृत्ति है और सर्प जो है सो पुरोदश जो रज्जु तद्वृति है इसलिये दोनों की इदन्ता भिन्न २ हैं अब जो दोनों इदन्ता भिन्न भई तो इदन्ता विशिष्ट सर्पको विषय करणेवाली जो वृत्ति सो अविद्या की वृत्ति नहीं होसके किन्तु अन्तःकरणकी ही वृत्ति होगी क्योकि सर्पदर्शन से प्रमाताको ही भय होय है ये अनुभव सिद्ध है अब जो सर्प विषयक वृत्ति अन्तःकरणकी वृत्तिरूप भई तो रज्जु जैसे प्रातिभासिक नहीं है तैसे सर्पभी प्रातिभासिक नही होगा जो सर्प प्रातिभासिक नहीं होगा तो ये अज्ञान कल्पित नहीं होगा जब अज्ञान कल्पित नहीं होगा, जब अज्ञान कल्पित नहीं ठहरा तो तुमने जो अज्ञान कल्पितरूप जगत् मानाथा उसमें तुम्हारी मानी हुई अनिर्वचनीय ख्याति उच्छेद हो गई जैसे बारूदके उड़नेसे गोलीका उच्छेद हो जाता है जो तुम ऐसा कहो कि अपने पञ्चविधि ख्यातिमेंसे कोई भी ख्याति अङ्गीकार नहीं करी सो तुम कौनसी ख्याति मानोंगे तो हम कहे हैं कि जैसे अनादि स्वास्त सत्ता रूप जो जगत् सिद्ध हुआ है उसको स्मरण करके सत् ख्यातिको अंगीकार करो यही उत्तम सिद्धान्त है जो कहो कि इस सत् ख्यातिकी व्यवस्था कैसे है तो हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें जहां वीतराग सर्वज्ञकी वाणीरूप अमृतसे भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित किया जायगा उसजगह वर्णन करेंगे वहां से देखना, अब हम तुमको ऐसा कहे है कि रज्जु सर्वरूप जो दृष्टान्त सो तो अज्ञान कल्पित सिद्ध हुवा नही तो इसके दृष्टान्तसे आत्मामें अज्ञान कल्पित भी सिद्ध न हुवा तो जगत् अज्ञान कल्पित न हुवा तो तुम दृष्टान्त दार्ष्टान्तका सम्भव कैसे बतावो हो सो कहो तुम ऐसा कहोगे कि आत्मा जो है सो सत्चित्आनन्दअसंग कूटस्थ नित्य मुक्त है तो जैसे रज्जुको दोय अंश हैं इदं रूप तो रज्जुका सामान्य अंश है और रज्जु जो है सो विशेष अंश है जो भ्रांति कालमें मिथ्या कल्पित पदार्थसे अभिन्न हो करके प्रतीति होवे सो तो सामान्य अंश कहिये है और जिस अंशकी भ्रांति कालमे प्रतीति होवे नहीं सो विशेष अंश कहिये है जैसे जहां रज्जुमें सर्प भ्रम होय है तो उस भ्रमका आकार ये सर्प है ऐसा है तो इस शब्दका अर्थ इदम्पदार्थ सर्पमें अभिन्न हो करके भ्रांति कालमें प्रतीति होवेहै इसलिये ये रज्जुका सामान्य अंशहै तैसेही स्थूल सूक्ष्म संघात है ऐसे स्थूल सूक्ष्मकी भ्रान्ति

समयमें मिथ्या संघातसे अभिन्न हो करके सत् प्रतीति होय है इसलिये आत्माका सत्यरूप सामान्य अंश है और जैसे सर्पकी भ्रांति कालमें रज्जुके विशेष अंशका प्रत्यक्ष होवे नहीं किन्तु रज्जु की विशेष रूपसे प्रतीति भये सर्प भ्रमदूर होवे है इसलिये रज्जु विशेष अंश है तैसे स्थूल सूक्ष्म संघातकी भ्रान्ति समयमें आत्माका असंकूटस्थ नित्यमुक्त स्वरूप प्रतीति होवे नहीं किंतु असंगादिरूप आत्माकी प्रतीति भये संघातकी भ्रांति दूर होवैहै इसलिये असंगता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक जो हैं सो आत्माके विशेषरूप है जैसे भ्रान्ति समयमें सर्पका आश्रय जो रज्जु तिसका सामान्य इदंरूप सर्पका आधार है और विशेषरूप अधिष्ठान है तैसे मिथ्या प्रपंचका आश्रय जो आत्मा तिसका सामान्य सत्रूप स्थूल सूक्ष्मका आधार है और असंगतादिक विशेषरूप अधिष्ठान है जो कहो कि सर्पका आधार और अधिष्ठान तो रज्जु है और रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्पका द्रष्टा है तैसे आत्मा जगत्का आधार और अधिष्ठान है तो इससे भिन्न जगत्का द्रष्टा कौन होगा जैसे सर्पका आधार और अधिष्ठान जो रज्जु सो सर्पका द्रष्टा नहीं है किंतु रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्पका द्रष्टा है तैसे आत्मासे भिन्न जगत्का द्रष्टा कौन होगा सो कहो तो हम कहैं हैं कि मिथ्या वस्तु अधिष्ठानमें कल्पित होय है सो अधिष्ठान दोय प्रकारका होय है एक तो जड़ अधिष्ठान होय है और दूसरा अधिष्ठान चेतन होय है सो जहां अधिष्ठान जड़ होय है तहां तो द्रष्टा अधिष्ठानसे भिन्न होय है जैसे सर्पका अधिष्ठान रज्जु है सो जड़ है तो इस रज्जुसे भिन्न जो पुरुष सो सर्पका द्रष्टा है और जहां चेतन अधिष्ठान होय है तहां अधिष्ठानसे भिन्न द्रष्टा होवे नहीं जैसे स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी चेतन है सोही स्वप्नका द्रष्टा है तैसे जगत्का अधिष्ठान आत्मा है सोही जगत्का द्रष्टा है ये व्यवस्था स्थूल दृष्टिसे कही है क्योंकि सिद्धांतमें तो सर्पका अधिष्ठान साक्षीही है सोही द्रष्टा है इसलिये पूर्वोक्त शंका ससाधान हैही नहीं ऐसे आत्माके अज्ञानसे जगत् प्रतीति होय है जिसके अज्ञानसे प्रतीति होय है जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्प प्रतीति होय है सो रज्जुके ज्ञानसे निवृत्त होय है तैसे आत्माके अज्ञानसे जगत् प्रतीत होय है सो आत्माके ज्ञानसे निवृत्त होय है इसलिये आत्मा ज्ञान सिद्ध करने योग्य है ऐसा विचारसागरके चतुर्थ तरङ्गमें दृष्टांत दार्ष्टांतका साम्य कहा है तो हम तुमको पूछे है कि अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान भ्रमका कारण है वा अधिष्ठानका विशेषरूप करके अज्ञान भ्रमका कारण है वा अधिष्ठानका सामान्यरूपकरके ज्ञान और विशेष रूप करके अज्ञान ये दोनोंका कारण है जो कहो कि अधिष्ठानका सामान्यरूप ज्ञान भ्रमका कारण है तो हम कहैं हैं कि अधिष्ठानका विशेषरूप करके ज्ञानभये भी भ्रम होणा चाहिये क्योंकि रज्जुका विशेषरूप करके जो ज्ञान तिसका आकार ये है कि ये रज्जु है तो इस ज्ञानमें ये इतना अंश सामान्य ज्ञान है सो तुमने भ्रमका कारण माना है इसलिये तुमको अधिष्ठानका विशेषरूप करके ज्ञान होय तिससमयमेंभी सर्पभ्रम होणा चाहिये सो होवे नही इस कारणसे अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान भ्रमका कारण मानना असंगत है जो कहो कि अधिष्ठानका शेषरूप करके अज्ञान भ्रमका कारण है तो हम कहै हैं कि जिस समयमें रज्जु सर्वथा अज्ञात है उस समय मेंभी तुमको सर्प भ्रम होणा चाहिये क्योंकि उस समयमें तुम्हारा मान्या हुवा भ्रमका कारण जो अधिष्ठानका विशेषरूप करके अज्ञान सो मौजूद

है इसलिये अधिष्ठानका विशेषरूप करके जो अज्ञान उसको भ्रमका कारण माननाभी असंगत है जो कहो कि अधिष्ठानका सामान्यरूप करके ज्ञान और विशेषरूप करके अज्ञान ये दोनों कारण हैं तो हम पूछे हैं कि ये दोनो ज्ञात हुये कारण है वा ये दोनों अज्ञातही कारण है वा दोनों में एक तो ज्ञात हुवा और द्वितीय अज्ञात कारण है जो कहो कि ये दोनो ज्ञात हुये कारण हैं तो हम कहैं है कि तुमको सर्पभ्रम होणाही नहीं चाहिये क्योंकि तुमही अनुभवसे देखो जहां तुमको सर्पभ्रम होय है तहां रज्जुका सामान्यरूप करके ज्ञानतो प्रतीति होय है और विशेषरूप करके अज्ञान प्रतीति होवेनही इसलिये दोनो ज्ञात हुये कारण है ऐसे मानणा असंगत है जो कहो कि दोनों अज्ञातही कारण हैं तो हम कहैं है कि जिस समयमें तुमको रज्जुका सामान्यरूप करकेभी ज्ञानही है और विशेषरूप करकेभी ज्ञानही है उस समय में भी तुमको भ्रम होणा चाहिये क्योंकि उससमय में रज्जुका सामान्यरूप ज्ञान और विशेष रूप अज्ञान ये दोनोंही अज्ञान है जो कहो कि दोनोंमे एक तो ज्ञात और दूसरा अज्ञात हुये भ्रमके कारण है तो हम तुमको पूछें है कि सामान्य रूप जो ज्ञान सोतो ज्ञात और विशेष रूप करके अज्ञान जो अज्ञात ऐसे भ्रमका कारण कहो हो विशेष रूप करके जो अज्ञान सो ज्ञात और सामान्य रूप जो ज्ञान सो अज्ञात ऐसे भ्रमका कारण कहो हो जो कहो कि प्रथम पक्षमानें है तो हम कहै है कि प्रथमपक्ष वनजायगा क्योंकि वहां सामान्य रूप सो ज्ञात है और विशेष रूप जो अज्ञान सो अज्ञात है परन्तु इसके दृष्टान्तसे जो तुम आत्मामें जगत्को अज्ञान कल्पित वतावो हो सो कैसे होगा क्योकि आत्माका विशेषरूप जो अज्ञान सो अज्ञात नही है क्योंकि मैं मेरेको नित्य मुक्त असङ्ग कूटस्थ नहीं जानूं हूं ऐसी प्रतीति होय है इस लिये दृष्टान्त दार्ष्टान्तका साम्य हुवा नहीं तो आत्मामें जगत् अज्ञान कल्पित मानणा असङ्गतहुवा औरभी देखो कि आत्मामें जगत् अज्ञान कल्पित होय तो जैसे रज्जुका विशेष रूप करके ज्ञान होनेसे सर्प जो है सो सर्वथा निवृत्त होजाय है तैसे आत्माका विशेष ज्ञान होनेसे जगत् निवृत्त हो जाना चाहिये सो होवे नहीं ये अनुभव सिद्ध है जो कहो कि हम अध्यास दो प्रकारके मानै है १ एक तो सोपाधिक अध्यास मानै हैं और दूसरा निरुपाधिक अध्यास मानै है जहां भ्रमकी निवृत्ति होनेसे भी अध्यस्तकी प्रतीति उपाधिके सद्भावपर्यन्त मिटे नहीं उस स्थानमें तो हम सोपाधिक अध्यास कहैं हैं जैसे नदी के तट उपर स्थित जो पुरुष तिसको अपना शरीर जलमें प्रतीत है सो मिथ्या है वहां पुरुषके चित्तमें भ्रम नहीं है आपने तटस्थ शरीरमें ही तो पुरुषकी सत्य वुद्धि है और जलमें प्रतीयमान जो शरीर तिसमें मिथ्या वुद्धि दृढ है तथापि जलमें प्रतीत जो आत्मा शरीर तिसका अधिष्ठान होवे नहीं क्योंकि यहां जो अध्यास है सो सोपाधिक है जो कहो कि यहां उपाधि क्या है तो हम कहै है कि यहां जल है सो उपाधि है सो ये उपाधि जहांतक वनी रहे तहांतक शरीरका अदर्शन होवे नहीं और जहां रज्जुमें सर्पकी प्रतीति है तहां निरुपाधिक अध्यास कहैं है कि सर्पभ्रम निवृत्ति भये सर्पमें मिथ्या वुद्धि होनेसे सर्पकी प्रतीति होवे नहीं क्योंकि यहां कोई उपाधि ऐसी नहीं है कि जिसके रहनेसे भ्रमकी निवृत्ति होनेसेभी सर्प प्रतीति होतीरहे तो आत्मामें जगत्की प्रतीति है यहां सोपाधिक अध्यास है इसलिये आत्माका विशेष रूप ज्ञान होनेसे जगत्की निवृत्ति होवे नहीं तो हम कहैं हैं कि आत्मामें

जगत्को अज्ञान कल्पित सिद्ध करनेके अर्थ रज्जु सर्प दृष्टांत न हुवा और जब दृष्टान्तका और दार्ष्टान्तका साम्य कहने लगे तब सोपाधिक भ्रमको दृष्टान्त कहा है ऐसे उपदेश करनेसे शिष्य को संतोष कैसे हो या ऐसे उपदेश करने वाले गुरुको तो आत्मा अर्थी बुद्धिमान् जो शिष्य है सो भ्रान्त समझैंहै और कुगुरु मानकरके छोड़देते हैं जो कहो कि भ्रम स्थलमें भ्रमको दृष्टान्त कहैं तो क्रम विरुद्ध उपदेश नही है इस लिये सोपाधिक दृष्टान्त भ्रमको कहैं तो कुछभी हानि नहीं है तो हम कहैं हैं कि जहां तीरस्थ पुरुषको जलमें अपने शरीरका भ्रम होय है तहां भ्रमाधिष्ठान जल है उसका ज्ञान पुरुषको समान रूप करकेभी है और विशेष रूप करकेभी है आत्माका तो तुम सामान्य रूप ज्ञान और विशेषरूप अज्ञान मानो हो इस लिये दृष्टान्त और दार्ष्टान्त विषम है जो कहो मरुभूमिका जो जल तिसको दृष्टान्त करेंगे क्योंकि मरुभूमिका सामान्यरूप ज्ञान और विशेष रूप करके अज्ञान इनके होनेसेही जल भ्रम होय है और मरुभूमिका विशेषरूप करके ज्ञान होनेसे जलका भ्रम रहे नहीं परन्तु जलकी प्रतीति होती रहै है तैसे ही आत्माका सामान्य रूप ज्ञान और विशेष रूप अज्ञान इनके होनेसे तो आत्मामें जगत् भ्रम हुवा है और आत्मा विशेष रूप ज्ञान होनेसे जगत् भ्रम निवृत्तहो जाता है परन्तु जगत्की प्रतीति होती रहै ऐसे आत्मामें जगत्का सोपाधिक अध्यास सिद्ध होगया तो हम तुम को पूछें हैं कि आत्मा में जगत् अज्ञानकल्पित है इसलिये तुम दृष्टान्तों करके आत्मामें जगत् को अज्ञानकल्पित सिद्ध करोहो वा तुम अपना मत अन्य शास्त्रों से विलक्षण दिखाने को और अपना मत सिद्ध करने के अर्थ आत्मा में जगत् को अज्ञान कल्पित बतावोहो सो कहो जो कहो कि आत्मा में जगत् अज्ञान कल्पित है इसलिये हम दृष्टान्तों करके जगत् को अज्ञान कल्पित बातवें हैं तो हम पूछें हैं कि आत्मा में अज्ञान जो है सो कल्पित है वा नहीं तो तुम यही कहोगे कि कल्पित ही है तो हम तुम को पूछैं हैं कि किससमयमें कल्पित हुवा है तो तुम ये कहोगे कि अनादि क- ल्पित है तो तुमहीं कुछ बुद्धि का विचार करो कि जो वस्तु अनादि होय सो कल्पित कैसे होसके इसलिये जगत् अज्ञानकल्पित नहीं है क्योंकि तुम जगत् का उपादान कारण मानों हो परन्तु जो जगत् का उपादान होय तो आत्मज्ञान होनेसे तुम को जगत् की प्रतीति नहीं होनी चाहिये क्योंकि उपादानकारणके नाशहोनेसे कार्य रहे नहीं ये सर्व के अनुभव सिद्ध है और जो कहो कि सोपाधिक अध्यास होय तहां उपादान के नाश होने सेभी जबतक उपाधि की स्थिति होवे तब तक कार्यप्रतीति रहै है तहां मरु जल का दृष्टान्त कहा है तो हम तुम को पूछैं हैं यहां उपाधि है सो कहो जो कहो कि यहां अन्तः करण जो है सो उपाधि है तो हम कहैं हैं कि अन्तःकरण जो है सो तो जगत् के अन्त- र्गत है इसलिये ये तो उपाधि होसके नहीं इसलिये जगत् से भिन्न कोई उपाधि कहो सोजगत् से भिन्न कोई उपाधि कह सकोगे नहीं इसीलिये तुम लोग अज्ञान अर्थात् अविद्या के कलंक से रहित हो सको नहीं जो कहो कि हमारे अद्वैत मतके सिद्ध करनेवाले आ- चार्य्य लोग जिन में शिरोमणि शंकर स्वामीने अज्ञान कल्पित मान कर जगत् की निवृत्ति के वास्ते अज्ञान को मिथ्या ठहरायकर "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञान से अविद्याको दूर कर ब्रह्मरूप हो गये और जो उनकी आज्ञा को मानेगा सो भी ब्रह्मरूप ज्ञानको प्राप्त

होकर जन्म मरणसे मिट जायगा अहो! अद्वैतवादियो! यह तुम्हारा कहना कैसा है कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कहने लगा कि मेरे बापने घी (घृत) बहुत खायाथा नहीं मानोंतो मेरा हाथ सूंघ कर देखलो ऐसा ही मसले वा दृष्टान्तसे तुम्हारे शंकरस्वामीको ब्रह्म ज्ञान होने से ब्रह्म रूप होगये अजी कुछ नेत्र मीचकर हृदय कमल ऊपर वीतराग वचन को स्मरण करके विचार तो करो कि शंकर दिग्विजयमें शंकरस्वामीका हाल जो आनन्ददगिरीने लिखा है उसकोतो विचार दृष्टिसे देखो तो तुमको आप ही मालूम हो जायगा कि इस स्थूल शरीरमें ब्रह्मज्ञान कहने मात्र ही होगा नतु कारण शरीरे तो जब कारण शरीरमे ही नहीं तो आत्मामें ब्रह्मज्ञान होना असम्भव ही है जो तुम कहो कि आनन्दगिरि महाराज ने शंकर दिग्विजयमे क्या बात लिखी है सो तुम कहो तो अब हम तुम को तुम्हारे शंकरस्वामी का हाल सुनाते हैं सो तुम एकाग्र चित्त होकर पक्षपात छोड़कर नेत्रों को मीच कर श्रवण करो—

जब शंकरस्वामी ने मण्डन मिश्रको जीता तब मण्डन मिश्रने पतिव्रत लिया उसकी स्त्री जिसका नाम सरसवानीथा सो अपने पतिको पतिव्रत लिया देखकर आप ब्रह्म लोकको चली उसको जाती देखकर शंकरस्वामी जीवन दुर्गा मंत्रकरके दिग्वन्दन करते हुवे तिसके पीछे हे सरसवाणी! तू ब्रह्म शक्ति है ब्रह्मके अंशभूत मंडनमिश्रकी भार्य्याहै उपाधि करके सर्वको फलित है तिस कारणसे मेरे साथ प्रसंगकरके फिर तुमको जाना योग्यहै ऐसे शंकरस्वामीने कहा पीछे सरसवाणी शंकरस्वामीके प्रति कहती हुई कि पतिके सन्याससे प्रथमही विधवा होनेके भयसे मैंने पृथ्वी त्यागीहै तिसकारणसे मैं फिर पृथ्वीका स्पर्शन न करूंगी, हे! पति तू तो पृथ्वीमें स्थितहै कैसे तेरे प्रसंगके ताईं एक विषय स्थिति होवे ऐसे शंकरस्वामीके प्रति कहती हुई, फिर शंकरस्वामी कहते भये कि हे माता तूभी भूमिकाके ऊपर छः हाथ प्रमाण ऊँची आकाश में रहो मेरे साथ सर्व वचनोंका प्रपंच संचार करके पीछेसे जावो इतने आदरपर होकर शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषय वेद, इतिहास, पुराणों विषय समय प्रसंग करके पीछे शंकरके तिरस्कारके ताईं जिसमें दुःखमें प्रवेश हैं ऐसा जो काम शास्त्र तिसके विषय नायका और नायक इनके भेद विस्तारसे सरसवाणी शंकरको पूछे तब तो शंकर स्वामी इस विषयको जानते नहींथे इसलिये शंकर स्वामी उत्तर न देसके और मौन होतेभये तिस पीछे सरसवाणी शंकर स्वामीको सत्य करके कहती हुई कि तुम्हारे जानने में यह शास्त्र नहीं आया निश्चय करके तिस शास्त्रकोमेंहीं जानतीहूं कालका जानकर शंकरस्वामी सरसवाणीको कहते हुये हे माता! तुम इस जगह छः महीने रहो पीछे मे सर्व अर्थोंका निश्चय करके उत्तर कहूंगा ऐसा कहकर शंकर स्वामी आग्रह पूर्वक सरसवाणीको उसी आकाशमंडलमें स्थापन करके सर्व शिष्येंको यथास्थाने करके चार शिष्योके सहित १ हस्तामलक २ यवपाद ३ विधीवद् ४ आनन्दगिरि ये चार प्रधान शिष्योंके साथ नगरसे पश्चिम दिशि नामगढ़में गये सरस वाणीके प्रश्नोंके उत्तर जानणेके लिये, उस नगरका राजा मरगयाथा उसका शरीर चितामें जलानेके वास्ते रक्खाथा उसको देख शङ्करस्वामीने अपना शरीर उस नगरके एक पर्वतकी गुफामें

स्थापन करके शिष्योंको कहा कि तुम इस शरीरकी रक्षा करना शङ्करस्वामी परकाय प्रवेश विद्याकरके लिङ्गशरीर संयुक्त अभिमानसहित राजाके शरीरमें ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करा तब तो राजा जी उठा सो तो उपचार करा उत्सवसे नगरमें ले आये राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध होगई तब तो शङ्करस्वामीको लोगोंने राज गद्दीपर बिठलाया पश्चात् सिंहासनसे उठकर बड़ी रानीके घरमें गये तहां जाकर उस रानीसे काम क्रीड़ा करने लगे उस वक्त शङ्करस्वामी कुशलतासे उस रानीको आलिङ्गन करनेसे उत्पन्न हुवा जो सुख सम्भोग ता करके शंकरस्वामीने उस रानीके मुखके साथ तो अपना मुख जोड़ा अर्थात् एक शरीर गत होगये दोनों जने बहुत आलिंगन करनेमें तत्पर हुये तो शङ्करस्वामी रानीके कुच स्थनोंपर किये हाथों करके स्पर्श करते हुये सुखमें मग्न हो गये तब रानी उनकी अलाप चतुराई देख कर चित्तमें विचार करने लगी कि देह मात्र मेरा भर्ता है परन्तु इसका जीव मेरा भर्ता नहीं ये तो कोई सर्वज्ञ है ऐसा विचार करके रानीने अपने नौकरोंको चारों दिशा में भेजा और कह दिया कि जो पर्वत और गुफामें बारह योजनके बीचमें शरीर जीव रहित होवे सो सर्व जलादो शङ्कर स्वामी तो विषयमें मूर्छित होगये अर्थात् स्त्रीके भोग सुखमें लीन हो गये और इधर रानीके नौकरोंने चारों शिष्योंको रक्षक देखकर शङ्करस्वामीके शरीरको चितामें रखना आरम्भ किया और उनके शरीरको अग्नि दाह करके दाह करने लगे तब तो शंकरस्वामीकेचारों शिष्य उस नगरमें गये जहां शङ्करस्वामीथे उनको विषयमे वन्ध बुद्धि देख कर शङ्कर राजाके आगे नाटक करने लगे शंकरस्वामीको परोक्त करके उपदेशकरने लगे सो उपदेश यह है (१) यत्सत्य मुख्य शब्दार्थानुकूलं, तत्वमसि २ राजन् (२) यद्येतत्वं विदितं नृषु भावंतत्वमसि राजन् (३) विश्वोत्पत्यादि विधि हेतु तत्त्वं तत्वमसि २ राजन् (४) सर्वं चिदात्मकं सर्वं मद्वैतं तत्वमसि २ राजन् (५) परतार्किकैरीश्वरसर्वं हितुस्तत्त्वमसि २ राजन् (६) वंदिं यद्वैतां गादिभिर्ब्रह्म सर्वस्थं, तत्वमसि २ राजन् (७) यज्जैमिनिगौतम खिल कर्म तत्त्वमसि २ राजन् (८) यत्पाणिनिः प्रादात् शब्द स्वरूपं तत्त्व मसि राजन् (९) यत्सांख्यानां हेतुभूतं तत्त्वमसि २ राजन् (१०) अष्टांगयोगेनअनन्त रूपं तत्व मसि २ राजन् (११) सत्यं ज्ञान मनंतं ब्रह्म तत्व मसि २ राजन् (१२) नह्येतदहश्यप्रपंच तत्वमसि राजन् (१३) यद्ब्रह्मणो ब्रह्मविषा वीश्वरा ह्यभवन्, तत्त्वमसि राजन् (१४) त्वद्रूप मेव मस्माभिर्विदितं राजन् तव पूर्वं यत्याश्रमस्थम् ॥ इन परोक्तियों करके राजा प्रतिबोधित हुवा सर्वके सन्मुख तिस राजाकी देहसे निकल कर जब गये तब तो उस पर्वतकी कंदरामें अपने शरीरको न प्राप्त हुवे तब तो अपने शरीरको चितामें देखा, देख कर कपाल मध्यमें होकर प्रवेश करा; तब शरीरके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित हो रहीथी, तब तो निकलना दुष्कर हो गया फेर शंकर स्वामीने लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तब लक्ष्मी नृसिंहने शङ्कर स्वामीको जीता अग्निमेसे बाहिर निकाला । ये वृत्तान्त शङ्करदिग्विजयके अट्ठावनवें प्रकरणमें आनन्दगिरिने लिखा है उसको देख लेना अब तुमहीं विचार करके कहो कि सरसवाणीके प्रश्नोका उत्तर नहीं आया तो शङ्करस्वामीको सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान् मानेगा और राजाकी रानीसे विषय सेवन किया तब कामी भी हो चुके और जब चितामेसे

१ अब जो नीचे लिखते है सो शरीरसे संबध नही किंतु लिंग शरीर १७ प्रकृतिके अभिमानी शंकर स्वामीका वर्णन है।

न निकल सके तब असमर्थ हो करके नृसिंहजीकी स्तुतिकी तब निकले और जब शिष्योंने तत्वमसिका उपदेश दिया जब उस उपदेशको सुनकर पिछली समुदित आई तो अब देखो और तुमही विचार करो कि तुम्हारे मुख्य शिरोमणि आचार्य्य शंकरस्वामीनेही स्थूल शरीर छोड़नेसे लिङ्ग शरीरको राजाके शरीरमे प्रवेश किया तो पिछले शरीरकी स्मृति न रही तो फिर वे ब्रह्म ज्ञान पायके ब्रह्म हो गये ये तुम्हारा कहना असिद्ध हो गया जब तुम्हारे शङ्कर स्वामीकोही ब्रह्म ज्ञानकी प्राप्ति लिङ्ग शरीरमे न हुई तो आत्मामें कहांसे होगी तो जब उनकोही न हुई तो अब तुम्हारेको क्योंकर ब्रह्मकी प्राप्ति होगी अब देखो विचार करो कि न तो तुम्हारी अज्ञान कल्पित अविद्या सिद्ध हुई न तुम्हारा कल्पा हुवा जगत् मिथ्या ठहरा न तुम्हारा अद्वैत सिद्ध हुवा न तुम्हारे सिद्धान्तसे ब्रह्मज्ञान होना सिद्ध हुवा अब जो तुम्हारेको आत्मार्थकी इच्छा है तो शुद्ध मार्गके उपदेश देनेवालेके चरणोंकी सेवा करो ॥ अलम् विस्तरेण ॥

इति श्रीजैनधर्माचार्य मुनिचिदानंद स्वामिविरचिते स्याद्वादानुभव रत्नाकरे द्वितीय प्रश्नोत्तरअंतर्गत वेदांतमत निर्णय समाप्तम् ॥

अथ दयानन्द मत निर्णय।

अब वेदान्त मतकी समीक्षा करनेके अनन्तर वर्तमान कालमें जो आर्यसमाज नवीन प्रवृत्त हुआ है उसका वर्णन किया जाता है, इस मतका मुख्य आचार्य्य दयानन्द सरस्वती नाम करके हुवा जिस ने अपने प्रयोजनके लिये वेद और अन्यान्य शास्त्रोंको एक देश मानकर उनका नवीन अर्थ बनाकर भ्रमजालमें फंसानेका उद्योग किया है । इसमतके मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य भूमिका आदि हैं जिनमें अपनेको शुद्धपरूपक बतलाते हुए अनेक गप्पें लिखी है इस लिये उसके स्वमन्तव्य अर्थात् अपनी इच्छानुसार जिन २ वस्तुओंको मानता है उनका निराकरण उसीकी मानी हुई वस्तुवोंसे भव्य जीवोंके कल्याणकी इच्छासे यहां करता हूँ कि ये भ्रमजालमें फँसकर संसारमें न डुलें ॥

अब सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि प्रथम "दयानन्दसरस्वती"ने जो ईश्वर माना है वहीं नहीं बनता क्योंकि प्रथम जिसरीतिसे ईश्वर उसने माना है सो लिखते हैं—कि प्रथम "ईश्वर" कि जिसके, ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है; जिसके गुण, कर्म, स्वभाव, पवित्र हैं; जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सर्व सृष्टिका कर्ता; धर्ता, हर्ता, सर्व जीवोंको कर्मानुसार सत्य न्यायसे फल दाता आदि लक्षण युक्त है उसीको परमेश्वर मानता हूँ ॥

अब हम कहे हैं कि सच्चिदानन्दादि,लक्षण युक्त परमेश्वर को मानना ठीक है यह तो कहीं जैनियोंका शास्त्र देखकर उड़ा लिया है क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि कवि तस्कर अर्थात् चोर होता है अब देखो कि तुम गुण कर्म, स्वभाव यह भी मानते हो तो हम तुमको पूछते हैं

कि तुम्हारे जो वेद मंत्र हैं उनमें तो ब्रह्म परमात्माको निर्गुण कहा है सो मंत्र यह है कि जो सत्यार्थप्रकाशमें जो कि पहले अनुमान सं० १९३२ अथवा सन् १८७५ ई० में बनाया था उसके सप्तम समुल्लासके २२६ पत्रकी १३ वीं पंक्तिमें लिखा है मंत्र- एको देवः सर्व भूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताकेवलो निर्गुणश्च ॥ अब देखो उस तुम्हारे मंत्रमें तो उस परमात्माको निर्गुण कहा है और तुमने उसको गुणवाला मान लिया तो हम जानते है कि भांगका नशा कुछ जादा हो गया दीखे, इसलिये इसका अर्थ यथार्थ न समझा दूसरा जो कर्म मानते हो सो भी ईश्वरमें नहीं बनता है क्योंकि ईश्वर जो कृतकृत्य है अर्थात् कोई कृत्य करनेको बाकी नहीं अर्थात् आनन्द रूप है वही उसका स्वभाव है सर्वज्ञ निराकार ये भी ठीक है परन्तु सर्वव्यापक किस रीतिसे मानते हो सो कहो क्या शरीर वाला मानकर अथवा ज्ञानसे मानते हो २ जो कहो कि शरीर वाला मानकर कहते है तब तो तुम्हारा निराकार मानना वांझके पुत्र समान हो गया जो कहो कि ज्ञान करके मानते है तो तुमने जैनियोकाही शरण लिया दीखे है और देखो जो तुम कहते हो कि सृष्टिका कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता सर्व जीवोंको कर्मानुसार सत्य न्याय से फल दाता ऐसा विशेषण देनेसे उलटा कलंक लगाते हो क्योंकि पहले तुमने उस ईश्वरको मंत्रमें निर्गुण कहा तो कर्त्तादि न्यायसे फल दाता क्योंकर कहना बनेगा जो इन चीजोंका कर्त्ता आदिक उसमें गुण है तो फिर जिस ईश्वरको निर्गुण कहा तो परस्पर उस कर्त्तामें वद तो व्याघात दूषण हुवा अर्थात् " मम मुखे जिह्वा नास्ति" अब हम तुमसे पूछते हैं कि ईश्वरको कर्ता मानकर उसी ईश्वरको कलंक लगाना है इस्से तुम्हारा प्रयोजन क्या है तो तुम यही कहोगे कि नाना प्रकारकी विचित्र रचना अचरजरूप हैं इसलिये जगत् कार्य ठहरा इस अनुमानसे हम ईश्वरको कर्त्ता सिद्ध करते हैं तो हम तुमको पूछते हैं कि कारण कितने मानते हो जो कहो कि उपादान साधारण और निमित्त ये तीन कारण मानें हैं तो अब देखो यहां विचार करो कि उपादान कारण तो प्रकृतिको मानोंगे और साधारण कारण जो कि क्रिया आदिक उसको मानोगे निमित्तमें ईश्वरकी इच्छा मानोगे तो अब हम तुम्हारेको पूछें हैं कि सबसे पहले जो संयोगकी क्रिया उसमें उपादान तो प्रकृति हुई निमित्त ईश्वर हुवा तो इस जगह असाधारण कारण कोई नहीं दीखता है तो जब असाधारण कारण माननाही असङ्गत हुवा तो तुम्हारे माने हुवे तीन कारणोंके विना कार्य नही होता है यह कहनाभी असङ्गत हुवा इस लिये शाश्वत अनादि मानना ठीकहै अब उस ईश्वरको अजन्मा निराकार इस जगत्से भिन्न मोक्ष भये हुये जीवसे न्यारा ईश्वर माननेमें तुम्हारा प्रमाण क्या है? मुक्त हुवे जीवसे भिन्न ईश्वरका होना किसी युक्तिसे सिद्ध नहीं कर सकते और न कभी हमको उसे प्रत्यक्ष दिखा सकते होतो हम कैसे मानलें कि मोक्ष हुए जीवोंसे अतिरिक्त कोई ईश्वर है। जो तुम कहो कि ईश्वर घट पटकी तरह भौतिक पदार्थ नहीं है जिसको हम तुमको प्रत्यक्ष दिखलावें क्योंकि नेत्रादिक इन्द्रियोंसे तो उसका प्रत्यक्ष नहीं होता परन्तु ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होताहै अथवा कर्तृत्वादि गुणोंसे ईश्वरका ज्ञान हमको हुवा है क्योंकि स्वाभाविक गुणोंके प्रत्यक्षसे गुणोंकी प्रत्यक्ष युक्ति सिद्धहै अब हम तुमको पूछते हैं कि किन गुणोंके प्रत्यक्ष होनेसे ईश्वरके गुण

प्रत्यक्ष होते हैं? जो तुम कहो कि नाना प्रकारकी विचित्र रचना देखकर हम ईश्वरको कर्त्ता मानते है. तो हम तुमको पूछते हैं कि पहलेही हमने तुम्हारे ईश्वरको तुम्हारी पुस्तकके मंत्रसेही निर्गुण ठहराया है तो फिर गुणोसे गुण प्रगट होतहे ये कहना तो तुम्हारा असम्भवही है। जो तुम ईश्वरको सत् चित् आनन्दरूप मानते हो तब सृष्टिके रचनमें वा पालन करनेमें वा प्रलय करनेमें जीवोंके कर्मोंके फल देनेमें इत्यादिक कामोमें आनन्दके वदले महादुःखरूप दिनरात अग्र सोचमेंही बना रहेगा जो तुम कहो कि वो सर्वशक्तिमान् है तो जो अन ईश्वरवादी अर्थात् सृष्टिका कर्त्ता ईश्वरको न माननेवालोके साथ झगड़ा भी करता होगा? जो तुम कहो कि अनुमान उपमान आगमसे अर्थात् शब्द प्रमाणसे सिद्ध करेंगे तो हम कहै हैं कि जबतक प्रत्यक्ष प्रमाण न होगा तो अनुमान वा उपमानभी नहीं बनेंगा क्योकि देखो जिस पुरुषने अग्निसे धुआंनिकलता प्रत्यक्ष नहीं देखा है उस पुरुषको धूम देखनेसे अग्निका अनुमान कदापि न होगा ऐसेही जिस पुरुषने गऊका स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं देखा उसपुरुषको जंगलमें जानेसे गवयको देखकर कदापि उपमान प्रमाण नहीं वनेगा क्योंकि पहिले स्वरूपको उसने जाना नहीं और जो आगमोंसे सिद्ध करोगे अर्थात् वेदोंसे सिद्ध करोगे तो वेदभी उसही ईश्वरके किये हुये मानतेहो तो जब तुम्हारा ईश्वर सिद्ध हो चुकेगा जिसके बाद् उसके कहे हुये वचन अर्थात् वेदका प्रमाण मान्या जायगा क्योंकि खुड़ा अर्थात् भीत नाम दीवार होगी तो चित्राम रचा जायगा जहां दीवार नहीं तहां चित्रामका संभव कहां? जो तुम कहो कि पृथ्वी आदिकका बनाने वाला कोई ईश्वरहै तो अब हम तुमको पूछते हैं कि वह जो सृष्टिका रचने वाला ईश्वर है सो शरीर वाला है अथवा अशरीर वालाहै जो वह शरीर वाला है तो क्या हमारा सा शरीर विशिष्ट वा पिशाचोंका सा अदृश्य शरीर विशिष्ट है? अब देखिये प्रथम पक्षको तो प्रत्यक्ष बाधा है क्योंकि प्रत्यक्षमें तो ईश्वर दीखता नहीं और कार्य उसका बनाया हुवा तुम प्रत्यक्ष दिखाते हो क्योंकि घास, वृक्ष, पुरुष, अभ्रा, धनुष, कार्य दीखते हैं क्योंकि प्रमेय होनेसे यह तो तुम्हारा अनेकान्त हेतु हुवा। दूसरे पक्षमें अशरीरी मानोंगे तो उस ईश्वरका कुछ माहात्म्य विशेष कारण है अथवा हमारे लोगोंके कर्मोंको वैगुण्य अर्थात् हमारे शुभ अशुभ कर्मोंसे नहीं दीखता है तो प्रथम पक्षसे तो तुमको सौगंध खानेसे होगा क्योंकि प्रमाणका अभाव है दूसरा इतरेतराश्रय अर्थात् अन्योन्याश्रय दोषभी होता है क्योंकि उसका विशेष माहात्म्य जब सिद्ध होगा जब उसका अदृश्यपन सिद्ध होगा जो पेश्तर अदृश्यत्व सिद्ध हो जाय उसके बाद महिमा सिद्ध होगा और द्वितीय पक्ष कि जो हमारे कर्मोंके शुभ अशुभसे विचार करे तो सन्देह नहीं दूर होगा क्योंकि वांझाके पुत्रके समान यह सत्य है या असत्य या हमारे कर्मोंका दूषणहै या उसका अदृश्यत्वहै इसमेंभी प्रमाण कोई नहीं और जो तुमने कहा कि निराकार है तो हेतु विरुद्ध है क्योंकि घटादि कार्य शरीरवालेके किये हुये दीखें हैं और अशरीरसे कार्यमें प्रवृत्ति होना मुशकिल है आकाशकी तरह जैसे आकाश अरूपी वस्तु कोई कार्य्य नहीं कर सकती इस लिये तुम्हारा शरीर अशरीर दोनो पदोंमें युक्ति सिद्ध न हुवी औरभी देखो वृक्ष विजली और बद्दल धनुषादि उत्पन्न होना विनाश होना दीखता है और उसका कर्त्ता कोई नहीं हुवा। अब

एक बात हम तुमसे और पूछते हैं कि जगत्‌की रचना करनेमें एक ईश्वर है या कई हैं जो तुम कहो कि एकही ईश्वर है बहुत होनेसे एक कार्यमें प्रवृत्त होनेसे असमंजस हो जायगा क्योंकि किसीको कैसेही समझमें आवेगा और किसीको कैसेही तो यह भी तुम्हारा कहना अयुक्त है क्योंकि देखो कि अनेक किड़ी अपने बिलादिकको मिलकर बनातीहै अथवा कई कारीगर मिलकर मकानको बनातेहैं अथवा अनेक मक्खी मधुछत्ताको मिलकर रखती हैं तो उसमें तो कोई असमंजस नहीं दिखलाई देता, खैर! अब तुम एकही ईश्वरको मानो तो जो तुम्हारी ईश्वरके ऊपर ऐसीही प्रीति है तो तुम्हारे जुलाहे धुना आदिक इन सबोंके किये हुवे घटादि कार्य हैं इनकोंभी क्यों नहीं ईश्वर कृत मान लो? जो तुम कहो कि इनका तो कर्ता प्रत्यक्ष देखनेमें आता है तो क्योंकर ईश्वरको कर्त्ता मानलें तो हम जानै हैं कि जो कार्य तुम्हारे देखनेमें नहीं आते उनको ईश्वरके किये मानते हो जब तो तुम्हारी बड़ी चतुरता है क्योंकि जैसे कोई एक धनवाला था सो कृपणपनसे अर्थात् मूँजी होनेसे अपने जो पुत्र भाई स्त्री अपने स्वजनोंको धनके खर्च ही जानेके भयसे शहरको छोड़कर जंगलमें जावसा अब हम तुमसे एकबात और पूछते हैं कि वो जो सर्व व्यापक है सो भी नहीं बनता है शरीर आत्मासे व्यापक है अथवा ज्ञान आत्मासे? जो पहला पक्ष अङ्गीकार करोगे तो भी जगत्‌में व्यापक होनेसे और पदार्थोंको अवकाश नाम जगह ही नहीं मिलेगी, दूसरे पक्षमें हम भी ऐसा मानते हैं कि ज्ञान अतिशय करके ज्ञानात्मा परम पुरुष तीन जगत्‌की क्रीडा अर्थात् रचनाको देखता हुवा जो तुम ऐसा अंगीकार करोगे तब तो ठीक है परन्तु वेदसे विरुद्ध होगा क्योंकि तुम्हारे यह ऐसी श्रुति कही है कि "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतःपादित्यादि" ॥ ऐसा कहैं हैं जो तुम कहो कि नियत देशपर स्थित हो करके अन्य देशकी यथावत् पदार्थोंकी रचना करे ऐसा नहीं हो सकेगा तो हमे तुमको पूछै है कि जगत्‌को बनाया है तो खित्यादिवत् देह व्यापार करके बनाया है अथवा संकल्प मात्र करके बनाया है? पहले पक्षमें तो पहाड़ आदिक बनानेमें तो बहुत कालक्षेप हुवा होगा और उस ईश्वरको बड़ी मिहनत और मजदूरी करके बनाना पड़ा होगा जो तुम कहो कि संकल्प मात्रसेही जगत्‌को बना दिया है तब तो एक देश बैठा हुवाही बनाता तो कोई दूषण नहीं था अब देखो जो सामान्य देवता आदिकहैं सो संकल्प मात्रसेही सर्व कार्य कर लेते हैं अब एक और भी सुनो कि जो उस ईश्वरको सर्व व्यापक मानोंगे तो अशुचि निरंतर उसका वासभी होगा नरकादिको मेंभी उसकी रोज़ सजा मिलती होगी अर्थात् परमाधर्मी मारते होंगे तब तो कोईभी ऐसा क्षण नहीं कि उसको सिवाय दुःखके सुख मिले जो तुम ऐसा कहो कि तुम्हारेभी ज्ञानात्मा तीन जगत्‌में प्राप्त होता है तब अशुचिका आस्वादन तुम्हारेभी ईश्वरको प्राप्त हुवा और नरकादि दुःख पानेका प्रसंग हुवा। अब हम तुमको कहैं है कि तुम्हारेको उत्तर देना तो न आया परन्तु गुलालकी जगह राख तो उड़ाने लगे क्योंकि देखो हमारे यहाँ तो स्वस्थानपर ही ज्ञान करके विषयको देखता हुवा न वहां जाय करके जब तुम्हारा अशुचि हमारे माने ईश्वरको देना क्यों हुवा अर्थात् आपत्ति न हुई चेत् यदि तुम लोगोंको अशुचिज्ञान मानसेही रसका आस्वाद होता होगा तो जो ऐसा है तो दूध, चीनी, रोटी खाना पीना चिन्तवनं

करनेहीसे तृप्ति हो जायगी फिर उसका यत्न करना निष्फल होगा इसीलिये ज्ञानात्मा सर्वव्यापक सिद्ध हुवा कदाचित् तुम कहोगे कि वो सर्व शक्तिमान् है चराचरको रचता है तो जिस समयमे उसने संसार रचाया उस समयमें उसको ज्ञान न हुवा कि इनको मे रचूंगा और यह लोग मेरे शत्रु हो जावेगे पहले रचदिया और पीछे उनको बुरा कहना इसलिये जो उनको नही मानने वाले है उनको पेश्तरही क्यो रचा और जो उसने रचा तो सर्वज्ञ नहीं हुवा अव हम तुमसे यह और पूछते है कि उस ईश्वरने जगत्को स्वाधीन रचा है या करुणा करके रचा है तो जब स्वाधीन पनेसे रचा है जव तो जीवोंको सुख दुःखका होनाही असंभव है और जो उनको सुख दुःख होता है तो विचारोंको क्यों नाहक् रच दिया जो तुम कहो कि अगले जन्मके किये हुये शुभ अशुभ कर्मोंके होनेहीसे उनको दुःख सुख ईश्वर देता है जो ऐसा है तो स्वाधीन सृष्टि रचीथी इस कहनेको जलांजलि देनी पड़ेगी जैसे कि किसीने कहा कि गधाके सींग हैं ऐसे तुम्हारा कहना स्वाधीन हुवा इसलिये कर्मजन्यसेंही अर्थात् कर्मोंसेही इस जगत्की नाना प्रकारकी रचना माननी ठीक है ईश्वरकी कल्पना करना निष्फलही है क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष विचार करते हैं तो प्राणियोंको अर्थात् जीवोंको धर्म अधर्मसेही इस जगत्में दुःख सुख नाना प्रकारके प्राप्त होते हैं सो इन शुभ अशुभ कर्मोंहीसे सृष्टि होती है. कर्मोंकी अपेक्षा करके जो ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानोगे तो कर्महीको ईश्वर मानलो ॥ अव दूसरे पक्षमें जो करुणा नाम दयासे जगत् बनायाथा तो वह दया क्या ठहरी वह तो बिलकुल निर्दया प्रतीति होती है क्योंकि सर्प, बिच्छू, मच्छर, डांस, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, अनेक जातिके पशु आदिक अथवा वृक्ष आदिकोंमें कांटे वाले वृक्ष अथवा धतूरे आदिक इत्यादि अनेक प्रकारके दुःख देनेवाली चीज़ोंको क्यों उत्पन्न कीथी?जिसके जीमें दया होती है वह सबको सुख देनेके सिवाय दुःखकी जड़ मात्रकोभी उखाड़कर फेंक देता है तो अब देखो जिसको तुम दयालु कहते हो उन्होंने कैसी २ अनेक जीवोंको दुःख देनेवाली चीजोंको पैदा किया है तो इससे तुम्हारा दयालु ईश्वर न ठहरा। अब हम तुमसे यह और पूछते हैं कि जगत् रचनेका ईश्वर मे स्वभाव है अथवा अस्वभाव है, जो प्रथमपक्ष अङ्गीकार करोगे तो जगत्को बनाते २ एक क्षण भी उसको सुभीता न मिलेगा और जो वह विश्राम लेगा तो इसके स्वभाव की हानि होगी दूसरा नानाप्रकारके जो पदार्थ रचनेको मानते हो सो भी नहीं बनता है क्योकि जब वह पहाड़ वा वृक्ष आदिक अथवा सड़क आदिको बनाना जिस काम में लगेगा उसी काम में स्वभाव है और जब दूसरे काम मे लगेगा तो उसके स्वभाव की हानि होगी दूसरा अस्वभाव मानोगे तो जगत्को रचता है यह रचने का स्वभाव ही उस मे नहीं है क्योंकि जैसे आकाश कुछ नहीं है औरभी देखो कि जो उसमें रचने की शक्ति है सो नित्य है वा अनित्य है जो कहो कि नित्य है तो जिस ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है उस ईश्वर से प्रलय भी नहीं होगा क्योकि उसकी शक्ति अनित्य हो जाय गी नित्य नहीं रहेगी जो कहो कि प्रलय करनेवाले ईश्वरको जुदा मान लेंगे तो हम तुमको कहे हैं कि एक तो रचनेवाला दूसरा प्रलय करनेवाला उन दोनोंके आपस में ऐसा झगड़ा होगा जैसा १९४२ के वा १९४३ के साल में झगड़ा हुवा था सो वे तो

लड़ते ही रहे और हिन्दुओंका रावण और मुसलमानोंके ताजिये अजमेर में रक्खे रहे इस कहने से हमारा अभिप्राय यह है कि एक तो तुम्हारा ईश्वर सृष्टिको उत्पन्न करने वाला दूसरा उसके प्रलय करनेवाला आपस में लड़ते थे और लड़ते रहे और अगाड़ी लड़ेंगे और यह जगत् जैसा है तैसाही बना रहेगा इसलिये जगत् जोहै सो इसका कर्त्ता कोई सिद्ध नहीं हुवा कदाचित् दूसरा पक्ष अनित्य मानोंगे तो इधर तो तुम्हारा ईश्वर सृष्टि रचेगा उधर से शक्ति अनित्य होने से मिटता चला जायगा जैसे चातुरमास में बालक जो अज्ञानी भाड़, क़िला, मकान, लाडू, पेड़े बालूके बनाते हैं इधर फूटते चले जाते हैं इसीतरह से बालकों की तरह तुम्हारा ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता अनित्य शक्तिवाला ठहरा तो संसारकी रचना वा प्रलय कुछ भी न बनी अब जो कदाचित् तुम ऐसा कहो कि सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्ता ये तीन काम तीन गुणोंसे होते हैं रजोगुणसे सृष्टिको रचता है और सतोगुणसे सृष्टिका पालन करता है और तमोगुणसे सृष्टिका प्रलय करता है इन तीन गुणोंकी तीन अवस्था होनेसे अवस्थावालेमेंभी भेद हो जाता है इसलिये एकही ईश्वरमें तीनों वातें बन सकती हैं तो हम तुमसे पूछते हैं कि रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण, ये तीनोंगुण तो प्रकृतिके हैं और ईश्वर प्रकृतिसे भिन्न है और पवित्र मानते हो तो यह तुम्हारा कहना असङ्गत हो जायगा क्यों नाहक ईश्वरमें रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण, मानते हो, जैसे और जीव रजोगुण, सतोगुण, तमोगुणमें फँसे हुये जन्म मरण करते हैं तैसे तुम्हारा ईश्वरभी जन्म मरण कर्ता होगा; किञ्चित् औरभी तुमसे हम कहते है कि जो विवेकी पुरुष निष्प्रयोजन प्रवृत्त नहीं होते हैं किञ्चित् प्रयोजनसे प्रवृत्त होते हैं तो तुम्हारा ईश्वर सृष्टिके रचनेमें प्रवृत्त हुवा तो स्वार्थ वा करुणासे जगत्को बनाया जो कहो स्वार्थसे बनाया तो वह ईश्वर तो कृतकृत्य है अर्थात् कोई काम करनेको नहीं है क्योंकि परिपूर्ण सच्चिदानन्दरूप है जो कहो कि करुणासे सृष्टिको बनाया तो उस ईश्वरके करुणा नहीं ठहरती है दूसरेको दुःख देनेकी इच्छा जिसके है उसको करुणा किस तरह बने है क्योंकि सबसे पहले सृष्टि नहीं रची गईथी तिसके पहले जो जीवथे उनके सृष्टिके पहिले इन्द्रिय शरीर विषय आदिकके न होनेसे फिर उनको सृष्टिमें रचकर दुःखमें डालकर फिर उनको दुःखित देखता है और फिर तुम कहते हो कि वो ईश्वर दयालु है और भी देखोकि करुणा सिद्धि होगी तो सृष्टि सिद्धि होगी और सृष्टि सिद्धि होगी तो करुणा सिद्ध होगी इतरेतराश्रयदूषण होगा इसलिये जगत्का कर्ता ईश्वर कोई युक्तिसे सिद्ध न हुवा किन्तु कलंकित ईश्वर ठहराकि तिसके वाक्यको विडंबना अर्थात् शेखसिल्ली कीसी वातें उस ईश्वरकी होतीं भई इसलिये सृष्टि अनादि सिद्ध हुई न तु ईश्वरकर्ता ॥ दिग इति अलम् विस्तरेण ॥ १ ॥

चारों वेदों (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानताहूं वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनका प्रमाण होनेसे किसी अन्य ग्रन्थकी अपेक्षा नहीं जैसे सूर्यका प्रदीप अपने स्वरूपका स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादिकाभी प्रकाशक होता है वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदोंके ब्राह्मण, छः अङ्ग छः उपाङ्ग चार उपवेद और ११२१ वेदोंकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियोंके

बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदोंके अनुकूल होनेसे प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करताहूं ॥ अब हम तुमसे ये बात पूछते हैं कि चारोंवेदोंके ब्राह्मण, छः अङ्ग छः उपाङ्ग चार उपवेद और ११२७ वेदोंकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महाऋषियोंके बनाये ग्रन्थ हे उनको वेदोंके अनुकूल होनेसे अर्थात् वेदोके मिलेहुये वाक्य में मानताहूं जो वेदोंसे विरुद्ध है उसको नहीं मानताहू ऐसा तुम्हारे स्वमन्तव्यमें लिखा हुवा है तो अब हम तुमसे पूछते हैं कि तुमको इतनी चीज वेदोंसे विरुद्ध यह ज्ञान स्वतः उत्पन्न हुआ अथवा किसी अन्य पुरुषसे अथवा ईश्वरने आयके तुम्हारे कानमें कहा अथवा किसी पिशाचादि देवताने आके-कहा प्रथम पक्ष जो तुम कहो हो कि हमको स्वतः उत्पन्न हुई कि इतनी वेदों की जो व्याख्यारूप महाऋषियों के बनाये ग्रन्थ हे जो वेदसे नहीं मिलेगी उसको नहीं मानूँगा तो अब हम तुझसे कहते हैं कि महाऋषियों को नहीं दीखता था कि हम वेदसे विरुद्ध क्यों लिखते हैं जो उन्होंने जानकर लिखा तो वे महाऋषि काहेके किन्तु महागप्पी थे और जो उन्होने अपने ज्ञानसे यथावत अर्थ लिखा है और तुम उनको महाऋषि कहते हो तो फिर तुम उस वाक्यमें क्यों विकल्प उठाते हो कदाचित् तुम्हारा स्वार्थ अर्थात् मत सिद्धि करनेके वास्ते उनके वचनसे दूषण आता हो इसलिये उनके वाक्योंको वेदविरुद्ध कहकर जोकि अंगरेज़ी फ़ारसी पढ़े हुये बालजीवोंके बहकाने के ताईं कहकर उस वचन को अप्रमाण करना तो हम जाने कि तुम्हारी बराबर पक्षपाती अन्याय आचरण करने वाला और कोई दूसरा न होगा यहां जो अंगरेजी फारसी पढ़नेवालोंको बाल कहनेका बुरा लगे तो हम कहते है कि वे लोग परंपरासे अपने स्वमत गुरुगमसे वाक़िफ़ नहीं थे और उन्होंने अपनी अंगरेज़ी फ़ारसीके बुद्धिबलसे कुतर्क उठायकर वेदका नाम श्रवणकर इसके जालमे फंसकर नियम धर्म कर्मोंसे हाथ उठालिया " सत्यासत्य विचारशून्य इति बालः " न कि माताका दूध पीनेवालों को बालक कहते हैं ॥ क्योंकि सम्पूर्ण वेदको न मानकर एक मंत्रभागको अंगीकार किया और ग्रन्थोंको क्षेपक अर्थात् तुम्हारे स्वार्थ सिद्ध होनेके जो वाक्य मिले उनको तो प्रमाण माने जिससे तुम्हारा मतरूपी स्वार्थ बिगड़ता था उस वाक्यको वेदविरुद्ध कहकर छोड़ दिया तो अब तुम्हारे माने हुवे स्वमन्तव्यको अर्थात् तुम्हारे बनाये हुवे ग्रन्थोंको जो कि तुम्हारा पक्षपाती निरविवेकी धर्म, कर्म, यात्रा, तीर्थादि छोड़नेके अर्थ मूंजी कृपण अर्थात् धनका लोभी संसारमें जन्म मरण करनेवालाही अंगीकार करेगा और जो विवेकी धर्मशील सत्य असत्य विचार करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष कोई पूर्व महात्मा महाऋषि आप्त वचनोंके प्रमाण विना अंगीकार न करै इसलिये यह तुम्हारा स्वमन्तव्य मानना निरविवेकियोंके वास्ते सिद्ध हुवा न कि विवेकी लोगोंके वास्ते ॥ १ ॥ २ ॥

दूसरा पक्ष कहो तो वहभी नहीं बनता है क्योंकि विरजानन्द सरस्वती मथुराके रहनेवाले कि जिनके पासमें तुमने यह विद्या अध्ययन की वे तो विचारे आत्मार्थी थे और संन्यस्तमार्ग को पूरा पूरा जानते थे वे तो सत्य उपदेशके सिवाय तुम्हारासा पाखण्ड उपदेश नहीं करतेथे जो तुम तीसरे पक्षको अंगीकार करो तो मनुष्यके सिवाय और कोई

देव नहीं है ऐसा तुम खुदही मानते हो और जो तुम कहो कि चौथे पक्षको अंगीकार करें तो हम तुमसे पूछते है कि क्या ईश्वरने तुमको ऐसा आकर कहा कि मंत्रभागके सिवाय और वेद असत् हैं जो तू अर्थ करेगा सो अर्थ तो मेरे वेदका ठीक होगा और जो तेरेसे पहले मुनियोंने जो भाष्य और व्याख्यान किया है सो वह उनका किया ठीक नहीं ६ अंग और ६ उपांग मनुस्मृति आदिक किश्चित् महाभारत उनमें भी जिसको तू मानेगा वह अंश तो ठीक है अलावह उसके अंग उपांग आदिकोंमें भाषा टीका स्मृति, पुराणादिक सब अशुद्ध हैं तेरे माननेके योग्य नहीं हैं इत्यादिक वातें सुषुप्तिमें कहीं वा स्वप्नमें वा जागृत अवस्थामें कहीं जो कहो कि सुषुप्तिमें कहीं तो यह कहना तुम्हारा नहीं बनता क्योंकि सुषुप्तिमें सोये हुये पुरुषको किसी तरहकी खबर नहीं रहती है उसहीका नाम सुषुप्ति है, क्योंकि जागकर पुरुष कहता है कि मैं आज ऐसा सोया कि निद्रामें कुछ खयाल नरहा जो कहो कि स्वप्नमें आकर कहा तोवो स्वप्नमें ईश्वर साकारथा कि निराकारथा जो स्वप्नमें साकार होकर कहा तब तो तुम्हारा ईश्वर निराकार माना हुवा गधाका सींग हुवा जो कहो कि निराकारने ही हमसे स्वप्नमें कहा है तो तुमको कैसे भान हुवा कि यह निराकार ही है अर्थात् ईश्वर है क्योंकि स्वप्न देखी हुई वस्तुका आता है और कोई स्वप्नकी बातका सनदभी न करे इसलिये स्वप्नभी असंभवही है जो कहो कि जागृतमें हमको ऊपर लिखी वातें कहींथीं तो वह ईश्वर क्या ठहरा पक्षपाती बड़ा अन्याई ठहरा क्योंकि इतने महर्षि सैकडों हजारोंको कि जिनके वाक्यको असंख्य मनुष्य मानते हैं उनकी वातोंका प्रमाण करते और उनके धर्मपर चलतेथे उनको सबको झूठा वनाकर तुम्हारेको कहा कि हम जानते हैं कि तुमने उसको कुछ रिशवतदी होगी* अथवा अच्छे २ माल खिलाये होंगे अथवा तुमने उसका बड़ा उपकार किया होगा अर्थात् मरतेसे बचाया होगा और पहले जो ऋषि मुनियोंने तुम्हारे माने हुये ईश्वरको शायद लकडियोंसे पीटा अथवा उसका धन ले लिया होगा इसीवास्ते तुम्हारी मिथ्या गप्पें चलरहीहैं "अहो इति। आश्चर्य्यं पश्यतोहरः" कि सब ऋषियोंको झूठा वनाकर आप सच्चाबनता है जैसे सुनार सब के देखते हुये चोरी करता है तैसे तू भी सब मुनियों ऋषियों, कि जो वर्त्तमानमें विवेकी पुरुष हैं उनके सामने वाक्यरूप चोरी कर रहा है और सत्यवादी बनता है अब हम तुम्हारेको इतना और पूछते हैं कि जब तुम्हारा माना हुवा ईश्वर ही किसी युक्तिसे सिद्ध न हुवा तो उसका वनाया हुवा वेद क्योंकर प्रमाण होगा जिस जगह पर पुरुष प्रमाणिक नहीं हैं उनका वाक्य क्योंकर प्रमाण होगा खैर ! अब हम यह तुमको पूछते हैं कि वह जो वेद है सो किसी पुरुषका बनाया हुवा है अथवा अपौरुषेय है जो पुरुष का बनाया हुवा है तो सर्वज्ञकृत है या असर्वज्ञ कृत ? प्रथमपक्ष कहो तो देखो कि तुम्हारे यहां सिद्धान्तोंमें कहा हैकि " अतींद्रियाणामर्थानां साक्षाद्द्रष्टान विद्यते । नित्येभ्यो वेद वाक्ये भ्यो यथार्थ विनिश्चयः " अब दूसरा पक्ष असर्वज्ञ कृत मानोगे तो असर्वज्ञके वचनका प्रमाण किसीको नहीं है जो कहो कि अपौरुषीय है तो यहभी कहना असंभव है क्योंकि घोडेके सींग और

* जैसे इन दिनो अर्थात् आज कल आर्य्यसमाजी लोग मास भक्षाभक्ष पर वाद विवाद कर रहे है और अपने २ को खेच रहे है।

आकाशके फूल जैसा अपौरुषेयका वाक्य है क्योंकि वेदका तुम वर्णात्मक मानते हो तो वर्णात्मक जो है सो विना कण्ठ, तालु, मुखके उच्चारण कदापि न होगा तो जैसे और कुभार संभवादि जो वर्णात्मक रचना है सोही वेदोंमें वर्णात्मक अक्षरोकी रचना है सो क्या पुरुष विना इन वर्णोंका उच्चारण होगा ? इसलिये ये वेद ईश्वरकृत नहीं है इसका कर्त्ता कोई पुरुष विशेष देहधारी किसी धूर्त्तका बनाया हुवा है उसने अपना नाम नहीं रक्खा और ईश्वरके नामसे प्रसिद्ध किया है। अब हम तुमको यह बात पूछते हैंकि तुम वेदको ईश्वर कृत वारवार कहते हो तो वेद शब्दका अर्थ क्या है देखो "विद् ज्ञाने" धातु है जिससे वेद शब्द सिद्ध होता है क्योंकि "विदन्ति येनासौ वेदः" इसका अर्थ यह है कि जिस करके मनुष्य सब कुछ पदार्थको जाने अर्थात् वेद तो वेद नाम ज्ञानका है तो ज्ञान तारतम्यता करके सर्व मनुष्योंके हृदयमें अनादि अर्थात् सनातन सम- वाय संबन्ध करके जीवात्माका गुण है परन्तु किसी जीवात्माका कर्मोंका तिरोधान होनेसे ज्ञानका आविर्भाव होता है किसी जीवात्माके कर्मोंके जोरसे तिरोधान अर्थात् छुपा हुवा रहता है तो जब इस शब्दसे वेद नाम ज्ञानका सिद्ध हुवा तो जीवात्माका वाक्य है सोही वेद है इस अर्थसे ऐसा कदापि न होगा कि ऋग्वेद, यजुरवेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार पुस्तक वेद है और नहीं; सो नहीं हो सकता क्योंकि देखो जिन पुस्तकोंको तुम वेद करके मानते हो तैसेही सर्व मत वाले जो कि उनके मुख्य आचार्य्य हुये हैं उनके कहे हुवे वाक्योंको वेदही मानते है तो अब देखो तुम्हारे माने हुये ईश्वर कृतका वेद, और उनके माने हुये वेद नहीं ऐसा कहना तो तुम्हारा जैसे बाजारकी कूजड़ी वेचने वाली कहती है कि मेरा बेर मीठा औरोंका खट्टा है ऐसा हुवा क्योंकि तुम्हारे कहनेसेही नहीं हो सकेगा किन्तु विवेकी पुरुष तो युक्ति सिद्धसे अंगीकार करते है अब देखो जब कि ईश्वरकृत होगा तो उस वाक्यमे विषमवाद कभी नहीं होता क्योंकि देखो ईश्वरको तुम पिताके तुल्य स्वामीके तुल्य मानते हो और उपकारके वास्ते उसने वेद बनाया है तो उस ईश्वरने एक जगह तो कहदिया कि मांस खाना अच्छा नहीं महापाप है क्योंकि "माहिंस्याः सर्वाणि भूतानि" इसका अर्थ यह है किकिसी प्राणीको दुःख न देना किसीको न सताना किसीको न मारना, सबको अपने बराबर जानना, मांसादिक भक्षण न करना, मांस खानेमें पाप है। दूसरी जगह कहता है कि होम करके मांसादिक खाय तो कुछ दोष नहीं है ऐसा प्रथम बनाये हुये सत्यार्थप्रकाशके दशवें समुल्लास ३०२ के पत्रामें लिखा है इसका वृत्तान्त तो हम आगे लिखेंगे यहां तो सिर्फ़ वेदके वचनोका विरोध दिखलानाथा और फिर उसी पुस्तकके चतुर्थ समुल्लासमें १४९ के पत्रामें ऐसा लिखा है कि जो चीज आप खाय उसीसे होमादिक करे और गऊका यज्ञादिक करे और देव पितृ आदिकोंकोभी मांस आदिकके पिंड देनेमें कुछभी पाप नहीं है! फिर दूसरी जगह ऐसा लिखा है कि जो पशु मनुष्योंका उपकार करें उनको नहीं मारना चाहिये यह वृत्तान्त पत्रा ३०२ उसी पुस्तकमें लिखा है सो इसका खण्डन मण्डन तो आगे करेंगे लेकिन् इस जगह तो जो वेदको तुम मानते हो सो वेद ईश्वरकृत नहीं ठहरता किन्तु आपसमें वचन विरोध होनेसे जो तुम्हारे दिलमें बात आई उसको मान लेनी और जो न मनमें आई उसको न माना ऐसेही किसी धूर्त्तने तुम्हारे वेदको रचा

होगा न तु ईश्वरकृत् अब तीसरा तुम्हारा मन्तव्य मानना है सोभी ठीक नहीं है वह यह है ॥ ३ ॥

"जो पक्षपात रहित न्यायाचरण सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उस को "धर्म" और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण मिथ्या भाषणादि ईश्वराज्ञा भङ्ग वेद विरुद्ध है उस को अधर्म मानता हूँ" ॥ जो तुमने ईश्वराज्ञा और वेद से अविरुद्ध उस को धर्म; इससे विपरीत उसको अधर्म ऐसा माना यह तुम्हारा मानना ठीक नहीं क्यों कि जिसको तुमने ईश्वर माना उस ईश्वर काही किया हुवा वेद और वो ईश्वर दोनों हीं सिद्धि न हुये तो उसकी आज्ञा और उसके कहे हुवे वेदका धर्म क्योंकर ठीक होगा इसवास्ते "वीतराग" सर्वज्ञ काही कहा हुवा धर्म ठीक होगा इसवास्ते जैनियों की शरण लेवो और पाखण्डको छोड़ कर अपनी आत्माका कल्याण करो और चौथे मन्तव्य में जो तुमने जीवका लक्षण लिखा है जिसमें ज्ञानादि नित्य गुण सो तो ठीक परन्तु, इच्छा, द्वेष, दुःख और अल्पज्ञ यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि इच्छा, द्वेष, दुःख, अल्पज्ञता कर्मोंके संयोग सेहै जब कर्म का संयोग दूर हो जायगा तो वोही जीव सर्वज्ञ सच्चिदानन्द रूप हो जायगा ऐसा मानना ठीक है और पांचवें मन्तव्य में जो ईश्वर जीव में भिन्नता मानी सो भी असङ्गत है क्योंकि जब तक कर्मों का संयोग है तब तक जीव संज्ञा है कर्मों का संयोग मिट जायगा जब वही जीव ईश्वर हो जायगा उस ईश्वर से अतिरिक्त ईश्वर मानना असङ्गतहै छठे मन्तव्यमें जो अनादि तीन पदार्थ माने है सो भी तुम्हारा मानना ठीक नहीं क्योंकि जीव और अजीव इन दोनो पदार्थोंके अतिरिक्त कोई तीसरा पदार्थ नहीं जो तुमने ईश्वरको तीसरा पदार्थ माना है सो वो तुम्हारा ईश्वर ही सिद्ध न हुवा सातवां मन्तव्य जो प्रभाव-से अनादि माना है, जिन द्रव्योंमें संयोग और वियोग होनेका स्वभाव है वो सदासे ही अ-नादि हैं और आठवॉ मन्तव्य जो सृष्टि मानी है कि पृथक् द्रव्योंका मेल करके नाना रूप बनाना यह भी तुम्हारा मानना ठीक नहीं क्योंकि जिनमें संयोग वियोग होनेका स्वभाव अनादि है उनका दूसरेसे मेल बनना ये असम्भव ही है देखो जैसे मिश्रीमें मीठापन स्व-भावसे होता है अब उसको कोई निर्विवेकी कहने लगे कि हलवाईने मिश्री मीठी करी है इसलिये यह मानना भी असङ्गत है। अब नवां मन्तव्य जो कि सृष्टिका प्रयोजन यही है कि जिसमें ईश्वरके सृष्टि निमित्त गुण, कर्म, स्वभावका साफल्य होना जैसे किसीने किसीसे पूछा कि नेत्र किसलिये हैं उसने कहा देखनेके लिये हैं वैसे ही सृष्टि करनेके ईश्व-रके सामर्थ्यकी सफलता सृष्टि करनेमें है और जीवोंके कर्मोंका यथावत् भोग करना आदि भी ईश्वरके सृष्टि निमित्त गुणकर्म स्वभावका सफल होना ऐसा जो तुमने माना है तो ईश्वरको बड़ा भारी कलङ्क लगाते हो क्योंकि सृष्टिके बनानेमें तो उसकी सफलता हुई और जो सृष्टि नहीं बनाता तब तो उसका ईश्वरपनाही नहीं रहता तो हम जाने हैं कि वह ईश्वर क्या ठहरा तुम्हारा बड़ा भारी मजूरथा जो वह तुम्हारी सृष्टिकी मजदूरी न करता तो तुम उसको ईश्वर भी न मानते; अब देखो कि उस ईश्वरको कैसा दुःख हो गया। कि जैसे कोई एक पुरुष पाषाणको आकाशमें फेंककर अपना शिर उसके नीचे

करादिया तो देखो उस निर्विवेकी पुरुषका शिर फटा तो कैसा उसको दुःख हुवा जैसाही उस ईश्वरको दुःख होने लगा क्योंकि देखो जब उसने सृष्टिरची तब वह अपने चित्तमे ऐसा समझता होगा कि मैं सृष्टि रचताहूं तो सर्व जीव मेरी आज्ञा मानेंगे और मेरे हुक्ममें चलेंगे सो तो न हुवा और उलटा उसका खंडन करनेवाले पैदा हुये और उसकी उलटी धूल उड़ाने लगे अर्थात् अवज्ञा करने लगे जो तुम कहो कि वह सर्वज्ञथा तो पहले उसकी सर्वज्ञता कहां गई जो लोग उसकी आज्ञाको नहीं मानते उनको क्यों रचाया, इसलिये वो सर्वज्ञभी नहीं और उलटा उस विचारेको पश्चात्ताप करना पड़ता होगा देखो जैसे कोई मनुष्यने अपने पुत्र स्त्री भ्राता आदि वा नौकर आदिकको उन सबोंकी अच्छी तरहसे पालना करके परवरिशकी और जब वे अपने २ होशहवाशमें दुरुस्त हुये तब वे उस पुरुषकी आज्ञासे विपरीत चलने लगे और उसकी अवज्ञा करने लगे इस बातको देखकर अपने दिलमे पश्चात्ताप करने लगे कि मै इनकी परवरिश न करता तो ये मेरी अवज्ञा और मुझको दुःख क्यों देते औरभी देखो कि जो तुम उसको सर्व शक्तिमान् मानते हो सोभी असङ्गत है क्योंकि जो शक्तिमान् होते हैं उनके सामने उनसे विपरीत कोई नहीं कर सकता है कदाचित् कोई करेभी तो उसका दंड वो शक्तिवान् पुरुष उसीवक्त उसको देता है अब हम तुमको प्रत्यक्षका प्रमाणभी देते है देखो कि वर्तमान् कालमें अङ्गरेज लोगोंका जो राज्य है उसमें राजा आदिक उनके हुक्मके प्रतिकूल अर्थात् उनके हुक्मके विना जो कोई अपनी हेकड़ी वा अभिमानसे कोई काम करले तो उसी समय उसको राज्यसे उठाकर अपनी एजेंटी कर देते है और उसका कुछ अख्त्यार नहीं रहने देतेहै अब देखो यहां विचार करो कि मनुष्य आदिमें जो प्रबल अर्थात् प्रतापवान् तेजस्वीके सामने निर्बल राजा आदिकका जोर नहीं चलता तो फिर ईश्वर सर्व शक्तिमान् सृष्टिका रचनेवाला उसके विरोधी जो सांख्य बौद्ध आदि उसको नहीं माननेवाले और उसकी अवज्ञा करनेवाले निरन्तर स्वतन्त्र होकरके जैनी लोग उसका खंडन करते है इससे तुम्हारा ईश्वर सर्व शक्तिमान् नहीं ठहरा किन्तु इन लोगोंकी शक्ति प्रबल दीखती है तो तुमने जो उसकी सर्व शक्ति मानी वो बांझके पुत्रके समान है । दशवां मन्तव्य जो तुमने सृष्टिकाकर्त्ता ईश्वर अवश्य करके माना सो मानना ठीक नहीं क्योंकि पेश्तरही हम उसका सब रीतिसे खंडन कर चुके हैं। ग्यारहवां मन्तव्य तुम्हारा मानना ठीक नहीं है। बारहवा जो "मुक्ति विषयमे मानते हो सोभी ठीक नहीं है सो तुम्हारी मुक्तिका" विषय यह है अर्थात् सर्व दुःखोसे छूटकर बन्ध रहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टिमें स्वेच्छासे विचरना नियत समय पर्यन्त मुक्तिके आनन्दको भोगके संसारमें आना॥ और तेरहवेंसे तेईसवें तक तो निष्प्रयोजन तुम्हारा मानना है सो निष्प्रयोजन होनेसे हमने इसका कुछ विचार न किया और चौवीसवां जो तीर्थ मन्तव्य है उसको हम यहां लिखते हैं "पुरुषार्थ प्रारब्धसे बड़ा" इसलिये है कि जिससे संचित् प्रारब्ध बनते जिसके सुधरनेसे सब सुधरते है और जिसके विगडनेसे सब विगडते है इसीसे प्रारब्धकी अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥ और २५ से ३७ तक मन्तव्य तुम्हारा निष्प्रयोजन है ॥ और ३८ वां जो मन्तव्य तुम्हारा आपतका लक्षण, ठीक नहीं सोभी लिखते हैं "आप्त" जो यथार्थ

वक्ता, धर्म्मात्मा, सबके सुखके लिये प्रयत्न करता है उसीको " आप्त " कहता हूँ ॥ ३९ वां " परीक्षा पांच प्रकारकी है इसमेंसे प्रथम जो ईश्वर उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेद विद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण; तीसरी सृष्टि क्रम; चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्माकी पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षा ओंसे सत्याऽसत्यका निर्णय करके सत्यका ग्रहण असत्यका परित्याग करना चाहिये ॥ अब ४० से लेकर ५१ तक जो मन्तव्य है उसको निष्प्रयोजन होनेसे इस जगह उसका विचार नहीं किया ॥

अब तुम्हा रा १२ वां मन्तव्य जो कि मुक्ति विषयमें तुमने लिखा है कि मुक्ति गया हुआ मनुष्य भी कुछ कालके बाद आनन्द भोगकर फिर संसारमें आता है तो हम तुमसे पूछें हैं कि क्या उसको प्रकृति अर्थात् अज्ञान अविद्या खेंचकर लाती है वा वोही अपनी इच्छासे चला आता है अथवा मुक्त जब होता है तब उसमें अविद्याका लेश बना रहता है वा ईश्वर ही उसको जगत्में अर्थात् संसारमें जन्म मरण करता है इन चार विकल्प से हम तुमको पूछते हैं प्रथम पक्ष जो तुम अङ्गीकार करोगे जब तो वो जो तुम्हारी प्रकृति अर्थात् अविद्या जड़पदार्थ है तो जड़पदार्थ तो तुम्हारे मतमें तुम्हारे कहनेसे कुछ करही नहीं सकता तो इससे तो वो मुक्त हुवा जीव संसारमें आना ये बातें बनती ही नहीं हैं द्वितीय पक्ष अङ्गीकार करो तो वो भी तुम्हारा मानना युक्तिसिद्ध नहीं होताहै क्योंकि जो जीव मुक्त हुआ है तो पहले जन्म मरणके दुःखसे छूटनेके लिये तब, जब योगाभ्यास ज्ञानादि अनेक साधनोंसे अविद्याको दूरकर अनादिकालका जन्ममरण था उसको मिटायकर अपने स्वरूप आनन्दको प्राप्त होकर फिर वह जानता हुवा इस संसारके जन्ममरणरूपी दुःखकी वाञ्छाकर क्योंकर निर्विवेक होकर इस संसारमें आवेगा और जो कदाचित् उसका संसारमें आना मानोगे तो उसका जो पहले लिखे हुवे साधन उनसे जो उत्पन्न हुवा ज्ञानादि विवेक सो सर्व निष्फल हो जायगा अब देखो जैसे कोई पुरुष अन्धा था और वह नेत्रोंके न होनेसे अनेक तरहके मार्गमें दुःख पाता था और बहुत दुःखी था अब उस पुरुष को सतगुरु डाक्टर जराह आदिके मिलनेसे उसके नेत्रमें जो धुन्धरूपी मैल था सो दूर हो गया और आखे उसकी दिव्य हो गई और सब वस्तु उसको यथावत् दीखने लगी अब कहो वह पुरुष जिसको नेत्रोंसे अच्छी तरह दीखने लगा कांटोंके झाड़में अथवा कूँवादिमें क्योंकर पड़ेगा अर्थात् कदापि नहीं पड़ेगा क्यों कि उसको पहले अन्धेपनेमें पड़कर जो दुःखका किया हुवा अनुभव उसके चित्तमें स्थिर है तो यहां पक्षपात छोडकर विचार करो कि जिसको अपना स्वरूप ज्ञान हुवा वह संसार में फिर क्योंकर आवेगा अब देखो सत्यार्थप्रकाशके नवें समुल्लास ॥ २९४ ॥ के पन्ने मे ऐसा लिखा है कि " जब इसका जन्म मरणादिक कारण जो अविद्यादिक दोष उनसे किये गयेथे जो कर्म के भोग सब नष्ट हो जाते हैं और आगे जो कर्म किये जाते हैं सो सब ज्ञान ही के लिये करता है सो अधर्म कभी नहीं कर्त्ता किन्तु धर्म ही करता है उससे ज्ञान फल ही वह चाहता है अन्य नही फिर उसके जन्म मरण का जो मूल अविद्या सो ज्ञान से नष्ट हो जाता है फिर वो जन्म धारण नहीं करता " अब देखो तुम ही विचार करो कि जब वोह जन्म धारण नहीं करता है तो वो फिर संसार में क्योंकर आता है ? अब जो वह आता है

तो तुम्हारा सत्यार्थप्रकाश का लिखना कैसा हुवा कि जैसे मथुराके चौबेलोग भाँग पीकर गप्पें ठोकते हैं अर्थात् निष्प्रयोजन गाल बजाते हैं इसलिये इस जगह तुम्हारी मुक्तिका आना सिद्ध न हुवा और भी देखो यहां विचार करो कि कारणके नष्ट होने से कार्य कदापि उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि देखो जन्म मरणरूप जो संसार कार्य है सो उसका कारण अज्ञान अर्थात् अविद्या है सो ज्ञान से नष्ट होगया तो सादि अनन्त मोक्ष जीवके वास्ते सिद्ध होगया। जो अब चौथे ४ पक्ष में कहो कि नियत समय पर्यन्त मुक्तिके आनन्द भोग कर लेता है जब फेर ईश्वर संसार में उस मुक्त जीवको लाय कर जन्म मरण कराता है जो ऐसा कहो तो वह ईश्वर न ठहरा किन्तु अन्यायी, पक्षपाती, निष्प्रयोजन जीवोंको दुःख देने में तत्परहुवा उसकी दयालुता न रही और न्याय भी न रहा क्योंकि देखो वेद भूमिका सत्यार्थप्रकाशादि ग्रंथों में सृष्टिकी उत्पत्ति में लिखते हो कि अगाड़ी सृष्टिके जो जीवों में कर्म थे उनके अनुसार सर्व जीवों को जैसा जिस जीव का कर्म है वैसाही रचता हुवा जब तुम ऐसा मानते हो तो उन मुक्त हुवे जीवों में कोईतरह का कर्म वा अविद्या अथवा अज्ञान रहा ही नथा तो फिर उन मुक्त जी-वोंको किस निमित्त संसारमें ईश्वरने रचा जो बिना निमित्त कारणके मुक्त जीवोको संसार में रचा तो तुम्हारे कहनेसेही ईश्वर जो है सो निर्विवेकी अज्ञानी निर्दयालु सिद्ध होगया जो तुम कहो नहीजी वो तो सर्वज्ञ दयालु, न्यायकारी ईश्वर है तो मुक्त जीवोको बिना कारण संसारमें रचता है तो तुम्हारेको वचन व्याघात दूषण आता है " ममसुखे जिह्वा नास्ति " अर्थात् मेरे मुखमें जिह्वा नहीं है अब विवेकी पुरुष बुद्धिसे विचार करते हैं कि देखो इसके मुखमें जिह्वा तो है नहीं तो फिर वह बोलता कैसे है ऐसे ही तुम लोगोंको भी विचार करना चाहिये कि जब ईश्वर कर्मके अनुसार जीवोंको योनि वा शरीर देता है तो फिर मुक्त हुये जीवोंको संसारमें रचना ईश्वरमें न्यायका असंभव होता है अब जो तुमको अपनी आत्माके कल्याण करनेकी इच्छा है तो इस कपोलकल्पित मतको छोड़कर जो सर्वज्ञ "वीतराग" देवने मोक्षका वर्णन किया है उसीको अंगीकार करो अब जो तुम कहो कि मोक्ष हुवे जीवोंको फिर संसारमें आना न मानें तो मोक्षमें बहुत जीव इकट्ठे होनेसे मोक्ष भर जायगा और संसार खाली हो जायगा और सृष्टि क्रम न रहेगा और कोई ईश्वरको न जानेगा और हरिद्वारके मेलेमें जैसे भड़दल हो अर्थात् भीड़ भाड़का अथवा धक्का मुक्की होने लग जायगी इसलिये मोक्षसे आना ही ठीक है अब देखो कि ऐसी २ तुम्हारी बातें सुन करके हमारे जीमें बड़ी करुणा आती है कि जे विचारे आर्य्यसमाज वाले कैसे भोले अर्थात् समाजके भ्रमजालमें फँसकर कैसी निर्विवेकता बुद्धिकी कल्पनाकर आत्म अनुभव रहित बुद्धिमत्ता दिखलाते हैं अजी कुछ विचार तो करो क्या तुमने भी जैसी मुसलमान वा ईसाई, वल्लभकुली आदिकों कीसी मुक्ति अर्थात् मोक्ष तुम्हारे ईश्वरने भी मकान बनारक्खा दीखे, सो भर जायगा तो फेर दूसरा मकान बनाना पड़ेगा तो अब देखो मुसलमान ईसाई लोगोंके तो बीबी और मेम मिलती हैं क्या तुम्हारे भी ऐसी औरतें मिलतीं सो मोक्ष भरजायगा ऐसा तो तुम मानते ही नहीं हो क्योंकि जिस समयमें जो जीव मोक्ष होता है उसके स्थूल कारण शरीरादि अथवा पुण्य पापादिक अथवा परमाणु आदिक

कुछ नहीं रहता खाली ईश्वरमें व्याप्य व्यापक भाव करके ईश्वराधारसे अपनी इच्छाके अनुसार सब जगह विचरता है तो फिर मोक्ष भर जायगा ऐसा कहना आकाशके फूल जैसा हुवा । दूसरा जो तुम कहते हो कि संसार उच्छेद हो जायगा तो हम जानते हैं कि दयानन्द सरस्वती जीने कहीं जीवात्माकी गणना अर्थात् गिनतीभी गिनकर किसी ग्रन्थमें लिखी दीखे इसलिये संसारका उच्छेद हो जायगा सो तो तुम्हारे वेद मंत्रोंमें कहीं दीखती है नहीं तो फिर अपनी मनकल्पना करके संसारका उच्छेद हो जायगा ऐसी स्वमति कपोल कल्पना करके क्यों अविद्या अज्ञानको बढ़ाते हो देखो सर्वज्ञका वचन है कि संसारमें घटे नहीं और मोक्षमें बधे नहीं तो इस सर्वज्ञके वचनका अभिप्राय समझना कठिन है क्योंकि देखो यहां एक दृष्टान्त देते हैं:—कि संसारमें पानी अर्थात् वृष्टि हरसाल होती है उस पानीके प्रवाह (बहने) से मट्टी और पत्थरभी वहुत बहते हुवे बड़ी २ नदियोंमें जाते हैं और वह नदी समुद्रकी खाड़ियोंमें जाती हैं और वह खाड़ी समुद्रमें जाती हैं तो उस पानीके सङ्गमें लाखों करोड़ों मन पत्थर मट्टी आदिकभी वह जाती है तो अब देखो कि इस आर्यवर्त्त या किसी और विलायतमें खाड़ा या गढ़ा नहीं होगया अथवा जे कुछ पातालमें नहीं चले गये और वह समुद्र उस मट्टी पत्थर आदियोंसे भरभी नही गया अर्थात् ऐसा न हुवा कि समुद्र सूख करके निर्जल हो गया हो तो अब इस जगह अगर आत्मार्थी हो तो एक अंश लेकर अपनी बुद्धिमें विचार करे तो दार्ष्टान्त यथावत् मिलता है कदाचित् पक्षपाती होकर निर्विवेकतासे आत्माको डुवानेवाला अज्ञानरूपी अभिमानमें चढ़कर जो न माने तो उपदेशदाताका कुछ दोष नहीं कदाचित् सृष्टिक्रम विगड़ जानेके भयसे जो मुक्त गया जीव आजाता है तो हम तुमको कहते हैं कि मुक्त हुवा जीव फिर संसारमें आगया तोभी तो सृष्टिक्रम विगड़ गया क्योंकि देखो जो कि उपदेश देना और मुक्तिके जो साधन हैं उन करके सब दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दको प्राप्त होना यहभी तो तुम्हारे सृष्टिक्रममें है जब तो जैसाही किया और जैसाही न किया सब निष्फल होगा क्योंकि कृतनाश अकृत आगम ये दूषण हो जायगा इसलिये ये ऐसाही अंगीकार करो कि मोक्ष गया हुवा जीव फिर संसारमें नहीं आता है इसके माननेसे सृष्टिक्रम नहीं विगड़ेगा और योगाभ्यास ज्ञानादि होनेसे अविद्या दूर होकर संसारकी निवृत्ति हो जाती है इन साधनोंको निष्फलता न आवेगी अब जो कहो हरिद्वारकेसी भीड़ हो जायगी और धक्कामुक्की होगी ऐसा जो तुम कहो तो यहां कुछ बुद्धिका विचार करो कि उस मेलामें कैसे मनुष्य स्थूल शरीरवाले इकट्ठे होते हैं जो सेरभर खॉयें और अढ़ाई सेर विष्ठा करें निर्विवेक अज्ञानसे भरे हुवे अथवा दूकान्दारभी बहुत इकट्ठे हो जाते हैं अथवा स्त्री आदिक तरकारी भाजी बेचनेवाली और बिसाती लोगभी बहुत इकट्ठे हो जाते हैं जब ऐसी तुम्हारी मोक्ष है तब तो मुसलमान ईसाइयोंसेभी बढ़कर ठहरा इसीलिये तुम्हारे ईश्वरने ऐसा विचारा कि हरिद्वारमें तो अंगरेज लोग बन्दोबस्त करलेते हैं परन्तु मैं तो अकेला हूँ क्योंकर बन्दोबस्त करूंगा इसवास्ते मुक्त हुवे जीवोंको फिर संसारमें ले आता है जैसे अंगरेज लोग न्हवा न्हवा कर कहते हैं कि "चलो" इससे मालूम होता है कि कुछ अंगरेजोंके कानूनभी सीखे है इसीलिये दयानन्द सरस्वती अंगरेजोंकी बहुत

पुष्टि करता है जो कहो कि ईश्वरको कोई नहीं जानेगा तो हम कहते हैं कि ईश्वरने अपने जनानेके वास्ते निरपराधी मुक्त जीवोंको फिर संसारमें गेर जन्म मरण करना और अपनी ईश्वरताको जनाना तव उस ईश्वरका न्यायकारीपन और दयालुता कहां रही क्योंकि वेतो विचारे निर्दोष, निरपराधी मुक्तिदशामें अपने आनन्दमेंथे उनको उस ईश्वरने जन्म मरणरूपी सृष्टिमें गेरकर उनको दुःखी करता हुवा आप तमाशा देख रहा है और उसको कोई तरहकी दया नहीं आती तव वो ईश्वर क्या ठहरा एक जबर॰ दस्त शैतान ठहरा इसीलिये जो विवेकी पुरुष हैं सो ऐसे ईश्वरको न मानकर मुक्तिमें सदा आनन्दको प्राप्त रहते हैं फिर कभी उनका इस संसारमें कदापि आना नहीं होगा अर्थात् कभी जन्म मरण करना न होगा परन्तु जिन्होंने ऐसा झूठा ईश्वर कल्पित वनाया है अर्थात् मान रक्खा है उन जीवोंको उस कल्पित ईश्वर माननेका यही उनके शिरपर दण्ड होगा कि अनेक कष्ट करके योगाभ्यास ज्ञानादि साधनोंसे मुक्ति पायकर फेर संसारमें जन्म मरण करना और दुःखोंको भोगना दिग् इति ॥

अव देखो जो तुम्हारा २४ वॉ मन्तव्य तीर्थ विषयमें है उसमें जो तुम तीर्थ नहीं मानते हो सोभी तीर्थ ठहरता है. अव देखो पक्षपात छोड़के कुछ विचार करो कि तीर्थ शब्दका अर्थ क्या है और किस धातुसे तीर्थ शब्द वना है तो अव देखो कि (तृप्लवन तरणयोः) इस धातुसे तीर्थ शब्द सिद्ध होता है तो इस शब्दका अर्थ क्या हुवा कि (तारयतीतितीर्थः) कि जो तारे उसीका नाम तीर्थ है सो तीर्थ दो प्रकारकेहैं एक तो जङ्गम और दूसरा स्थावर तो जङ्गम तो उसे कहते हैं कि जो आत्मविद्याका उपदेश देनेवाले विद्वान् अर्थात् त्यागी विवेकी पक्षपातसे रहित इस संसारको असार जानके अध्यात्मविद्यासे आत्म अनुभव जिन्होंने किया है एक तो वो. नतु अज्ञानी, अनाचारी, वेषधारी, पक्षपाती, अध्यात्मविद्याके अजान मत्त ममत्वी, अर्थात् अपने मतके जालमें फँसानेवालेको तीर्थमें नहीं ॥ इस जङ्गम तीर्थको तो तुमभी अङ्गीकार करते हो सो इसमें तो हमको कहनेका कुछ ज़रूर नहीं ॥ दूसरा जो स्थावर तीर्थ उसको कहते हैं कि जो आचार्योंने पर्वतोंमे या अन्यभूमिमें श्रेष्ठ जानके अथवा जो मूर्ति आदिको स्थापन किया है ये दो प्रकारके तीर्थ हुवे इन दोनों तीर्थोंको मानना चाहिये अव इसी मन्तव्यमें जो तुम्हारे २१ मन्तव्यमे मूर्तिको "मैं अपूज्यमान- ताहूँ" सो अव हम इस स्थावर तीर्थ और मूर्ति पूजनको युक्तियों और प्रमाणसे सिद्ध करते हैं अव देखो विचार करो कि (तारयतीतितीर्थः) तो अव तरणरूप जो कार्य ठहरा तो इसमें कारणभी अवश्य होना चाहिये क्योंकि विना कारणके कार्य्यकी सिद्धि नही होती है तो कारण किसको कहते है और कारण कितने प्रकारके हैं, तो हम कहते हैं कि कारण दो प्रकारके होते हैं एक तो उपादान कारण, दूसरा निमित्त कारण इन दोनों कारणोमेंसे एकभी कारण न्यून होतो कार्य कदापि नहीं होगा इसलिये दोनों कारणोंको अवश्यमानना चाहिये तो अव देखो इस जगह विचार करो कि स्थावर तीर्थ तो निमित्त कारण है और उपादान कारण जो जीव तरनेवाला उसका जो प्रमाण और कर्तव्य वो उपादान कारण है जो कहो कि वो स्थावर तीर्थ निमित्त कारण कैसे है तो देखो हम कहे है कि जो गृहस्थी अपने पुत्र कलत्र संसारी कार्यमें फँस रहा है उससे जो कोई कहे कि तुम एक मास तक

एकान्त बठ करके ईश्वर अर्थात् आत्मध्यान करो तो उससे कदापि ऐसा न होगा कि सब कामको छोड़के और उस आत्मध्यानमें लगे ऐसा कदापि न होगा अब देखो किसी आचार्य्यने उपदेश देकर कहा कि अमुक जगह जो तीर्थ है उस जगह जाय कर जो परमेश्वरका ध्यान अर्थात् स्मरण करे और उस भूमिका स्पर्श करे तो उसका जल्दी कल्याण होगा अर्थात् पापोंसे दूर होजायगा ऐसा सुनकर उस पुरुषको कांक्षा हुई कि उस तीर्थकी यात्रा करूं मेरेको दो महीना लग जांय तो लगो। अब देखो कि दो महीना उसकी यात्रामें लगे तो दो महीने तक उसका जो कि घरमें रह करके असत्य भाषणादि दिन रात अनेक अनेक संसारी कामोंका पापादिक स्त्री आदिकका सेवन इन्द्रियादिकोंका विषय करताथा सबसे निवृत्त हुवा और सत्य भाषणादि इन्द्रियोंके विषयका त्याग, स्त्री सेवन और संसारी कर्मोंका त्याग एक वेर भोजन करना धरती पर शयन करना और अनेक बातोंको त्याग करके ईश्वरका स्मरण करना अथवा आत्मविचार करना अथवा महत्पुरुषोंके अर्थात् आत्मविद्याके उपदेश करने वाले उनका दर्शन जगह २ होना उनसे जो आत्मविद्याका उपदेश पाना और उनका भोजन आदिसे सत्कार करना इत्यादिक नाना प्रकारके कल्याणकारी लाभ होते है और जो घरमें बैठे हुये नाना प्रकारके अनर्थ करे उनसे निवृत्त होता है अर्थात् दूर होता है इसमें निमित्तकारण वो तीर्थ हुवा वो तीर्थ न होता तो ऊपर लिखी हुई बातोंका लाभ अलाभ कदापि न होता इसवास्ते तीर्थ अवश्य होना चाहिये; इति तीर्थ सिद्धिः ॥ अब पक्षपातको छोड़के बुद्धिसे विचार करो कि तीर्थसे पापकी निवृत्ति होती है और आत्मविद्याका लाभ होता है वा नहीं तो उस गृहस्थी संसारी अविद्यामें फँसे हुये जीवको कदापि ऐसा लाभ न होता इसवास्ते सर्वज्ञानी पुरुष दयालु सर्व उपकारक जगत्‌बन्धु निस्पृह होकर उपदेश देते हुवे जो जीव आत्मार्थीके लिये ऊपर लिखा हुवा उपदेश सूर्यके समान करता हुवा जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करता है और सबको प्रकाशता है इसलिये पक्षपातसे रहित होकर प्रकाश करता है तो उसके प्रकाश होनेमें कुछ दूषण नहीं परन्तु उल्लू अर्थात् घुग्घू की सूर्यके प्रकाशमें आंखें बन्द हो जाती हैं अर्थात् उसको कोई पदार्थ नहीं सूझता है तो इसमें कुछ सूर्यका दूषण नहीं है किन्तु उस उल्लू जानवर काही दूषण है इसीरीतिसे जो सर्वज्ञ आत्मविद्या वालोंने तीर्थयात्रा आदिक उपदेश दिये हैं सो उन्होने उन सर्व जीवों के उपकारके लिये ही दिये हैं इसीलिये उनकी दयालुता सिद्ध होती है जो अविद्या अज्ञानसे भरे हुवे मत ममत्वोंमें भरे हुये भांगके नशेमें आंखोंको मींचकर विचार करनेवाले उल्लूके समान होकर ऐसे उपदेशों को न माने तो उनके उपदेशोंका कुछ दूषण नहीं वो उनकी अज्ञान रूपी भङ्गका दूषण है तीर्थ विषयमें दिग् इति ॥

अब मूर्तिपूजनभी अनादि सिद्ध है क्योंकि मूर्तिसे हरेकको ईश्वरका ज्ञान हो सक्ता है और तुमने गेरह वें समुल्लासमें मूर्तिपूजनके विषयमें अज्ञान दशासे लिखा है इसीलिये हम तुम्हारा अज्ञान दूर करनेके लिये संक्षेपसे प्रश्नोत्तर लिखते हैं:—

(वादीका प्रश्न[1]) मूर्त्तिपूजन जैनियोंने चलाया ? (उत्तर) सबके पहले जैन मतही

[1] सिद्धान्तीकी ओरसे उत्तर और वादीकी ओरसे प्रश्न ऐसा जानना चाहिये।

था और जितने मत हैं सबही पीछे निकले हैं इसीवास्ते प्रथम मूर्त्तिपूजनभी जैनियोंने चलाया प्रथम जैनमत सिद्ध करनेके लिये इसही प्रश्नके उत्तरमे पीछेसे लिखेंगे (प्रश्न) जैनियोने मूर्त्तिका पूजन क्यों चलाया है ? (उत्तर) भव्य जीवोंको ज्ञान होनेके वास्ते (प्रश्न) मूर्त्तिसे मनुष्योंको क्या ज्ञान होगा ? (उत्तर) मूर्त्ति पूजनेसे ईश्वरका ज्ञान होगा (प्रश्न) ईश्वर तो निराकार है और मूर्त्ति साकार है तो उस ईश्वरकी मूर्त्ति क्योंकर बनेगी ? (उत्तर) जिस ईश्वरको तुमने निराकार मानकर सृष्टिका कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता माना है उस ईश्वरका बोध होना तो शशाके सींगका बोध होना जैसा है जैसे तुम भंगपीकर उस नशेके उत्तरमें निराकार ईश्वरका मंत्रोंसे बोध कराते हो तैसा कुछ जैनी लोग नहीं कहते किन्तु जैन आचार्य्य अध्यात्म अपनी आत्माका साक्षात्कार करके उस साकार ईश्वर जो कि ३५ वानी ३४ अतिशय आठ महा प्रतिहार्ज चौंसठ इन्द्र करके पूजित; राग द्वेष रहित निस्पृह करुणानिधान; सर्व जीवोपकारी; जगद्बन्धु, जगद्गुरु, दीनदयालु, अपक्षपाती, सूर्य समान, अज्ञानरूपी तिमिर दूर करने वाला; तरण तारण, निमित्त कारण; मोक्षरूप कार्यका साधक है ऐसे ईश्वरका प्रत्यक्ष स्वरूप देखकर उसके अभावमें उसकी मूर्त्ति बनायकर उस ईश्वरका बोध कराना है । (प्रश्न) मूर्त्ति तो जड़ होती है उससे क्योंकर बोध होगा ? (उत्तर) देखो कांच जड़ पदार्थ है अब उस जड़ पदार्थ रूपी कॉचमें अपना मुख देखनेसे अपने मुखका यथावत् चेहरेका बोध उस जड़ पदार्थसे हो जाता है इसरीतिसे उस मूर्त्तिसे भी ईश्वरका बोध हो जाता है। (प्रश्न) कांचके देखनेसे तो चेहरा मालूम होता है परन्तु मूर्त्ति देखनेसे तो जैसा हमारे चेहरे का साक्षात्कार होता है तैसा ईश्वरका नहीं होता है ? (उत्तर) तुमको अपनी आत्माका कल्याण करनेकी इच्छा नहीं है किन्तु विवाद करनाही जानते हो क्योंकि देखो विचार करो कि जैसा उस कॉचमें अपनी मूर्ति, चेहरा, आकृतिका बोध होता है उसीरीतिसे उस शांतिरूप मुद्रा देखनेसे शांतिरूप भावको प्राप्त होता है। (प्रश्न) उस पाषाणकी मूर्तिसे देखकर शांत होता है तो क्या और पाषाणादि देखनेसे शान्त नहीं होता अथवा जो मूर्तिका बनानेवाला उसीको देखनेसे क्या शांति नहीं होता तो मूर्ति बनानेवालेसे शांति नहीं हुवा तो मूर्तिसे क्या होनाथा (उत्तर) अब हमको तुम्हारी बातें सुनकर बड़ी करुणा आती है क्योंकि देखो तुम लोग विवेकरूप ज्ञानको छोड़कर कुतर्करूपी भंग पीकर बेसमझकी बातें करते हो क्योंकि उस मूर्तिमें आचार्य्योंने तो उस ईश्वरकी संकेतरूप स्थापनाकी है और मूर्तिके बनानेवालेकी वा इतर पाषाणादि स्थापना नहीं की है जिससे उस ईश्वरका बोध हो। (प्रश्न) क्या स्थापना करनेसे ईश्वर उसमें आ बैठता है जो उस स्थापनासे बोध होता है? (उत्तर) उस ईश्वरकी यथावत् सूरतको देखकर उसका प्रतिरूप प्रतिमा अर्थात् उसकी नकलको देखनेसे यथावत् बोध होता है जब तक नकल न देखेगा तब तक असलकी प्रतीति न होगी। (प्रश्न) नकल कितने प्रकारकी होती है? (उत्तर) नकल दो प्रकारकी होती है एक तो असद्भूत, दूसरी सद्भूत। (प्रश्न) असद्भूत और सद्भूत किसको कहते हैं? (उत्तर) असद्भूत उसको कहते हैं कि जैसे अक्षरका लिखना जैसे "दयानन्द सरस्वती" यह जो अक्षर है सो असद्भूत स्थापना है इसको देखनेसे कुछ उनका शरीर आकार आदि प्रतीति न होगा, सद्भूत उसको कहते हैं कि

दयानन्दका फोटोग्राफ़की खैंची हुई तसबीर दयानन्दी मत वाले रखते हैं उस सद्भूतसे यथावत् दयानन्द सरस्वतीका बोध होता है इसीलिये स्थापनाको जरूर मानना होगा जो स्थापनादिक को न मानोंगे तो ककारादि अक्षरोंका बना हुवा वेद इतिहास मनुस्मृति आदि कुरान बाइबिल इत्यादिककाभी मानना न होगा । (प्रश्न) मूर्तितो मनुष्यकी बनाई हुई है और जड़ है? (उत्तर) ककारादि अक्षरभी स्याही कलम कागजसे मनुष्योंके लिखे हुवे अपने २ संकेत जड़ पदार्थ हैं तो उनसेभी न होगा । (प्रश्न) उनके बॉचनेसे यथावत् बोध होता है? (उत्तर) यह तुम्हारा कहना मिथ्या है जो बॉचनेसे होता है तो तुम्हारे बनाये हुवे सत्यार्थप्रकाशके तृतीय समुल्लासमें जो कि हवन करनेकी वेदी बनानेके लिये जिस वेदीमें होम किया जाता है उस वेदीका जो चिह्नादिक और पात्रोंके चिह्न लिखे हुवे पत्र ४१ से लेकर ४२ तक तो जब अक्षरोंसेही बोध होता तो तुम्हारा लिखना व्यर्थ हुवा इसीलिये बुद्धिमें विचार करो कि जैसे तुमने उनके चिह्न अर्थात् उनके आकार बनायकर बोध कराया है इसरीतिसे उस सद्भूत प्रतिमाका आकार देखनेसे ईश्वरकाभी बोध होता है । (प्रश्न) अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है? (उत्तर) जैसे अक्षरोंकी स्थापना तुम्हारे ज्ञानका निमित्त है तैसेही परमेश्वरका ज्ञान होनेके निमित्त उस मूर्तिको देखना है क्योंकि जब तक कोई बुद्धिमान् पुरुष किसी वस्तुका नकशा (चित्र) विना देखे उस वस्तुका यथावत् स्वरूप नहीं जान सकेगा इसीलिये बुद्धिमान् आत्मार्थी सत् असत् विचार शील स्थापनाको अवश्यही मानेगा (प्रश्न) हमारे वेद आदिकोंमें तो परमेश्वरको निराकार ज्योतिस्वरूप, सर्वव्यापक, होनेसे मूर्ति नहीं बन सकती है? (उत्तर) अब हम तुम्हारी बुद्धि विलक्षणता देखकर जैसे कोई बाल हठग्राही पक्षीकी तरह एक वचन सीखकर बार बार उसीको उच्चारण करता है क्योंकि देखो हम पेश्तरही तुम्हारे मंतव्यको लेकर तुम्हारा ईश्वर निराकार ज्योति स्वरूपक किसी युक्ति वा प्रमाणसे सिद्ध न हुवा ऐसा हम पेश्तर लिख आये हैं अब देखो बड़ी हँसीका बात है कि तुम्हारे ईश्वरका आकार मूर्ति नहीं तो फेर उसको मुख विना वेदका उच्चारण करना नहीं हो सकता है जो कहो कि विनाही मुखके परमेश्वर शब्दका उच्चारण कर सकता है तो इस कहनेमें तुम्हारा कोई प्रमाण नहीं जो कहो कि वेद प्रमाण है तब तो जब ईश्वरही सिद्ध न हुवा तो वेद क्योंकर होसक्ते हैं इसीलिये जो शब्द मानना है सो स अक्षर शब्द वर्णात्मक है तो जब वो वर्णात्मक शब्द ठहरा तो विना मुख, जिह्वा, कण्ठ, तालुके उच्चारण न होगा अर्थात् वर्णात्मक स अक्षर शब्द है सो मुखसे उच्चारण होगा तो जब मुख सिद्ध हो गया जब शरीरके बिना मुख नहीं होता तो शरीरभी सिद्ध हुवा इसलिये जो कोई वादी वर्णात्मक स अक्षर शब्दरूप जो पुस्तकोंमें लिखा हुवा ईश्वरका वचन मानेगा जब वर्णात्मक स्थापना मानी है तो उस बुद्धिमान् विवेकीको उस ईश्वरका मुख्य शरीरभी मानना पड़ेगा तो जब शरीर ईश्वरका मान लिया तो उसकी मूर्तिभी मानना अवश्य होगा जब मूर्ति मानली तब तो उसका पूजन करना अवश्य होगा । अब पूजनके विषयमें इस ग्रंथके तीसरे प्रश्नके उत्तरमें जहां कि ढूंढिया मतका वर्णन होगा तहां लिखेंगे वहां देखो; इस जगह केवल मूर्तिका सिद्ध करनाथा वह कर दिया अर्थात् मूर्ति सिद्ध हो गई अब जो

तुमने आप्तका लक्षण लिखा है सो उसमे यथार्थ वक्ता इतनाही कहना ठीकथा जियादः बढ़ाना निष्प्रयोजन हुवा इस आप्तके लक्षणको हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखेंगे तो वहां देखना और जो तुमने पांच परीक्षाके लिये लिखा सोभी निष्प्रयोजन है क्योंकि जिस बुद्धिमानूने सत् असत्का निर्णय करके सत्को ग्रहण किया और असत्का त्याग किया उसीमें ईश्वर वेदादि सब अन्तर्भाव हो जावेंगे अब तुम्हारे मन्तव्यका माना हुवा पदार्थ ठीक न हुवा ऐसेही तुम्हारे सत्यार्थप्रकाशकी जो गप्पे हैं उनकोभी किञ्चित् बाल जीवोंके डुबानेके वास्ते लिखी है सो भी दिखलाते हैं और जो कि जैनमतके विषयमें जैन ग्रन्थोंमें नही है और वे मानतेभी नही हैं उनके ग्रन्थोका नाम लेकर अपनी स्वकपोल कल्पित करके बाल जीवोंको बहकानेके वास्ते लिखी हैं उनकोभी लिखकर दिखाते हैं अब देखो सत्यार्थप्रकाशमें कैसी २ गप्पें लिखी हैं क्योंकि देखो सत्यार्थप्रकाशके तीसरे समुल्लासके ४५ वे पृष्ठमे ऐसा लिखा है कि चार प्रकारके पदार्थ होमके वास्ते हे एकतो जिसमे सुगन्ध गुण होय जैसे कि कस्तूरी केशरादिक और दूसरा जिसमें मिष्ठगुण होय जैसे कि मिश्री शर्करादिक और तीसरा जिसमे पुष्टकारक गुण होय जैसा कि दूध घृत और मांसादिक और चौथा जिसमें रोग निवृत्तकारक गुण होय जैसा कि वैद्यक शास्त्रकी रीतिमे सोमलतादिक औषधियें लिखी हें उन चारोंका यथावत् शोधन उनका परस्पर संयोग और संस्कार करके होम करे अब देखो इस लिखनेसे तो मालूम होता है कि ईश्वरने मांस होमनेके लिये जो हुक्म दिया है तब तो वह ईश्वर निर्दयी ठहरता है क्योंकि उसने आपही तो सृष्टि रची और आपही जीवोंके मांसका होम करना कहा तब तो उपकार नहीं किया किन्तु अपकार किया ॥ अब देखो तीसरे समुल्लासमें ४७ के पन्नामें लिखा है कि जब अश्वमेधादिक यज्ञ होय तब तो असंख्य सब जीवोंको सुख होय इससे सब राजा धनाढ्य और विद्वान् लोग इसका आचरण अवश्य करे ॥ दूसरे अब चतुर्थ समुल्लासमें ११२ के पृष्ठमे लिखा है कि पिता भ्राता पति और देवर ये सब लोग स्त्रीकी पूजा करें तो स्त्रीका पूजन तो वाम मार्गियोंमे होता है तो हम जाने कि दयानन्द सरस्वती जीको वाम मार्गियोंसेभी परिचय दीखे ॥ तीसरे चतुर्थ समुल्लासमें १२३ के पृष्ठमें पांच प्रकारका यज्ञ कहा है १ ऋषि यज्ञ अर्थात् संध्या उपासना; २ देवयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्रादिक; ३ भूत यज्ञ अर्थात् बलि वैश्वदेव; चौथे नृयज्ञ अर्थात् अतिथि सेवा; पांचवे पितृ यज्ञ नाम श्राद्ध और तर्पण अपने सामर्थ्यके अनुकूल और चतुर्थ समुल्लासके १३९ पृष्ठमें जो पदार्थ आप खाय उससे पञ्च महायज्ञ करे अर्थात् पितृ देव पूजाभी उसीसे करे अर्थात् श्राद्ध और होम उसीका करे मधुपर्क विवाहादिक और गोमेधादिक और देव पितृकार्य इनमें मांसको जो खाता होय तो उसके लिये मांसके पिण्ड करनेका विधान है इससे मांसके पिण्ड देनेमेभी कुछ पाप नहीं ॥ १६० के पृष्ठमें लिखा है कि जबतक पितृ ऋणादिक को न उतारे और जो संन्यास ले तो वो उल्टा संसारमेंही डूबे इस विषयमें १६५ के पन्ने तक कई गप्पें लिखी हैं सो हम कहांतक लिखें और १६७ के पृष्ठमें लिखा हैं कि पाप पुण्य रहित जब शुद्ध होता है तब सनातन परमोत्कृष्ट जो ब्रह्म उसको प्राप्त होता है फिर कभी दुःखसागरमें नहीं आता अब देखो इस जगह तो

ऐसा लिखा है और अपनी मानी हुई मोक्षमें जायकर फेर संसारमें आजाना इस जगह तो ब्रह्ममें प्राप्त होना मानलिया और उस जगह ईश्वरसे अलग होकर स्वेच्छा विचरना ऐसी २ स्वकपोल कल्पित बातें करकेजो कि मिथ्या अविनिवेशकरके ग्रन्थोंको रचकर भोले जीवोंको बहकाना मायावी काही काम है अच्छे पुरुषोंका नहीं अब १७१ पृष्ठमें जो लिखा है कि यज्ञके वास्ते जो पशुओं की हिंसा है सो विधिपूर्वक हनन करना हिंसानहीं अब देखो कि विधि से करना वह हिंसा न ठहरी तो यह तो अपनी कल्पना से जो मौज आई सो मान लिया तो बुद्धिमान् जो विवेकी पुरुष हैं सो तो सत् असत् का निर्णय करके सत्य ही को ग्रहण करेंगे कुछ धूर्त्तों का माना हुवा नहीं अङ्गीकार करेंगे सातवें समुल्लासके २२५ वें पृष्ठ में ऐसा लिखा है किजो पममेंश्वरको प्राप्त होता है फिर कभी उसको दुःख लेश मात्र भी नहीं होता ७ वें समुल्लास के २३७ वें पृष्ठ में यह लिखा है कि परमेश्वर ने जो जीवों को रचे हैं सो केवल धर्म आचरण और मुक्त्यादि सुखके लिये ही हैं ऐसा ही २३२ के पृष्ठ में लिखा है कि ईश्वर है अत्यन्त दयालु जब जीवों को ईश्वरने रचा तब विचारके सब को स्वतन्त्र ही रख दिये क्योंकि परतन्त्रके रखने से किसी को भी सुख नहीं होता अब देखो कि एक जगह तो जीव ईश्वर प्रकृति को अनादि मान लेना अर्थात् ये किसी के उत्पन्न किये हुये नहीं और फिर आप ही लिखते है कि ईश्वर ने जीवोंको रचा दूसरा देखो कि ईश्वर ने जीवों को स्वतन्त्र रचे थे फिर फल देने मे परतन्त्र कर देना ऐसे २ वाक्योंके परस्पर विरोध वचन होनेसे विद्वान् लोग ऐसे वचन को गधा के सींग के समान समझेंगे । अब २९२ पृष्ठ में ऐसा लिखा है कि आदि सृष्टि में गर्भवास से उत्पत्ति नहीं भईथी और किसी को बाल्यावस्था भी नहींथी किन्तु सब स्त्री और पुरुषों की युवावस्था ही ईश्वर ने रचीथी फिर वे उस समय अच्छा वा बुरा कुछ नहीं जानते थे जहां जिस का नेत्रथा अथवा बुद्ध्यादिक जिस वाह्य पदार्थ में युक्त मय उसको टुक २ देखते थे परन्तु ये अच्छा वा बुरा ऐसा नहीं जानते थे पर प्राण शरीर अथवा इन्द्रियां इन में चेष्टा गुणथा ऐसा नहीं जानते थे कि ऐसी चेष्टा करनी फिर चेष्टा होने लगी वाह्य पदार्थों के साथ स्पर्शादिक व्यवहार होने लगे उनमें से किसीने कुछ पत्ता वा फल वा घास स्पर्श किया वा जीभके ऊपर रक्खा तथा दांतो से चबाने लगे उसमें से कुछ भीतर चलागया कुछ बाहिर गिर पड़ा उसको देखके दूसरा भी ऐसा करने लगा फिर करते २ व्यवहार बढ़ता चला तथा संस्कार भी होते चले होते २ मैथुनादिक व्यवहार भी होने लगे सो पांच वर्षतक उस समय किसी को पाप वा पुण्य नहीं लगता था वैसे आज कल में पांच वर्षतक बालकों को पाप पुण्य नहीं लगता फिर व्यवहार करते २ अच्छा बुरा भी कुछ २ जानने लगे फिर परस्पर उपदेश भी करने लगे कि यह अच्छा है यह बुरा है और परमेश्वर ने भी उक्त पुरुषोंके द्वारा वेद विद्या का प्रकाश किया ये वेदद्वारा मुनुष्यों को उपदेश भी करने लगे उनके उपदेश को किसीने सुना और किसीने न सुना सुनके भी किसीने विचारा और किसीने न विचारा अब देखो पक्षपात छोड़कर आँखें मीचकर विवेक सहित बुद्धिका विचार करो कि वो ईश्वर दयालु क्योंकर ठहरा क्योंकि जीवों के साथ में जबरदस्ती शरीर, प्राण, इन्द्रियें आदि

लगाय कर एक दुःखरूपी सागरमें पटकके तिस पर भी वे विचारे जीव कोईतरह का जिनको बोध नही था कि भला क्या वस्तु है और बुरा क्या है फिर उनके लिये नानाप्रकारके पदार्थ रचकर उनकी प्रवृत्ति का कराना और मैथुनादिक अर्थात् स्त्री सेवनादिक में प्रवृत्त कराना फिर पीछे से उनको अग्नि, वायु सूर्य आदिकको उपदेश देकर उनको उपदेश कराना कि तुम ईश्वर की उपासना करो ब्रह्मचर्य्य पालो संन्यास लेवो तो तुम्हारा मोक्ष होगा ऐसा उपदेश देना तो पहलेही उनकी मैथुनादिक पाप प्रवृत्ति में चेष्टा कराई थी क्या ये भी दयालुताकी वात है कि प्रथम विश्वासघात करना और फिर उनको उपदेशदेना क्या अच्छी वात है कि विचारे ईसाई मुसलमानके खुदा को तो बुरा २ बताना और अपने ईश्वरको अच्छा बताना इस कारण से तो एक मसल (कहावत) किजैसे लोग कहते है "उष्ट्राणां च विवाहेषु गर्दभाःस्तुतिपाठकाः ॥ परस्परं प्रशंसन्ति अहोरूप महोध्वनिः" ॥ इस मसलाका तात्पर्य क्या है कि ऊंटके व्याहमें गधा गाने वाले आयेथे अब आपसमें दोनोंकी कीर्ति अर्थात् प्रशंसा होने लगी क्या प्रशंसा होने लगी कि गधा तो कहने लगे कि अहो! तुम्हारा कैसा उत्तमरूप है किन्तु तुम्हारे रूपको देखकर जगत् सब लज्जित होता है इस अपने रूपकी प्रशंसा सुनकर ऊंटभी मग्न मस्त होकर कहने लगा कि तुम्हारी कैसी वेदकीसी ध्वनि है अर्थात् छः राग और ३६ रागिनी सप्तस्वर आदिकको तुम्हारे सिवाय जगतमें कोई नहीं जानता है अब देखो कि इस दृष्टान्तका दार्ष्टान्त क्या हुवा कि उस ईश्वरकी तो तुमने ऐसी शोभा करी कि निराकार, सर्वव्यापक, दयालु, सर्व शक्तिमान् बनादिया और उस ईश्वरने तुम्हारे लिये वेदोंको रचकर जीवहिंसा करायकर स्वर्ग वा मोक्ष में पहुंचानेके लिये सत्यशास्त्र रचकर उसमें भी एकचोरी रक्खी कि पहलेके ऋषि मुनि उनको तो यथावत् अर्थ न मिला और वर्त्तमान काल में दयानन्द सरस्वतीके कान मे आयकर फूंकमारा कि तू वेदभूमिका सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों को रचकर लोगों को उपदेशदे जिसमें प्राचीन सर्व मतोंको निषेधकर सबकी एकता कर प्रीतिवढ़ा सो अब प्रीतिका वढ़ना तो न रहा किन्तु दया दान ईश्वरका पूजन तीर्थयात्रा अतिथियों को भोजनदेना अन्यमतसे द्वेष आदिकी निन्दा आदितो वहुत वढ़गया और आर्य्यावर्त्त से जो ऊपर लिखा हुवा धर्म इस जालके फैलाने से जो भोले जीव फंसेहुये सनातन धर्म आत्मस्वरूप अध्यात्म विद्याके उपदेशसे छूटगये। अब और भी देखो कि सत्यार्थप्रकाश के २९५ के पत्रेसे लेकर २९८ तक कैसी गप्प लिखीहै वह यह है कि " परमेश्वरने जब सृष्टिरची है कि जबतक संसार का अत्यन्तप्रलय न होगा तबतक भी वे मुक्तजीव आनन्दमें रहेंगे और जब अत्यन्त प्रलय होगा तब कोई न रहेगा " ब्रह्मका सामर्थ्यरूप और एक परमेश्वरके विना सो अत्यन्त प्रलय तबहोगा कि जब सबजीव मुक्तहोजायंगे बीच मे नही सो अत्यन्तप्रलय बहुतदूर है संभवमात्र होता है कि अत्यन्त प्रलयभी होगा बीचमें अनेकबार महाप्रलयहोगा और उत्पत्ति भी होगी इससे सब सज्जनोंको अत्यन्त मुक्तिकी इच्छा करनीचाहिये क्योंकि अन्यथा कुछ सुख नहीं होगा तबतक मुक्तिजीवों को नहीं तो तबतक जन्म मरणादिक दुःखसागरमे डूबही रहेंगे। अब देखो यहां विचारकरो कि जब अत्यन्त प्रलयहोगा तब कोई न रहेगा ब्रह्मका सामर्थ्यरूप और एक परमेश्वर के विना सो अत्यन्त प्रलय तबहोगा तो अब इसजगद

एकतो तुम्हारा ब्रह्मका सामर्थ्य रूप और शब्द कहने से दूसरा परमेश्वरहुवा इनके विनां कुछ न रहेगा जब सबजीव मुक्तहोजायँगे बीच में नहीं सो अत्यन्त प्रलय वहुतदूर है संभव मात्र होता है कि अत्यन्त प्रलयभी होगा इन वचनों के देखनेसे तो बुद्धिमान् ख़याल करेंगे कि संभव मात्रसे तो निश्चय न हुआ कि निश्चयकरके अत्यन्त प्रलयहोगी तो ये वचन संदेहयुक्त हुवा दूसरा देखो कि जब सर्वजीव मुक्तहोगये तो उनके मूल कारण जो अविद्या जिससे जो पुण्य पापादिक होते हैं सो भी न रहे तो फिर सृष्टिभी न रहेगी तो फिर वह ईश्वर अपनी ईश्वरता किसको जनावेगा तो तुमकहो कि फेर वह जैसे सृष्टिथी वैसेही रचेगा तो तुम्हारा ईश्वर कर्मों के अनुसार फल देता है तो कर्मतो उन जीवोंके बाकी नहींथे तो फिर किसके फल से जन्मदेगा और फिर वो कैसी रचना करैगा जो कहो कि पहली सी रचना करैगा जब तुम्हारे ईश्वरकी दयालुता और न्यायकारीपना ऐसे हुवा जैसे आकाश का फूल हुवा—अब और भी देखो कि दशमें समुल्लास के ३०१ के पृष्ठसे लेकर ३०३ तक जो मांसखानेका विषय लिखा है सो भी हम लिखकर दिखादेते हैं ३०१ के पृष्ठमें सुवर और कुक्कुट (मुरगां) इनके मांसको तो धर्मशास्त्रकी रीतिसे खाना बुराकहा और ३०२ के पृष्ठमें जितने मनुष्यों के उपकारक पशु उनकामांस अभक्ष्य है तथा विनाहोमसे अन्य और मांस भी अभक्ष्य है तो अब इससे तुम्हारा तात्पर्य यहीहुआ कि होमकरके अन्य और मांसखाय तो शुद्ध है तबतो मांसखाने में तुम्हारीभी इच्छा होगई तबतो विचारे मुसलमान लोगों को मनाकरना और आप खाजाना तो होमकरना तुम्हारा मुसलमानों से बढ़कर ठहरा—फेर उसी पृष्ठमें लिखा है कि अच्छा एकजीव के मारने में पीड़ाहोती है सो सब व्यवहारको छोड़-देना चाहिये १ यहांसे लेकर ३०३ के पृष्ठके ५॥ वीं पंक्तितक इन्हीं बातोंकी पुष्टि होती चली आई और ६ सतरसे साफ लिखा है कि जहां गोमेधादिक लिखे हे वहां वहां पशुवोंमें नरको मारना लिखा है इससे इस अभिप्रायसे नरमेध लिखा है कि मनुष्य नरको मारना कहीं नहीं क्योंकि जैसे पुष्टि वैलादिक नरोंमें है वैसी स्त्रियोंमें नहीं है और एक बैलसे हजारहा गाय गर्भवती होती हैं इससे हानिभी नहीं होती है सोही लिखा है— " गौरनुवध्योयोगीषोमीयः" यह ब्राह्मणकी श्रुति है इसमें पुल्लिङ्ग निर्देशसे यह जाना जाता है कि बैल आदिकको मारना गौको नहीं और जो वन्ध्या गाय होती है उसकोभी गो मेधमें मारना लिखा है ॥ "स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत" ये ब्राह्मणकी श्रुति है इससे स्त्रीलिङ्ग और स्थूल पृषतीसे विशेषणसे वन्ध्या गाय ली जाती है क्योंकि वन्ध्यासे दुग्ध और वत्सादिकी उत्पत्ति होती नहीं—और इसी पृष्ठमें फिर आगे लिखा है कि "जो मांस खाय वा घृतादिकसे निर्वाह करे वेभी सब अग्निमें होमके विना न खाय क्योंकि जीवके मारनेके समय पीड़ा होती है उसका कुछ पापभी होता है. फेर जब वह अग्निमें होम करेगा तब परिमाणुसे उक्त प्रकार सब जीवोंको सुख पहुँचावेगा एक जीवकी पीड़ासे पाप हुवाथा सोभी थोड़ासा गिनाजायगा अन्यथा नहीं " ॥ अब देखो पक्षपात छोड़कर बुद्धिसे विचार करो कि उस ईश्वरने तुमको कैसे कुमार्गमें बुद्धि देकर प्रवृत्त कराया कि अन्नादिक छुड़ाय करके होमके जरियेसे मांसको खिलाया और फिर मुक्ति मार्गभी बता दिया तो वह ईश्वर क्या एक मुसलमानोंका शैतान हुवा ऐसी

ऐसी सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थोंमें धर्मसे विरुद्ध और अधर्मका हेतु अनेक बातें लिखी हैं सो जिज्ञासुके निष्प्रयोजन होनेसे कहांतक लिखें एक दिग् मात्र उनके भ्रमजालको दिखाया है ॥ (प्रश्न) अजी! आपने ऐसी २ बातें जो लिखी हैं सो वेदभूमिका दूसरी वार छपाई हुई सत्यार्थप्रकाशमें तो नहीं हैं फिर ये बातें आपने कहांसे लिखी है? (उत्तर) भो देवानो प्रिया! वेद भूमिकाके ३४१ के पत्रमें ऐसा लिखा है कि:-इस वेदभाष्यमें शब्द और उनके अर्थ द्वारा कर्मकांडका वर्णन करेंगे परन्तु लोगोंके कर्मकांडमें लगाये हुये वेद मंत्रोंमेंसे जहां जहां जो कर्म अग्निहोत्रसे लेके अश्वमेधके अन्त पर्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहां नहीं किया जायगा क्योंकि उनके अनुष्ठानका यथार्थ विनियोग ऐतरेय शतपथादि, ब्राह्मण, पूर्वमीमांसा श्रौत और ग्रह्यसूत्रादिकोंमे कहा हुवा है उसीको फिर कहनेसे पिसेको पीसनेके सम (तुल्य)अल्पज्ञ पुरुषोंके लेखके समान दोष इस भाष्यमेंभी आजा सकता है अब देखो निष्पक्ष होके जो आत्मार्थी होगा सो अपनी बुद्धिसे विचार करेगा कि दयानन्द सरस्वतीने कैसी माया चारी अर्थात् भोले जीवोंको भ्रमजालमें गेरनेके वास्ते छलरूपी वचन लिखे हैं कि अग्निहोत्रसेलेके अश्वमेधके अन्त पर्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहां नहीं किया जायगा क्योंकि जिन शास्त्रोंका हम पहले नाम लिख आये हैं उनका अर्थ किया हुवा ठीक है तो इसकोभी यज्ञोंमें पशुका होम करना उससे उपकार मानना सम्मत हुवा जो इसको पशुओंका मारना बुरा अर्थात् पाप मालूम होता तो कदापि उस अर्थको मंजूर न करता भोले जीवोंको ऐसा दिखाया कि पिसेका क्या पीसना इससे भोले जीव मेरे छलरूपी वचनको न पकडेंगे जो कि ऐसा वचन मे न लिखूं और जो यज्ञोंमें होम करना लिखूंगा तो और मतवाले अर्थात् जैनी लोग जैसे पहलेकें अर्थोंको अधर्म कहते हैं तैसेही मेरे अर्थकोभी कहने लगेंगे इस डरसे इस दूसरे सत्यार्थप्रकाशमें न लिखा और इसका हाल मुझे अच्छी तरहसे मालूम है सो भी कुछ लिखताहूं कि पहले ये १५-१६ के सालमें मथुरामें स्वामी विरजानन्द सरस्वतीके पासमें विद्याध्ययन किया करताथा सन्यासीभेषमें रहता दण्डादिक धारण करताथा फिर वहांसे जब इसकी विद्या पूर्ण हुई तो यह देशोंमें विचरने लगा तब नखदेश्वर महादेव और शालिग्रामजी इन दोनोंका पूजन करना और भस्म लगाना और रुद्राक्षका कंठा पहरना ऐसा इसका उपदेश था फिर कुछ दिनके पश्चात् किसी दादू पन्थी व कबीरपन्थीकी इसके कानमें फूंक लगनेसे फिर चौबीसके सालमें हरिद्वारके मेलामें संन्यासियोंसे कई तरहकी बात चीत होनेसे इसने दण्डादिक पुस्तकादि सबको छोड़कर एक लङ्गोटी मात्र रखने लगा तो यह तो इसने अच्छा किया परन्तु मूर्त्तिका खण्डन करने लगा क्योंकि कानमें फूंक लगी हुईथी कई वर्षतक तो इसीरीतिसे गंगा किनारे घूमता रहा और संस्कृतमें बात चीत करता एक फर्रुखाबादमें किञ्चित् इसकी दुकानदारी जमी और १९३० के सालमें कलकत्तामें गया वहांसे भाषाभी बोलने लगा और उन दिनोंहीमें ये सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ भी रचा था उस ग्रन्थकी बातें मैंने लेकर सत् असत् दिखलाया है और उसी सत्यार्थ प्रकाशमें जैनियोंके मध्ये जो इसने गप्पें लिखी हैं अर्थात् झूंठ बाते चारवाक्य मतकी लेकर और जैनियोंका मत भोले जीवोंके बहकानेके लिये बतलाया जिसके ऊपर पंजाबमें

गूजरांवाले ग्रामके एक श्रावकने दावा भी कियाथा और जो बातें इसने लिखीथीं उसका पता जब इसको पूछा तो ये पूरा पूरा न देसका और जो कि बम्बई आदिमें जैनियोंके ग्रन्थ छपे थे वोभी इसके हाथ लगनेसे इसके देखनेमेंभी वह ग्रन्थ आये जब तो इसने अपनेजीमें विचार किया कि देखो जैनी लोग तो अहिंसा धर्मको प्रतिपादन करते हैं और मैं वेदका अर्थ जो पहलेके ऋषि मुनियोंने किया है उसी यज्ञ आदिक पशुओंका मारना प्रतिपादन करूंगा तो इनके धर्मको देखकर मेरे जालमें कोई न फँसेगा तो मैंने जो आर्य्यसमाजका मत चलाया है वह क्योंकर प्रवृत्त होगा इसलिये जैनियोंके ग्रन्थको देखकर इसनेभी किञ्चित् अहिंसा धर्मके लिये वंचकपणेसे अर्थात् मायासे दूसरा सत्यार्थ प्रकाश बनाया है (प्रश्न) जो आप कहते हो कि जैनियोंका ग्रन्थ देखके पहले सत्यार्थप्रकाशके अर्थको दाबकर दूसरा सत्यार्थप्रकाश प्रवृत्त किया है तो यह जैनी क्यों नहीं होगया? (उत्तर) भोदेवानोप्रिय ! जिनको अपनी आत्माका विवेक नहीं वही मनुष्य अपने चलाये हुये मतकी पुष्टि करनेके लिये छल कपट रचेंगे और वही अपने मतको पुष्ट करना अर्थात् अपनेको जगत्में पुजाना चाहते हैं जिनके चित्तमें जगत्से पुजानेकी इच्छा है वह अपनी आत्माका अर्थ नहीं कर सकते हे दयानन्द सरस्वतीको तो जगत्में अपना नाम प्रसिद्ध करना था जो जैनी होता तो जगत्में प्रसिद्ध न होता इसलिये जैनी न हुवा आत्मार्थी होता तो वीतरागके धर्मको अंगीकार करता । (प्रश्न) भला वीतरागका धर्म अङ्गीकार न किया तो उसने जैनियोंकी निन्दा क्योंकी ? (उत्तर) अरे ! भोले भाइयो ! दयानन्द सरस्वती मसखरा छल जातिमें निपुणथा उसने अपने दिलमें विचार किया कि पहलेके मुनि ऋषि शङ्कर स्वामी आदिकोंनेभी इन जैनियोंके मध्ये हाऊकासाडर बतादिया जैसे बालकको कह देते है कि देख! यह हाऊ बैठा है तू जायगा तो तेरा नाक कान कतर लेगा इसलिये तू यहां मत जाना इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्त क्या हुवा कि अगाड़ीके मुनि ऋषि जो कि अज्ञानीथे उन्होंने जैनियोंको नास्तिक शब्दसे भोले जीवोंको जगत्में बहकाय रक्खाथा क्योंकि जो वे नास्तिकरूपी हाऊको न बताते तो उनका हिंसारूपी मांस भक्षण पशुओंका होम आदिक धर्म न चलता इसीलिये दयानन्द सरस्वतीनेभी अपने चित्तमें विचार लिया कि इन जैनी लोगोंको तो नास्तिकरूप हाऊ प्रसिद्ध न करूंगा तो लोग मेरेको नवीन मत जानके मेरे जालमें कोई न फँसेगा । इसलिये दयानन्द सरस्वतीने जैनियोंको नास्तिकरूप हाऊका डर दिखाया और स्वकपोल कल्पित अपने दिलका जाना हुआ वेद मंत्रोंका अर्थकर वेदका नाम लेकर भोले जीवोंको जालमें फँसाकर आर्यसमाज नाम आर्यमतको चलाया अर्थात् अगाड़ीके मतोंसे एक नवीन मत चलाया । (प्रश्न) आपने पहले कहाथा जैनीलोग नहीं मानते उन बातोंकोभी जैन मतके नामसे भोले जीवोंको बहकानेके लिये लिख दीनी है सो वह बातें कौन सी हैं? (उत्तर) द्वादशसमुल्लासके ४०२ के पृष्ठमें २० पंक्तिसे जो चारवाककी बनाई हुई बातें लिखकर ४३० के पृष्ठ तक पांच भूतोंसे चैतन्य अतिरिक्त नहीं है उनसे एक चैतन्य नवीन उत्पन्न हो जाता है ऐसी बातें न तो जैनियोंने पहले मानी है न अब कोई जैनी मानता है और न अगाड़ी कोई जैनी मानेगा जब तीन कालमें जैनियोंके नहीं तो फिर उसने जैनियोंका नाम लेकर लिखदिया अब तुमहीं

विचार करो कि ये झूंठ नहीं तो सत्य क्योंकर हो सकती है और जो उसने दूसरे सत्यार्थ प्रकाशमें सप्तभंगीके बारेमें लिखा है कि अन्योन्यभावमे काम होजाय तो सप्तभंगीका मानना व्यर्थ है तो इसका वर्णन तो हम चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखेंगे सो वहांसे जिसकी इच्छा होवे सो देख लेना परन्तु दयानन्द सरस्वतीको तो कहांसे इसके अभिप्रायकी मालूम हो किन्तु इनके शारीरिक सूत्रके बनानेवाले अच्छे २ विद्वानों को ही अभिप्राय ज्ञात न हुवा क्योंकि जो मनुष्य जिस वस्तुका प्रतिपादन करेगा अर्थात् विधि जानेगा तब ही वह निषेध करेगा क्योंकि बहरेको गीत सुनाना फिर उससे पूछना कि इसका राग क्या है तो जब वह सुनताही नहीं है तो राग कहांसे बतलायेगा और देखो कि नवकारका अर्थ भी अपनी मन कल्पनासे बनायकर भोले जीवोंको बहकाता है (प्रश्न) वो क्या नवकारका अर्थ इसने कल्पना करके बहकाया है ? (उत्तर) वह नवकार यह है " णमो अरिहंताणं ॥ १ ॥ णमो सिद्धाणं ॥ २ ॥ णमो आयरियाणं ॥ ३ ॥ णमो उवज्झयाणं ॥ ४ ॥ णमो लोये सव्वसाहूणं ॥ ५ ॥ एसो पंचणमुक्कारो ॥ ६ ॥ सव्वपावप्पणासणो ॥ ७ ॥ मंगलाणंच सव्वेसिं ॥ ८ ॥ पढमंहवइ मंगलं ॥ ९ ॥" अब विवेकी बुद्धिमान् जो पुरुष होय सो इसका विचार करो कि जिन पद इस अक्षरोंमे तो है नहीं और दयानन्द लिखता है कि यद्यपि जिन पद इसके अर्थमें जोड़ना जरूर चाहिये अब देखो कि जैसा दयानन्द सरस्वतीने जो ईश्वरको माना है उसके मंत्रोंका अर्थ बनालिया और अगले अर्थ करनेवालोंको झूठा करदिया तो वो ईश्वरतो निराकार घोड़ाके सींगके समानथा उसके मंत्रोंका अर्थ तो इसकी मन कल्पना नुसार भोले जीवोंने मान लिया परन्तु जैनियोंका ईश्वर तो सर्वज्ञ वीतराग निष्पक्षपाती जगत्बन्धु, जगद्गुरु, उपकारी, दयालु, ३४ अतसे ३५ वाणी महा प्रतिहार्ज संयुक्त त्रिगडामें विराजमान् चार निकायके देवतो करके सव्यमान ६४ इन्द्र चमर ढोलते हुये चतुर्विद सिह २ पर्षदाके सामने साक्षात् त्रिलोक्यको जानने वाला प्रत्यक्ष देशना देता हुवा ऐसे ईश्वरके वाक्यमे दयानन्द सरस्वतीकी मिथ्या कल्पना कदापि सिद्ध न होगी इत्यादिक अनेक बातें मिथ्या स्वकपोल कल्पित लिखी हैं उसको हम कहां तक लिखे एक दिङ्मात्र दिखा दीनी है इन्ही बातोंके देखनेसे विवेकी बुद्धिमान् आत्मार्थी पुरुषो विचारलेना (प्रश्न) वह हाऊकी मसल संसारमें सब कोई देते हैं सो इस मसलका तात्पर्य्य क्या है जिससे बाल जीव डर जाते हैं (उत्तर) भो देवानो प्रिय! वो इस मसलके दृष्टान्त तो दो हैं परन्तु इस जगह एक देता हूं वह मसलका दृष्टान्त यहहै-कि किसी नगरमे एक धनाढ्य (साहूकार) था, उसके सन्तान नहीं होता था सो एक दिन उसको कोई महात्मा मिला उससे वह गृहस्थी कहने लगा कि महाराज मेरे सन्तान नहीं है कोई ऐसा उपाय बतावो कि जिससे मेरे सन्तान हो इतना वचन सुन महात्मा कहने लगा कि भो देवानो प्रिय! तू घबरावे मति तेरे सन्तान होगा परन्तु छोटी उमरमें साधूकी सुहबत पायकर साधु हो जायगा जब गृहस्थी कहने लगा कि महाराज साधू न होनेका तो उपाय मैं कर लेऊंगा अर्थात् साधू नहीं होनें दूंगा परन्तु सन्तान होना चाहिये महात्मा कहने लगा कि हो जायगा इतना कहकर महात्मा तो चला गया और कुछ दिन पश्चात् उसके सन्तान हुवा जब वह पांच तथा सात वर्षका हुवा उसके पहले ही उसको हाऊका डर तो उसे बताही रक्खाथा फिर उससे कहने लगे

कि देख तू बाहिर जाता है परन्तु वह जो एक प्रकारके साधु होते हैं नङ्गाशिर नङ्गापैर और झोली पात्तरा भी रखते हैं एक मोटा सा झव्वा अर्थात् " रजो हरण" और हाथमें मुखपत्ति रखते हैं उन लोगोंके पासमें नहीं जाना उनके पासमें छुरी, कतरनी रहती हैं सो वे नाक कान कतर लेते हैं सो इसलिये उनके पासमें नहीं जाना ऐसा उस लड़केके चित्तमें डर रूपी हाऊ बैठा दिया अब वो लड़का जब किसी ऐसे साधु महापुरुषको देखे तब घरमें भग जाय एक दिन ऐसा हुवा कि साधु मुनिराज गोचरी लेकर अर्थात् भिक्षा लेकर वस्तीके बाहर जाताथा उधरसे वह लड़का अताथा उस साधूको देखकर वस्तीके वाहिर भगा और साधू भी उसी मार्ग हो करके चलने लगा जब वह लड़का पीछे फिरके देखता जाय और अगाड़ी को भागता और साधू भी उसके पीछे अपनी इरियासुमती शोधता हुवा चला जाताथा जब तो लड़केने अपने दिलमें पुख्ता जानलिया कि जो मेरे माँ बाप कहते थे सो आज ये जरूर मेरे नाक कान काटेगा ऐसा विचारता हुवा वह एक बड़के दरख्तके ऊपर चढ़गया साधु मुनिराज भी एकान्त जगह देख कर उसी पेड़ के नीचे जाकर बैठ गये और अपनी क्रिया करने लगे जब तो उस लड़के ने सोलह आना अपने चित्त में विचार लिया कि आज यह दुष्ट मेरे नाक कान अवश्य कतर लेगा अब इस दुःख से कैसे बचूंगा परन्तु ऊपर से नीचेको निगाह किये हुवे उस साधुकी क्रियाको देखता रहा जब उस साधुने झोरी पात्रा खोलकर भोजन करना आरम्भ किया तब उस लड़के ने विचारा कि इसके पास में छुरी कतरनी तो नहीं दीखे हैं और यह तनक २ बातमें अपने झव्वा से पृथिव्यादिक को पोंछता है अर्थात् कीड़ी आदिको अलग करता है तो येतो कोई दयालु महात्मा दीखता है मेरे घरवालों ने कोई मेरेको इनकी संगत करने के ताईं धोखा दिया है ऐसा विचार कर कि जो कुछ होने वाली है सो तो मिटेगी नहीं तो यहां इस पेडके ऊपर कबतक बैठा रहूंगा ऐसा विचार करके उस पेड से नीचे उतरा और उस मुनिराज को शांतरूप देखकर नमस्कार किया उस समय उस मुनिराज ने अमृतरूपी 'धर्म लाभ' सुनाकर उपदेश देकर उसके जो चित्त में डरथा सो दूर करदिया तबतो वो लड़का अमृतरूपी उपदेश के अक्षरों को पानकर अर्थात् कानों में श्रवण कर अमर होने की इच्छा करता हुवा कि अहो तरण तारण नि-ष्कारण परदुःख निवारण मेरेको आत्मस्वरूप प्रगट कराने के लिये अपने चरण कमलों की सेवा में रक्खो जिससे मैं कृतार्थ होजाऊं और मेरा जन्म मरण रूपी दुःख जो है उससे निवृत्त होजाऊं आज तक जो मेरे माता पिताने मायाजाल में फँसा कर आप लोगोंको डररूपी 'हाऊ' जो बैठारा था सो आज मेरे चित्तसे आपके दर्शन करने से वह हाऊ रूप डर उठ गया फिर वह लड़का अपने घर जाय कर अपने माता पिताको उपदेश देकर निज मत में दृढ़कर आप दीक्षा लेकर अपनी आत्माका कल्याण करता हुवा ॥ इसी दृष्टान्त से बाल जीवों को जैन मत नास्तिक रूप हाऊ बनाय कर डर दिखाय दिया है इसलिये इस डर से बाल जीव जैनियों का संग कम करते है जिस किसी भव्य जीव का कल्याण होनेवाला होगा उसको कैसा ही कोई बहकावो परन्तु जिन धर्म का अवश्यमेव संग हो जायगा ।

(प्रश्न) आपने प्राचीन सत्यार्थप्रकाशकी वातें कहीं परन्तु नवीन सत्यार्थप्रकाशमें ऐसी वातें नहीं है (उत्तर) भोदेवानप्रियो ! तुमने जो प्रश्न किया सो तो ठीक है परन्तु नवीन सत्यार्थप्रकाश जो सरस्वती जीने पीछेसे मायावी तस्कर वृत्तिसे लिखा है उसका जो तुम इस जगह निर्णय लिखोगे तो यह ग्रंथ बहुत भारी हो जायगा और संपूर्ण तुम्हारे प्रश्नोंके उत्तर न लिख सकोगे इसलिये इसको पूर्ण करके जो तुम्हारी नवीन सत्यार्थ प्रकाशके जालको देखनेकी इच्छा होय तो जो कुछ हमने स्याद्वादनुभवरत्नाकरमें तुमको लिखाया है इसको और नवीन सत्यार्थप्रकाशका जो निर्णय पीछेसे लिखावें उन दोनोंको मिलायकर दयानन्द मत निर्णय अर्थात् नवीन आर्यसमाज भ्रमोच्छेदनकुठार इस नामका ग्रंथ जुदाही छपाय देना इसलिये इस ग्रंथके वढ़ जानेके भयसे विस्तारसे सर ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य मुनि चिदानन्द स्वामी विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीयप्रश्नोत्तरान्तर्गत दयानन्द मत अर्थात् नवीन आर्य्यसमाज निर्णय समाप्तम् ॥

॥ अथ यवनीय अर्थात् मुसल्मानीय मत निर्णय ॥

दयानन्दीय आर्य्यसमाजके अनन्तर इन्हींके भ्रातृवर्गरूप "कुरानीमत" मुसल्मानों का है जोकि मुहम्मदसे चला है अर्थात मुहम्मद इनका पैगम्वर हुवाहै उसनेही जंगली लोगों अर्थात् अरवीलोगों को बहकायकर कुरानी मत चलाया यहभी ऐसा कहता है कि खुदाके सिवाय और कुछ वस्तु न थी ज़मीन आसमान वगैरह सब उस खुदाने बनाये हैं ऐसा उनकी कुरान में लिखा है कि जो आसमान और भूमिका उत्पन्न करनेवाला है जब वह कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि होजा (म० १ सि० सू० २ आ० १०८) इस में ऐसा लिखाहुआ है। अब हम तुमको पूछते है कि आसमानके विदून खुदा कहां रहताथा ? जो तुम कहो कि चौदवें तवकपर रहताथा तो विना आकाशके वह चौदवां तवक कहांथा ? तो यह तुम्हारा कहना कि खुदाने आसमान बनाया असंभवही है फिर हम तुमको पूछते हैं कि वह चौदवें तवकपै किस चीज़पर बैठाथा जो तुम कहो कि कुरसीपर बैठाथा तो कुरसी खुदाने बनाईथी या कुरसीने खुदाको बनायाथा जो खुदाने कुरसी बनाईथी तबतो पेश्तर वह किसपर बैठाथा और जो कुरसीने खुदाको बनाया जबतो उस खुदा का माननाही व्यर्थहुवा कुरसी कोही खुदामानों तो कुरसी तो जड़ पदार्थ है अब यहां न तो तुम्हारा खुदा ठहरा और न उसका कुरसी पर बैठना ठहरा दूसरा हम तुमसे यह पूछते है कि तुम्हारा खुदा कहता है उससे कि होजा ऐसा शब्द किसने सुना था और जब किसीने सुना नही तो तुमने कुरानमें क्योंकर लिखा जो तुम कहो कि हमने सुना था तब इस तुम्हारे कहनेसे तो सृष्टि

पहले ही हो गई फिर खुदाने क्या रचाथा इसलिये तुम्हारे कहनेसेही तुम्हारी बात गलत होती है ? दूसरा अब हम यह भी पूछते हैं कि जब खुदाने सृष्टि रचीथी उस समय दूसरा तो पदार्थ कोईथा नहीं फिर यह सृष्टि क्यों कर रची गई क्योंकि बिना कारणके कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती जो कहो कि उसकी कुदरतने सृष्टिको रचादिया तो हम तुमको पूछते हैं कि वह कुदरत किसको दिखानीथी क्योंकि जब कोई दूसराथाही नहीं तो कुदरत किसको दिखानाथा जो तुम कहो कि कुदरत रूहोंको दिखलाईथी तो रूह तो पेश्तरथी ही नहीं पीछेसे उत्पन्न किया जो तुमकहो कि नहीं साहब खुदाने हमें पैदा कियेके बाद हमसे कहा कि ये कुदरत हमारी है तो हम जानते हैं कि वह खुदा नहीं होगा किन्तु वह शैतान होगा सो अपने मनानेके तईं अपनी बडाई करता होगा भोली रूहें तो उसके फन्दमें आगई और जो रूह उसके फन्दमें न फँसी उनहीको उसने कह दिया कि यह शैतानके बहकाये हुवे काफ़िर हैं अरे भोले भाइयो कुछ विचार तो करो कि जो कुदरत वाला खुदा होता तो उसके हुक्मके वरखिलाफ वह शैतान और काफिर रूह क्यों चलती। अब और भी देखो कि " जिसने तुम्हारे वास्ते पृथ्वी बिछोना और आसमानको छत बनाया (मं० १ सि० १ स० २ आ० २१) " अब हम पूछते हैं कि भला उसने छत तो बनाई मगर थम्बा किसका बनाया था और जो कहो कि वैसेही खड़ी रही तो यह बात अप्रमाणिक है कि विना थम्बाके छत कहीं रह सके ? अब क्या वह खुदा कहीं चला गया जो बिना थम्बेके तुम्हारी मसाजिद आदिक न बनी " और आनन्दका सन्देशादे उन लोगोंको जो कि ईमान् लाये और काम किये अच्छे यह उनके वास्ते विहिश्त है ; जिसके नीचे चलती हे नहरें जब उसमेंसे मेवेके भोजन दिये जांयगे तव कहेंगे कि वह वस्तु है जो हम पहले इससे दिये गयेथे और उनके लिये ये पवित्र बीवियाँ सदैव रहनेवाली हैं (मं०१ सि० १ सू० २ आ० २४) " अब हम तुम्हारी विहिश्तकी क्या शोभा करें कि जिस जगह मेवाखानेको मिलता है और जिसके नीचे नहर वहती हैं अर्थात् जलभी उस जगह बहुत है तो हम जानते हैं किसी जंगली मनुष्यने काबुलके जंगलकी बाते सुनी होंगी क्योंकि उस जगह मेवा होता है उसहीको विहिश्त मान लिया दीखे अगर जो तुम कहो कि जो खुदापर ईमान लाता है उसीको विहिश्त मिलती है तो उस जगहमें तो पशु पक्षीभी बहुत रहते हैं तो हम जानते हैं कि तुम्हारे खुदाने उन हैवानोंहीके वास्ते ईमान दिया दीखे है जो कि बुद्धिमान् पुरुष होगा वो तो ऐसे जंगली खुदापर कभी ईमान न लावेगा और फिर तुम्हारा खुदा लिखता है वहां वह वस्तु है कि जो हम पहले इससे दिये गये थे और उनके वास्ते पवित्र बीबियाँ भी सदैव रहने वाली हैं तो अब हम तुमसे पूछते है कि ऐसी क्या वस्तुथी कि जो खुदाने पेश्तर दीथी और जबतक कोई ईमान न लायेंगे तो उन बीबियोंको कौन भोगेगा तो हम जानते हैंकि वो खुदाही इनसे भोग करता होगा तो वो खुदा क्या ठहरा किन्तु कृष्णलीला करता होगा। फिर लिखते है कि आदमको सारे नाम सिखाये फिर फरिश्तोंके सामने करके कहा जो तुम सच्चे हो मुझे उनके नाम बतावो ? कहा हे आदम! उनको उनके नाम बतादे तब उसने बतादिये तो खुदाने फरिश्तेसे कहा कि क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निश्चय मैं पृथ्वी और आसमानकी छुपी वस्तुओंको और प्रगट

छुपे कर्मोंको जानता हूँ " (मं० १ सि० १ सू० २ आ० २९-३१) " अब देखो खुदा क्या था बड़ा धोखेबाज था क्या शैतानोंको ऐसा दम देकर उनको धमकाने लगा और अपनी बड़ाई अपने मुँहसे करके और अपनी हुकूमत जमाने लगा क्या इस रीतिसे भी धोखा देकर हुकूमत जमती है तो ये बातें खुदाकी नहीं कि दूसरेसे किसी का हाल पूछकर फिर अपनी सर्वज्ञता जताना यह काम धूर्त्तोंका है नकि सत्पुरुषोंका और भी देखो जब हमनें फरिश्तोंसे कहा कि बाबा आदमको दंडवत् करो देखो सबोंने दंडवत् किया परन्तु शैतानने न माना और अभिमान किया क्योंकि वह भी काफ़िर था " (मं० १ सि० १ सू० २ आ० ३२) " अब देखो यहां विचार करो कि वह खुदा बड़ा बे समझ था क्योंकि जिसने उसका हुक्म न माना उस शैतानको पैदा किया और उसका तेज भी उस शैतान पर न पड़ा और खुदाके हुक्मको न अंगीकार किया जब तो उस शैतानने उस खुदाका छक्का छुड़ा दिया तो हम जानते है कि तुम्हारे मुसल्मानोंसे भिन्न जो करोडों काफिर हैं उस जगह उस खुदा और मुसल्मानोकी तो क्या चल सकती है "हम ने कहा कि ओ आदम ! जो तेरी रूह बिहिश्तमें रहकर आनन्दमें जहां चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्षके; कि पापी हो जावोगे । शैतानने उनको डिगाया कि और उनका आनन्द खो दिया, तब हमने कहा कि उतरो तुम्हारे में कोई परस्पर शत्रु हे, तुम्हारा ठिकाना पृथ्वी है और एक समयतक लाभ है आदम अपने मालिककी कुछ बातें सीखकर पृथ्वी पर आगया ॥ (मं १ सि० १ सू० २ आ० ३३-३४-३५) " अब देखो तुम्हारे खुदाकी कैसी अज्ञानता है कि हालही तो स्वर्गका आशिर्वाद दिया और थोडीसी देरमें कहने लगा कि तुम यहांसे निकल जावो अब देखो जो वो सवाबवाला होता तो क्यो तो रहनेका हुक्म देता और क्यों निकालता और जो सामर्थ्यवाला होता तो उस बहकानेवाले शैतानको दण्ड देता अब देखो यह तो ऐसा हुवा, कि (मसला) "निर्वलकी जोरू सबकी भाभी" उस शैतानके साथ तो कुछ न बन पड़ी और विचारे आदमको निकाल दिया गोया कि 'कुम्हारीके बजाय गधियाके कान ऐंठे"—और जो उसने वृक्ष उत्पन्न कियाथा वह किसके लिये कियाथा क्या अपने लिये, या दूसरेके लिये; जो दूसरेके लिये तो उसको क्यो रोका ? अब देखो ऐसी बातोसे तो वह खुदा नपुंसक और अज्ञानी ठहरता है क्योकि शैतानको सज़ा देनेमें वह कमजोर अथवा नपुंसक हुवा और अज्ञानी इसलिये हुवा कि वह नहीं जानताथा कि दरख्त किस लिये उत्पन्न करूं क्योंकि आदमको तो ज़मीनपर भेज दियाथा फिर वह वृक्ष काट डाला गयाथा या रक्खा गयाथा जो काट डालाथा तो पहले क्यो बनायाथा क्या विचारे, आदमको दुःख देनेके लिये जो रक्खाथा तो फिर खुदा जिस किसीको उस बिहिश्तमें भेजेगा उसीको वह शैतान बहका देगा तो फिर खुदा उसको ज़मीनपर गिरा देगा तब तो उस खुदाने जाल रचा है छी ! छी ! उस खुदाको कि वृक्षका वा शैतानका कुसूर लगाय कर उसे बिहिश्तमें न रहने दे क्या वहां अच्छी २ बीबियां रहती हे इसलिये दरख्त रचकर ग़रीबोंको धोखा दिया वह खुदा क्या है एक शैतानोंका जमादार है "और देखो कि:—इस तरह खुद मुर्दोंको जिलाता है और तुमको अपनी निशानियाँ दिखलाता है कि तुम समझो ॥ (मं० सि० १ सू० २ आ० ६७) अब जो खुदा मुर्दोंको जिलाता है तो वो

क्या अभी सोता है क्या शैतानसे डरता है कि मुसल्मानोंके मुर्दोंको जिलाऊंगा तो शैतान मुझको कूटेगा (मारेगा) इसवास्ते अभी नहीं जिलाता है तब तो खुदाभी डरता है तो उस खुदासे शैतान और काफ़िर लोग जबरदस्त ठहरे कि जो तुम्हारे खुदाकोभी डरा दिया इसलिये इस खुदाको छोड़ कोई दूसरा खुदा मानों जो किसीसे न डरे-औरभी तुम्हारी गप्पें देखो कि-"आनन्दका संदेशा ईमानदारोंको अल्लाह, फ़रिश्तों, पैगम्बरों, जबराईल, और मीकाईलका जो शत्रु है अल्लाहभी ऐसे काफिरोंका शत्रु है ॥ (मं० १ सि० १ सू० २ आ० ९०)" इस कहनेसे तो कुरान खुदाकी बनाई हुई नहीं किसी निर्विवेकी पुरुषका बनाई हुई है क्योंकि खुदाकी बनाई हुई होती तो तुम लोग सृष्टिभी तो खुदाकी रची मानते हो तो तुमही विचार करो कि कौन उसका शत्रु है और कौन उसका मित्र है किन्तु उसके तो सब बराबर हैं जो उसकेभी शत्रु मित्र हैं तो वो न्याय-कारी नहीं और पक्षपाती हुवा और शरीरवालाभी हुवा जब शरीरवाला हुवा तो जो तुम कहते हो कि खुदा शरीर रहित है यह तुम्हारा कहना व्यर्थ हुवा जो तुम कहो कि अच्छेको मित्र बनाता है और बुरेको शत्रु मानता है तो जब वह शत्रु मानता है तो उनके ल-ड़नेके वास्ते फौजभी इकट्ठी करेगा फौज इकट्ठी करेगा तो खर्चा कहांसे लायेगा हम जानते हैं कि इसीलिये कुरानमें "(मं० २ सि०६ सु०५आ०१०)" में ऐसा लिखा है कि "और अल्ला-हको अच्छा उधार दो अवश्य मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुमको बिहिश्तमें भेजूंगा" और कहीं ऐसाभी लिखा है कि मुहम्मदकोभी खुदाने साझी कियाथा तो हम जानते हैं कि उधार लेनेकोही साझी किया होगा तो ऐसे शत्रु खुदाने क्यों बनाये कि जिनके वास्ते फौज रखनी पड़ी और क़रज़ा लेना पड़ा जब तो खुदाने सृष्टी क्या रची एक पत्थर फेंककर अपना शिर मार लिया तो खुदा तो एक बड़े जाल में फँस कर बड़ी आफ़त में फँस गया और देखो कि ऐसा लिखा है, "ऐसा न हो कि काफ़िर लोग ईर्षा करके तुमको ईमान फेर देवें क्योंकि उन में से ईमानवालोंके बहुत से दोस्त हैं ॥ (मं० १ सि० १ सू० २ आ०१०१)" अब देखो कि पहले तो उस मूर्ख खुदाने उन काफ़िरोंको पैदा किया और फिर धोखा उठा कि ईमान्दारों को ईमानसे डिगादें तो पैदा क्यों कियाथा इस कहनेसे तो खुदा अज्ञानी महामूर्ख मालूम होता है इसलिये अब दूसरा खुदा मानो जो तुम्हारा कल्याण हो और देखो कि "तुम जिधर मुँह करो उधर ही मुँह अल्लाहका है (मं० १ सि० १ सू० २ आ० १०७)" अब यहां विचार करो कि जब अल्लाहका मुँह सब तरफको है तो फेर तुम लोग सिर्फ पश्चिमकी ओर ही मुँह करके नमाज़ क्यों पढ़ते हो और फिर तुमतो मूर्तिपूजन अर्थात् बुतको बुरा समझते हो तो फिर तुम्हारा जो बड़ा भारी बुत अर्थात् मसजिद काबेकी तरफ़ बनाना और उसी बुतमें जाकर नमाज़ पढ़ना जब तो वह तुम्हारा खुदा एक देशी होगया अर्थात् उस बुतमें ही जायकर बैठ गया जब तो तुम्हारा यह कहना ऐसा हुवा कि गधेका सींग कि जिधर तुम मुँह करो उधर ही अ-ल्लाहका मुँह है अब और भी देखो कि जब खुदाका मुँह चारों तरफको था तब तो वह सोता कैसे था और जो सोवेगा तो एक तरफका नाक मुँह वग़ैरह सब टूट जायगा इसलिये हम जानते हैं कि मुहम्मदने किसी पुराणीकी सोहबत कर ब्रह्माका नाम सुन करके अपनी

कुरानमें भी लिख दिया कि खुदाका मुँह चारों तरफ है ऐसी बातें सुनकर कुरानको बना लिया तो हम जानते हैं कि बिचारे भोले जीवोंसे धन छीननेके वास्ते ऐसी ऐसी गप्पें ठोकदी हैं अब और भी देखो "जब हमने लोगोंके लिये काबेको पवित्र स्थान सुख देने वाला बनाया तुम नमाजके लिये इब्राहीमके स्थानको पकड़ो ॥ (मं० १ सि० १ सू० २ आ० ११७) " अब देखो कि पेश्तर तो खुदाने कहा कि जिधर तुम मुँह करो उधर मेरा मुँह है और दूसरी जगह कहने लगा कि हमने काबेको पवित्र स्थान बनाया तो जब तक काबेको पवित्र नहीं बनाया था तो पेश्तर अपवित्र स्थानमे क्योंकर तुम्हारा खुदा रहाथा क्या पहले उसको स्थान बनानेका स्मरण न हुवा तो खुदा भी हम जानते हैं कि बैठा२ सोचही करता रहता है अब क्या करूं " और देखो जो लोग अल्लाहके मार्गमें मारे जाते हैं उनके लिये यह मत कहो कि यह मृतक हैं किन्तु वे जीते हैं (म० १ सि०२ सू० २ आ० १४४)" क्या अफसोसकी बात है कि खुदाके मार्गमें मरने मारनेकी क्या जरूरत है इससे साफ मालूम होता है कि कुरान खुदाका बनाया हुवा नही है किसी मतलबीने अपने मतलब सिद्ध करनेके वास्ते ऐसी बातें लिखदी हैं कि लोभ देनेसे खूब लड़ेंगे और जो ऐसा खुदाकि नामका धोखा न देते तो वे लोग उसके साथ कदापि न लड़ते उसका मतलब सिद्ध न होता इसलिये उस मतलबीने बिचारे उस खुदाको क्यों निर्दयी ठहराया अब और देखो "(म० १ सि०२ सू० २ आ० १७४, १७५, १७६, १७९,) इसमें लिखा है कि अल्लाहके मार्गमें लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं, मारडालो तुम उनको जहां पावो, कतलसे कुफ्रबुरा है। यहां तक उनसे लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाहका, उन्होंने जितनी जियादती तुमपर, करी उतनी ही तुम उनके साथ करो" ॥ अब देखो जो तुम्हारा खुदा ऐसी बातें न कहता तो मुसल्मान लोग अन्य मतवालोंको इतना न सताते विना अपराधके मारना उन बिचारोंका खून उस खुदा और खुदाके बहकाने वालोंपर होगा क्योंकि जो तुम्हारे मतको ग्रहण न करेगा उसीको तुम "कुफ्र" कहते हो उसके कतल करनेमें तुमको वा तुम्हारे खुदा-को जरा भी रहम न आया तो खुदाने पहले ही ऐसा विचार क्यों न किया कि ये कोई तो मेरा कहना न करेंगे तो उनको क्यों रचाया और देखो" (मं० १ सि० ५ सू० ४ आ० ९०, ९१, ९२) अपने हाथोंको न रोके तो उनको पकड़लो और जहां पावो मारडालो ॥ मुसल्मानोंको मुसल्मानका मारना योग्य नहीं जो कोई अनजानेसे मारडाले बस एक गर्दन मुसल्मानको छोड़ना है और खून बहा उन लोगोंकी ओरसे हुई जो उस कौमसे हुवे तुम्हारे लिये दान करदेंगे जो दुश्मनकी कौमसे हैं ॥ और जो कोई मुसल्मान जानकर मारडाले वह सदैव काल दोजखमें रहेगा उसपर अल्लाहका क्रोध और लानत है" अब इस लिखावटको देखनेसे बिल्कुल पक्षपात और अन्यायकारी दीखती है क्योंकि मुसल्मानके मारने से तो उसको दोजख मिलेगा अर्थात् नरक मिलेगा और मुसल्मान से अतिरिक्त लोगों को मारने से बिहिश्त अर्थात् स्वर्ग का मिलना इनदोनों बातों को जोकोई बुद्धिमान् विचारेगा तो कदापि इस कुरानको खुदाका वचन न मानेगा ॥ अब देखो ऐसा लिखा है कि " निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथ्वी को छःदिन में उत्पन्नकिया फिर करारपकड़ा अर्शपर दीनता से अपने मालिकको पुकारो ॥(मं०२

सि० ९ । सू० ७ आयत ५३, ५६)" अब देखो जब खुदाने छः दिनमें जगत्को बनाया फिर अर्श अर्थात् ऊपर के आकाश में सिंहासन के ऊपर आरामकिया तो भला अबदेखो विचारतो करो कि पेश्तर तो हम आगे तुम्हारी कुरानकी साक्षी देकर लिखआये हैं कि ऐसा तुम्हारे कुरान में लिखाहै कि होजा तो अबदेखो कि एकजगह तो ऐसा कहना और फिर दूसरीजगह यह कहना कि छः दिनमें खुदाने रचाथा अब देखो कि एकहीपुस्तक में केतरह की बात होगई जब खुदा को इतनाही ज्ञान न था कि मै पहले क्या कहताहूं और पीछे क्या कहताहूं तो फिर वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ क्योंकर होसकता है और फिर वह किसी को बिहिश्त और किसी को दोज़ख़ क्योंकरदेगा, किस ज्ञानसे देगा और छःदिन में जब जगत्को रचा तबतो वह विचाराखुदा मज़दूर ठहरा और मज़दूरहोता है सो अलबत्त थक जाता है तो खुदा भी तुम्हारा थका और आराम किया वह कितने दिनतक सोतारहा और फिर कब उठा क्या अभी सोताही है जो वह अभीतक सोता है तो तुम्हारी नमाज़ अर्थात् बांग उसको जगादेगी तबतो क्रोधितहोकर तुमको भी शैतान न बनादे इसलिये हमको तुम्हारा तरस आता है तुमको बार २ समझाते हैं कि खुदा को छोड़कर कोई सर्वज्ञ पक्ष-पातरहित दयालु खुदाको अङ्गीकार करो जिससे तुम्हारा कल्याणहो अब तुम्हारे कुरानकी बातें कि जो गप्पैं हैं सो तो हम कहांतक लिखें किन्तु युक्तिसे सृष्टिके मध्ये फिरभी पूछते हैं सो कहो जो तुम खुदाके सिवा और कोई कारण नहीं मानतेहो तो यह तुम्हारा कहना खुदाको बहुत कलंकित करता है जो कहो कि खुदाको जगत् के रचनेमें क्या कलंक लगता है सो कहो तो हम कहैंहैं कि विना उपादान कारणके कार्य होवे नहीं तो खुदा क्योंकर जगत् रचसक्ता है जो तुम कहो कि खुदा सर्व शक्तिमान् है विना उपादान के ही रचसकता है तो हम तुमको पूछैंहैं कि खुदाकी शक्तिहै सो उससे भिन्न है वा अभिन्न है जो कहो कि भिन्नहै तो जड़ है कि चेतन है जो कहो कि जड़है तो नित्य है वा अनित्य है जो कहो कि नित्यहै तो अव्वल तो वह शक्ति तुम्हारी जड़है तो जड़से तो कोई कार्य सिद्ध नहींहोता अगरकहो कि खुदाकी कुदरत है तो हम पूछते हैं कि जगत् जबतक नहींरचाथा उसके पहले एकखुदा के सिवाय और कुछ नहीं था फिर कहतेहो कि उस खुदाकी नित्य शक्ति ने सृष्टिरची वह शक्ति ठहरी नित्य तो यह तुम्हारा कहना कि खुदाके सिवाय कुछनहींथा ऐसाहुवा कि जैसे उन्मत्त पुरुषके वचन में किसीको प्रतीत न हो तुम्हारे वचनने तुम्हारेकोही क़ायलकिया अगर कहो कि वह शक्ति अनित्य है शक्ति का उपादान कारण कोई और खुदाकी शक्ति मानों फिरभी उसकेतईं और कोई शक्तिमानों इसरीतिके शक्ति मानने में तुम्हारी किसी शक्तिका पता न लगेगा जो कहो कि वह चेतन है तो वहभी फिर नित्य है कि अनित्य है इसीरीति से अगर विकल्प हम करैंगे तो फिरभी तुमको यही दूषण प्राप्तहोंगे जो कहो कि अभिन्न है तबतो सर्ववस्तु खुदाही कहागया बिहिश्त क्या और दोज़ख़ क्या ईमानदार और काफ़िर फ़िरस्ता और शैतान पैग़म्बर, बीबियां और पुरुष, नहर, आसमान, पृथ्वी, चोर और साहूकार, बदमाश, ज्वारी, रंडीबाज, नाई, धोबी, तेली, तम्बोली, भंगी, चमार, बला-ई, गाय, भैंस, छेरी, भेड़, हाथी, घोड़ा, ऊंट, कुत्ता, स्याल, बिल्ली, डरपोक, बहादुर, सिं-ह, हिरन, बाज, बटेर, कबूतर, मक्खी, मच्छर, डांस, पतंग इत्यादिक अनेक खुदाही गड-

शूर बनगया—छी ! छी ! ! छी ! ! ! क्या खुदा है क्यों नाहक उसको हैरान करके क्यो कलंकित करते हो जब वो खुदाही जगत् बन बैठा तो कुरान किसके वास्ते बनाई थी और किसको उपदेश देना था तबतो इस खुदाने जगत् क्या रचा अपना आपही सत्यानाश करलिया अब जितने दुःख होते है सो खुदा कोही होते हैं और जो कि कुरानमें लिखा है कि काफ़िरोंको जहां पावो वहांही क़तलकर डालो उनको जिन्दा मत छोड़ो अब देखो सिवाय खुदाके और तो कोई दूसरा इस जगतमें है नहीं जगतमें खुदाही खुदा है तो खुदाने खुदाओंको मारनेके वास्ते हुक्म दिया जब वह खुदा तो मारें जांयगे तब तुम किस पर ईमान लाओगे कौन बिहिश्त देगा किसकी नमाज़ पढ़ोगे इसलिये हे भोले भाइयो ! जो तुम्हारेको तुम्हारा कल्याण करना है तो—"अहिंसा परमो धर्मः" ऐसा जोपरूपक वीतराग सर्वज्ञ सर्व उपकारी दीनबन्धु दीनानाथ उस ईश्वरको अंगीकार करो इन कुरानियोंकी सुहबत अर्थात् पोपोंकी सोहबत छोड़कर अपनी आत्माका अर्थ करो, औरभी देखो कि तुम्हारे खुदाने मुहम्मदसे पहलेभी कई पैगम्बरोंको पैदा कियेथे और उनको अपना साझी बनायाथा जब उनसे साझेमें झगड़ा पड़गया तब मुहम्मदको पैदा करके अपना साझी बनाया उस खुदाकी क्या मजेकी बात है कि किसीको आगसे और किसीको नूरसे और किसीको मट्टीसे अर्थात् शैतानको अग्निसे फ़रिश्तोंको नूरसे और पैग़म्बर आदिको मट्टीसे बनाया अब जो नूर और आगसे बनाये हुवोंको छोड़कर मट्टीसे बनानेवालेको साझी किया तो वह खुदाभी हम जानें मट्टीसेही पैदा हुवा दीखे क्योंकि अपने सजातीयसे सब कोई प्रीति करता है विजातीयसे कोई नहीं मोहब्बत करता हैं तो इससे तो मालूम होता है कि तुम्हारा खुदाभी आकारवाला है निराकार नहीं और भी देखो कि मसा पैगम्बर तो खुदाका बनाया हुवा थोड़ेहीसे दिनमें ईमानसे अलग होकर साझा अलग कर लिया तब उसने मुहम्मदको पैदा किया और अपना साझी बनाया तो उस मुहम्मदकी दूकान किस जगह खुली है जहां वह बैठा काम कर रहा है और खुदाको कितना रुपया कमाय करके देता था या जो कुरानमें लिखा है कि खुदाको कोई उधार दो तो क्या खुदा कर्ज़ा लेता था या ज़मानत देनेके वास्ते अपना साझी बनाया था—देखो तुम्हारी कुरानमें ऐसा लिखा है "वह कौन मनुष्य है जो अल्लाहको उधार देवे अच्छा बस 'अल्लाह दुगुन करे उसको उसके वास्ते' (म० १ सि० २ सू० २ आ० २२७) ' इसी आयतक भाष्यमें तफ़सीर हुसेनीमें लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहबके पास आया उसाने कहा कि "ए रसूल ! खुदा कर्ज़ क्यों मांगता है? उन्होने उत्तर दिया कि तुमको विहिश्तमें लेनेके लिये उसने कहा जो आप ज़मानत लें तो मै दूं मुहम्मद साहबने उसकी ज़मानत लेली" । अब देखो कि इस कुरानीने कैसा जाल रचा है पुराणियों अर्थात् पोपों सेभी बढ़ कर क्योंकि "जैसे को तैसे मिले मिले ब्रह्म के नाई, उसने मांगी दक्षिणा उसने नाच दिखाई ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्यमुनि चिदानंदस्वामि विरचिते स्याद्वादाअनुभवरत्नाकर द्वितीयप्रश्नोत्तर अन्तर्गत कुरानी मत समाप्तम् ॥

ईसाई मत निर्णय।

अब मुसल्मानोंके बाद इन्हींके मिलते हुवे भाई वन्धु ईसाइयों का किञ्चित् वर्णन लिखते हे जिससे सज्जन पुरुषोंको मालूम होगा कि इनकी बाइबिलादि पुस्तकें वह ईश्वरकृत नहीं हैं किन्तु वह किसी जाली पुरुष की वनाई हुई हैं सो दिखाते हैं:—"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सृजा। और पृथ्वी बेडौल और सूनी थी और गहराव पर अँधियारा था और ईश्वर का आत्मा जलके ऊपर डोलता था। (पर्व्व १ आ० १,२)" अब हम तुमसे पूछते हैं कि आरम्भ किसको कहते हो जो तुम कहो कि सृष्टिकी प्रथम उत्पत्ति की, तो हम पूछे हैं कि प्रथम सृष्टि यही हुई थी कि इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी जो कहो नहीं हुई थी तो पेश्तर ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को बनाया तो हम तुम्हारे क्रो पूछे हैं कि आकाश किसको कहते हो जो तुम कहो कि आकाश नाम पोल का है तो जब तक ईश्वर ने आकाश नहीं बनाया था तो तुम्हारा ईश्वर किस जगह रहताथा क्योंकि विना पोलके किस जगह पदार्थ रहेगा और वह ईश्वर रहेगा इसलिये आकाश का बनना असम्भव है तो ईश्वर का बनना ऐसा कहना भी असम्भव ही हुवा और इसी में लिखते हो कि पृथ्वी बेडौल और सूनी थी तो फिर कहते हो कि ईश्वर ने पृथ्वी बनाई तो यह वाक्य क्योंकर मिलेगा एक वचन में तो पृथ्वी ईश्वर ने रची और दूसरे में पृथ्वी बेडौलथी तो एक जगह तो बेडौल कहने से ईश्वर की रची न ठहरी जो कहो कि पृथ्वीको बेडौल अर्थात् ऊँची नीची थी पीछे ईश्वर ने दुरुस्त किया अर्थात् सुधारी तो पेश्तरही ईश्वर ने बेडौल क्यों रची थी? क्या उस को इतना भी शहूर न हुवा कि फिर मुझको इसे ऊँची नीची सँवारनी पड़ेगी और जो उसने ऊँची नीची पृथ्वीको दुरुस्त किया तो क्या पृथ्वी अबार भी ऊँची नीची बहुत देखने में आती है जब तो खुदा की मज़दूरी करना व्यर्थ हुवा और ईश्वर को ऐसे २ काम करने भी उचित नहीं क्योंकि यह काम मज़दूर लोगों का है इस कामके करने से खुदा तो वर्त्तमान काल के कुलियों अर्थात् मज़दूरो से बढ़िया कुली ठहरा इसलिये यह पुस्तक ईश्वर की की हुई नहीं। दूसरी आयत में लिखते हो "ईश्वर का आत्मा अर्थात् (प्राण) जलके ऊपर डोलता था" अब हम तुमसे पूछते हैं कि तुम वह आत्मा किसको कहते हो अर्थात् क्या पदार्थ है? जो कहो कि चेतन है तो साकार है वा निराकार जो कहो कि साकार है व्यापक है या एक देशी है जो कहो कि व्यापक है तो वह तुम्हारा ईश्वर व्यापक होने से सर्व ज़मीन आसमान भर गया और कुछ जगह खाली न रही जब तो उस को सृष्टि रचने को नहीं मिल सकती है क्योंकि जिस जगह एक चीज़ रक्खी हुई है उस जगह दूसरी चीज़ नहीं समयासकती जो कहो कि एक देशी है तो एक देशी जो पुरुष होता है तो जिस देश मे वह रहेगा उसी देश में वह काम करसकता है अन्य देश में कदापि न कर सकेगा इसलिये एक देशी होने से भी सृष्टि का कर्त्ता नहीं बनता है अगर जो

कहो कि चेतन निराकार है तो जो वह चेतन निराकार है तो उस निराकार को किसने देखा था विना देखे प्रतीति करोगे तो शृगाल के सींग होता है वोभी मानना पड़ेगा अब देखो कुछ बुद्धि का विचार तो करो क्या ब्रान्डी के नशे में मालूम नहीं होता दीखे आप ही तो कहते हो कि ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था और फिर उसको निराकार भी मानते हो क्या खूब बात है कि चुपड़ी और दो दो इससे तो हम जानते हैं कि मूसाके हाथ कोई पुराणीकी पुस्तक लग गई दीखे है क्योंकि पुराणादिकों मे ऐसी गप्पें लिखी हैं कि कच्छ मच्छ आदि अवतार परमेश्वरके है इसलिये मूसाने मच्छकी जगह छोड़ करके ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था इतनी बदलके लिख दिया परन्तु इतना खयाल न किया कि कोई सर्वज्ञ मतानुसारी इस मेरी पुस्तक को देखकर चोरी जाहिरात करेगा परन्तु ब्रान्डीके नशेमें मस्त होकर लिख दिया और देखो गहराव पर अन्धेरा था तो इस लिखनेसे तो साफ मालूम होता है कि वह तुम्हारा ईश्वर उल्लू अर्थात् घुग्घू था क्योंकि उल्लूको दिनमेंभी अन्धेरा मालूम होता है क्योंकि उसकोभी कोई पदार्थ नहीं दीखता है ऐसाही तुम्हारा ईश्वर जलपर डोलता था और उसको कुछ भी नही दीखता था फिर यह तो हुवा जब ईश्वरकोही अन्धेरा मालूम हुवा तो ईश्वरही नही किन्तु कोई पुरुष विशेष अन्धा होगा "तब ईश्वरने कहा कि हम आदमको अपने स्वरूपमे अपने समान बनावें तब ईश्वरने आदमको अपने स्वरूपमे उत्पन्न किया उसने उसे ईश्वरके स्वरूपमे उत्पन्न किया उसने उसे नर और नारी बनाया। और ईश्वरने उन्हे आशीर्वाद दिया (प० १ आ० २६, २७, २९)" "तब परमेश्वर ईश्वरने भूमिकी धूलसे आदमको बनाया और उसके नथुनोंमे जीवनका श्वास फूंका और आदम जीवता प्राणी हुवा। और परमेश्वर ईश्वरने अदनमें पूर्वकी ओर एक बाड़ी लगाई और उस आदमको जिसे उसने बनाया था उसमें रक्खा और उस बाड़ीके मध्यमें जीवनका पेड़ और भले बुरेके ज्ञानका पेड़ भूमिसे उगाया। (पर्व० २ आ० ७, ९,) अब (आ० २६, २७, २८)"मे लिखा है कि ईश्वरने कहा कि हम आदमको अपने स्वरूपमें अपने समान बनायेंगे और ईश्वरने स्वरूपमे उत्पन्न किया पहले तो कहा कि हम आदमको बनावें फिर हालही उसने उन्हे नर और नारी बनाया और ईश्वरने अशीश दी क्या खूब बातें ईसाइयोंकी है कि अपने स्वरूपसे बनाया जब तो हम जानते है कि तुमभी पुराणियोंके भाई बन्धु हो क्या वेदमेसे चुराय करके ईसाइयोंने पुस्तक बनाई दीखे है जो चोरीसे झूंठ बातका सच किये जावें तो कदापि न होगा (प० २ की आ० ७, ८, ९) में लिखते हो कि "ईश्वरने भूमिकी धूलिसे आदमको बनाया और नथुनोंमें जीवका श्वास फूंका आदम जीवित प्राणी हुवा" अब देखो क्या गप्प ठोकी है हालही तो कहते हो धूलसे बनाया हालही कहते हो स्वरूपसे बनाया तो जब आदमको ईश्वरने अपने स्वरूपसे बनाया तब तो वह ईश्वरभी किसी और ने पैदा किया होगा जब तो वह ईश्वर अनित्यही ठहरा तब आदमको कहांसे बनाया जो कहो कि मट्टीसे बनाया तो वह मट्टी कहां से आईथी और किसने बनाईथी जो कहो कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से मट्टी बनाईथी तब ईश्वरकी सामर्थ्य अनादि है व नवीन जो कहो अनादि है तो हम कहते है कि जगत्का कारण सनातन हुवा तो फिर तुम क्यो कहते हो कि ईश्वरके

विना कोई वस्तु नहीं थी जो कोई वस्तु नहीं थी तो यह जगत् कहांसे बना जो कहो कि नहीं जी ईश्वरको सामर्थ्य है तो फिर क्यों वार २ पूछते हो अजी हम तुमसे यह पूछे है कि ईश्वरका सामर्थ्य भिन्न है वा अभिन्न है? और भिन्न है तो द्रव्य है व गुण है जो कहो कि भिन्न है और द्रव्य है तव तो जगत्का कारण भिन्नरूप द्रव्य होनेसे जगत् कारण सर्व अनादि सिद्ध होगया जव तो तुम्हारा कहना सृष्टिके पूर्व ईश्वरके सिवाय कुछभी वस्तु न थी यह कहना तुम्हारा निष्फल हुवा जो कहो कि सामर्थ्य गुण है तो देखो कि गुणीको छोड़के गुण अलाहदा नहीं रह सकता कदाचित् जो तुम ऐसा मानोगे कि सामर्थ्य रूप गुण ईश्वरका अलग रहेगा तव तो तुम्हारा ईश्वरही नष्ट हो जायगा जो कहो कि अभिन्न है तव तो वो ईश्वररूपी आदम हो गया जव तुम्हारा धूलिसे आदमका बनाया कहना निष्फल हुवा और इन्हीं आयतोंमें लिखा है कि "ईश्वरने पूर्वकी ओर एक वाड़ी अर्थात् वगीचा लगाया उसमें आदमको रक्खा और उस वगीचेके वीचमें जीवनका पेड़ और भले बुरेके ज्ञानका पेड़ भूमिसे उगाया" तो हम जानते हैं कि ईश्वरमे तो भले बुरेका ज्ञान कुछ था नहीं इसलिये दरख्त लगाया होगा जव ईश्वरकोही ज्ञान नही तो उस दरख्तके फल खानेसे क्योंकर ज्ञान उत्पन्न होगा अव देखो यहां कैसी लड़कोंकी सी वात है क्या तुम ईसाई लोगोंमे उस वक्त बुद्धिमान् नथा खैर (प० २ आ० २१,२२) में लिखा है कि "ईश्वरने आदमको वड़ी नींदमें डाला और सोगया तव उसने उसकी पसलियांमेंसे एक पसली निकाली और उसके साथही मांस भर दिया और ईश्वरने आदमकी उस पसलीसे एक नारी अर्थात् एक औरत वनाई और उस आदमके पास लाया" तो अव देखो कि जैसे आदमको धूलिसे वनाया था तो उस औरतकोभी उस ईश्वरने धूलिसे क्यों नहीं वनाया और जो नारीको हड्डीसे वनाया तो उस आदमको क्यों नही हड्डीसे वनाया जो कहो कि नरसे नारी होती है तो हम कहते हैं कि नारीसे नर होता है और देखो कि जव नरकी एक हड्डीसे औरत वनी तो नरकी एक हड्डी कमती होनी चाहिये और औरतके एकही हड्डी शरीरमे होना चाहिये सो तो नहीं दीखती है किन्तु नर और नारी दोनोंके हड्डी बराबर मालूम होती है तो हम जानते हैं कि उसवक्त कोई ऐसा डाक्टर नहीं होगा कि जो उस वक्त इन गप्पोको सुनकर जवाव देता क्योंकि उस विलायतमे जंगली मनुष्य पशुओंके समानथे इसलिये वह विचारे कुछ न कह सके इसीलिये तुम्हारा मत ईसाइयोंका उस विलायतमें चला गया परन्तु इस मुल्कमें विवेकी बुद्धिमान् पुरुष होनेसे तुम्हारी वाईबिलकी गप्पें कोई न मानेगा किन्तु उलटी हँसी और मसखरी करेगा औरभी देखो (प० ३ आ० १, २, ३, ४, ५, ६, ७, १४, १५, १६, १७, १९) में लिखा है कि "अव सर्प भूमिके हरएक पशुसे जिसे परमेश्वर ईश्वरने वनायाथा धूर्त्तथा और उसने स्त्रीसे कहा क्या निश्चय ईश्वरने कहा है कि तुम इस वाड़ीके हरएक पेडसे न खाना। और स्त्रीने सर्प्पसे कहा कि हम तो इस वाड़ीके पेड़ोका फल खाते है परन्तु उस पेड़का फल जो वाड़ीके वीचमें है ईश्वरने कहा कि तुम उसे मत खाना और न छूना न हो कि मरजावो तव सर्पने स्त्रीसे कहा कि तुम निश्चय न मरोगे क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खाओगे तुम्हारी आंखे

खुल जायेंगी और तुम भले और बुरेकी पहिचानमें ईश्वरके समान हो जावोगे और जब स्त्रीने देखा वह पेड़ खानेमें सुस्वाद और दृष्टिमें सुन्दर और बुद्धि देनेके योग्य है तो उसके फलमेंसे लिया और खाया और अपने पतिकोभी दिया और उसने खाया। तब उन दोनोंकी आंखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने गूलरके पत्तोंको मिलाके सिया और अपने लिये ओढ़ना बनाया। तब परमेश्वर ईश्वरने सर्प्पसे कहा कि जो तूने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और हर एक पशुनसे अधिक शापित होगा तू अपने पेटके बल चलेगा और अपने जीवन भर धूल खायाकरेगा॥ और मैं तुझमें और स्त्रीमें और तेरे वंश और उसके वंशमें वैर डालूंगा वह तेरे शिरको कुचलेंगे और तू उसकी एडीको काटेगा और उसने स्त्रीको कहा कि मैं तेरी पीडा और गर्भधारण को बहुत बढ़ाऊंगा तू पीड़ासे बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पतिपर होगी और वह तुझपर प्रभुता करेगा॥ और उसने आदमसे कहा कि जो तूने अपनी पत्नीका शब्द माना है और जिस पेड़को मैंने तुझे खानेसे वरजाथा तूने खाया है इस कारण भूमि तेरे लिये शापित है अपने जीवनभर तू उसे पीड़ाके साथ खायगा और कांटे और ऊंट कटारे तेरे लिये उगायगी और तू खेतका साग पात खायगा" अब देखो ईसाई लोगोंका ईश्वर अज्ञानी मालूम होता है और मूर्खभी मालूम होता है और अपराधीभी बनेगा क्योंकि जो ज्ञानी होता तो उस धूर्त्त सर्प्प अर्थात् शैतानको क्यों बनाता और बनाया इसीसे अज्ञानी हुवा जो वह विवेकी चतुर होता तो वह अपने हाथसे अपनेही कामको क्यों विगाड़ता क्योंकि उस ईश्वरने आदम और आदमकी औरतको उस बगीचेमें रक्खा और उस दरख़्तके फलको खानेसे मना किया यही उसका कामथा सो उस शैतानने उसके हुक्मको न रहने दिया और उसको खिला दिया और ईश्वरको इसीलिये अपराध हुवा कि उसे धूर्त्त शैतानको जोकि ईश्वरके बनाये हुये मनुष्योंको वहकाता और ईश्वरका हुक्म न चलने देता और उनको बुरी बातें सिखलायकर उनको दुःख दिलवाता तो जो ईश्वर उसे पैदा न करता तो लोगोंको दुःखका कारण क्यों होता इसलिये उस शैतानका उत्पन्न करने वाला इस दुःखका मूल कारण ईश्वरही ठहरेगा नतु शैतान। अब देखो यहां क्या मज़े की बात है कि धूर्त्तपन तो आप करना और उस विचारे शैतानको दूषण लगाना क्योंकि एक मसल है (शाबास बहू तेरे चरखेको-किया आप लगावे लड़केको) अब देखो शैतान अर्थात् धूर्त्तपन तो वह तुम्हारे ईश्वरने किया कि बाबा आदम और उसकी औरतको कहा कि तुम वो जो बीचमें दरख़्त है उसके फलको न खाना और ईश्वरने कहा कि तुम न छूना न हो कि मरजावो अब कहो कि ऐसा धोखा देकरके कि जिसके फल खानेसे भले बुरेका ज्ञान होय उसके तईं मना किया और मरजानेका डर दिखलाया तो अब देखो इस ईश्वरने झूठ बोलकर कैसा उसको धोखा देकर शैतानपनेका काम किया अब इससे जियादा ईश्वरके सिवाय कौन शैतान हो सकता है तब तो उस सर्प्प विचारेने उस औरतसे कहा कि तुम वाडीके बीचमे जो फल लगे हुये हैं उनको खावो जब स्त्रीने सर्प्पसे कहा कि हम तो इस वाडीके पेडोंका फल खाती हैं परन्तु उस पेडका फल जो वाडीके बीचमें है ईश्वरने कहा कि तुम उसे न खाना

और न छूना नहो कि मरजावो तब सर्पने उपकार बुद्धि जानकर स्त्रीसे कहा कि तुम निश्चय न मरोगी क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खावोगी तुम्हारी आंखें खुल जांयगी और तुम भले और बुरेकी पहँचानमें ईश्वरके समान हो जावोगी और जब स्त्रीने देखा वह पेड़ खानेमें स्वाद और दृष्टिमें सुन्दर बुद्धि देने योग्य है तब फल लिया और खाया और अपने पतिको भी दिया उसने भी खाया तब दोनोंकी आंखें खुल गई और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने गूलरके पत्तोंको मिलाकर सिया और अपने वास्ते ओढना बनाया । अब देखो कोई बुद्धिमान् इन्साफ़ी विचार करके देखे कि इस विचारे सर्पने आदमका कैसा उपकार किया और ईश्वरने कैसा धोखा दिया तिसपर भी ईश्वरको सबर न हुवा कि आदमको धोखा दिया और ज्ञान न होने दिया और उपकार करनेवाले सर्पको भी शाप देने लगा किन्तु पेटसे चलेगा और धूल खायगा और तुझमें और तेरे वंशमें स्त्री और स्त्रीके वंशमें वैर डालूंगा वह तेरे शिरको कुचलेगा और तू उसकी एड़ीको काटेगा और उस औरतको भी शाप दिया मैं तेरे गर्भ धारणको बहुत बढाऊंगा और पीड़ासे बालकको जनेगी और तेरी इच्छा पतिपर होगी वह तुझपर प्रभुता करेगा और आदमको कहा तूने अपनी पत्नीका शब्द माना और मैंने तुझे खानेसे वरजा था तूने खाया इसी कारण भूमि तेरे लिये शापित है । अब देखो विना क़सूर उन तीनोंको शाप देने लगा अब कहो उन तीनोंका क्या क़सूर था अपना क़सूर आपको न दीखा भला वह ईश्वर जो दयालु होता तो वह फल ज्ञान और अमर होनेका लगाया था तो मना क्यों करता और जो मने करनेको इच्छाथी तो उस दरख्तको क्यों लगाया इस बाइबिलकी बातोंको बुद्धिमान् पढ़कर अथवा सुनकर बुद्धिमें विचार करते हैं कि उस ईश्वरने अज्ञानसे उस दरख्तको लगाया और उसका फल जब उसने खाया तब उसको ज्ञान हुवा उस ज्ञानसे उसके दिलमें ईर्षा होकर ऐसा ख़याल हुवा कि इस फलको जो कोई खायगा वह मेरे समान हो जायगा तब मेरेको कौन मानेगा इस डरसे आदमको मना करदिया । छी ! छी !! छी !!! इस खुदाके मानने वाले पर और उस खुदा पर क्योंकि उस खुदासे तो वह शैतान ही अच्छा था क्योंकि उसने आदमका उपकार किया । भोले भाई ईसाइयो आंख बन्दकर कुछ हृदयमें विचार करके ऐसा जो धूर्त्त शैतानोंका शैतान ईश्वर उसको छोड़कर " वीतराग राग " सर्वज्ञ देव सर्व जीव उपकारी, दीनदयालु, जगत्‌बन्धु, देवाधिदेव, श्रीअर्हंतदेव, निष्कारण, परदुःखनिवारक निष्पृहके वचनको अंगीकार करो जो तुमको अपनी आत्माका कल्याण करना है तो । (प० ३ आ० २३,२४) इसमें ऐसा लिखा है कि " ईश्वरने कहा कि देखो आदम भले बुरेके जाननेमें हमारे समान होगया और अब ऐसा न होवे कि वे अपना हाथ डाले और जीवनके पेड़मेंसे भी लेकर खावे और अमर होजाय " सो इसने आदमको निकाल दिया " और अदनकी वाड़ीकी पूर्व ओरको ठहराये और चमकते हुये खड्गको जो चारों ओर घुमाता था जिसते जीवनके पेडके मार्गकी रखवाली करें "—अब देखो भला ईश्वरको कैसी ईर्षा हुई कि ज्ञानमें हमारे तुल्य हुवा यह बात क्या बुरीहुई क्योंकि ईश्वरके तुल्य होनेसे क्या ईश्वरकी ईश्वरतामें हिस्सा लेता था ईश्वरसे लड़ता क्या ईश्वरकी रोज़ी बांटता हा ! हा !! कैसे खेदकी बात

है कि ईश्वर भी ईर्षा करने लगा तब तो मनुष्यमें भी ईर्षा होना बुरा कहना जे बात वृथा निष्फल होजायगी क्योंकि जो ज्ञानी पुरुष होते हैं सो तो ईर्षा छुड़ानेमें उपदेश देते हैं और ईसाइयोंके ईश्वरने आदमको पैदा किया और उसके ज्ञान होनेसे ईश्वरने कितना दुःख माना और उसके बदलेमें आदमको अमर फल न खाने दिया और उल्टा उस विचारे ग़रीबको वहाँसे निकाला और अमरफलके ऊपर चमकते खड्गका पहरा रक्खा इसके देखनेसे मालूम होता है कि वह ईसाईयोंका ईश्वर बेवकूफ निहायत ईर्षावालाही है। (प० ६ आ० १, २, ४,) में लिखा है कि "उनसे और बेटियाँ उत्पन्न हुई तो ईश्वरके बेटोंने आदमकी पुत्रियोंको ब्याहा और उनसे बालक उत्पन्न हुये और ईश्वरने देखा कि आदमकी दुष्टता पृथ्वीपर बहुत हुई है तब आदमीको उत्पन्न करनेसे परमेश्वर पछताया और अतिशोक हुवा पृथ्वी परसे नष्ट करूंगा, उन्हें उत्पन्नकरके पछताया" अब देखो यहां विचार करो कि ईश्वरके पुत्र हुवे तो ईश्वरके औरतभी होगी जब तो आदमको धूलिसे बनाया ये कहना तो शेखसिल्लीके समान हुवा क्या खूब ईसाइयोंकी बात है कि खूब गप्पे ठोंकी। भला विचार तो करो कि ईश्वरके सिवाय और तो कोई दूसराथाही नहीं फिर वह पुत्रादिक और आदमकी पुत्री जीव विदून कहांसे उत्पन्न हुई और जो उत्पन्न भई तो नर और नारीका होना किस कर्मसे हुवा जो कहो कि बुरे भले कर्मसे हुवा जो कर्म से होगा तो पूर्वजन्मभी तुमको माननाही होगा तुम पुनर्जन्म मानतेहो नहीं और जीवभी ईश्वर से पहले मानतेही नहीं जो कहो कि ईश्वरसेही नर और नारी बनता गया तवतो ईश्वरनेही ईश्वरको शापदिया और ईश्वरही औरत बनकर गर्भ धारणकिया और ईश्वरही उत्पन्नहुआ तब ईश्वरकी सृष्टिठहरी तब ईश्वर क्यों पछताया और क्यों अतिशोक किया और उनके बनाने में पश्चात्तापकिया तो पहले अज्ञातदशा से क्यों बनायाथा और जो अज्ञान से बनाया तो फिर सबको नष्टकरूंगा ऐसाभी क्यों विचारा जो ऐसा विचारा तो सबके नष्टहोने से वह ईश्वरभी नष्टहोजायगा फिर ईसाईलोग किसको मानकर अपने पापको क्षमाकरायेंगे इसीलिये ईसाको ईश्वरने शूली दिलवाईथी क्या खूबकाम उस तुम्हारे ईश्वरने किया किसी रीतिसे उसको चैन न पड़ा सिवाय दुःख के और देखो कि ऐसा लिखाहुवा है कि "उस नावकी लम्बाई तीनसौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊँचाई तीसहाथकी होवे। तू नाव में जाना तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटोंकी पत्नियां तेरेसाथ। और तू सारे शरीरों में से जीवता जन्तु दो २ अपनेसाथ लेना जिससे वे तेरे साथ जीते रहें; वे नर और नारी होवें; पक्षी में से उसके भाँति२ के और ढोरमेंसे उसके भाँति २ के और पृथ्वी के हरएक जीवों में से भांतिं २ के दो २ तुझ पास आवें जिससे जीते रहें और तू अपने लिये खानेको सब सामग्री अपने पास इकट्ठाकर वह तुम्हारे और उनके लिये भोजनहोगा। सो ईश्वरकी सारी आज्ञा के समान नूहने किया (तौ० प० ६ आ० १५, १८, १९, २०, २१, २२)" और देखो नूहने परमेश्वर के लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्रपशु और हरएक पवित्र पक्षियों मेंसे लिये और होमकी भेंट उस वेदीपर चढ़ाई और परमेश्वरने सुगन्ध सूंघा और परमेश्वरने अपने मनमें कहा कि आदमीके लिये मैं पृथ्वी को फिर कभी शाप न दूंगा इसकारण कि आदमीके मनकी भावना उसकी लड़काई

से बुरी है और जिसरीति से मैंने सारे जीवधारियों को मारा फिर कभी न मारूंगा (तौ० पृ०८ आ० २०, २१,) देखो १५ वीं से २२ वीं तक ६ पर्व में जो हम ऊपर लिखचुके हैं अब देखो कैसी असंभवकी बातें लिखीहैं कि इतनी लम्बी, चौड़ी, ऊंची नाव में हाथी घोड़ा ऊंट, बकरी, भेड़, आदमी, दास, दासी, बेटा, बेटी, लुगाई, वहू सबको नाव में बैठाकरके और भाँति २ के जानवर वगैरः सबको और खानेके लिये ऐसा नूहसे कहा अब देखो यहां विचारकरो कि वह तुम्हारा स्वर्ग आसमान पर न होगा किन्तु कोई समुद्रके किनारे टापू उसीको स्वर्ग मानलिया दीखे अहारे? ईसाइयो क्या तुम्हारे पुस्तकोंकी तारीफ़ करे कि ऐसी छोटी २ नाव में लाखों हाथी, घोड़ा, ऊंट, बैल, छेरी, गाय, पक्षी और आदमी समागये कोई पूछनेवाला न था नहीं तो तुम्हारी किताबों में ऐसी गप्पें क्यों लिखीजातीं अहा-ईसाइयों में ऐसा कोई बुद्धिमान् विवेकी न हुवा जो इन गप्पोंको निकालकरके शुद्धबातों का प्रक्षेपकरता जिससे ईसाई लोग इस जाल से निकसकर शुद्ध मतको अंगीकार करते और देखो "पर्व्व ९ की आ० २०, २१, में नूहने ईश्वरकी वेदी बनाई पशु और पक्षियों में से होमके वास्ते वेदीपर भेंटरक्खे" अब इसके देखने से तो मालूमहोता है कि हिंसकमत के चलाने वाले जो कि वेद आदि ग्रन्थोंमे जो यज्ञ आदि करना उन्हीं पुस्तकों वालोंकी सुहबत करके ईसाइयोंने भी जाल रचकर भोले जीवोंको वहकाने लगे ईश्वरके नामसे होमकराना;वेदी बनाना; आप खाजाना; छी ! छी !! छी !!! ऐसे ईश्वर औ ऐसे ईश्वरके मानने वालों को कि जो जीवकी हिंसाकरके वा दूसरोंसे करायकर ईश्वरने सुगन्धसूंघ और प्रसन्न होकर कहने लगा कि फिर पृथ्वीको कभी शाप न दूंगा इससे तो हमको मालूम होता है कि कोई राक्षस व दानव होगा नतु ईश्वर क्योंकि जो मांस खाने अथवा सूंघनेसे ख़ुश हुवा और आशीर्वाद देने लगा और फिर यह भी कहने लगा मैने सारे जीव धारियोंको मारा फिर कभी न मारूंगा,अब कहो वह जो खुदा है क्या शेखसिल्ली है जो ऐसी २ बातें कहता है हे! भोले भाई ईसाइयो ऐसे खुदाको छोड़के कोई सर्वज्ञदेव मानों जिससे तुम्हारी आत्माका कल्याण हो फिर देखो ९ वें पर्व्वकी आ० १, ३, ४, और पर्व्व ११ की आ० १, ४, ५, ७, ९ और पर्व्व १२ की आ० ११, १२,१३ और पर्व्व १७ की आ० ९, १०,११, १२, १३, १४ पर्व्व ३२ तक अथवा ३९ तक जो २ गप्पे लिखी हैं उनका हम कहां तक लिखें जो २ हिंसा धूर्त्ताई, छल वचन जो बाइबिलआदि पुस्तकोंमें लिखा है अब एक लय व्यवस्थाकी पुस्तक तौ० ॥ तौ० लैव्य० व्यवस्थाकी पुस्तक (प० १–२) इसमें लिखा है कि मूसाको बुलाया और इस्राइलके सन्तानसे भेट मंगाई कि गाय भेड़ बैल बकरी अब विचारिये देखो तो सही कि ईसाइयोंका ईश्वर गाय, आदिकोंका अपने वास्ते बालिदान लेनेके लिये उपदेश करता है हा! हा!! हा!!! छी! छी!! छी!!! थू! थू!! थू!!! इस ईश्वर पर जो विचारे पशुओंके मांस और खूनका प्यासा है और भूखा है वह कदापि ईश्वर कभी न ठहर सकता है; हिंसक; महापापी, निर्दयी, दुष्ट मालूम होता है इस पुस्तकमें भी ऐसी निर्दयताकी बाते देखकर रोमाञ्च खड़े होगये, लेखनी थक गई किन्तु चित्त न माना दिलमें उचंग आई मत्ती रचित इञ्जीलकी झूठी गप्पें पाई, ईसाइयोंमें कैसी अज्ञान मति छाई ईसूकी जन्म रीति किञ्चित् हमने भी सुनाई यशू क्राइष्टका जन्म इस रातिसे

हुवा उसकी माता 'मरियम' की यूसफ़से मगनी हुईथी पर उनके इकठे होनेके पहले ही वह देख पड़ी कि पवित्रआत्मासे गर्भवती है देखो परमेश्वरके एक दूतने स्वप्नमें उसे दर्शन दे कहा हे दाऊदके सन्तान यूसफ! तू अपनी स्त्री मरियमको यहां लानेसे मत डर क्योंकि उसको जो गर्भ रहा है सो पवित्रआत्मासे है, (इ० प० १ आ० १९, २०) तब आत्मा ईशूको जंगलमें लेगया शैतानसे उसकी परीक्षा की जाय वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास (व्रत) करके पीछे भूखा हुवा तब परीक्षा करनेहारेन कहा कि जो तू ईश्वरका पुत्र है जो कह दे कि यह पत्थर रोटियां बनजावे (इ० प० ४ आ० १, २, ३) अब देखो मरियम कारीथी और उस पवित्रआत्मा अर्थात् ईश्वरसे गर्भवती हुई फिर ईश्वरके एक दूतनें यूसफ़को कहा तू अपनी औरतको यहां लानेसे मत डरना क्योंकि उसमें जो गर्भ है सो पवित्र आत्मासे है क्या वो ही ईश्वर था वा हैवान कोई जंगली मनुष्यथा जब तो वह तुम्हारा ईश्वर निराकार मानना व्यर्थ होगया क्योंकि जब मरियमके गर्भ रहा तो उसका निराकार कुत्तेका सींग है और फिर देखो जब उसके गर्भ रहा तो वो उसकी औरत होचुकी फिर यूसफ़को स्वप्ना देकर उससे कहा कि तू अपनी औरतको लानेसे मतडर अब देखो ऐसी २ जाल रचकर ईश्वर ठहरता है ऐसा पुरुष व्यभिचारी, अनाचारी ठहरता है ऐसी २ बातें देखनेसे न तो वो पुस्तक ईश्वरकी है और न उस पुस्तकका लिखा ईश्वर ठहरता है, और भी देखो प०४में जो हम ऊपर लिख आये हैं उससे ईसाइयोंका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं जो कहो कि नहीं जी वह तो सर्वज्ञ था अरे भोले भाइयो! कुछ तो विचार करो कि जो तुम्हारा ईश्वर सर्वज्ञ होता तो शैतानसे ईसाकी परीक्षा क्यों कराता उस तुम्हारे ईश्वरसे तो वह शैतान जो है सोई बुद्धिमान् विवेकी मालूम होता है क्योंकि इसकी परीक्षाके लिये चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुवा परीक्षा करनेवालेने कहा जो तू ईश्वरका पुत्र है तो कहदे कि यह पत्थर रोटियाँ बन जाओ अब देखो न तो वह ईश्वरका पुत्र ठहरा कदाचित् कहो कि ईश्वरका पुत्र है तबतो ईश्वरके ही तुल्य होता तो जब ईश्वरके तुल्य होता तो फिर वह उसकी परीक्षा क्यों करता क्योंकि ईश्वर जानता ही था यह मेरा पुत्र है या वह ईश्वर भी भूल जाताथा तो न तुम्हारा ईश्वर ठहरा न तुम्हारी इंजील पुस्तक ईश्वरकृत ठहरी न वह ईश्वरका पुत्र ईशू ठहरा इसीलिये भोले जीवोंने इस मतको अंगीकार तो करलिया परन्तु विश्वास न आया इसीलिये तुम्हारी इस इंजीलमें (मं० १ प० १, आ०११, २०) मे लिखा है कि हे अविश्वासियो और हठीले लोगो मे तुमसे सत्य कहता हूं यदि तुमको राईके एक दानेके तुल्य विश्वास हो तो तुम इस पहाड़से जो कहोगे कि यहांसे वहां चला जाय वह चला जायगा और कोई काम तुमसे असाध्य न होगा।" अब देखो कि ईसा हुबरदू(रूबरू) मौजूदथा और लोगोको उसके कहनेपर विश्वास न हुवा जो राईके एक दाने भरभी किसीको विश्वास होता तो उनका सर्व काम सिद्धि होता तो जब ईशूके सामनेही जो लोग अविश्वास करतेथे तो इस समय ईसाई लोगोंका क्यों विश्वास हो जो कहो कि नहीं जी हमको तो ईशूके वचन पर पूरा २ विश्वास है क्योंकि ईसू ईश्वर पवित्र आत्माका पुत्रथा-इसलिये अरे भोले भाइयो! यह तुम्हारा कहना तो कहनेमात्रही दीखता है क्योंकि तुम लोग दिन रात इस हिन्दुस्थानके शह-

रोंकी गली व कूंचे २ में वकते फिरते हो और सैकड़ों रुपया खर्चते हो तो भी तुम्हारे जालमें विवेकी बुद्धिमान्के विना चमार, वलाई, धोवी, नाई, भूख मरते हुवे खानेका संयोग न मिलता हो किन्तु भोलाभी हो ऐसी नीच जातिके कोई २ तुम्हारे जालमें आफँसते हैं और मुसल्मान लोग तुम्हारेभी उस्ताद हैं क्योंकि मतलवके वास्ते तुम्हारे ईसाई मतको अंगीकार करतेहैं जव उनका मतलव हो जाय तो उसीवक्त छोड़ कलमा पढ़कर फिरभी मुसल्मान हो जाते हैं इसके देखनेसे तो तुमको राई भरभी, विश्वास नहीं जो राई भरभी होता तो सारे हिन्दुस्थानको ईसाई कर लेते परन्तु किसी ईसाईको विश्वास नहीं कि "आपही मियाँ मांगते और द्वार खड़े दरवेश" इस मसलसे मालूम होता है क्योंकि जव ईशू जीताथा उसीवक्त उसके शिष्यने जव पकड़वाय दिया और ईशू पकड़ा गया जव ईशूसे कुछ न हुवा "ईसू अदिक्षके सामने खड़ा वहांसे लेकर प्राण भागा" ॥ (ई० म० प० २७ आ०, ११, १२, १३, १४, १५, २२, २३, २४ २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३३, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०) अव देखो यहां विचार करो कि जो मसल हम आगे देचुके हैं वह वरावर मिलती है जो ईशू करामाती और विद्यावाला होता तो देखो जो उसका चेलाथा उसको इस मतपर विश्वास होता, तो क्यों उसको लोभ की खातिर पकड़वाता अपनी जानजाती तो जाती परन्तु अपने गुरुको वो यहूदियोंका राजा जो दुष्टथा उससे मिलकर तुम्हारे ईश्वरके पुत्र ईशूको क्यों पकड़वाता और वे ऐसा २ दुःख उसे क्यों देते और मार मारते और दुर्वचनादिक वोलते और शेषमें उसको सूली पर चढ़ाय कर प्राण त्याग कराय देते इसीलिये तुम्हारे ईशूके ऊपर यह दण्ड हुवा कि उस ईशूने धूर्ताई जाल से जैसे भोले लोगोंको भ्रमजालमें फँसानेके वास्ते ईश्वरका पुत्र वन वैठा अपना प्राण छोड़ना पड़ा और प्रभुकीभी हँसी कराई इसलिये ईश्वर किसीका वाप नहीं और ईश्वरका कोई पुत्र नहीं जो ईश्वरका पुत्र होता तो जिस समय ईशूने चिग्गी मार २ वड़े शब्दोंसे ईश्वरको पुकारा परन्तु ईश्वर तो "वीतराग" सर्वज्ञ देव सवके भले वुरे जीवको कृत जानने वाला है वह किसीका पक्षपाती नहीं इसलिये ईसाने जैसा काम किया तैसाही फल पाया और वह ईशू करामातीभी नहीं था जो वह करामाती होता तो उसीवक्त उन लोगोंका स्तम्भन हो जाता और ईशूके शिष्य वनजाते और उसका धर्म अङ्गीकार करलेते सो तो न हुवा किन्तु उसके जालको तोड़कर और उसका प्राण त्याग कर दिया ऐसी २ वातें ईसाई मतकी देखके और उन्हीं पुस्तकोंकी ओर ऐसी कई पुस्तकोंकी गप्पे अर्थात् हिंसा आदि वुरे वुरे कर्म्मोंकी व्यभिचारीपनेकी और अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये जो जाल वाइविल, तौरेत, अंजील आदिकोंमें लिखी देखकर उनके वाँचनेसे चित्तमें थरथरी होकर रोमाञ्च खड़े होगये और हृदयमें दया उत्पन्न होकर हाथकी लेखनी थक गई और इन शून्य वातोंका चित्तसे खयाल उड़ गया क्योंकि हम लोगोंके अहिंसा परमधर्म आत्मअनुभवके विचार विना काल खोना वृथा जानकर इन मनहूस जंगली ईसाई मतवालोंकी वातोंसे दिक़ होगई॥

इतिश्री मज्जैन धर्माचार्य मुनिचिदानंद स्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर द्वितीय प्रश्नोत्तरान्तर्गत ईसाई मत निर्णय समाप्तम् ॥

अथ सनातन धर्म अर्थात् अनादि सिद्धि ॥

अब इस जगह प्रश्न शिष्यकी ओरसे और उत्तर गुरुकी ओरसे जानना क्योंकि पेश्तर हम कह चुके है कि जैन मत अनादि सिद्ध है सो पाँचों मत वर्तमानमें जो जियादः प्रचलित है उनहीको वर्णन करके पश्चात् हम अनादिसिद्ध करेंगे ऐसा कह आयेथे सो दिखाते है कि (प्रश्न) आपने जो पांचो मतके उपदेशकी रीतिथी सो उनहींके शास्त्र और किताबोंकी साक्षीसे उनके सत्यासत्यका विचार दिखाय दिया और आपने अपने मतसे इनको खंडन न किया इनहीके मतसे इनका विरोध दिखाय दिया सो कारण क्या? (उत्तर) भो! देवानोप्रियः श्री जिन मतमें किसीकी पक्षपात नही है जो पक्षपात होती तो हम अपने मतको लेकर इनको खण्डन करते क्योंकि जो मत पीछे प्रवर्त्त होते हैं और असर्वज्ञके वचन उनहीमें विषम वाद होता है और वे विषमवादी लोग अपने मतको सिद्ध करते हैं उनके जालमें आत्मार्थीके विना भोले जीव फँसकर अपनी आत्माको डुवाते हैं। (प्रश्न) भला जिन मत अनादि कैसे सिद्ध है? (उत्तर) जिन मतोंका हम प्रतिपादनमें सत्यासत्य पदार्थका निर्णय उनहीके मत मूजिन उनका पदार्थ सिद्ध न हुवा तो जैनमत अविपमवादी अनादि सिद्ध हो गया (प्रश्न) भला अविपम वादी किसको कहते है? (उत्तर) अविपमवादी उसको कहते हैं कि जिसके वचनमें पदार्थ निर्णय करनेमें विरोध न होय; हेतु अर्थात् कारण सत्य हो जिससे कार्य्य उत्पन्न हो कदाचित् हेतुमें विषम वाद होतो कार्य्य कदापि उत्पन्न नहीं हो। (प्र०) तो कारण कार्य तो सभी कोई कहते हैं। और सबने अपने २ पदार्थ सिद्ध किये हैं और सबको मोक्षके लिये अभिलाषारहती है? (उत्तर) हे देवानांप्रियः ! जो सब कोई हेतु सत्य कहते तो उनके कहे हुवे पदार्थभी सिद्ध होते सो तो हम तुमको पहले दिखाय दिये हैं किन्तु इन्होंने सर्वज्ञ देवका किञ्चित् २ वचन लेकर अपनी मन कल्पना अभिप्राय कारण कार्यके अजान होकर पक्षपातमे लिपट कर शुद्ध मार्गसे विपरीति होकर अपने २ मतकी पुष्टि करने लगे। (प्रश्न) तो क्या जैन मतमें पक्षपात नहीं? (उत्तर) भो देवानोप्रियः ! जैन मतमे पक्षपात् मेरेको नही दीखती है। (प्रश्न) ऐसा तो सबही मतावलम्बी कहते हैं तो आप सर्व मतावलम्बियोंकी पक्षपात और अपने मतकी निर्पक्षपात कैसे कहते हो? सो दिखलाइये ? (उत्तर) अब देखो कि नय्यायिक सोलह (१६) पदार्थ मानता है। और वैशेषिक छः (६) पदार्थ मानता है अब देखो इनमें आपसमें विषमवाद न होता तो आपसमें जुदे २ पदार्थ क्यों मानते? और इनका मूल मंत्रभी सिवाय शिव उपासनाके अर्थात् ईश्वरके कोई जगत्का कर्त्ता धरता, हरता नहीं सो भी अनुमान् से सिद्ध करते हैं और उसको निराकारभी मानते हैं और शिव २ ऐसा करना और फिर महादेवादिकके लिंगको पूजना अपने मतलबके लिये वेदकीभी श्रुति मान लेते परन्तु पूरे वेदको न मानते जो पूरे वेदको मानते तो वेदसे अतिरिक्त पदार्थोंकी कल्पना करके अपने ग्रन्थ नवीन रचते और मोक्षभी इनकी ज्ञानमय आत्माको जड़रूप बनाय देना है तो अब देखो इनकी कितनी बातोंमें विषमवाद हुवा

सो संपूर्ण वृतान्त इनका हम पहलेही इसी प्रश्नके उत्तरमें लिख चुके हैं इसीरीतिसे वेदान्तियोंमेभी पक्षपात दीखती है देखो कि एक अद्वितीय ब्रह्म प्रतिपादन करना ब्रह्मके सिवाय कोई दूसरा पदार्थ नहीं और फिर अज्ञान अर्थात् अविद्या उसकोभी अनादि मानना। अब देखो ये उनके विषमवाद नहीं हुवा तो क्या हुवा और एक ब्रह्मको मानके फिर ईश्वरसे सृष्टि मान लेना और इन वेदान्तियोंमें जुदे २ आचार्य्य जुदी २ प्रक्रियाके कहनेवाले कोई एक जीव वाद कोई अनेक जीव वाद इत्यादि अनेक विषम वाद और ब्रह्मज्ञान अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" इतना ज्ञान होनेहीसे मोक्ष होजाना और इंद्रियोंका भोग करना (मज़ा करना) और परमहंस वन जाना हमारेको पुण्य पाप कुछ नहीं है हम शुद्ध ब्रह्म हैं अब देखो जो पक्षपात न होता तो इत्यादि इन में अनेक भेद क्यों होते और शेष जहां इनका मत दिखाया है वहां से समझलेना ऐसेही दयानन्दभी वेदमंत्रकोही मानकरके सर्वको खंडन करताहुवा यज्ञकरना. होमकरना उसीको धर्ममानना किसी जगह तो मोक्ष में आवागमन मानलेना किसीजगह लिखता है कि अमरहोजाना फिर कभी दुःख न होना ऐसा भी लिखता है इत्यादि पक्षपात सहित अनेक तरहके वचन हैं सो हम पीछे दिखा चुके हैं। इसीरीति से मुसल्मान भी मुहम्मदके वचनके सिवाय दूसरे का वचन नहीं मानते नमाज पढ़ना रोज़ाकरना, और मुसल्मानोंके सिवाय किसी का धर्म अच्छा नहीं सो भी पीछे लिखकर दिखाय चुकेहें। इसीरीति से ईसाई भी सिवाय ईसा के दूसरेके ऊपर विश्वास नहीं करते और ऐसा कहते हैं कि जबतक ईशूके ऊपर विश्वास नहीं लायेगा तब तक किसी का भला नहींहोगा; इस जगहभी पक्षपात है और पीछे हम लिखचुके है। और रामानुज, नीमानुज, माध्व और वल्लभाचार्य्य, कबीरपन्थी, नानकपन्थी, दादूपन्थी रामसनेही, दरयादासी, खेड़पाखा, निरंजनी, नाथ, कंनफड़, योगी इन पन्थवालों के भी अनेक भेदहैं जो इनका सब हाल जुदा २ लिखने से अथवा इनके मंत्रादिक लिखने से ग्रन्थ बहुत बढ़जाने के भयसे नहीं लिखते क्योंकि जिज्ञासू ज्यादः ग्रन्थहोने से आलस्य वश होकर पूर्णरूपसे पढ़ न सकेंगे इसलिये नहीं लिखाया है किन्तु वे सब सम्प्रदायी लोग अपना२ पक्षपात करके अपना२ जाल विछाय कर भोले जीवो को फँसायकर जो जो जिसके दिल में जैसी २ उपासना आदिक आई तैसी २ करायकरके हठग्राही होकर अपने २ पक्षों को खेंचते हैं और आपस में लड़ाई झगड़े करते हैं एकको एक बुराकईना अपने को भला कहना प्रसिद्ध जगत् में छाय रहा है हम कहांतक लिखावें इसलिये तुमही अपने दिल में विचारकरो कि इन लोगों में पक्षपात सिद्धहोगया या नहींहुआ क्योंकि देखो सर्वज्ञ वीतराग सर्वदर्शी के जो वचन हैं सो सर्व निर्पक्षपात होतेहैं। सोही दिखाते हैं गाथाः—सम्बरोय असंवरोय वुद्धोय अहवा अन्नोवासमभावभाविगप्पा। लहमुरखो न संदेही ॥ १ ॥ स्वेताम्बरी वा दिगम्बरी है बौद्ध अथवा अन्य कहता है सांख्य न्याय वेदांतमिमांसादि कोई मतवाला होय जिस समयमें भाव भावी कहता अपनी आत्मामें संभाव लावेगा अर्थात् करेगा लहै नाम मोक्षको प्राप्त होगा इसमें कोई तरह का संदेह नहीं। अब देखो इस वचनमें कोईका पक्षपात नहीं जो पक्षपात होता तो जैनमतके सिवाय और दूसरेके लिये मोक्ष होना कदापि न कहता जो सर्वके लिये इसने मोक्ष कहा किन्तु जो उस क्रिया जो

कि है! उपादेको जो समझकर अंगीकार करेगा उसीका होगा न कोई जैनी न कोई वैश्नव । अब देखो तुमही विचार करो पक्षपातरहित सिद्ध हुवा कि नहीं और भी देखो कि जैसे २ मतावलम्बियोंने अपना २ पक्षपात मंत्र उपासनादिकोंमें जो किया है तैसाभी इस मतमें पक्षपात सहित कोईभी उपासनाका मंत्र नहीं है किन्तु पक्षपात रहित जो इनका उपासना मंत्र मूल है उसीको लिख करके अर्थ सहित दिखाते हैं ॥ (१) णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उझायाणं, णमोलोए व्वसासाहूणं, एसो पंचणमुःकारो सव पाप्पणासनो, मंगलाणंच सव्वेसिं पढमं हवे इ मंगलं” ॥ अर्थः–(णमो अरि हंताणं) कहता नमस्कार अरिहंतको होय, इस अरिहंत पदके तीन अर्थ होते हैं । (१) अरि कहता जो शत्रु उनको मारे अर्थात् कर्मरूपी शत्रुओंको दूर करे नतुः (अरि) कहता संसारी शत्रुको नहीं किन्तु राग द्वेष आदि जोकि संसारके बन्ध हेतु उनको जीते अर्थात् उनको दूर करे उसको मेरा नमस्कार होय अब इस जगह इस अर्थमें किसी जैनी व वैश्नवीका नाम नहीं हिन्दू वा मुसलमान वा ईसाई किसीकाभी नाम नहीं जो राग द्वेष आदि शत्रुवोको जीतेगा उसी (अरिहंत) को नमस्कार होगा अब देखो जो इनके पक्षपात होता तो इनके मुख्य जैन मतके चलाने वाले श्री ऋषभदेव स्वामी प्रथम हुयेथे उनसे आदि लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चौवीस तीर्थंकर हुये इस हुंड्डा सर्वनी कालके विषय ऐसी सर्व न उत्सर्पनी अनन्ती होगई अनन्ती हो जायगी जिस हरएकमें चोवीस २ ही तीर्थंकर होंगे इस भरतक्षेत्रकी अपेक्षा लेकर इसी रीतिसे और क्षेत्रोंमेंभी जान लेना परन्तु सर्व तीर्थंकरोंमेंसे किसी तीर्थंकरने ऐसी परुपना न करीकि इस (अर्हंतं) पदको उठायकर अपने नामका पद चलावे अनादि कालसे सर्व तीर्थंकारोंने इसी पदको अङ्गीकार किया और इसी पदोंकी महिमाका उपदेश देते गये और देते है, और देते जांयगे दूसरा पद कदापि न बदला जायगा, अब देखो कि जो इस मतमें पक्षपात होता वा अनादि न होता तो जैसे सर्व मतावलम्बियोंने पक्षपात सहित उपासना आदिक जुदी २ अङ्गीकार किया तैसा येभी जुदे २ तीर्थंकर हुयेथे और उन तीर्थंकारोंकी शिष्यादि शाखाभी जुदी २ हुईथीं तो येभी जुदी २ अपने २ नामसे चलाते तो चलजातीं सो तो किसीने न चलाई किन्तु राग द्वेषरूपी शत्रु दूर होनेसे जो प्राप्त हुई सर्वज्ञता, सर्वदर्शीपना, होनेसे किसीका आपसमें विषम्वाद न हुवा इसीलिये ये मत अनादि अविषम्वादी हम मानते हैं और तुमभी अपनी बुद्धिमें विचार कर देखो कि सर्व मतावलम्बियोंके विषम्वाद और इस मतमें अविषम्वाद युक्ति करके सिद्ध हो चुका अब इन पदोंका विस्तार करके चौथे प्रश्नके उत्तरमें लिखेंगे किञ्चित् अर्थ लिखते हैं इसीलिये हमने प्रथम पदकाभी थोड़ासा अर्थ कर युक्ति दिखाय दीनी । (णमो सिद्धाणं) नमस्कार सिद्ध भगवान्‌को वो सिद्ध नाम किसका है कि अष्ट कर्म करिके रहित, अक्षय, आवागमन करके रहित अर्थात् फिर उसका जन्ममरण न होय उन सिद्धोंको मेरा नमस्कार होय । (णमो आयरियाणं) नमस्कार आचार्यको होय जो ३ ६गुण करके संयुक्त पञ्च आचार पालनेवाला और पलानेवाला उसको नमस्कार होय । (णमो उवझायाणं) नमस्कार उपाध्यायको होय जो हे ज्ञेयु और उपादिके बतानेवालेको । (णमो लोए सव्वसाहूणं) जो

लोकके विषय सर्व साधू, तथा मुनिराज, जो कि मोक्ष मार्गके साधनेवाले उनको नमस्कार होय॥ अब इन चार पदोंके अर्थमेंभी किसी जैनी वा वैश्नव हिन्दू वा मुसलमान तथा ईसाई इसमें किसीका नाम न आय जैसा सर्व मवतावलम्बियोंने जिस २ के मुख्य आचार्य्यको मानकर नमस्कार करते हैं तैसा इस मतवालेने न किया क्योंकि जो २ तीर्थंकर उनके शिष्य गणधर आदि श्री पुंडरी महाराजको आदि लेकरके श्री गौतम स्वामी सुधर्मा स्वामी, पर्य्यन्त तक इस आचार्य्य पदमें नाम न आया इसीलिये पूर्व पदके अर्थानुसार जो युक्ति हम कह आये हैं सो सर्व इस जगह लगाय लेना और भी देखो कि इनके आचार दिनकर ग्रन्थमें जो इनके उपासक हैं उनके लिये पूजनकी विधि जो लिखी है उसमेंके एक दो श्लोक और एक मंत्र अर्थ समेत लिखकरके दिखाते हैं उसमेंभी पक्षपात रहित मालूम होता है—(श्लोक) शिवमस्तु सर्व जगतः परहितनिरता भवंतु भूतगणाः। दोषा प्रयांतु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥ १ ॥ सर्वोपसंतु सुखिनः सर्व्वे संतु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यंतु माकाश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥ २ ॥ अर्थः—शिवमस्तु इति सर्व जगत्का कल्याण हो प्राणीमात्र परोपकारमें सदा तत्पर रहो और दोषमात्रका नाश हो सर्व लोग सुखी रहो॥ १ ॥ सर्वे प्रीति सर्व लोक सुखी रहो सर्व लोगोंके रोग दूर रहो सर्व लोग कल्याणकी बात देखो कोई दुःखी मत रहो॥ २ ॥ श्री संघ पौर जन पद राजाधिप राजसंनिवेशानांगोष्ठी पुर मुख्यानां, व्यहारणो व्यहरे शांति। श्री श्रमण संघस्य शांतिर्भवतु, श्री पौर लोकस्य शांतिर्भवतु, श्रीजन पदानां शांतिर्भवतु, श्री राजाधिपानां शांतिर्भवतु, श्री राजासन्निवेशानां शांतिर्भवतु, श्री गोष्टीकानां शांतिर्भवतु॥ अर्थः—साधू साध्वी, श्रावक श्राविका, सर्वजन राजा, देशपतिराजा, (सनिवेश) कहतां गॉव, नगर आदि सेठ साहूकार अथवा व्यवहार करने वाले महाजन सर्व लोकके विपय जो भूत प्राणी सबकी शांति अर्थात् कल्याण हो अब देखो कि जो इस मतमें पक्षपात होता तो अपने मतावलम्बियोंके सिवाय और दूसरे लोगों की शांति पुष्टि न कहते परन्तु वीतराग सर्वज्ञदेव, सर्वदर्शी, जगतोपकारी, दीनबन्धु, दीनानाथ जगद्गुरु निष्कारण, परदुःख निवारण, सर्व भूत प्राणियोके हितकारक उपदेश देता हुवा सबके कल्याणको वांछता हुवा पक्षपात रहित जन्ममरण मिटानेवाला मोक्षदाता शिवपुरका पहुँचाने वाला कल्याणमार्गको कहता हुवा इसलिये जो कोई बुद्धिमान् विवेक सहित विचारमान हो वह इस मतको अर्थात् जिन धर्म को अंगीकार करके कल्याण करेगा, अब और भी देखो कि इसी पाँच पदका जो मंत्र है इसके कई तरहके भेद हैं और ॐकार भी इन्हीं पांच पदों से सिद्धहोता है। (प्रश्न) दयानन्द सरस्वती जीनेभी ईश्वर का नाम ॐकार लिखा है? (उत्तर) भो देवानांप्रियः! दयानन्द सरस्वती का जो लेख है सो आकाशके पुष्पके समान है। (प्रश्न) दयानन्द सरस्वती जी तो बड़े विद्वान् और अच्छे पण्डितथे आप उनके अर्थको आकाशके पुष्प के समान कैसे कहते हो? (उत्तर) दयानन्द सरस्वती कहते हैं कि ईश्वरका नाम (खं) और (ब्रह्म) भी है आकाशकी तरह व्यापक होने से (खं) और सबसे बड़ा होनेसे (ब्रह्म) है सो इन बातों का खंडन तो श्री आत्मारामजी का बनाया हुआ "अज्ञानतिमिर भास्कर" में अच्छीतरह से किया हुवा है इसलिये हमको कुछ ज़रूरत नहीं परन्तु जो ईश्वरका नाम

ॐकार लिखा है सो तो हमभी सत्यकरके मानते हैं परन्तु जो दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि (अ) (उ) (म) इन से अग्नि वायु आदिको का ग्रहण करा है सो स्वकपोल कल्पित विवेक शून्यबुद्धी विचक्षण अनघड़ पत्थरके समान अप्रमाणिक है क्योंकि प्राचीन वैद्यक मतवाले कोई तो तीन अवतारों से " ॐकार " को बनातेंहै—ब्रह्मा विष्णु, और शिव अवतारों सेही मानते है सो भी नहीं बनसक्ता क्योंकि तीनो अवतार एकही स्वरूपसे होते और कोई कहते है कि सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से " ॐकार " बनता है क्योंकि " अकार" को रजोगुण विष्णुरूप और " उकार" को सतोगुण ब्रह्मारूप और " मकार " को तमोगुण शंकररूप इन तीन अवतार तीनगुणसे मिलकरके (ॐकार) बना और वेदान्तियों की भी रीति लिखते हैं सो भी देखो कि " ॐकार " की उपासना बहुत उपनिषदों में है तथापि " मांडूक्योपनिषद् " तिसकी रीतिसे (ॐकार) का स्वरूप लिखतेंहैं विश्वरूप जो " अकार " है सो तेजसरूप " उकार " से न्यारा नहीं (उकार) रूप है और तेजस रूप जो " उकार " है सो प्रज्ञारूप (मकार) है इन तीनों अक्षरों अर्थात्(अकार) (उकार) (मकार) को अभेद रूप करके जो अमात्रक ब्रह्मरूप से अभेदरूप करके (ॐकार) की उपासना कही है ॥ अब देखो (ॐकार) के मानने में हमने चार रीति कहीं इन चारों मे से आपस में विषमवाद होने से दयानन्द सरस्वती का कल्पित अर्थ अग्नि, वायु आदिसे (ॐकार) क्योंकर बनसक्ताहै इसवास्ते नवीनमत चलानेवालों की बुद्धि अपने कल्पित मतको सिद्ध करनेके लिये नवीन २ बुद्धि होजाती है इसलिये सब नवीन मत है अब देखो कि अनादि " जिन " मतमें जो (ॐकार) का स्वरूप है सो लिखते है (अरिहंता अशरीराआयरियाउवज्झाय मुणिणो पंचखवानिप्पन्नो ॐकारो पंचपरमेष्ठी) इन पांचों पदोंके आदि २ के अक्षर लेने से व्याकरण रीतिसे " ॐकार " सिद्धहोता है जो कोई व्याकरण सन्धि आदिभी जानता होगा सो भी सिद्धकरलेगा, देखो किञ्चित् हमभी कहते हैं; समान से परे जो समान उन दोनों के मिलने से दीर्घहोता है और (आकार) और (ऊकार) के मिलने से (ओकार) होता है और (मकार) का व्याकरण के सूत्रों से विन्दुरूप अर्थात् अर्धचन्द्र आकारवत् अनुस्वार होजाता है—अब देखो इन पांचपद परमेष्ठी से " ॐकार" सिद्धहुवा इसलिये इन पांच पदके सिवाय भव्य जीवके लिये उपासना करने को दूसरी कोई वस्तु नहीं है इन पदों का सामान्य रूप अर्थ तो पेश्तर लिखआये है और विशेष अगाड़ी लिखेंगे, अब देखो सत्य २ रूप (ॐकार) इन पांच पदो से सिद्ध होचुका और इन पांच पदोंही के गुणो की मालाके जो मणिये की जो संख्या रक्खी गईहे सो गुणों को अंगीकार करके आर्य लोगों के लिये जब स्मरण व्यवहार सर्व प्राचीन मतों से प्रसिद्ध है क्योंकि मालामें १०८ मणियाँ होना इसीलिये १०८ मणियें होने की संज्ञा रक्खी क्योंकि जिन पांच पदोंसे (ॐकार) को सिद्ध किया उन्हीं पदोंके गुणको एकत्र मिलाने से १०८ होते है सो प्रक्रिया इस रीतिसे है (अरिहंत) पदके १२ गुण, अशरीर, अर्थात् (सिद्ध) पदके ८ गुण; (आचार्य्य) पदके ३६ गुण, (उपाध्याय) पदके २५ गुण, और (मुनि) पदके २७ गुण इन सबको इकट्ठे करनेसे १०५ गुण होते हैं इन्हीं पांच पदोंके गुण की माला हुई इसलिये सर्वत्र सर्व मतावलम्बी १०८ मणियों की

मालासे कोई कमी बेशी नहीं कर सकता इसलिये सब रीतिसे पक्षपात रहित अनादि सिद्ध हो चुका और जो हमने १०८ गुण ऊपर वर्णन किये इनका खुलासा हाल चौथे प्रश्नके उत्तरमें जहां वीतरागका उपदेशके वर्णनमें करेंगे, जो तुमने दूसरा प्रश्न कियाथा उसका उत्तर हम निर्पक्षपात होकर दिया है जो कोई बुद्धिमान्, विवेकी, आत्मार्थी, सत्य असत्यका विचार करके असत्यका त्याग और सत्यका ग्रहण "वीतराग" सर्वज्ञ देव, दीनबन्धु, दीनानाथ, जगद्गुरु, जगत्‌हितकारी, सच्चिदानन्द, परमानन्द, परोपकारीके उपदेशको अङ्गीकार करके अपना कल्याण करो ॥

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य्य मुनि चिदानंद स्वामी विरचितेस्याद्वादानुभव रत्नाकर न्यायमत, वेदांतमत, दयानंदमत, मुसल्मानमत, ईसाईमत, निर्णय अनादि सर्वज्ञमत सिद्ध द्वितीय प्रश्नोत्तरं समाप्तम् ॥

अथ तीसरे प्रश्नके अन्तर्गत प्रथम दिगम्बर आमनाय निर्णय ॥
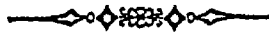
अब तीसरे प्रश्नके उत्तरको सुनो कि जो तुमने जैन मतके भेदोंको पूछा है सो कहते हैं श्री महावीर स्वामीके निर्वाणसे ६०९ वर्षके पश्चात् दिगम्बर जिन मतसे विपरीति होकर साधु सहस्र मल्ल अपने आचार्य अर्थात् गुरुसे द्वेष बुद्धि करके वस्त्रादिक सब छोड़कर दिगम्बर अर्थात् नग्न होकर समुदायसे निकल गया और उसके साथ उसकी वहन भी नग्न होकर समुदायको छोड़कर चल दीये दोनों जने वस्तीमें आहार लेने जातिथे उस समय उस साधवीको नग्न देखकर किसी वेश्याने लज्जासे उसके ऊपर एक वस्त्र अपने मकानके ऊपरसे गिरा दिया वो वस्त्र उसके ऊपर पड़नेसे उसके भाईने जो पीछे फिर कर देखा तो उसके ऊपर कपड़ा पड़ा हुवा नजर आया तब वह कहने लगा तू एक वस्त्र रख तेरा नग्न रहना ठीक नहीं और जैनी नामसे अपनेको प्रसिद्ध करने लगा कि मैं जैनी हूं और उसीसे इनके नग्न होनेकी परम्परा भी चलने लगी फिर इनमें एक कुमदचन्द्र मुनि बहुत प्रबल पंडित हुवा उसने असल मत अर्थात् जिन धर्मसे ८४ बोलका मुख्य फरक गेरा और पीछेसे तो बहुत बातोंका अब तक फर्क पड़ गया है और कई तरहकी इनके भी वीस पन्थी, तेरा पन्थी आदि भेद हो गये हैं सो हम इस जगह किञ्चित् इनकी परम्परा दिखाते हैं और ८४ बातोंमें से चार तथा पांच बात जो मुख्य है उनका वर्णन करते हैं सर्व मतावलम्बी भी उनका विचार कर सकते है पॉच बात यह हैं:- (१) केवली आहार नही करे (२) वस्त्रमें केवल ज्ञान नहीं (३) स्त्रीको मोक्ष नहीं (४) जैन मतके दिगम्बर आमनाके सिवाय दूसरेको मोक्ष नहीं (५) काल द्रव्य मुख्य है-केवली जो आहार करे तो अनेक

दूषण आवें तो हम यह पूछते है कि आहार कितने प्रकारका होता है (उत्तर) आहारछः६ प्रकारका होता है जिसमेसे चार प्रकारका आहार तो देवता नारकी पक्षियोंके अंडस व एकन्द्रिय वृक्ष प्रथव्यादिकका है और तौ कर्म कवल आहारमेंसे एक कवल आहार निषेध करते हो तो हम तुमको पूछे हैं कि वह जो कवल आहारका निषेध करो हो सो क्या उदारीक पुद्गलके अभावसे व उदारीक शरीर रहते भी उदारीक शरीरके भोगके अभावसे अथवा जीवकी अनन्त शक्ति प्रगट होने वा कर्मोंके अभावसे प्रथमपक्षमे तो तुमभी नहीं कह सकोगे क्योंकि देस ऊना कोड पूख की स्थिति मानो हो द्वितीयपक्षमें भी नहीं सिद्धि होगा क्योकि कारणके रहते कार्य्यका नाश नही होता जो कारण के रहते कार्य का नाश मानोगे तो आयु कर्मके रहते केवलीको मोक्ष होना चाहिये क्योंकि आयु कर्मकेवलीको संसारमें रहनेका कारण है इसीलिये मोक्षमें केवली नहीं जाता इसवास्ते कारण तो उदारीक शरीर और कार्य उसका भोगादि सो कदापि नष्ट नहीं होगा अत्र कारण कार्य्य विपरीति करके भी दिखाते हैं कारणके नष्ट होनेसे कार्य अवश्यमेव नष्ट हो जाता है तो देखो कि अहारादि तो कारण ठहरा और उदारिक शरीरका बना रहना कार्य ठहरा तो जो तुम आहारादिक नहीं मानोगे तो उदारीक शरीर रूप कार्य क्योंकर रह सकता जो तुम कहो कि देवताके कवल आहार विना सागरोंकी स्थिति क्यों कर रहेगी इस तुम्हारे उत्तरको सुनकर तुम लोगोंकी बुद्धिकी शोभा पानी भरने वाली स्त्री कुवें पर कहती है कि दिगम्बर लोग कैसे बुद्धिमान् है कि नपुंसकसे भी पुत्रकी उत्पत्ति करते है, और भाई! कुछ बुद्धिसे विचार तो करो कि उदारीक शरीरके प्रसंगमें वैक्रिये शरीरका दृष्टान्त देनेसे तुमको शरम नहीं आती कि हमको बुद्धिमान् लोग सभामे हँसेंगे जो तुम कहो कि सर्व मनुष्योंकी तरह केवलीके आहार मानोंगे तो सर्व मनुष्योंकी तरह इन्द्रियजन्य ज्ञानका प्रसंग होजायगा तो केवल ज्ञानको जलांजली देनी पड़ेगी तो हम तुमको पूछें है कि केवल ज्ञान शरीरको होता है या जीवको होता है ? तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि शरीरको नहीं जीवको होता है तो शरीरके केवल आहार होनेसे जीवके अतिन्द्रिय केवल ज्ञानको जलांजली मानी तो नैगमनयसे लेकर समभि रुढनयतक जो वचन कहना सो सर्व निश्चय नयको जलांजली हो जायगी इसीलिये बुद्धिमानोंकी बुद्धिमें जिन रहस्य आता है क्या पामर लोग भी समझ सकते है जो तुमको कल्याणकी इच्छा हो तो जो अनादि परम्परा श्री जिन धर्मके ग्रहण करने वाले श्वेताम्बर गुरु उनके चरण कमलकी सेवा करो (ननु) कवल आहार करनेसे रसना इन्द्रियका स्वाद होकर अतिन्द्रिय केवल ज्ञानकी हानि क्यों नहीं होगी और भोले भाइयो! कछु नेत्र मीचकर बुद्धिका विचार करो इस जगह दृष्टान्त देकर दार्ष्टान्तको सिद्ध करते हैंकि किसी व्यवहारीके हजारों मन घी (घृत) रक्खा रहता है तो क्या जलके पीनेसे वा अन्नके खानेसे उसके घरका (घी) न रहेगा इसीरीतिसे दूसरा भी कोई साहूकारके मकानमें हीरा, मोती, पन्ना आदि जवाहिरात भरे हुयेथे ? जव उसको भूख लगती तो वो अन्न खाता तो क्या अन्न खानेसे जवाहिरात उसके घरके चले गये ऐसा तो कोई बुद्धिमान् न कहेगा न समझेगा ? अब अन्न खानेसे पानी पीनेसे उस व्यवहारीका घी व उस साहूकारकी जवाहिरात न रहेगी ऐसा कोई नहीं कहेगा अब इस द्रष्टान्तसे दार्ष्टान्तको

समझो कि अतिन्द्रिय ज्ञान दो प्रकारका है । १ एक तो देश अतिन्द्रिय ज्ञान २ दूसरा अतिन्द्रिय ज्ञान तो देखो कि जब भगवान् गर्भमें आते हैं तबहिसे अवधि ज्ञान होता है और दीक्षा लेनेसे मन पर्यव ज्ञान होता है जिसको तुमभी भगवान् मानते हो और उसके कवल आहारभी करना मानते हो तो देखो कि एकदेश अतिन्द्रिय ज्ञान कवल आहार करनेसे नहीं गया तो सर्व अतिन्द्रिय ज्ञानमें कवल अहार करनेसे क्योंकर हानि होगी इसलिये केवलीको आहार सिद्ध हुवा और भी देखो नवी युक्ति तुमको सुनाते हैं कि जैसे कोई मनुष्य धनुष बाण लेकर निशाना मारनेके लिये निशाने पर तीर छोड़ चुका तो वह मनुष्य निशानेपर विना लगे बीचसे उल्टा उसी तीरको कदापि नहीं ले सकता कैसाही बलवान् चतुर पुरुष होय परन्तु उस बाणको पीछा लानेमें समर्थ न होगा तैसेही जो कोई पुरुष उदारीक पुद्गलका जो भोग बाधा है उसको मिटानेमें समर्थ न होगा इसी युक्तिसे जो केवली जब तक उदारीक शरीरमें रहेगा तब तक उसको कवल आहार लेनाही पड़ेगा अब जो तीसरा पक्ष याने जीवकी अनन्त शक्ति प्रगट होनेसे जो केवलीको आहार मानोगेतो उसकी अनन्त शक्तिकी हानि हो जायगी तो हम तुम्हारेको कहैं हैं कि कोई महात्मा बहुत विद्वान् और लक्ष्मीवान् है सो जो अपने चेलाको आहार करावे अर्थात् भोजन करावे तो क्या उस महात्मा पुरुषकी चेलाको आहार करानेसे विद्या व लब्धी नष्ट हो सकती है ? कदापि न होगी इसलिये केवलीको आहार करनेसे केवली की अनन्त शक्ति कदापि न जायगी ? "ननु" गुरु चेला भिन्न है और केवलीका शरीर अभिन्नहै इसलिये आहार नहीं बनता है तो हम तुम्हारेसे पूछैं हैं कि अनन्तशक्ति केवलीके जीवको है कि शरीरको है तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि शरीरको नहीं केवलीके जीवको है तो अब देखो विचार करो कि केवलीके जीवको है तब शरीरके आहार करनेसे क्योंकर केवलीको अनन्त शक्तिकी हानि होगी 'ननु' केवली एक दिनमें एक वार अथवा दो दिन वा चार दिन व आठ दिन क्या पंद्रह दिनमें व एक मासमें आहार लेता है जिस रीतिसे केवली आहार लेगा उसही प्रमाण उसकी शक्ति रहेगी शक्ति घटनेसे भोजन करेगा तब तो केवलीकी शक्ति भोजनके आधीन होचुकी अजी कुछ विचार तो करो कि शक्ति तो जीवकी प्रगट हुई है उस शरीरको नहीं तो केवलीकी शक्ति आहारके आधीन क्योंकर रही इन बातोंसे तुम लोग बिल्कुल विचारशून्य मालूम होते हो जैसे कोई मूर्ख पुरुष कहने लगा कि कि मेरे बापने घी बहुत खाया था न मानों तो मेरा हाथ सूंघ कर देख लो जैसे उस मूर्खके हाथ सूंघनेसे उसके बापका घी खानेका अनुमान नहीं होता तैसेही शरीरके आहार न करनेसे केवलीकी शक्ति घटने काभी अनुमान नहीं 'ननु' केवली जो आहार करता है सो आहारका स्वाद केवल ज्ञानसे करे है वा रसना इन्द्रियसे करे है जो कहो केवल ज्ञानसे आस्वाद है तो कवल आहारका प्रयोजन क्या और जो रसना इन्द्रियसे करेगा तो मति ज्ञानका प्रसंग हो जायगा इसलिये केवलीके आहारका मानना ठीक नहीं है अरे भोले भाइयो! मत पक्षको छोड़के बुद्धिसे विचार करो कि केवल ज्ञान शरीर सूं भिन्न है व अभिन्न है जो कहो कि अभिन्न है तो तुम्हारे केवलीका शरीर समेत मोक्ष जाना हुवा, जब शरीर समेत मोक्ष

गया तव तो मोक्ष संपूर्ण भर गई होगी तव तो हम जाने हैं कि तुम्हारे आचार्य और कोई नवीन मोक्षका स्थान जुदाही बनावेगे जव तो तुम्हारी मोक्षकी हम क्या शोभा करें जैसी मुसल्मानोंकी विहिश्त वैसीही तुम्हारी मोक्ष ठहरी जो कहो कि शरीरसे भिन्न है तो भिन्नके आहार करनेसे भिन्नकी शक्तिकी हानि माननी निष्फल है। और जो तुमने रसना इन्द्रियके आस्वादसे मति ज्ञानका प्रसंग कहा तिसमेभी विचार शून्य तुम्हारी बुद्धि मालूम होती है देखो कि जिन मतमें छठे गुण ठाणे वाले मुनिभी वा जो उत्कृष्ट श्रावक आदि हे वो भी जो वैरागवान् जिन मतके जानीकार हो तो रसना इन्द्रियका स्वाद नहीं लेते हे तो केवलीने अनादि कालका संवन्ध संयोगसे जो पुद्गल अर्थात् शरीरकी तदाकार वृत्ति तिसको अपनी आत्मासे भिन्न जानकर शरीरसे निमित्त भाव उठाय कर केवल ज्ञान उपार्जन किया तो कहो अव रसना इन्द्रियका आस्वाद क्योंकर लेगा देखो जैसे हलन चलन आदि क्रिया करता है तैसेही आहार आदिकी क्रियाभी जान लेना अर्थात् समझ लेना चाहिये 'ननुः' ॥ अल्प शक्तिवाले जो पुरुष हैं वो जिस जगह जीवहिंसा; चोरी, जारी, अधर्म आदि होता है वा सामान्य पुरुषभी जिस जगह निर्धिनिता अर्थात् बुरी वातोंको देखते हैं उस जगह अपनी शक्त्यनुसार जीवहिंसादिकको दूर न करें तव तक अपना नेम, धर्म, भोजनादि नहीं करते तो केवली महाराज तो केवल ज्ञानसे प्रत्यक्ष हिंसा आदिको अधर्मोंको देखते हे तो सामान्य पुरुषही आहारादि नहीं कर सकें तो केवली महाराज तो महा दयावन्त क्योंकर आहारको करेंगे ? अजी देखो! जो तुमने सामान्य पुरुषकी शक्तिका दृष्टान्त दिया सो हम तो क्या कहें परन्तु मिथ्यात्वी लोगभी तुम्हारे केवलीकी अनन्त शक्तिकी हँसी करेंगे क्योंकि देखो सामान्य शक्तिके धारण करने वाले राजा आदिक अपने धर्मसे विरुद्ध होय ताको दूर करते हे तो कहो कि उस तुम्हारे केवलीकी अनन्तशक्ति प्रगट भई तो जैसे वे सामान्य शक्तिवाले हिंसा आदिक को दूर करके अर्थात् विरुद्ध को मिटाय कररहते हैं तैसेही तुम्हारे केवलीको भी अनन्तशक्तिके जोरसे सर्व हिंसादिकको मिटायकर रहना चाहिये जो तुम्हारा केवली ऐसा न करे तो उसकी अनन्त शक्तिका प्रगट होना निष्फल हुवा जैसे आकाशमें नानाप्रकारके रङ्ग मालूम होते हैं परन्तु कुछ ठहरते नहीं ऐसी तुम्हारी केवली की अनन्त शक्तिहुई इससे तो उन राजा आदिक सामान्य पुरुषों की अल्पशक्ति उत्तम ठहरती है क्या तुम्हारे केवली की अनन्त शक्ति एक केवल आहारको निषेध करनेके लिये और हिंसा आदि अधर्मको देखता हुवाभी उस अनन्त शक्ति से निवारण नहीं करसका तो वड़े आश्चर्य की वात है कि "दुर्लभो दैवघातकः" कि उदारिक पुद्गलके भोगके वास्ते तुम्हारे केवली की अनन्तशक्ति प्रगटहुई अजी किसी शुद्ध गुरुके चरण कमल की सेवा करो जिससे तुम्हारे को अनुभव की शक्ति प्रगट हो जाय जब तुम्हारेको जिनधर्म का रहस्य मालूम होगा उससे तुमको आपही मालूम पड़ेगा कि केवली भगवान् की अनन्तशक्ति स्वाभाविक अर्थात् आत्मा शक्ति प्रगटहुई है जिसे किसी का भला बुरा नहीं होता किन्तु जैसा केवल ज्ञान मे देखते हैं तैसी ही शक्ति होतीहै इसलिये केवली महाराज की जो उदारिक शरीर उसका जो भोग केवल आहार सो करनाही पड़ेगा

इसवास्ते केवलीके कवल आहार सिद्धहोचुका अब तीन विकल्पों में जेसे आहार सिद्धहुवा तैसे चौथे विकल्प में भी आहार सिद्ध करते हैं । अब देखो कि चार कर्म घाति तो नष्टहोजाते हैं अर्थात् दूर होजाते हैं और चार कर्म जो अघातिया है सो बनेरहते है तो कहो किस कर्मके अभाव से आहार का नष्ट करते हो कदाचित् वदनी कर्म के रहते आहार का निषेधकरोगे तो कदापि नहीं बनेगा क्योंकि आहार जो है सो वेदनी कर्मकी प्रकृति है इसलिये वेदनी कर्म के रहते आहार का निषेधकरना असम्भव है 'नतु' वेदनी कर्म बाकी है परन्तु मोहनी कर्मका नष्ट हो जानेसे इच्छाका अभाव है इच्छाके न होनेसे आहार कूँ निषेध करते हैं इसलिये वेदनी कर्मका जोर नहीं क्योंकि मोहनी कर्मके ज़ोरसे वेदनी कर्म ज़ोर देता है तो हम तुम्हारेसे पूछें है कि मोहनी कर्मके न होनेसे वेदनी कर्म-का ज़ोर नहीं मानोगे तो आयु कर्मके रहतेही मोहनी कर्मका नष्ट होना अर्थात् दूर होना ऐसा मानना भी तुम्हारा व्यर्थ होगा दूसरा साता वेदनीका भोग मानना भी निष्फल होगा इस कारणसे नेत्र मींच कर बुद्धिमें विचार करो कि जैसे एक वर्तनमें मिश्री और मिरचका शरबत बनाया तो कहो कि उस शरबतमेंसे मिश्रीका स्वाद आवे और मिरचका स्वाद नहीं आवे ऐसा कदापि बुद्धिमान् विवेकी पुरुष तो कहे नहीं किंतु तुम सरीखा पामर हठग्राही विचारशून्य कहे तो बुद्धिमान् भी प्रमाण नहीं करेगा और भी देखो कि जो असाता वेदनी नहीं होती तो तत्त्वार्थ सूत्रमें "एकादश जने" ऐसा कहनेसेही कि असातना वेदनी अर्थात् वेदनी कर्म कहनेसे २२ परीसामेंसूं केवलीके ११ परीसा कहा है क्योंकि देखो जिस २ कर्मसे जो २ परीसा होता है उसीको हम लिखाकर दिखाते हैं ज्ञानावर्णी कर्मके नष्ट हो-नेसे प्रज्ञा व अज्ञान परीसा नष्ट होता है और दर्शन मोहनीके नष्ट होनेसे समगत् अर्थात् दर्शन परीसा और चारित्र मोहिनीके नष्ट होनेसे अक्रोस १ अरती २ स्त्री ३ नेशेधकी ४ अचेल ५ याचना ६ सत्कार ७ ये सात परीसा नष्ट होते हैं और अन्तराय कर्मके नष्ट हो-नेसे अलाभ परीसा नष्ट होता है इन चार कर्मके दूर होनेसे ११ परीसा दूर होते हे शेष रहे जो ११ परीसा वेदनी कर्मके रहनेसे केवलीमें भी "एकादश जने" इस कहनेसे ११ परीसा ठहरे तो जब केवलीमें ११ परीसा ठहरे तो आहारका निषेध करना आकाशके पुष्पके समान हुवा 'ननु' वेदनी कर्म बाकी है सो साता वेदनी है असाता वेदनी नहीं इस-लिये हम आहारका निषेध करते हैं–तो हम तुमको पूछे हैं कि जो तुम एक सातवेदनी मानो हो तो तुम्हारे आचार्य्योंनें ११ परीसा क्यों कहे उनको कोई परीसा, नहीं कहना था जो तुम्हारे आचार्य्योंने ११ परीसा कहे तो क्या भॉगके नशेमें सूत्र रचना करीथी वा तुम लोग उस सूत्रके अर्थका भांग पीकर विचार करते हो जो ११ परीसा मान करके फिर आहारका निषेध करना मनुष्यकी पूंछका वर्णन करना और भी देखो कि जिसको तुम सर्वज्ञ मानते हो वह तुम्हारा माना हुवा सर्वज्ञहीं ठहरता है जो वह तुम्हारा माना हुवा सर्वज्ञ होता तो साढ़े चार४॥कर्मके क्षय होनेसे केवल ज्ञानकी उत्पत्ति मानता ऐसाही तुम्हारे सूत्रोंमें लिखा होता तो तुम्हारा कहना ठीक था परन्तु तुम्हारे सूत्रोंमें तो चार कर्मके अभावसे केवल ज्ञान उत्पन्न होता है इसलिये तुम्हारा असाता वेदनीका न मानना श्वेताम्बरोंमें द्वेष बुद्धिकर अपने मतका आग्रह अर्थात् पक्षपात करना है क्योंकि जो मतमेंसे निकलकर अपना जुदा पन्थ चलाता

है वही हठग्राहीपणा करता है ननु आत्मार्थी जो तुम कहो कि क्षुधा अर्थात् भोजन करना असाता वेदनी कर्म की उदीरणासे होय है सो असाताकी उदीरणा छठे गुण स्थानमें विवच्छेद हैं तद सप्तम स्थानादिकमे क्षुधाके वेदनेका अभाव है अजी कुछ बुद्धिका विचार तो करो सप्तमादि गुण स्थानोंकी स्थिति कितनी है तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि सातमेंसे लेकर बारमें तक अन्तर मुहूर्त्तकी स्थिति है तो कहो कि अन्तर मुहूर्त्तकी स्थितिका दृष्टान्त देस ऊना क्रोड़ पूर्वकी स्थितिमें देना इस तुम्हारी विलक्षण बुद्धिको देखकर हमको करुणा आती है कि इनका मिथ्यात कब दूर होगा—'ननु' तिस कालमें मुनि श्रेणी चटे हैं तब अप्रमत गुणस्थानमें अध्यकरणके आरम्भमें चार आवस्यक होय है १ तो प्रति समय अनन्त गुण विशुद्धतास्थिवन्द अवसरण कहिये घट वो ३ साता वेदनी आदिक पुण्य प्रकृतिमें अनन्त गुणकाररूप रसका वधना और ३ आसादिक अशुभ प्रकृति निराश अनन्त गुण घटित जर्जरीरूप होकर रहे अर्थात् घटती जाय पीछे अपूर्व करणमें गुण श्रेणी निर्जरा गुण संक्रमण स्थिति खंडन ४ आवश्यक होय है तिनके अभावसे आसा आदिक अप्रशस्त प्रकृतिका रस घटनसे अति भेद शक्ति रहती है याते केवलीको असाता वेदनी परीसा उपजानेको समर्थ नहीं और घाति कर्मका सहाय नही इसलिये परीसा जोर देनेमें समर्थनहीं इसलिये केवली आहार नही करे—अजी हम तुम्हारेको इसीलिये जैनी नहीं कहते हैं क्योंकि ऐसी २ बातें कहते और विचार नहीं करते कि हमारेको वचनोव्याघात दूषण आवेगा कि मेरे मुखमें जिह्वा नहीं है तो जो तेरे मुखमे जिह्वा नही तो बोलता कैसे है देखो विचार करो कि एक तो परिसाका मानना निष्प्रयोजन है खैर अब औरभी देखो कि असाता वेदनीकी मंदशक्ति तो तुम्हारेको भी इष्ट है अर्थात् मानो हो तो जैसी मन्द शक्ति है जैसा आहार करनेमें क्या दोष है इसीलिये हमारा कहना है कि तैसी असाता वेदनी कर्म होय वैसाही केवली आहार करे तो तुम्हारी क्या हानि है और दूसरा तुम्हारे जैसा कङ्गलोंकी तरह यत्न करके पेट भरते है वैसे हम केवलीके यत्न करना नहीं कहते क्योकि केवली भगवान्के तो विना यत्न करे अर्थात् अनासुरत कर्म फल आहारकी प्राप्ति होती है कारण कि अन्तराय कर्मका अभाव है जो स्वतः प्राप्ति नही हो तो अन्तराय कर्मका अभाव अर्थात् नष्ट होना असंगत हो जायगा इसलिये केवली महाराजके आहार सिद्धि हो गया—जिस रीतिसे कि केवलीको आहार सिद्ध हो गया ऐसेही वस्त्रमें केवल ज्ञान होना भी कोई बाधा नहीं सो दिखलाते हे अब देखो कारणसे कार्य्यकी उत्पत्ति होती है तो जो २ जिसका कार्य है उसको उसही मुजिब कारण होना चाहिये तो धर्मरूपी कार्यके साधनमें धर्म उपकरणरूपी कारण होनेसे धर्मरूपी कार्य्यसिद्ध होता है देखो कि मुँहपत्ती रखनेसे जो सूक्ष्म जीव शरीर ऊपर बैठे हैं अथवा मुंहके आड़ीरखनेसे मक्खी, मच्छर आदि मुँहमें नहीं जायगा क्योंकि मुँहमें जानेसे उनकी हानि होगी इसलिये मुँह पत्तीका जीव रक्षा धर्म उपकरण धर्म सिद्ध हुवा ऐसेही रजोहरण जो है उससे रज अर्थात् धूलि दूरि करकें साधु उस जमीनपर बैठे क्योंकि उस धूलिमें नाना प्रकारके सूक्ष्म अनेक जीव रहते

१ जो ननु शब्द ऊपर लिख आये है सो शकावाची है सो प्रश्न समझो (पू०) (स०)

है उसपर बैठनेसे जीवहिंसा होगी इसलिये रजोहरण अवश्यमेव रखना चाहिये इसी रीतिसे चद्दरभी साधुको रखनी चाहिये क्योंकि जब अत्यन्त शीत आदिक पड़ेगा तब उसको आर्त्तध्यानकी प्राप्ति होगी इसलिये जीर्ण वस्त्रकी चद्दर रखनी चाहिये और आहार आदिक हाथमें लेगा तो अजैना होगी क्योंकि जो हाथमेंसे आहार आदिकका बिन्दु जो गिरेगा तो उससे जीव हिंसा होगी इसवास्ते पात्रभी रखना चाहिये ॥ अब पूर्व पक्ष और समाधान इन चिह्नोंसे सब जगह जान लेना। (पूर्वपक्ष) पर द्रव मात्र निवृत्ति अर्थात् परद्रव्य मात्रको जो त्याग और आत्माद्रव्य काही जो प्रतिबन्ध होय उसीका नाम संयम है इसलिये वस्त्र आदि रखना ठीक नहीं ! (समाधान) जैसे शरीर पर द्रव्य शुद्ध उपयोगका सहायकारी होता है तो उसको परिग्रह नहीं कह सकते तैसेही उपकरणभी शुद्धउपयोगका सहायकारी होनेसे परिग्रह नहीं। (पूर्व पक्ष) जो तुम कहो हो कि शीतादिके आर्त्त ध्यान मिटानेके वास्ते जीर्ण वस्त्रका जो भार अर्थात् बोझा उठाते हो तो मैथुन निमित्त जो आर्त्तध्यान तिसके वास्ते एक लूली, लंगड़ी, काणी, कुरूप स्त्री क्यों नहीं रखते हो तो उसकोभी रखना चाहिये। (समाधान) अरे भोले भाई ! इस वचनके बोलनेसे तुम्हारेको शरम नहीं आती है क्योंकि ये वचन मिथ्यातरूपी नशेके जोरमें बोलना ठीक नहीं है हमारे तो इस वचनकी बाधा नहीं है किन्तु तुम्हारेको माया सुमतीमें दूषण आता, है देखो ! जैसे तुम्हारेको भूखकी पीड़ा डालनेके निमित्त आहार लेतो हो नहीं लेते तो आर्दध्यन होता है तिसके दूर करनेके वास्ते अथवा शरीर राखनेके वास्ते आहार लेना अङ्गीकार करो हो तो तुम भी स्त्री का रखना क्यों नहींमानते हो येतो समान कहना हुवा अब देखो कि जैसे तुम आहार में गुण मानो हो और दोष नहींमानो हो तैसेही धर्म उपकरण में पिण गुण है दोषनहीं इसलिये धर्म के साधन में धर्म उपकरण रखने से किञ्चित् दोषनहीं। (पूर्वपक्ष) अजी वस्त्रआदिपर द्रव्यरक्खोगे तो मूर्छा आदिक क्यों नहीं होगी क्योंकि जब चौरादिक वस्त्रआदिक लेगा तो विना मूर्छा के उससे क्योंकर बचा सकोगे जो नहीं बचासकोगे तो फिर गृहस्थीसे मांगते फिरोगे तो मांगनेहीं में रात दिन जायगा तो आत्मध्यान कब करोगे। (समाधान) अरे आत्मध्यानियो ! कुछ बुद्धि का विचार तो करो कि जब तुम्हारे को सिंह, सर्प, आदिक मिले तो अपने शरीर आदिक को क्यों बचाते हो क्योंकि शरीरभी तो आत्मद्रव्य से परद्रव्य है और जो बचाओगे तो मूर्छा ठहरेगी और जो नहीं बचाओगे तो जन्म मरण करतेही फिरोगे तो फिर आत्मध्यान किसजगह होगा और मर्घट अर्थात् मैसानी या वैरागी मतवनो कुछ नेत्र मींचकर विचारको कि मिश्रितभाव संसार वन्ध हेतुका जो कारण ऐसी जो मूर्छा उसका त्यागकरना जिस मतका रहस्य है नतु धर्म साधन निमित्त उपकरण आदि आत्मगुण प्रगट करने के लिये जो प्रशस्त राग सो मूर्छा नहीं। (पूर्वपक्ष) अजी भला विचार तो करो देखो तो सही कि जैसे चावलके ऊपर तुस होनेसे उस तुस चावल को चूल्हेपर चढ़ाय कर कितनीही अग्नि जलावो परन्तु वह चावल नहीं सीजता है इसीरीति से मुनिको वस्त्र रखने से केवल ज्ञान नहीहोता है (समाधान) वाहरे बुद्धिमान् ! बहुत अच्छा चावल के तुससमेत का दृष्टान्त दिया विवेक शून्य बुद्धिका विचार किञ्चित्भी नहीं किया क्योकि देखो कि उरद, मूंग,

चनाआदिक तुससमेत चूल्हेपर चढ़ाने से सीजते दीखेंहैं इसीरीति से जिन आज्ञा आराधक अर्थात् आज्ञाके चलनेवाले मुनिराज वस्त्ररखने से केवल ज्ञानको प्राप्तहोते हैं नतु तुम सरीखे चावलके तुससमान मिथ्यात्वु अवनिवेशी बिराधकों को अर्थात् जिन आज्ञारहितों को केवल ज्ञान नग्नहोनेका कदापि न होगा। (पूर्वपक्ष) अजी भला देखो कि वस्त्रआदिक रक्खोगे तो लज्जा परीसा तुम्हारे से नहीं जीतागया जव लज्जा परीसाही नहीं जीता गया तो और परीसा क्योंकर जीतोगे इसीलिये भगवान् ने लज्जापरीसे को जितना मुश्किल कहा है तवतो लज्जापरीसा नहींजीत नेसे२२परीसा न रहे २१ ही रहगये। (समाधान) इस तुम्हारी विलक्षण बुद्धिको देखकर हमको वड़ी करुणा आती है क्योंकि देखो कि इन विचारोंको कुमदचन्द्र आचार्य्यने कैसा जाल फैलाय कर इनको फँसादिया कि जिससे शुद्ध जिन धर्म की प्राप्तिनहीं होनेदी केवल मिथ्यात्मे गिरा दिया हम तुम्हारे हितकी कहते हैं कि देखो जो तुम नग्नहोने सेही लज्जापरीसा का जीतना मानो तो सांड़, भैंसा, ऊंट, हाथी, कुत्ता, बिलाव, गधाआदि पशुओं में वस्त्र न होने से अर्थात् नग्नरहने से सवने लज्जापरीसा जीतलिया तवतो तुम इनकोभी मुनि मानते होगे इसीहेतु से हम अनुमान करतेंहै कि तुम्हारे आचार्य्यों का कहाहुवा जो पञ्चम कालके छेड़े तक जो धर्म रहेगा तो इन्हीं पशुवों आदि मुनियों से धर्म रहता दीखेहै नतुः मनुष्यआदि मुनियों से और कोई तुम्हारा मनुष्य मुनि दीखताभी नहीं है सिवाय इन पशुओं मुनियों के अच्छा लज्जापरीसा तुम्हारे आचार्य्योंने अङ्गीकार किया परन्तु लज्जाको समझे नहीं इसलिये हम तुमको लज्जा का अर्थ दिखलाते हैं सो तुमलोग पक्षपात को छोड़कर इस अर्थ को अङ्गीकार करोगे तो तुम्हारा कल्याणहोगा देखो "लज्जा" अर्थात् जिस में शर्म न आवे उसको कहते हैं क्योंकि कोई जिन धर्मकी निन्दा न करे क्योंकि जव तुम नग्न पनेको अंगीकार करोगे तो अन्यमती लोग भी देखकर कहेंगे कि जैनका साधु कैसा निर्ल-ज्ज है कैसा गधे की तरह फिरता है और उस साधुको नग्न देखकर स्त्री आदिक भी ल-ज्जासे पास न आसकेंगी जव पास नहीं आवेंगी तो उपदेश आदिक भी नहीं वनेगा तब तो यह लज्जा परीसा क्या जीता उल्टी जगत्में निन्दा कराई सो ये लज्जा नहीं साधु मुनिरा-ज कैसी लज्जाको जीते हें—सो देखो कि संसारको आसार जानकर तीर्थंकर चक्रवर्ती बल-देव सामान्य राजा, सेठ, साहूकार आदिक राजपाट वैभवको छोड़कर अपनी आत्माके गुण प्रगट करने वास्ते निकलते है वे लोग नंगेपैरः नंगेशिरः फिरते हैं और जीर्ण वस्त्र धा-रण करते हें। सेठ साहूकार सामान्य पुरुष रङ्क अर्थात् गरीव गुरवा आदिसे आहार लेना और तिरस्कार आदिकका सहन करना फिर पिछला जो वैभव राजादि भोग भोगे हुवे कृतोंको याद न करना और सामान्य पुरुषोसे याचना और तिरस्कार पाना उसको सहन करना और पिछलेको याद न करना उसीको लज्जा परीसा कहते हैं नतुः नग्नरहना। (पूर्व पक्ष) अ-जी अचेल परीसा जो तुम भी कहो हो तो चेल नाम तो वस्त्रका है तो अचेल कहनेसे वस्त्र नही ठहरा वस्त्र रखनेसे साधुको अचेल परीसा नहीं बनेगा (स०) जो तुमने कहा कि वस्त्र रखनेसे अचेल परीसा नहीं वनेगा यह तुम्हारा कहना विवेक शून्य है क्योकि आकार शब्द जो है सो सर्व निषेध वाचक नहीं है जो कहो कि सर्व निषेध वाची आकार है तब तो जीवका अजीव भी हो जायगा क्योंकि जीव चेतना लक्षण है अर्थात् ज्ञानी है तो देखो

अज्ञान परीसा भी तो कहा है तो अज्ञान कहनेसे तो जब अकारको सर्व निषेधवाची मानोगे तो जीवका अजीव होगया जब अजीव होगया तो अज्ञान परीसा कौन सहेगा इसीलिये इस जैन मतका रहस्य आत्मार्थीको प्राप्त होता है नतुः अवग्राही मित्यार्थीको इसलिये इस जगह आकार जो है सो एक देशवाची है इसवास्ते जीर्ण वस्त्र मानोपेत् अर्थात् मर्याद मूजिब रखना उसीका नाम अचेल है देखो कि कोई मनुष्य पुराना छोटा सा पोतिया पहनकर स्नान कर रहाथा उसको लोग देख कर कहने लगे कि यह पुरुष नग्न है ऐसेही साधु भी जीर्ण वस्त्र रखनेसे नग्न ही है (पू०) अजी मुनिराजको तो ऐसा चाहिये कि जैसे माके पेटमेंसे आया है देखो वहांसे कोई वस्त्र साथमें नहीं लेकर आया तो इस संसार रूपी गर्भमे से निकल फिर वस्त्र क्योंकर रक्खेगा इसलिये साधुको वस्त्र नहीं रखना (स०) अरे भोले भाइयो ! ऐसा प्रश्न करनेसे विचारशून्य मालूम होते हो जब माके पेटमेंसे नग्न होकर आया कोई वस्त्र तो उस समय नहीं था यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि जो वस्त्र करके रहित अर्थात् नग्न होगा सो तो माके पेटमें कदापि न आवेगा और जो माके पेटमें नग्न मानोगे तो सिद्धमें आवागवन हो जायगा कारण कि सिद्ध भगवान् ही वस्त्र करके रहित अर्थात् नग्न हैं इनके सिवाय तेरमें चौदमें गुणस्थानके अन्त पर्य्यन्त तक कोई नग्न नहीं है जो कहो कि हमने आज तक ऐसी बात नहीं सुनी तो अब देखो हम तुमको बतलाते हैं सो विवेक सहित आंख मींचकर बुद्धिमें विचार करो और देखो 'वस' अच्छादने धातुसे वस्त्र शब्द बनता है अर्थात् जिस चीजसे अच्छादन नाम आवर्त अर्थात् ढक जाना उसीका नाम वस्त्र है तो देखो आत्मरूपी जो प्रदेश था उसका कर्म रूपी वस्त्र से ढके हुवे माके पेटमें वह जीवलेकर आयाथा तब तुम्हारा कहना नग्न क्योंकर सिद्ध होगा इसलिये श्वेताम्बर अर्थात् वस्त्र सहित मुनिराजको केवल ज्ञान सिद्ध हो गया (पू०) अजी तुमने युक्ति तो बहुत कही लेकिन वस्त्र रखनेसे परिग्रह जरूर सिद्ध होगा—तो साधु तो परिग्रह रक्खे नहीं इसलिये वस्त्र रखना ठीक नहीं है । (स०) अरे भोले भाई ! हमको तुम पर बड़ी करुणा आती है कि किसी रीतिसे तुम्हारा कल्याण हो तो ठीक है इसलिये इस परिग्रहका किञ्चित् अर्थ दिखाते हैं कि देखो परिग्रह शब्दका अर्थ क्या है तो वहां (तत्त्वार्थ) सूत्रमें ऐसा कहा है कि—"मूर्छा ही परिग्रहः" अब देखो इस शब्दसे क्या अर्थ हुवा कि जिसको मूर्छा है उसीको परिग्रह कहेंगे जिसको मूर्छा नहीं है और जो उसके पासमें कुछ वस्तु है तो विना रागके अर्थात् विना मूर्छाके वह वस्तु अवस्तुके ही मूजिब है कदाचित् बाह्य दृष्टि अर्थात् चर्म दृष्टिसे देखकर जो परिग्रह मानोगे तो तुम्हारे तीर्थंकर आदिक व आचार्य्य मुनियोंमें भी परिग्रह ठहरेगा क्योंकि देखो जब तीर्थंकर विहारादि करते हैं तब सुवर्णके कमलो पर पग रखना और देसनाके समय सुवर्णमयीका जड़ा हुवा समोसरण अर्थात् सिंहासनके ऊपर बैठना शिरपर तीन छत्रादिकका होना ये सब चर्म दृष्टिके देखनेसे परिग्रह हो जायगा वा अथवा शिष्यादिकका करना ये भी पर वस्तु है इत्यादिक सर्व वस्तु परिग्रह ही ठहरेगी इसलिये चर्म दृष्टिको छोड़कर सूत्रके अर्थमें दृष्टि देकर कि जो मूर्छा करके रहित जो तीर्थंकरोंके समोसरण आदि परिग्रह अपरिग्रह ही जानना क्योंकि उसके ऊपर मूर्छा नहीं होनेसे जो तुम कहोकि नग्न होनेहीसे केवल ज्ञान होता है तो मोर

पैंची और कमंडलु इतनी वार लिया कि मेरु की बरावर ढिगला किया परन्तु केवल ज्ञान अर्थात् मोक्ष न हुवा तो इसका कारण यह ही है कि उस जीवने मौर पैंची कमंडलु लिया परन्तु मूर्छा अर्थात् तृषाना न छूटी इतने कहनेका सारांश यह हुवा कि मूर्छाका छोड़ना तो बहुत कठिन है जिस जीवने मूर्छा छोड़ी है उसके धर्म साधनके निमित्त धर्म उपकरण रखनेमें कोई तरहका दूषण नहीं इसलिये वस्त्र रखनेमें केवल ज्ञान नहीं अटके कदाचित् और भी हठ करो तो तुमको (नव) कर्म मानने होंगे क्योंकि आठ कर्म तो सर्वज्ञ देवने वर्णन किये है परन्तु नवमा कर्म तुम्हारे आचार्य्योंने अंगीकार किया है तो पांच कर्मके क्षय होनेसे केवल ज्ञान उत्पन्न होगा यह पांच कर्म कौनसे १ ज्ञानावर्णी २ दर्शनावर्णी ३ मोहनी ४ अन्तराय और पांचवां तुम्हारा माना हुवा वस्त्र वर्णीय कर्म है इन कर्मोंके क्षय होनेसे केवल ज्ञान मानना चाहिये सो तुम्हारे शास्त्रोंमे तो कहीं नहीं परन्तु पांच कर्मके क्षय होना किन्तु चार कर्मका क्षय होना ये तो तुम्हारे कुल शास्त्रोंमे देखनेमें आता है इसलिये इस पक्षपातको छोड़कर अपनी आत्माके अर्थकी इच्छा हो तो शुद्ध परम्परा अनादि श्वेताम्बर गुरुकी चरणकमलकी सेवा करो और जो युक्ति दीनी है उसको बुद्धिमे विचार कर इस हठको छोड़ो कि वस्त्रमें केवल ज्ञान नहीं है किन्तु मूर्छा करके रहित अर्थात् जिसको मूर्छा नहीं है वह मुनिराज धर्मके साधनके लिये धर्म उपकरण रक्खे तो कुछ दोप नहीं उसको केवल ज्ञान अवश्यमेव प्राप्त होगा इन युक्तियोंसे वस्त्रमें केवल ज्ञान सिद्ध हुवा ॥ २ ॥ अव तीसरा स्त्रीको मोक्ष सिद्ध करते हैं (वा०) स्त्रीको मोक्ष नही हैं ? (सि०) स्त्रीको मोक्ष क्यों नहीं है ? (वा०) स्त्रीके चारित्रका उदय नहीं आवे ? (सि०) स्त्रीके चारित्र उदय क्यों नही आवे ? (वा०) स्त्रीका अङ्गोपाङ्ग सर्वथा पुरुषको विकारी है ? (सि०) ऐसा कहोगे तो पुरुषके अङ्गभी स्त्रीको विकारी हैं ?(वा०) स्त्री जो वस्त्र आदिक रक्खे तो परिग्रह होय और परिग्रह होनेसे मूर्छा होय और मूर्छा होनेसे चारित्र आवे नही और चारित्र विना मोक्षकी प्राप्ति नही ? (सि०) जो स्त्रीको वस्त्र परिग्रह मानो तो उससे जो मूर्छा मानते हो ये तुम्हारा मानना ठीक नहीं है क्योंकि वस्त्रके मध्ये तो मूर्छाका होना पहिलेही निषेध करचुके हैं इसलिये वस्त्रके विना चारित्रकी प्राप्ति होती है ये तुम्हारा मानना वॉझके पुत्रके समान है हम वस्त्रमें केवल ज्ञान पहिले सिद्धिकर चुके है (वा०) संसारमें सर्व उत्कृष्ट पदवी प्राप्ति होनेका अवसाय कारणका सर्व होता है इस वातको तो तुमभी अङ्गीकार करो हो तो सर्व उत्कृष्टपद दो प्रकारका है एक तो सर्व उत्कृष्ट पद दुःखका स्थानक है दूसरा सर्व उत्कृष्ट सुखका स्थानक है तिसमें सर्व उत्कृष्ट दुखनो कारण सातमी नरक है और सर्व उत्कृष्ट सुखनो पद मोक्षकी प्राप्ति है तो स्त्री सातमीनरक नहीं जाय ऐसा सिद्धान्तोंमें कहा है क्योंकि स्त्रीमें ऐसा पाप उपार्जन करनेका कारण नहीं है तो मोक्ष पद प्राप्ति होनेका वीर्य स्त्रीमें कहांसे होगा इसलिये स्त्री मोक्ष नहीं जाय ? (सि०) अरे भोले भाइयो ! बुद्धिके विचार विना क्या जिन धर्मका रहस्य प्राप्ति होता है क्योंकि इस जिन धर्ममें स्याद्वाद सेलीके जाननेवाले गुरु श्वेताम्बर

---

१ (वा०) कहनेसे वादीकी कोटि समझ लेना । (सि०) कहनेसे सिद्धान्तीका उत्तर जान लेना ।

आमनाके सिवाय और किसीको न मिलेगा क्योंकि देखो कोई पुरुष बुद्धिमान् विचक्षण राजका काम अर्थात् सर्व प्रबन्ध बुद्धिसे करता है और उससे तीन मन बोझा उसके शिर पर धरे तो कदापि नहीं उठा सकता है तो क्या उसको कोई बुद्धिमान् न कहेगा कि इससे बोझ न उठा तो राजका कामभी न होगा, इस हेतुसे स्त्रीको नरक नहीं जानेमें मोक्ष कन न होना मानना व्यर्थ हुवा। (वा०) स्त्री माया बहुत करती है अर्थात् कुटिल बहुत होती हैं इसलिये स्त्रीको मोक्ष नहीं ? (सि०) यह कहनाभी तुम्हारा ठीक नहीं क्योंकि पुरुषभी मायाचारी अर्थात् कुटिल कृतघ्नी ऐसा होता है कि जिसको वर्णन नहीं कर सकें और स्त्री तो हृदयमें अर्थात् अन्तःकरणमें करुणाभी होनेसे धर्मको प्राप्त होती हैं और पुरुषोंकी कठोरतासे उनको धर्मकी प्राप्ति होना कठिन होता है देखो प्रत्यक्षमें मालूम होता है कि जैसा स्त्रियोंमें व्रत (उपवास) नियम, धर्म आदिमें प्रवृत्त होना और दृढ़ रहना और पुरुषोंमें नहीं दीखता है।(वा०)साधु तो वनवासी होता है जहां बहुत मनुष्य आदि हों तहां साधु रहे नहीं क्योंकि ध्यान एकान्तमें होता है बहुत मनुष्योंके होनेसे ध्यान बने नहीं और स्त्री तो अकेली रह सके नहीं वस्तीमेंही रहना पड़े अकेली विचरनेसे शील खण्डन होय इसलिये स्त्रीको चारित्र नहीं तो मोक्ष कहांसे प्राप्त होगी (सि०) अहो! विचक्षण बुद्धि भास्य कुछ नेत्र मींचकर विचार करो कि वनके रहनेसेही जो ध्यानीका अध्यवसाय अर्थात् परिणाम ठीक मानोगे तो वनके रहने वाले भील आदिक अथवा सिंह व्याघ्र शृगाल (गीदड़) आदिक उनकोभी ध्यानी मानना पड़ेगा इसलिये एकान्त वादी हो जावोगे जब तुमको स्याद्वाद मत अनुसारी होना किसी जन्ममें प्राप्त न होगा और जो तुम कहो कि अकेले विचरनेसे शील खंडन हो जायगा तो अकेला पुरुषभी अपना शील खण्डन करे तो कौन वर्ज सकता है; इसलिये शीलका दूषण तो दोनोंमें बराबरही है इसलिये स्त्रीको मोक्ष होनेमें कोई तरहकी शंका मत करो और जो तुमने कहा कि स्त्रीको चारित्र नहीं यह कहनाभी तुम्हारे लिये तुम्हारे मतको दूषण देता है क्योंकि देखो कि चतुरविधसंघ तो तुमभी अङ्गीकार कहते हो तब तुम्हारे स्त्रीको चरित्र नहीं तो साध्वीपनेका विच्छेद हुवा जब साध्वीपनेका विच्छेद हुवा तो त्रिविध संघ हो गया तो चतुर विध संघ कहना आकाशके पुष्पके समान हुवा और फिर त्रिविध संघभी तुम्हारे नहीं बनेगा देखो कि जब तक समगतकी प्राप्ति नहीं तब तक श्राविकाभी नहीं बनेगी और जो श्राविका मानोगे तो समगत होनेसे एक देश चारित्र उसकोभी आया तो जहां एक देश चारित्रकी प्राप्ति है तहां सर्व देश चारित्रभी हो सकता है और जो ऐसा न मानोगे तो त्रिविध संघभी न रहा द्विविध संघ रह जायगा जब द्विविध संघ रहा तो फिर भगवान के वचनसे विरोधभी होगये अर्थात् दूर हो गये अब तुम्हारेको जैनी नामसे प्रसिद्ध होना मनुष्यकी दुमके समान होगया । (वा०) अजी तुम युक्ति तो देते हो परन्तु स्त्रीका उगलन धर्म है और स्त्री अशुचि रहती है कदापि शुद्ध नहीं होय है, इसलिये स्त्रीको मोक्ष नहीं ? (सि०) अहो विचारशून्य बुद्धि विचक्षण ! जो तुम कहते हो कि स्त्रीका उगलन धर्म है यह कहना तो तुम्हारा ठीक नहीं क्योंकि देखो कि जिस पुरुषके बीमारी आदिक होती है तो उस पुरुषके डाक्टर पिचकारी लगाता है

तो उस पिचकारीके बलसे दवा ऊपरको चढ़ जाती है फिर थोड़ीसी देरके बाद बाहिर निकल आती है इसीरीतिसे उसका उगलन धर्म नहीं किन्तु पिचकारीका बल निवृत्त होनेसे बाहिरको आता है जो तुम अशुचि कहा सो भी नहीं बनता है क्योंकि देखो कि मोक्ष उस स्त्रीके जीवको होती है अथवा उसके शरीरको ? जो कहो कि जीवको होती है तब तो शरीरके अशुचि माननेसे जीवकी मोक्षको नहीं मानना तो विवेक शून्य हठग्राही पनेके सिवाय आत्मा अर्थी न ठहरे ? (वा०) अजी स्त्री वेदको ही मोक्ष नहीं अर्थात् स्त्रीलिङ्ग कोही मोक्ष नहीं ? (सि०) इस कहनेसे तो हमको बिल्कुल मालूम होता है कि तुमको तुम्हारे सिद्धान्तकी अर्थात् तुम्हारे आचार्य्योंके रचे हुवे शास्त्रोंकी खबर नहीं है खाली तोतेकी तरह " टेंटें " करना याद कर लिया कि स्त्रीको मोक्ष नहीं ! नही ! ! नहीं ! ! ! (वा०) अजी हमारे किस सिद्धान्तमें अर्थात् शास्त्रमें कहा है कि स्त्रीको मोक्ष है सो हमको बतावो ? (सि०) छी ! छी ! ! छी ! ! ! तुम्हारी पण्डिताई और विचक्षणपणे को कि तुमको अपने शास्त्रही की खबर नहीं सो देखो गो-मटसारजीमें ऐसा लिखा है कि " अडियाला पुवेया, इत्थी वेवायहुति चालीसा, वीसनप-संगवेया, समए गेण सिज्झंति " अब देखो कि इस गाथा में स्त्री को मोक्ष कहा है देखो कि ४८ पुरुष और (इत्थि) कहता ४० स्त्री और (वेया) कहता २० नपुंसक ये सर्व मिल कर १०८ एकसमय में सिद्धहोते हैं तो अब तुम्हारा यह कहना कि स्त्री को मोक्ष नहीं है असत्य है जैसे मेरे मुख मे जिह्वानहीं है तो विना जिह्वाके बोलनानहीं बनता (वा०) अजी तुमने गाथाकही सो ठीक है परन्तु इसका अर्थ हमारे आचार्य्यभाव वेदमानकर स्त्रीको मोक्षमानते हैं किन्तु स्त्री वेदहोने से मोक्षनहीं ? (सि०) अरे! रे !! रे !!! तुम्हारे आचा-र्य्यों ने भङ्गपीकर इस गाथा का अर्थ विचारा दीखे इसलिये नशेके तार में विवेकशून्य होकर भाववेद अर्थ किया दीखे है सो अब तुम्हारे को अपनी आत्माका कल्याण की इच्छा हो तो इस जालियों के जालको छोड़ के शुद्धगुरु के अर्थ को अङ्गीकार करो देखो भाव वेद जो है सोतो नवे गुणस्थान में निवृत्त अर्थात् दूर होजाता है और केवल ज्ञान तो १२ वें के अन्त में उत्पन्न होता है सो इसलिये हे ! देवानु प्रिय! युक्ति और शास्त्रोंसे तो स्त्री को मोक्ष सिद्ध होगया । हम तो हितकारी जानकर तुम्हारे कल्याणके लिये कहते है ॥

चौथी बातमें दिगम्बर मुनिके सिवाय जोकि मोर पेची कमण्डलु रखता है अर्थात् दिगम्बर मतके सिवाय और दूसरे किसीको मोक्ष नहीं है (प्र०) हम तुम्हारेको पूछेहैं कि तुम्हारे सिवाय दूसरेको मोक्ष नहीं सो क्या तुम्हारे आचार्य्योंने मोक्षकी मोल लेलिया है वा किसी से ठेका कर लिया है; (उ०) अजी तुमने जो यह ऐसा प्रश्न किया जिसको सुनकर हम को बड़ी हँसी आती है कि क्या वह ग्राम, दूकान हवेली है? जो हमने ठेका लेलियाहो वा मोललीहो ? मोक्ष तो धर्म के करनेसे प्राप्त होती है (प्र०) भला धर्म करने से मोक्षकी प्राप्ति होती है क्या धर्म तुम्हारेही है और कोई धर्म नहींजानता, भला वह धर्म क्या चीज़

---

१ इस जगह सिद्धान्ती अर्थात् ग्रन्थकर्ताकी ओर से तो (प्र०) इस शब्दसे प्रश्न समझ लेना और (उ०) शब्दसे दिगम्बरकी ओरसे उत्तर जान लेना ।

है सो तुमही कहो ? (उ०) हाँ वह धर्म हमही जानते हैं क्योंकि वीतरागकी आज्ञा मूजिब हमही चलते हैं और कोई वीतरागकी आज्ञामें नहीं चलता इसलिये औरको मोक्ष नहीं (प्र०) अब तुम हमको अपने वीतरागकी आज्ञा बतावो और वह क्या कथन है जिससे मोक्ष होता है? (उ०) वीतरागकी आज्ञा यह है कि पञ्चमहाव्रत और आठ प्रवचन माता पाले और इन्हीमें मोक्ष है । (प्र०) वह पञ्चमहाव्रत कौनसे हैं और उनकी रीति क्या है? (उ०) १ प्रणतीपात छः कामके जीवोंको मन, वचन, काय, करना, करावना, अनुमोदना इन तीन कारण और तीन योगसे करे नहीं; करावे नहीं, कर्त्ताको भला जाने नहीं; इस रीतिसे २ मृखावाद, इस रीतिसे ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रहमें तुस मात्र परिग्रह नहीं रक्खे, ऐसेही आठ प्रवचन माता जान लेना विस्तार हमारे ग्रन्थोंसे जान लेना (प्र०) हे भोले भाइयो यह तो तुम्हारी बालकों कैसी बातें हैं क्योंकि परिग्रहमें तुस मात्र रखना नहीं सो तो हम दूसरेही वस्त्रके खण्डनमें लिख चुके हैं कि परिग्रह नाम मूर्छाका है और जो तुमने पञ्चमहाव्रतके मध्ये कहा सो तो क्रियावादी अक्रियावादी इत्यादि बहुत कष्ट क्रिया करते हैं जब तो केवल तुम्हारेही मतमें मोक्ष होना नहीं बनेगी इसलिये जो मोक्षके कारण हैं उनको कहो कि मुख्य कारण कौन है ? (उ०) भगवान्की आज्ञा सहित ज्ञान दर्शन, चरित्रसे मोक्ष होती है यह मुख्य कारण है । (प्र०) जब ज्ञान दर्शन, चरित्र मोक्षका कारण है तब तो एक तुम्हारेहीको मोक्ष होनी यह कहना असम्भव है सो अब तुम ज्ञान, दर्शन चरित्रका स्वरूप कहो ? (उ०) ज्ञान हम उसको कहते हे कि जो सर्वज्ञने पदार्थ कहे हैं उसका यथावत् द्रव्य गुण पदार्थका जानना उसको हम ज्ञान कहते हैं और दर्शन नाम जो सर्वज्ञके वचन ऊपर विश्वास होना अर्थात् श्रद्धा होना 'चारित्र' नाम पर वस्तुको है अर्थात छोड़ना और स्ववस्तुको उपादेय अर्थात् ग्रहण करना इन तीनों चीज़ों से मोक्ष होती है (प्रश्न) अरे पक्षपाती विचार शून्य! अपने अर्थ किये हुये को तुम अपने हृदयकमल में नेत्रमीचकर विचार नहीं करते हो क्योंकि जब ज्ञान, दर्शन, चारित्र मोक्षका कारण है तो तुमकोही मोक्षहोना और को न होना ये तुम्हारा कहना पक्षपात हठग्राही मालूम होता है क्योंकि देखो विचारकरो कि जिस में ज्ञानदर्शन चारित्रहो अर्थात् जो कोई इन तीन बातको सेवन करेगा उसी को मोक्षहोगी न कि दिगम्बरी को हो? (उत्तर) अजी इस ज्ञानदर्शन चारित्रको जैनियों के सिवाय और कोई दूसरा ग्रहणनहीं करता है इसीलिये हमारे सिवाय दूसरेको मोक्ष नहीं (प्रश्न) वाहरे ! पक्षपाती जैनी नाम मात्रसेही अपने को जैनी समझ लिया इसवास्तेही तुमलोगोंके द्वेषबुद्धि से परमती जैनियोंको नास्तिक कहनेलगे क्योंकि देखो एक मछली तमाम पानीको गन्दा करदेती है अर्थात् दुर्गन्ध करदेती है इस रीतिसे शुद्ध जिनमत जो अनादि से राग, द्वेष रहित निर्पक्ष पात चला आताथा उससे अनुमान् १८०० वर्ष के लगभग दिगम्बर मतने जैन नाम रख कर सर्व मतवालों से द्वेष बुद्धि करके द्वेष फैलादिया ; अब जिन शब्दका अर्थ क्याहोता है सो सुनो (१) जिन नाम वीतराग का है कि जिसने राग द्वेषआदि शत्रुओं को जीता है-अथवा जिसने पदार्थको जाना है अर्थात् जिसने द्रव्यों का स्वरूप जानकर मोक्षकी व्यवस्था बांधी है ऐसे सर्वज्ञ देवके वचन को मानै और उसके ऊपरचले अर्थात् हेयको

छोड़े और उपादेय को अंगीकार करे उसी का नाम जैनी है न कि ओसवाल, सराव-गी कोई जातही जैनी है अथवा कोई जैनी नाम धराने सेही जैनी नही कदाचित् कहोगे कि नहीसाहब हमही जिन धर्मको पालते है इसलिये हमही जैनी हैं यह कहनाभी तुम्हारा व्यर्थ है क्योंकि जैनी नाम धराने से होगा तवतो दिगम्बर होकर मोर पेची कमण्डलु लेकर मेरुकी बराबर ढिगला किया और मोक्ष न भई इसलिये पक्षपात छोड़करके बुद्धिसे वि-चार करो कि जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र जिसमें है उसीको मोक्षहोगी नतु दिगम्बर क्योंकि देखो पक्षपात को छोड़कर तुम्हरे समयसार नाटक में लिखा है (मत व्यवस्थाकथन) सवैया इकतीसा "एक जीव वस्तुके अनेक रूप गुण, नाम, नियोग, शुद्ध परयोगसो अशुद्ध है। वेदपाठी ब्रह्मकहै, मीमांसक कर्म कहै, शिवमती शिवकहै, बोधकहै बुद्ध है ॥ जैनीकहै जिन है, न्यायवादी कर्त्ताकहै, छओंदर्शन मे वचनको विरुद्ध है। वस्तु को स्वरूप पहचाने सोही परवीन वचन के भेद भेद माने सोई शुद्ध है" ॥ देखो अब तुमहीं बुद्धिसे विचारकरो कि जब तुम्हारे सिवाय किसी को मोक्षनही जबतो वह सर्वज्ञ पक्षपाती ठहर गया और जब वह पक्षपाती है तो वह सर्वज्ञ भी नहीं और वीतराग भी नही सर्वज्ञ वीतरागके वचन मे किसी से विरोधनही किन्तु उसका वचन अविरुद्ध है। इस गाथाको विचारकरो :—" सेयंवरोय आसं वरोय बुद्धोय अहव अन्नो वा सम भावभावियप्पा लहइ मुक्खो न संदेहो" १॥ अब देखो इस गाथाका अर्थतो हम पेश्तर लिखआये हैं परन्तु ऐसे २ सर्वज्ञोंके वचन देखने से एकान्त पक्षको खेंचकर हठग्राहियो के अज्ञानपनेसे जो अपने मे मोक्ष और दूसरे मे नहीं यह वचन प्रमाण क-रनेके योग्यनही इसलिये जो शास्त्रोंमें १५ भेद सिद्ध कहे है ऐसे २ वचनो को देखकर हठको छोड़कर अपनी आत्मा का कल्याण करना होय तो एकान्त पक्षको छोड़कर अनेकान्त पक्षको अङ्गीकार करो जिससे शुद्ध जैनी बनो अब द्वेषको दूरकरो संसार मे न फिरो मोक्षपदको क्यों न वरो ॥ अब पांचवां जो कालद्रव्य को मुख्य मानते हो सो ठीकनहीं है (प्रश्न) काल द्रव्य मुख्य है, जो काल द्रव्यको मुख्यनही मानोगे तो उत्पाद व्यय ध्रुव कैसे सधे-गा? (उ०) देखो कालद्रव्य जैसे और पांच द्रव्य है तैसे नही किन्तु जिज्ञासुके समझाने के वास्ते है जो तुमने कहा कि उत्पाद व्ययनही सधेगा तो देखो भाई सूक्ष्म बुद्धिका वि-चार करो कि जो उत्पाद व्यय है सोही काल है क्योंकि उत्पाद व्ययही काल है देखो तत्त्वार्थ सूत्र में " अर्पित अनार्पित सिद्धेरिति " ऐसा कहा है (प्रश्न) समय किसके आधार मानोगे (उत्तर) जीव और अजीव द्रव्यके आधार है क्योंकि देखो काल है सो जीव अजीव द्रव्य का वर्तनारूप पर्याय है द्रव्य नही वर्तना पर्याय का भाजन द्रव्य है वह द्रव्य कौन है कि जीव अजीव है, भगवती सूत्र तथा उत्तरा ध्ययन सूत्रोंमे जगह २ कालको जीव अजीवका वर्तना पर्याय कहा है। (प्र०) अजी देखो अवगाहनादि हेतु होनेसे आकाश आदि पृथक् द्रव्य मानो हो तैसेही वर्तना हेतु करके काल द्रव्य पृथक्ही होय है? (उ०) अहो विचारशून्य बुद्धि विचक्षण! आंख मींचकर बुद्धिमें विचार करो कि जैसे अवगाहना हेतु करके अवगाहना आश्रीय द्रव्य कल्पये तैसे

१—इस जगह (प्र०) वादी की ओरसे और (उ०) सिद्धान्ती की ओरसे जानना।

तो तुम्हारा वर्तना हेतु करके वर्तमान आश्रीय द्रव्य कल्पिये सो तो नहीं किन्तु वंझा पुत्र समान है क्योंकि धर्म कल्पना तो धर्मीसे होती है इति न्यायात इस न्याय करके काल द्रव्य है सो जीव अजीवकी पर्याय है नतु काल द्रव्य भिन्न। (प्र०) जैसे मन्द गति परमाणुने जो आकाश प्रदेशकी जो व्याप्ति क्रम करके तद् अवच्छिन्न पर्याय तिसका जो समय तद अनुरूप द्रव्य समयका जो अनु सोलोकाकाश प्रदेश प्रमाण समय है ? (उ०) अहो विचक्षण बुद्धि शून्य ! जैसे तुमने समयके अनुरूप लोकाकाश प्रदेश प्रमाण माने तैसे दिग द्रव्य क्यों नहीं मानते हो। (प्र०) ऐसी द्रव्यकी कल्पना करना आगममें तो कहीं नहीं ? (उ०) तो आगम देख करके आगम प्रमाण करो क्योंकि पहले हमने आगमका प्रमाण दिया तब क्यों नहीं माना देखो आगममें तो जीव अजीवकी परियायकाल प्रतिपादन किया है। (प्र०) काल तो परत्व अपरत्व निमित्त दीखै है ? (उ०) तैसेही दिशाकाभी परत्व अपरत्व दीखै है। (प्र०) द्रव्यकी शक्तिमें कार्य हेतु होनेसे विचित्रता दीखे है परन्तु अवगाहना हेतु करके तो आकाश द्रव्यही है? (उ०) तो हे भोले भाइयो! जब तुम्हारेको स्व स्व गुणकारी जीव अजीव उत्पाद व्यय वर्तना हेतुकी कल्पना करनेमें क्या लज्जा आती है ? इसलिये आगमकोही मानो अब देखो दूसरी युक्तिसे तुम्हारा काल अनुसिद्धि नहीं होता है जैसे तुम मन्दगति अनुधरे काल अनुकल्पो हो तैसेही परम अवगाहना अनुश्वरे आकाशादि अनुपण कल्पना चाहिये क्योंकि साधारण अवगाहनाकी हेतु करके आकाशादि स्कंद कल्पना है। ऐसेही जो अनु कल्पना करोगे तो स्कंदकी विर्ती प्रदेश कल्पना होगी तो जैसेही काल द्रव्यमें समान साधारण वर्तना अनुस्वारे एक काल स्कंद होगा पीछे तत्प्रदेश आवेगा जो ऐसा होय तो सिद्धान्तसे विरोध हो जायगा ऐसी कल्पना करनेसे जिन आज्ञा विरोधक होवोगे इसलिये हे भोले भाइयो! सिद्धान्तकोही मानना ठीक है कदाचित् मतान्तरकी अपेक्षा करके मनुष्य क्षेत्रमें काल मान द्रव्य कहे हें सो तो ज्योतिष चक्र चार व्यापक वर्तना पर्याय समूहके विषय द्रव्यको उपचार करके कहा है—उक्तंच नय चक्रे, "पर्यायो द्रव्योपचारः इति" ये दो मत श्री हरिभद्र सूरिजी कृत धर्मसंग्रहनीमां है उसमें देख लेना इसलिये काल द्रव्य पर्यायिक द्रव्य नहीं किन्तु कहने मात्र है और तत्त्वार्थ सूत्रमें दो मत दिखाये हैं तिसमें एक मतको अन अपेक्षत कहकर छोड़ दिया क्योंकि द्रव्यार्थिक ने बनाया है और मुख्य करके तो जीव अजीवकी पर्यायकोही काल द्रव्य उपचारसे कहा है। (प्र०) जो तुम जीव अजीवको यथार्थ कहते हो तो छः द्रव्य तुम्हारा कहना ये क्योंकर बनेगा? (उ०) अरे भोले भाइयो ये काल द्रव्य अनादि उपचारसे जिज्ञासूको समझानेके वास्ते या मन्दमतीके वास्ते कि जिसको उत्पाद व्ययकी समझ न पड़े। (प्र०) अजी देखो ! सूर्य्य उदय होनेसे दिन और रात पहर, घड़ी, पल, आवली समयकी संख्या बांधी है इसलिये प्रत्यक्ष काल द्रव्यको क्यों उपचारिक मानते हो? (उ०) अरे भोले भाइयो! विवेक सहित बुद्धिसे नेत्र मीचकर विचार करो कि सूर्य्यके उदय अस्तसे तो तुम कालको मानो हो यह तुम्हारा मानना ठीक नहीं है क्योंकि सूर्यका प्रचार अर्थात् चलन गति ढाई द्वीपके सिवाय और तो कहीं है नहीं तो फिर तुम ढाई द्वीपके अनन्तर जो द्वीप है उनमें सूर्य जहां उदयहै तहां उदयही है और जहां अस्त है अस्तही है

अथवा देवलोक पर्यन्त तो सूर्यकी बिल्कुल गति नहीं है अथवा मोक्षमेंभी सूर्यादिक कोई नहीं है फिर उस जगह घड़ी, पल, दिन, रात क्योंकर मानी जायगी इसलिये इस हठको छोड़ कर स्याद्वाद सेलीको विचारो और आत्माका अर्थ करो औरभी देखो कि सूर्य क्या चीज़ है तो तुमको कहनाही पड़ेगा कि सूर्य मण्डल जीव और अजीवके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है तो अब देखो और बुद्धिसे विचार करो कि जब दूसरी कुछ वस्तु नहीं है तो जीव और अजीवका जो कर्म अनुसार फिरना अर्थात् उदय अस्त होना ये जीव और अजीवकीही पर्याय ठहरी इसीका नाम तुम काल मानते हो तो तुम्हारे कहनेसे ही जीव अजीवका उत्पाद व्यय रूप पर्याय काल द्रव्य उपचारिक सिद्ध होगया नतु काल द्रव्य मुख्य; अब देखो कि जो कोई आत्मार्थी होय सो इन पांच बातोंके विरोधको समझकर इनकी हठ अज्ञानता की परीक्षा करलेवे, और भी देखो वर्तमान कालमें जो इनके वीस पन्थी, तेरह पन्थी, गुमान पन्थी आदिक जो भेद हैं सो आपसमें एक दूसरेको बुरा कहता है और मिथ्यात्वी बताता है सो किंचित् इनका भेद दिखाते हैं सो बुद्धिमान् हो सो समझ लेना देखो कि वीसपन्थी तो नग्न मूर्ति आदिकको मानते हैं और मूर्तिको जलादिकसे स्नान भी कराते हैं और केशर पगोंपर चढ़ाते हैं और अष्टद्रव्यसे पूजा अंगीकार करते हैं और मुनिके स्थानमें भट्टारक ऋषि लाल कपड़ेवालोंको मानते हैं इनके बाद वरस ३०० तथा ३५० के अनुमानसे तेरह पंथी निकले और वर्तमान कालमें इनका प्रचार कुछ ज़ियादः है सो मूर्ति तो ये भी नाम मानते हैं परन्तु जलादिसे स्नान नहीं कराते हैं सिर्फ कपड़ा भिगोकर पूंछलेते हैं और केशर भी नहीं चढ़ाते हैं किन्तु केशर जो तिलमात्र भी लगी होय तो उस मूर्तिको नमस्कार नहीं करते क्योंकि केसरसे पूजीहुई मूर्त्ति दर्शन का लोगों को त्यागकराते हैं कि उसको नहींपुजाना अर्थात् नमस्कार भी नहीं करना अब देखो इनकी कैसी अज्ञानता है कि इन तेरह पंथियोमें मुख्य दयानत राय हुवेथे उन्हींसे इस तेरह पन्थका जियादः प्रचार फैला उस दयानत रावने अष्ट प्रकारी पूजा बनाई है उसमें लिखते हैं कि अष्ट द्रव्यसे भगवत्की पूजन करना ॥ अब थोड़ासा प्रश्नोत्तर करके सम्बन्ध करते हैं (प्रश्न) केसरादि अरची हुई प्रतिमाको नमस्कार नहीं करना (उत्तर) भला केशर आदिसे पूजी हुई प्रतिमाओंको क्यों नहीं नमस्कार करना उसमें क्या दूषण है (प्र०) वह तो वीतराग निरंजन निरग्रन्थ है इसलिये उसको केशरादिसे अर्चना शृंगार हो जायगा ? (उ०) तो भला तुम्हारे दयानतरायने अष्ट प्रकारी पूजन परमेश्वर की करना क्यों कहा (प्र०) उन्होंने जो अष्ट प्रकारकी पूजन कही सो तो हम करते हैं परन्तु मूर्तिके आगे पूजन करते? (उ०) मूर्तिके आगे पूजन करना ऐसा तो पूजामे नहीं किन्तु मूर्तिको छोड़कर और अगाड़ी करना यह तो तुम्हारा मनो कल्पना दीखे है और तुम भगवतको भी बालक की तरह फुसलाते दीखो हो क्योंकि पूरे द्रव्य भी नहीं चढ़ाते हो कि जैसे बालकको देना तो अफ़ीम और बता देना मिश्रीकी डली तैसे तुम भी खोपरे की गिरी अर्थात् टुकड़ेको केसरमें रंगकर दीपक बता देते हो तो वह तुम्हारा भगवत मानना बालकों कासा हुवा तुम्हारेसे तो वीस पन्थी ही चोखे है ऐसे ही गुमान पन्थीको समझ लेना निष्प्रयोजन जानकर यहां बहुत इनका खण्डन मंडन नहीं लिखा

है (प्र०) भो स्वामिन्; हमने ऐसा सुना है कि दिगम्बर लोग कहते हैं कि श्वेताम्बर १२ वर्ष अकाल पड़ाथा जब आहार आदिक न मिलनेसे और रङ्क (दीनो) का जियादः ज़ोर होनेसे श्रावकोंने इनको पीछेसे झोरी पात्रा वस्त्र आदिक अङ्गीकार करादिये और अकालकी निर्वृत्ति हुई तब फिर आचार्य्य लोग आये उन्होने कहा कि तुम वस्त्रादिक छोड़कर फिर दीक्षा ग्रहण करो और शुद्ध मार्गमें आजावो सो इन्होंने न मानी जबसे इनकी श्वेताम्बर आमना चली ऐसा हमने सुना है? (उ०) श्रीवीर भगवानके ६०९ वर्ष पीछे रथवीर पुर नाम नगरके उद्यानमें कृष्ण आचार्यके पासमें सहस्र मल रात्रिको उपासरेमें आया और आचार्य्यसे कहा कि मेरेको दीक्षा दो अर्थात् शिष्य बनावो परन्तु आचार्य्य की इच्छा न हुई तब उसने अपने आप ही लोच आदिक कर लिया तब आचार्य्य उसे लिङ्ग देकरके और जगह विहार कर गये और उसको साथ लेगये कुछ दिनके पश्चात् फिर उसी नगरमें आये तब राजा आदिक वन्दना करनेको आचार्य्यके पास आये और राजाने गुरुकी आज्ञासे उस सहस्रमल साधुको घरमें लेगया और राजा रत्न कम्मल उसको दिया सो वह रत्न कम्मल लेकर के गुरु के पास आया और गुरु को वह रत्न कम्मल दिखाया जब गुरु कहने लगे कि ऐसे भारी मोल का वस्त्र रखना साधु को कल्पै नही इसलिये यह तू राजा को देआ परन्तु वह साधु देने को नहीं गया और उपासरे में रखदिया और बाहिर चला गया उस वक्त गुरु ने उस रत्न कम्मल के खण्ड २ करके सर्व साधुओं को पैर पूछने के लिये दे दिया जिस वक्त में वह साधु उपासरे में आया और उसके टुकड़े २ करके साधुओंको देदिया इस बातको सुन कर मन में द्वेष बुद्धि रख कर के कुछ न बोला तथा दो चार दिन के बाद गुरु जन कल्पी साधुवों के वर्णन करने लगे उन बातों को सुन कर गुरु से कहने लगा कि आप क्यों नहीं उस मार्ग मे चलते हो जब गुरु कहने लगे कि रे भाई इस पंचम काल में ये मार्ग नहीं पलता इसलिये हम नही कर सकते इसके ऊपर उस सहस्रमल ने गुरु से बहुत वाद विवाद किया परन्तु गुरु के समझावने से भी न माना परन्तु वह जो रत्न कम्मल की द्वेष बुद्धिथी इस कारण से क्रोध के वश होकर सब वस्त्र छोड़ दिगम्बर हो वनको चला गया फिर विश्वभूत कोट बीर इन दो जनों को उस सहस्रमल ने प्रतिबोध देकर अपना शिष्य बनाया जब से इन का बौटक मत प्रसिद्ध हुवा अर्थात् दिगम्बर मत चला इस तरह की कथा शास्त्रों में लिखी है अब देखो हम युक्ति कहते है कि देखो बुद्धिमान् सज्जन पुरुष इस युक्ति से आप ही विचार लेगे वह युक्ति यह है कि—जो संसार में मत या पन्थ निकलता है सो पहलेसे उत्कृष्ट अर्थात् तीखापन कर चलता है उसी को लोग मानते हैं क्योंकि संसार में बाल-जीव तो बाह्यक्रिया अर्थात् बाहिर देखने में जो क्रिया आवे उसी को वे बाल जीव अङ्गीकार कर लेते हैं क्योंकि जो धूर्त्त अर्थात् दम्भ कपट के करनेवाले त्यागी वैरागी बुगले पने की चेष्टा दिखा कर बालजीवों को अपने जाल में फँसाते हे क्योंकि उन बाल जीवों को इतना तो बोध है नहीं कि वे अच्छी तरह से परीक्षा करसकें इसलिये वे खेंच तात दृष्टिराग मे पड़कर अपने मत की पुष्टता करनेके वास्ते अपने परपञ्च रचते हैं अब देखो बुद्धि वालों को विचारना चाहिये जो उत्कृष्ट क्रिया के धरने वाले और बाल जीवों

को बाहेर के त्याग पच्चखाण दिखानेवाले उन में कोई निकलकर जो त्याग पच्चखाण में ढीला होकर उन नग्न में सूं जो वस्त्र धारण करके जो अपना पन्थ चलाया चाहे तो वह कदापि नहीं चल सकता क्योंकि त्यागी को सब कोई मानता है और भोगीको कोई नहीं मानता है और दूसरा इनके कहनेमें भी दूषण आवेगा कि ये लोग कहते है कि पंचम आरेके छेडले तक चतुर विधि संघ रहेगा तो अब देखो इनके वचनको विचारना चाहिये कि श्री वर्धमान स्वामीजीको निर्वाण हुये २५०० तथा २६०० अनुमानसे वर्ष हुये तो २१००० वर्ष तक जैन मत चलेगा परन्तु दिगम्बर मुनि किसी मुल्कमें देखनेमें नही आता है तो फिर जब इनको मुनि अभी देखनेमे नहीं आवे है तो फिर २१००० वर्षतक इस दिगम्बर मतसे जैन मत चलेगा सो तो कदापि नहीं हो सके क्योंकि अबार ही इनके मतमें साधु और साध्वी नही तो २१००० वर्ष तक चलना तो शृगालके सींग समान होगा इसलिये हे सज्जन पुरुषो ! जो मत वीचमें निकला है सो वीचमें ही रह जाता है ठेठ तक नहीं पहुंचता इसवास्ते अनादि सिद्ध किया हुवा जो श्री जिन धर्म उसमें जो चलनेवाले सर्वज्ञ आज्ञा आराधक अर्थात् आज्ञाके चलने वाले उन्हींसे अन्त तक अर्थात् २१००० वर्षके छेडले तक साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चतुर विधि संघ जैवंत रहेगा

इति श्रीमज्जैन धर्माचार्य मुनि चिदानंद स्वामि विरचितेस्याद्वादानुभव रत्नाकर तृतीय प्रश्नोत्तरान्तर्गत दिगम्बर मत निर्णय समाप्तम् ॥

अब श्वेताम्बर आमनाय में जो बाईस टोला तेरह पन्थी जोकि मूर्ति को नहीं मानने वाले शास्त्रों से विपरीति जो इनकी बातें है सो हम दिखाते है इसलिये इस जगह मध्य मंगल के वास्ते प्रथम मंगल यहां लिखते है ॥

दोहा—जिन वर पूजन मोक्ष हित, जिन प्रतिमा जिन सार ।
भगवत भाषी सूत्र में, शुद्ध विधी सम्भार ॥ १ ॥

बाईस टोला और तेरह पन्थी कहते है कि प्रतिमा पूजना सूत्र में नहीं है इसलिये हम पूजन नहीं मानते है। (उ०) तुम कहो हो कि सूत्रोंमें प्रतिमा पूजन नहीं है तो हम तुम्हारेसे पूछे हैं कि तुम सूत्र कितने मानो हो ! (पू०) हम सूत्र ३२ मानें हैं । (उ०) ३२ सूत्र तुम कौन २ से मानो हो । (पू०) ११ अङ्ग और १२ उपाङ्ग ४ छेद, ३ मूल २ सूत्र इन ३२ सूत्रोंको मानें हैं । (उ०) भला इन सूत्रोंमें जो बात लिखी है उसको तो सबको मानो हो अर्थात् ३२ सूत्रोंमें जो बात लिखी है उन सबको तो मानों हो! (पू०) हां ३२ सूत्रोंमें जो बात लिखी है सो तो हम सब माने है । (उ०) जो तुम ३२ सूत्रोंकी सब बात मानो हो तो उन ३२ तुम्हारे माने हुयेमें श्रीनन्दी जी और श्री भगवती जी भी हैं तो नन्दीके

---

१ (उ०) से उत्तर पक्ष और (पू०) से पूर्व पक्ष जानो ।

कहे हुये वाक्यको नहीं मानों तब नन्दी जी तुमने नहीं मानी जब नन्दी जी नहीं मानी तब फिर तुम्हारे ३२ क्योंकर रहे ६१ ही रहगये फिर तुम्हारा ३२ का मानना ठीक नहीं । (पू०) अजी तुमभी तो ४५ मानते हो तो हमारा ३२ मानना क्यों नहीं ठीक है (उ०) अरे भोले भाइयो! हम तो ४५ भी मानते हैं ७२ भी मानते हैं और ८४ भी मानते हैं क्योंकि देखो हमारा ४५ का मानना तो इसीलिये है कि शास्त्रोंमें कहा है कि विना योग वह सूत्र बाँचना नहीं कल्पे इसवास्ते योग वहनेकी विधि ४५ ही आगमकी है इस वास्ते हम ४५ माने हैं और ७२ चौरासी भी हम प्रमाण करते हैं जो उनमें लिखा है सो हमारेको मानना चाहिये और दूसरी यहभी बात है कि ४५ सूत्रकीही निर्युक्ति भाष्य चूर्णी टीका प्रायः करके मिलती है इसलिये हम ४५ को कहते हैं मगर प्रमाण सब सूत्रोंका है जो उन सूत्रोंमें लिखा उन सबको प्रमाण करते हैं और तुम जो ३२ मानते हो उनमें तुम्हारे पूरे ३२ नहीं ठहरते हैं क्योंकि नन्दी जीके वाक्यको तुम अंगीकार नहीं करते क्योंकि उसमें ७२ आगमोंके नाम लिखे हैं तो तुम्हारे भिन्न शास्त्र कुल मानने न हुए क्योंकि सब शास्त्र मानों तो निर्युक्ति भाष्य टीका सब माननी पड़े नहीं माननेसे तुम जिन धर्मी नहीं ठहरते हो । (पू०) अजी हम मूल सूत्रको माने हैं उस सूत्रसे मिली हुई निर्युक्ती जो चूर्णी आदिमें लिखा है सो माने हे और शेष उसमें हिंसा धर्म है इसलिये हम अंगीकार नहीं करते । (उ०) अरे भोले भाइयो ! विचारशून्य होकर जिन धर्मको क्यों लजाते हो देखो कि ठाणांग सूत्रमें कहा है "गणहर गुंथइ अरिहा भासई" इति वचनात्, अब देखो इसमें श्रीगणधर जीतो सूत्रके गूथनेवाले अर्थात् मूल सूत्रका रचनेवाले हैं सो तो छदमस्थ अर्थात् केवल ज्ञानी नहीं है और अरिहा भासई (कहतां) अरिहंत भगवंत सर्वज्ञ केवल ज्ञानी सूत्रके अर्थकी कहनेवाले उनके वचनमें तो तुमको हिंसा मालूम हुई और छदमस्थोंके किये सूत्र तुमने अंगीकार किये इसलिये तुम्हारेको पंचांगी मानना ठीक है नहीं तो जिन आज्ञा विराधक होगे (पू०) अजी मूल सूत्रसेही काम हो जायगा तो टीका भाष्य चूर्णीसे क्या मतलब क्योंकि गुरु परम्परासे हम लोग सूत्रपरही अर्थ धारण करते हैं और सूत्रोंमें पंचांगीका प्रमाण कहा है भी नहीं हां अलवत्ता जो सूत्रसे बात मिलती सो मानते हैं बाकी नहीं मानते हैं । (उ०) अहो विचारशून्य बुद्धि विचक्षण ! "अंधे चूहे थोथे धान जैसे गुरु तैसे जिजमान" अब देखो जैसेही तुम्हारे गुरु मूल सूत्रके पढ़ानेवाले और जैसेही तुम पढ़नेवाले क्योंकि श्री भगवती जीमें पंचांगी मूल सूत्रमें प्रमाणभी है गाथा पचीसमें शतकमें कही है यतः "सुतायो खलु पढमो, वीयोनिज्जुति मीसिओ भणी ओ तई ओय निरविसे सो रुझ विहि होई अणु ओगो ॥ १ ॥ अर्थः-सुतायो खलु पढमो (कहतां) पहलो सूत्रार्थ निश्चये देवो वीओ निज्जुति मीसिव (क०) दूसरी निर्युक्ति मिश्रित सहित देवो भरगी ओ क० कहा है तई ओय निरवसे साक० तीसरा निरविशेष संपूर्ण कहना एस विहि होई अणुओगो क० यहविधि अनुयोगकी है अर्थात् अर्थ कहणेका है ॥ इति भगवती शतक ॥ अब देखो कि इस भगवती सूत्रके मूल पाठसे सूत्रमें कहा है कि ७२ आगम है तो तुम्हारे ३२ माने कैसे बनेगे और जो नन्दी जीके पंचांगी सिद्ध हुई और नन्दी जी , ठारणांगजी आदिक बहुत ग्रन्थोंमें पंचांगी

माननेको जिस जगह जोग वहने आदिककी विधि है तहां अच्छीतरहसे खुलासा कहा है लेकिन् इस ग्रन्थके बढ़नेके भयसे यहां नहीं लिखते है और जो तुम कहो कि सूत्रसे जो चीज़ मिले उसको माने है तो अभी वर्त्तमान कालमें सूत्र तो बहुतसे हैं तो तुम ३२ ही क्यों मानो हो ? (पू०) अजी ३२ सूत्र ही माहो माहीं मिले है बाकीके सूत्र मिले नहीं इसलिये नहीं माने (उ०) अरे भोले भाइयो ! तुम आतमा अर्थी तो दीखो हो नहीं किन्तु तुम्हारे परस्पर मिलावनेकी तो इच्छा है नहीं केवल जिन प्रतिमासे द्वेष बुद्धि करके और सूत्रोंको नहीं मानो हो भला खैर३२तो मान्तेहो तो इन३२सूत्रोंमें तुम्हारी मति अनुसार सर्व परस्पर मिले हैं परन्तु इन सूत्रोंमें जो परस्पर मूल पाठमें विरोध है सो हम तुम्हारेको पूछते हैं सो तुम उन सूत्रोंमें जो विरोध है उस विरोधको मिटाय कर हमारेको समझाय दो जो तुम समझाय दोगे तब तो ठीक है नहीं तो अब ग्राहिक मिथ्यातमें पड़े हुये रुलोगे (१) अब हम तुमको तुम्हारे मूल सूत्रोंका परस्पर विरोध दिखाते है देखो समायांगमें श्री मल्लीनाथ प्रभुजीके पांच हज़ार सातसौ मन पर्यवज्ञानी कहे और श्री ज्ञाताजीमे ८०० कहे सो कैसे मिले (२) और श्री रायप्रसेनीमें श्रीकेसी कुमारजीके चार ज्ञान कहे और श्री उत्त-राध्ययनके २३ में अध्ययनमें अवधि ज्ञानी कहा सो किस तरह और श्रीभगवती शतक पहले उदेसे २ में विराधक संयमी जघन्य करके भवन पतीमें जाय और उत्कृष्ट करके सौ धर्म देवलोक जाय ऐसे कहा (३) और श्रीज्ञाताजीमें सोलमें अध्ययनमें सुकुमालिका विराधक संयमी ईशानदेव लोक गयी सो किस तरह ? (४) उव वाईश्रीजीमें तापस्य उदकृष्ठा ज्योतिषी लगे जाय ऐसा कहा और श्री भगवतीमें तामली तापस्य ईशान इन्द्र हुवा सो किस तरह ? (५) श्री भगवतीमां श्रावक कर्मादानका त्रिविध २ पञ्चखानकरे ऐसा कहा और श्री उपासक दशा मध्ये आनन्द श्रावक हल मोकला राखा सो कैसे ? (६) श्री पन्नवना सूत्रजी माही वेदनी कर्मकी जघन्य स्थिति १२ बारह मुहूर्तकी कही और श्री उत्तराध्ययनमें अंतर मुहूर्तकी कही सो कैसे मिले श्री पन्नवनामें चार भाषा बोलतां आराधक होय और श्रीदशवै कालक अध्ययन ७ में दो भाषा बोलेकी कही सो कैसे (७) श्रीदशवै कालक अध्ययन८ में हाथ पग छेदा हो और कान नाक काटाहो और सौ बरसकी डोकरी हो तो ब्रह्मचारी छीवे नहीं ऐसा कहा है और श्री ठरणांगमें ५ ठाणे दूसरे उदेसः साधु पांच प्रकारे साध्वीने ग्रहण करतो थको अज्ञान विरोध सो कैसे ८ श्री भगवतीमें शतक १४ उदेसे ७ में भात पाणीका पचखाण करके फिर आहार करे ऐसा कहा और सिद्धांतोंमे तो व्रत भंग करे तो महादोष लागे सो कैसे ९ श्रीदशवै कालक तथा श्री आचारंगजी में त्रिविधि २ करके प्रणिति पातका पचखाणा करे और श्री समांयांगजीमें दिसा श्रुत स्कंद नदी उतरनीभी कही तो रासेविना कैसे उतरे यह बात कैसे १० श्रीदशवै कालक ३ अध्ययनमें लूण प्रमुख अनाचरण कह्या है और श्री आचारंगजीमें लूण वहन्यो होय तो आप खाय सम्भोगी साधुने खवावे ऐसा कह्या सो कैसे मिले ११ श्री ज्ञाताजीमें श्री मल्लीनाथ ३०० स्त्री और ३०० पुरुष तथा ८ ज्ञात कुमार के साथ दीक्षा लीनी और श्री ठाणांगजीमें सातमें ठाणेमें छः पुरुषके साथ दीक्षा लीनी ऐसा कहा सो कैसे इत्यादि सैंकड़ो बातें सूत्रोंमें परस्पर आपसमें विरोध दीखे हैं तो ये सर्व टीका निर्युक्ति चूर्णी भाष्य विना केवल सूत्र मेल कर

देखो तव तो हम तुम्हारेको जाने कि तुम सूत्रमें अर्थ वांचते हो नहीं तो हे भोले भाइयो हठ पक्षपातको छोड़कर जो कि रत्नाकरके वासी गुरु परम्परा वाले जिन्होंने निर्युक्ति भाष्य टीका आदि पंचांगीको धारण किया वेही इन सूत्रोके परस्पर विरोधको समझ सकते हैं क्योंकि कोई वचन उत्सर्ग, कोई अपवाद, कोई भव कोई विधीवाद, कोई पाठान्तर कोई अपेक्षा कोई चरतानुवाद प्रमुख सूत्रका गंभीर आशय समुद्र सरीखा बुद्धिमान टीकाकार प्रमुखही जाणे क्या तुम सरीखे रंक पक्षपाती निर्विवेकी जान सकते हैं ? किन्तु तुम्हारे तो प्रतिमा के द्वेष ही से टीका आदिक को नहीं मानते तो अव तुमही बुद्धिसे विचारकरके देखो कि तुम्हारे मूलसूत्रो में भी सव सूत्रों का मानना सिद्धकिया और पंचांगीभी तुम्हारे मूल सूत्र से मानना सिद्धकरचुके तो अव तुम्हारा ३२ का मानना ठीकनहीं इसलिये सवको मानो (पू०) हां तुमने सूत्र आदिकों की साखदी सो तो ठीक है और वह सूत्र हम सवही माने हैं परन्तु हम हिंसा में धर्म नहीं माने हैं दयामें धर्म मानते हैं और प्रतिमा पूजने में हिंसा होती है? (उ०) अरे भोले भाइयो ये तो हमारे को तुम्हारा प्रतिमा से द्वेष बुद्धिहोना निश्चय है कि तुम्हारा पन्थ इस द्वेष सेही चला है परन्तु अव हम तुमको हिंसा और दयाका स्वरूप तथा लक्षण पूछते हैं सो कहो? (पू०) हिंसा वह चीज़है कि जीवको मारना छः कायका कूटाकरना और दया किसी जीवको न मारना और और उसके बचाने से हैं (उ०) अरे भोले भाइयो विचारशून्य बुद्धिविचक्षण अभी तुम्हारे को यथावत् श्री जिनभगवान् का भाषा हुवा वचनका रहस्य मालूम न हुवा इसलिये तुमने दया और हिंसा ऐसा समझलिया हमको तुमपर करुणा आती है कि तुम अपना घर छोड़ कर इन जालियों के जाळ में फँसकर संसार में रुलने का काम करतेहो इसलिये तुम्हारे हितके वास्ते हिंसा का और दया का स्वरूप दिखाते हैं कि हिंसा कितने प्रकारकी और दया कितने प्रकारकी और हिंसा में पाप होता है; वा नहीं होता है सो देखो कि १ हेतु हिंसा, २ स्वरूप हिंसा; ३ अनुवन्ध हिंसा, ये तीन भेद हिंसाके और यही तीन भेद अहिंसा के हे–अब देखो जबतक इन भेदों को नहींजाने तव तक सिर्फ दया २ करनेसे कुछ दया नहीं होती है क्योंकि जव तक भोगो अर्थात् मन, वचन, कायकी स्थिरता नहीं है तव तक वोलना चालना जो क्रिया आदिक करना है सो आरंभसे तो कर्म वन्ध हेतु हैं क्योंकि जिस गुण ठाणेकी जो मर्यादा माफिक कर्म फल अर्थात् तेरमें गुण ठाणे तक कर्म वन्धते है–इसलिये एकली अहिंसा कैसे ठहरसके क्योंकि जव तक इसका भेद आदिक न समझे तव तक जिन मार्गको अच्छी तरह नहीं जान सकते । (पू०) अजी मुनि जो हैं सो विहार आदिक क्रिया करते है सो हिंसा लगे है परन्तु मुनि जाण कर हिंसा करे नहीं । (उ०) अरे भोले भाइयो ये तुम्हारा कहना कपटसे है– कि मेरी मा वॉझ । क्योंकि देखो शुभ क्रिया जो विहार पड़लेणा नदी उतरनी गोचरी जाना इत्यादि क्रिया जानकर करो फिर कहो कि हिंसा नही तो तुम्हारा विहार करना, नदी उतरना, गोचरी जाना, क्या अनजानसे होता है? जाणकर काम करते हुवे हिंसा दोष लगाते हो । (पू०) अजी नदी उतरना, विहार करना, गोचरी करनेमें तो श्रीभगवान् की आज्ञा है, आज्ञामें जो शुभ क्रिया करनी उसमें कोई दूषण नहीं । (उ०) जब श्रीभगवान्

की आज्ञाकी अपेक्षा लेकर शुभ क्रिया करनेमें कोई दूषण नहीं तो ऐसेही जो पूजा आदि शुभ क्रिया जो भगवान् की आज्ञासे होय तो तुम पूजाको क्यों निषेध करो हो। (पू०) अजी हम देखती हिंसाको मने करते है कि कोई जीवको देखते हुवे न मारना ऐसाही मुनिने कहता साधुने अहिंसाका भाव होय है! (उ०) जो तुम देखते जीवको न मारना ऐसा अहिंसाभाव मानोगे तो सूक्ष्म एकेन्द्रिय लोक व्यापी पंच स्थावर जीवोंमें पिण शुद्ध स्वभाव होना चाहिये क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव हिंसा नामही नही जानै है तो तुम्हारे कहने से वह सूक्ष्म एकेन्द्रिय अहिसक ठहरे तो जो अहिंसिक भाव परणम्या होय तो वे शुद्ध भावी निर आवरण होने चाहिये सो सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव तो निरावरण होता है नहीं तो क्या खाली हिंसा करने से अहिसा थोड़ी ही होता है किन्तु द्रव्य भाव अनेक प्रकार की जो अहिंसा तिसके भाव कहतां परिणामें जो जाने वोही अहिसा मे प्रवर्तन होगा और वही प्राणी सब जगह जहां जहां जिन आगमका जो जो रहस्य है जिस २ ठिकानेका जो जो मर्म है उसी २ ठिकाणे जिन वाणी जोड़ेगा उस प्राणीसे आगमका एक वचन भी उल्टा न कहा जायगा क्योंकि उत्सर्ग वचन और अपवाद वचन ये दोनों बातें करके जिनेश्वरकी वाणी जाने क्योंकि उत्सर्ग मार्गे अहिंसा मुनिने ही कही है देखो श्री आचारंगजीने प्रमुखमे कहा है कि साध्वी प्रमुख पाणीमे वहती जाती होतो साधु निकाले तथा एक महीनेमें दो नदी उतरना कहा यह अपवाद आज्ञा प्रभूने कही है तो यह सर्व उत्सर्ग अपवाद जाणे सो सर्व वचन ठिकाणे २ जोड़े जो अजान होये सो जिन वचन का रहस्य क्यो कर जानै। (पू०) उत्सर्ग मार्गहीमें चलनेकी भगवान्की आज्ञा है अपवाद मार्ग तो केवल बंद है अर्थात् वहाना है। (उ०) यह तुम्हारा कहना जो है सो तुम्हारी मनकी कल्पनासे है जिन आज्ञा नहीं अर्थ जाने विना ऐसी बातें करो हो देखो कि विधीवाद जो होता है सो साधारण कारण होता है क्योंकि उत्सर्ग और अपवाद ये दोनों विधि वाद है सर्व जीवोंको साधारण है एक जीव आश्रय नहीं कहा इसलिये अपवाद आज्ञाहीमे है इसलिये छोड़ा नही क्योंकि देखो अपवाद मार्ग तो कारण है और उत्सर्ग मार्ग सो कार्य है। (पू०) अजी दयामेंही धर्म है क्योंकि आरंभे नत्थी दया (उ०) अरे भोले भाइयो! हम तुम्हारेको इतना शास्त्रोंका वचन सुनाया सो बालकको भी प्रतिबोध हो जाय परन्तु तुम्हारे शून्य चित्तको कुछ न हुवा क्योंकि—"फले न फूले बेत, चिरतर बरसै आदि घन। मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलें विरंचि सत॥" इस कहनेका बहुत शोक न करना क्योंकि जिज्ञासूको जब बहुत खेद देता है तब परके समझानेके तई अन्तरङ्ग करुणा सहित कटु वचन बोलै कि इसको किसीतरह प्रतिबोध होजायहै इसलिये हम तुमको एक दृष्टान्त देते हैं कि "दो मनुष्योंने किसीके पास दीक्षा लीनी और दोनों आपसमें विचार करने लगे, एक जना तो बोला कि भगवान्ने दयामे धर्म कहा है सो मैं तो साढ़े तीन हाथ जमीन अपनी रखकर उसके भीतरही रहूंगा और कहीं नही जाऊंगा इसी जगह मेरेको अगर शुद्ध आहार पानीका योग मिलेगा तो लेलेऊंगा क्योंकि आहार पानी ठल्ले मात्रा जानेमें ग्रामादिमें विहार करनेसे हिंसा होगी और भगवान्ने तो दयामे धर्म कहा है इसलिये मुझको कुछ नही करना दूसरा कहनेलगा कि अरे भाई!

भगवान्की आज्ञा तो ९ कल्पी विहार करना एक जगह नहीं रहना, गोचरी आदिक लाना ठल्ले जाना उपदेशादि देना ही साधूका धर्म्म है एवं उत्सर्ग अपवाद सहित भगवान्की आज्ञामें धर्म है" तो अब इस वातको तुमही विचार करो कि जब भगवान्की आज्ञामें धर्म ठहरा तो फिर मन्दिर व जिन प्रतिमा पूजनेको निषेध करना यह वात नहीं बनती और जो तुमने कहा कि आरंभमें नत्थी दया सो हे भोले भाइयो! हमभी यही बात कहते हैं मगर विचारो तो सही कि एक पदको वोलना और तीन पदको छोड़ना देखो इस गाथाको सम्पूर्ण सुनो—यतः आरंभे नत्थी दया विना आरंभे न होई महापुन्नो पुन्नेन कम्म-निज्जरे रानकम्म निज्जरे नत्थी मुक्खी इस संपूर्ण गाथा को विचार करके वोलो। (पू०) अजी धर्मके वास्ते जो हिंसा कियेसे दुर्लभ बोधि हो वै अर्थात् जिन धर्मकी प्राप्ति न होय। (उ०) अहो विवेक शून्य बुद्धि विचक्षण! हम तुम्हारे हितके वास्ते कहते हैं कि तुम विचार करो कि जो धर्मके वास्ते हिंसा करै वह दुर्लभ बोधी वा सुलभ बोधी होता है यह तुम्हारा कहना तो वंझाके पुत्र समान है क्योंकि जो कोई दिक्षा आदिक ग्रहण करता है उस समय श्रावक लोग महीना महीना भर मोच्छवादि वाजे वाजे अनेक आरंभादि खाना पीना आडंवर लोगोंको इकट्ठा करना और दीक्षा दिलाना उस आरंभमें हिंसा आदिक होती है तो वह धर्मके वास्ते करते हैं तथा साधुवोंको गडमान्तर पहुंचाने वा वांदने (नमस्कर)को जाना या सौ पचास कोस पर उनके दर्शनको जाना उसमें वह जो हिंसा आदिक होती है सो सब धर्मके वास्ते करते हैं एवं धर्म्मके वास्ते अनेक आरंभ करनेवाले जो दुर्लभ बोधी होवे जब तो जिन कल्याणकादिकोंका सकल व्यवहार अनर्थक हो जायगा जो कदाचित् ऐसाही होता तो पूर्वही किसी ने क्यो नहीं निषेधा वर्त्तमाननें तुम क्यों नहीं मना करते हो परंतु यह कहना तुम्हारा अज्ञानतासे आकाशके पुष्पकेसमान है सो हे भोले भाइयो! जिन धर्मका रहस्य तो शुद्ध परंपरा गुरुकुलवासकी कृपाहीसे प्राप्त होता है परंतु खाली जैनी नाम धरालेनेसे ऊव नही होता है क्योंकि देखो श्री ठाणांगजी सूत्रके चौथे ठाणेमें चौभंगी कही है सो चार भांगे यह हैं (१) "सावद्य व्यापार सावद्य परिणाम। (२) सावद्य व्यापार निरवद्य परिणाम। (३) निरवद्य व्यापार सावद्य परिणाम। (४) निरवद्य व्यापार निरवद्य परिणाम"॥ पहला भांगा तो मिथ्याति आश्रीय है और दूसरा भांगा समगती देश वृत्ति श्रावक आश्रय है और तीसरा भांगा प्रश्न चन्द्र राज ऋषि आश्रीय है और चौथा भांगा श्री मुनिराज आश्रीय है अब देखो इस चौभंगीके अर्थसे जो हिंसा सोही अहिंसा ठहरती है और अहिंसा सो हिंसा ठहरती है सो हे भोले भाइयो! पक्षपातको छोड़कर आत्माके अर्थ करनेकी इच्छा होयतो शुद्ध जिन धर्म पंचांगी सहित अंगीकार करो। (पू०) भला ये युक्ती आपने दीनी सो तो भगवान्की आज्ञामें धर्म ठहरा एकली दयामें नही परन्तु जिन पूजामें अनेक आरंभ होते हैं जिसमें क्या अल्प पाप और वह निर्जरा मानोंगे और मन्दिरकी पूजन २ कहते हो सो हमारेको शास्त्रके अनुसार पूजन बताइये और युक्तिसे सिद्धकर दीजिये। (उ०) जो तुमने अल्प पाप और बहु निर्जरामें प्रश्न किया सो तो जहां हम गच्छोंके भेद कहेंगे उस जगह जो कि एकान्त निर्जरा नहीं माननेवाले उनके एकान्त निरजरा मनानेमें हम युक्ति और शास्त्रोंका प्रमाण देंगे वहांसे देख लेना। अब जो तुमने पूछा कि किसी श्रावक साधुने

मन्दिर पूजा हो वा वांदना की हो सो वतलावो तो हम तुम्हारेको ये वात और पूछैं हैं कि तुम श्रावक किसको मानों हो कि समगत जिसको प्राप्ती हुई है उसको श्रावक मानो हो अथवा समगत सहित जो देश वृत्ति है उसको श्रावक मानों हो अथवा समगतका तो जिसको लेश नही खाली देखा देखी आडम्बरमें फँसकर गाडर चलमें चलते हुएको श्रावक मानते हो । (पू०) हम श्रावक उसको कहते है कि जिसको समगतकी प्राप्ति होवे और चौथे गुण ठाणे आवृत्ती हो उसकोभी श्रावक अर्थात् आवृत्ती दूसरा समगत सहित जो एकदेश वृत्त आदिकभी है वह भी श्रावक है इन श्रावकोंमें अथवा श्री महावीर स्वामी के श्रावक अथवा कोई तीर्थ करके श्रावक हो जिन्होंने पूजनकी हो अथवा किसी साधुने वन्दना मन्दिरमें जाय कर कीहो तो हमको वतलाइये । (उ०) जब आवृत्ति चौथे गुण ठाणे वाले तब तो देवलोकमे जो देवतादिक हैं वहभी चौथे गुण ठाणेवाले श्रावक हैं तो जिस समयमें वो देवलोकमे उपजते है उसवक्तमे वे अपने सामान्यक देवताओंसे पूछते हैं कि हमारेको पहले क्या कृत करना चाहिये उस वक्तमे वे देवता कहते है कि इस विमानमें जो श्री जिनेश्वरकी प्रतिमा अथवा श्री जिनेश्वरकी दाढ़ों उनकी तुम पूजा करो पूर्व और पश्चाहित कहता पूर्व तथा पीछे जिन प्रतिमा तथा जिन दाढ़ि ये दो वस्तुकी पूजा करनी तुम्हारे हितकारी है ऐसा सामान्यक देवता कहते है प्रथम सूर्याभ्र देवताने जो पूजन किया है सो नीचे लिखते है, परन्तु सूर्याभ्र देवताके विमानमें दाढ सम्भवै नहीं इसलिये दाढोंका प्रमाण तो एक तो सुधर्म इन्द्र, दूसरा ईसान् इन्द्र, तीसरा चमर इन्द्र, चौथा वल इन्द्र ये चार इन्द्रोंको दाढ लेनेका अधिकार है सो तो पाठ जंबूद्वीपपन्नती अर्थात् टीकामें जान लेना परन्तु इस जगह तो हम सूर्याभ्र देवताने जो पूजन किया सो श्री रायपसेणी सूत्रका "पाठ लिखते हैं तत् सूत्रं–(तरुणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स पंच विहारा पज्जतिए पज्जत्तिभावंगयस्स समाणस्स इमे यारूवे अज्झथ्थिरा पथ्थिये मरणोए संकप्पे समुप्पन्निथ्था किमे पुवे करणिज्जं ? कि पथ्थाकरणिथ्थज्ज किमे पुविसेयं किमे पथ्थासेयं किमे पुव्वि पथ्था विहियाए सुहाए खमाए णिसेसाए आणुगामि यत्तारा भविस्सइ । तएणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणिय परिसो व वणगा देवा सूरियाभस्स इमेरूवं अप्पथ्थियं समुप्पन्नं समभिज्जाणिता जेणेव सूरियाभदेवेतणेव उवागथ्थंति सूरियाभं देवं करयल वेत्ता एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पि याणं सूरियाभे विमाणे सिद्धायतणे जिण पडमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमेत्ताणं सठसयं सन्निखित्ताणं चिठइ सभाइणं सुहमाराणं माणवए चेइय खंभ वइ एम एमु गोल वट्ट समुगाएसु वहुइओ जिणस्स कहाओ सन्नि खित्ताओ चिठंतिव ताओणं देवाणुप्पियाणं अन्नेसयं वहुणं वेमाणियाणं देवाणयं देवीणय अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ तंरुयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विकरणिज्जं एयसां देवाणुप्पियाणं पथ्थाकरणिज्जं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्वि पथ्थाविहियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामि यत्ताए भविस्सइ॥ क्योंकि सरीसा पाठ होने एक जगहके पाठका सम्पूर्ण अर्थ करते हैं अर्थः–"तएणं तस्य सूरियाभस्स देवस्सके जबसे सूरियाभ देवताने–"पंच विहारा पज्जत्तीरा पज्जत्ती भावं गयस्स समाणस्सके पांच प्रकार की प्रर्याप्तिरा पर्याप्ति भाव पाये हुये को अर्थात् देवताको भाषा और मन ये दो प्राप्ति साथे नीपजे है–इसलिये पांच कही इमेया रूवेके एवा प्रकारनो अज्झथ्थि-

एके० मनमा प्राथ्यों मणोगए संकप्पे सुमुपज्जिथ्थाके० मनोगत संकल्प उपन्यो सो कहते है किमे पुव्विसेयके० हमारे पूर्वे श्रेयकारी कैसे? किमे पथ्था सयंके० शुं हमारे पछी श्रेय कारी कैसे? किंमें पुव्वि पथ्थाविके० हमारे पूर्वे और पछी कैसे हियाएके० हितकारी पथ्य आहारीके मानिन्द सुहाएक० सुखके अर्थ; खेमाएके० संगतके अर्थ; खमके अर्थ; तिस्से सा- एके० निश्रेयसे जो मोक्षति अर्थ; आणु गामि अत्ताएके० अनुगमन करे अर्थात् परम पराय शुभानुबंधी भविस्सइंके० होसी' अब देखो इस जगह यहां समगती देवताकी पूजन सिद्ध हुई (पू०) यह तो देवताकी स्थिती है जो देवलोकमें उपजता है सो करता है । (उ०) अरे भोले भाइयो! यह तुम्हारा कहना जो है सो अज्ञान सूचक है क्योंकि देखो सूत्रमें ऐसा पाठ है "अन्नेसिं बहुमांवेमाणियाणं" कि वह पद देनेसे ही मालूम होता है कि सर्व देवता नहीं करै जो सर्व देवता करते होते तो ऐसा पाठ बोलते हैं " सव्वेंसिं वेमाणियाणं' ऐसा पाठ नहीं होनेसे मालूम होता है कि सर्व देवताओं की नहीं किन्तु सम्यक् दृष्टिकी करणी है (पू०) जो तुमने कही सो तो ठीक है परन्तु सुरियाभि देवता जिस वक्तमें उत्पन्न हुवाथा उस वक्त पूजन किया पीछे तो पूजन करी नहीं इसलिये यह पूजन लौकिक आचारकी तरह है परन्तु धर्म अर्थ नहीं । (उ०) यह तुम्हारा कहना जो है सो पक्षपातका और विचार शून्य है क्योंकि देखो कि सूत्रमें " पूर्व पच्छा" इस शब्दसे पूर्व नाम पहिला और पच्छा नाम पिछाड़ी हितकारी है इसलिये नित्य पूजन करना ठहरता है क्योंकि सूर्याभि देवता ऐसा जानता है कि मेरे हितके वास्ते मेरेको नित्य पूजन करना श्रेयकारी है अर्थात् कल्याण कारी है । (पू०) भला हम पूजन करना तो ठीक कहते है परन्तु द्रव्य पूजा अर्थात् बाह्य करनीसूं करी होगी परन्तु भाव नहीं । (उ०) अरे भोले भाइयो कुछ! तो विचार करो कि जो समकित दृष्टि होगा सो तो भाव सहित ही धर्म कृत करेगा क्योंकि समकित दृष्टिकी रुचि पूर्वक हरेक काममें प्रवृत्ति होती है देखो कि जैसे भरत राजाके जिस वक्तमे चक्र उत्पन्न हुवा उसी वक्त श्रीऋषभदेव स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा वो दोनों खबर एक साथ आयकर लगीं तो उसवक्त भरतने इस लोक और परलोकमें हितकारी उपकार जानकर पहिले श्रीऋषभदेव स्वामीके पासमें जायकर भाव पूजन अर्थात् धर्म की महिमा करी पीछे चक्र की द्रव्य पूजन लौकिक आचार साधनेके वास्ते किया तो देखो कि समकित दृष्टि जीवकी तो भाव पूजा प्रसिद्ध है इसवास्ते सूरियाभि देवताका समकित दृष्टि होनेसे लौकिक आचरणसे नहीं किंतु भावसे त्रिकाल पूजन करता हुवा इस रीतिसे "श्रीराय पसेणी" सूत्रमें अच्छी तरहसे अधिकार है सो आत्मार्थी सूत्रके ऊपर विचार करके अपनी आत्माका कल्याण करे । (पू०) आपने कहा सो तो ठीक है परन्तु देवता तो आवृत्ती अपच्च खाणी है सो देवताकी करनी गिनतीमें नहीं है इसलिये हम देवताकी करणी तो मानते नहीं। (उ०) अरे भोले भाइयो! यह तुम्हारा कहना मिथ्यात दशाका है क्योंकि सम- कित दृष्टि देवताकी असातना करनेसे अर्थात् आवर्णवाद बोलनेसे जीव चीकना कर्म बांधे दुर्लभ बोधी होय अर्थात् जिन धर्मकी प्राप्ति कठिनसे मिले इसका पाठ श्रीठाणांग जीके पांच विटाणेमे कहा है सो पाठ लिखते है ॥ "पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्ल हबोहियत्ताए कम्मं पकरति तंजहा अरिहंताणं अवस्सं वयमाणे ॥ १ ॥ अरिहंत पणतस्स धम्मस्स

अवणं वयमाणो ॥ २ ॥ आरिय उवज्झायाणं अवम्मं वयमाणे ॥ ३ ॥ चावुव्वण्स्स संघस्स अवणं वयमाणं ॥४॥ विवक्कतव बंभ चेराणं देवाणं अव्वणं वयमाणे ॥५॥व्याख्या पंचहिठाणोहिके० पंचस्थानके जीवाके, जीवने दुलहवोहिय तायके० दुर्लभ बोधि परगो एटले परभवे जिनधर्म प्राप्ति दोहिली होय कम्मं पकरोतेके० कर्म बांधे तंजहाके० तेपांच आकार देखाव हे अरि हंताणं अवणं वय माणके०अरिहतना अवर्णवाद बोलतो ॥ १ ॥ अरिहंत पणंतस्स धम्मस्स अवणंवयमाणके० आरिहंतना परूप्पा धर्मना अवर्णवाद बोलतो ॥ ॥ २ ॥ आयरिय उवज्झायाणं अवण वय माणके० आचार्य्य उपाध्यायना आवर्णवाद बोले ॥ ३ ॥ चाउवर्णस्स संघस्स अवणंवय माणके०चतुर्विधसंघानां आवर्णवाद बोलतो ॥४॥ हे भाइयो जब अवर्ण वादमें ऐसा भय होता है तो तुम देवताकी शुभ करणीको व्यर्थ कहके कैसा फल पावोगे पांचवा समगतो देवताना अवर्णवाद बोलता दुर्लभ वोधी होय अर्थात् दुःख करके जिन धर्मको प्राप्ति होय तो देवताकी करणी न मानना यह इसवर अज्ञान पूशापरूप निद्रासे जागो क्योंकि देखो मनुष्यसे देवताको अधिक विवेक अर्थात् बुद्धि विशेष मालूम होती है क्योंकि "श्री दश वैकालक" की प्रथम गाथाके अर्थसे मालूम होता है कि मनुष्यसों देवताकी बुद्धि विशेष है तत सूत्र "धम्मो मंगल मुक्कठं अहिंसा संज मोतवो देवा वित्तेनमंसंति जस्स धम्मे सयामणो ॥ "इस गाथामें ऐसा अर्थ मालूम होता है कि जिसका धर्मके विषय सदा मन वर्ते है अर्थात् रहता है तिसको देवता नमस्कार करे मनुष्य करे जिसका तो कहनाही क्या इस अर्थमें साफ मालूम होता है कि मनुष्य से देवतामे अधिक बुद्धि होती है इस लिये समगत दृष्टि देवताओं विजय दादुरप्रमुख देवता ओंकी पूजन करना श्री जिवाभिगम आदिक अनेक सुत्रोंमे पाठ है सो हम कहां तक लिखे जो आत्मार्थी होगा सो पक्षपातको छोड़कर इतनेहीमें जान लेगा। (प्र०) अजी देवताओंकी करणी तो तुमने बताई परन्तु किस मनुष्यने पूजन किया है सो कहो। (उ०) देखो जैसे हमने तुमको समगत दृष्टि देवतोंकी करणी बताई तैसे मनुष्योंकीभी कहते हैं अंबड परिव्राजिका और उसके शिष्य उनका उववाईसूत्र प्रथमही आचारंग सूत्रका उपांग है उसमें अंबड परिव्राजिक का अधिकार है सो सूत्र यह है "अंबड़स्सणं नोकप्पइ अतन्न उथ्थिएवा अन्नउथ्थियदे वया इंवा अन्नउथ्थि अपरिग्ग हियाइं अरिहंत चेइयाइंवा वंदित ऐवानमंसित्त एवानन्नथ्थ अरिहंतेवा अरिहंतचेई आणिवा ॥ यह अंबड का अधिकार कहा अर्थः—अंबड परिव्राजक यो तेज बोले छः अंवडस्सणं क० अंबडनेणो कप्पई क० नकल्पे अन्न उथिएवा क० अन्य तीर्थी प्रत्ये तथा अन्नउथियदे वयाणिवा क० वा अथवा तीर्थी नादेव प्रत्ये तथा अण उथ्थिय पग्गिहिया इं अरिहंत चे इयाइंवा क० वा अथवा अन्यातीर्थी परिग्रहीत क० अन्यतीर्थीए ग्राह्यां एवां अरिहंतना चैत्यजे जिन प्रतिमाते प्रत्ये एटले ऐभावजे अरिहंतनी प्रतिमाहोय ते अन्यतीर्थीये पोतापणे ग्रहीहोय ते प्रत्ये सूं न कल्पे १ ते कहे छेः वंदित एवा के० वन्दना स्तवनाकरवी तथा नमंसितएव क० नमस्कार करवो नन्नथक० एहवित अरिहंतनो क० अरिहंत चेइयणि क० अरिहंतनी प्रतिमा, एटले इन दोनों को वंदन नमस्कारकरूं, पण पूर्वेकह्या ते मने न करूं और मुवाफ़िक् आनन्दके जो शिष्य ७०० उनकाभी इसी रीतिसे भावार्थ समझलेना सो इसीसूत्र में पाठ है और अब देखो कि उदकृष्टा १२ वृत्तिधारी श्रा-

वकके पाठ से सिद्धहोता है और देखो कि आनन्द श्रावक का आलावे श्री उपासक दिसा सूत्र में है सो लिखतेहैं-" ठोखलुमें भंते कप्पई अऊंपभि इवणं अन्न उथ्थियत्वा अन्न उ-थ्थिय देवयाणि वा अन्न उथ्थिए परिगाहियाइं वाचेइं पाइं वंदित एवा नमंसित ऐवा पुछि अणालित्तणे अलोवित्त एवा सलवित ऐवा तेंसि असणं वा पाणं वाखाइ मंवा साइमं वा दाउंवा अगुं पदा उंचा नन्नथ्थ एयाभि ओगेणं गणाभिओगेणं वलाभिओगेणांदेवाभि ओगेणंगुरुनेगोहणं वितिकं तारेणं कथईमे समणे निगांथेकासुरुसरीज्जेणं असणं पाणं खाइमं साइमेणं वथ्थ पडिगाहं कंवल पाइ पुछणेणं पाडि हारिय पीट फलग संझा संथार रुणं उसह भेस झेणं पडिलाभे माणस्स विहसित एइतिकएवंएयारुवं अभिग्गाहं अभिगा एहइं" ॥ अब देखो इस पाठमे आणंद श्रावकने इस आलावासे जिन प्रतिमा पूजनी सिद्ध होती है ऐसेही द्रौपदी आदिक अनेक श्रावका श्रावकने प्रतिमा पूजी है फिर देखो सिद्धार्थ राजा श्री पार्श्वनाथ भगवान्का उपासक अर्थात् श्रावक तथा त्रसला राणी ये दोनो श्री पा-र्श्वनाथके श्रावक होते हुवे प्रथम अंग जो आचारंग तिसमें कहा है सो जिसकी इच्छा हो सो उस पाठको देखे अब देखो विचार करो कि श्री महावीर स्वामीको माता पिता और श्री पार्श्वनाथ स्वामीके समकित धारी श्रावक होकर जिन प्रतिमाकी पूजनके सिवाय क्या राम कृष्ण महादेव भैरों भोपाकी पूजन करे यह तो उन श्रावकोंको असंभव है क्योकि समगत धारी श्रावक सिवाय श्री जिनेश्वर देवकी प्रतिमा के और का पूजन न करेगा क्योकि अन्य मिथ्यात्वी देवका पूजन करना तो मिथ्यात्व का कारण है इसीरीतिसे श्रेणक महावल राजाआदिक अनेक राजाओंने जिन प्रतिमाओं का पूजनादिक किया है सो अब हम कहांतक लिखें सिद्धान्तो में अनेक श्रावकों के वारे में लिखा है. क्योकि ज़ियादहपाठ ग्रन्थज्यादः होजाने के भयसे नहीं लिखा । (पू०) अजी साधुको तो कहीं आडम्बर कराना मन्दिर में जाना ऐसा पाठ नहीं है (उ०) अरे भोलेभाइयो तुम को जिन शास्त्रकी खबर नहीं है खाली पोथा इकट्ठा करके उस भार को उठाये फिरते हो क्योंकि नन्दीजी में कहा सो ठीक है कि " खरस्य चन्दनं भारवाई " इससे तो मालूम होता है कि पुस्तकों का भार है मगर मतलब नहीं समझते हो-देखो श्री भगवती जीके बीसमें शतक नव में उद्देशे में मुनिवर प्रतिमा बांदै ऐसा लिखा है।और हम किंचित् पाठभी लिखते हैः- एवंवुच्चइ जंघा चारणे जंघाचारण स्सणं भन्ते कई सीहागई कहंसीहेगई विसए पन्नत्तागो० अपणं जंबुद्वीपे दीविजहेव विझाचारणस्स णवंरंति सत्तरकतो अणुयरियदित्ताणं हव्वमागाछिज्झा जंघा चारणंस्सगो० तहा सीहागइ तहा सीहेगइविसरो पन्नता, सेसं तंचेव जंघा चारणं संणंभंतेतिरियं केवइएगइ विसए पन्नता गो० सेदंगइ तो एगणं उप्पाएणंरुअ ग वरे दीये समोसरणं करेइ करेइता तहिंचेइं आइं वंदइ इत्तातओ पाडिनियतमाणे वीइ एणं उप्पाएणं णंदीसरदीवे समोसरणं करे करित्तातहिंचेइ आइवंदेइ वदइत्ता इहमागछई इहेचेइ आईवंदइ जंघा चारणस्सणंगो० तिरियं एवइ एगइ विसए पन्नता० जंघा चारणस्सणं भंते उड्ढंकवइ एगइ विसए पन्नता गो० सेणं इतोएगएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ करेइत्तातहि चेइ याइ पंदइ वंदइत्ता तओपडिणियतमाणो वितिएणं उप्पाएणं नंदणवणे स-मोसरणं करेइ करेइत्ता तहीं चेइयाई वंदइवंदइत्ता इहमागछई मांगछइत्ता इहचेई याइंवंदइ

जंघाचारणस्सणं गो० ॥ इत्यादि ॥ देखो इस पाठ में जंघाचारी विद्याचारी साधुके वास्ते नंदीश्वर द्वीपमे यात्रा अर्थात् देववन्दन कहा है (पू०) अजी यह तुम कहा सो तो ठीक है परन्तु येतो जंघाचारी विद्याचारी साधुकी लब्धी का वर्णन किया है परन्तु कोई गया नहीं (उ०) अरे भोले भाइयो! अभी तुम्हारा मिथ्यात अज्ञान दूर न हुवा जो अज्ञान दूर होता तो अगाड़ी जो हमने सूत्रों की साख से जो कहा है उसी को अंगीकार करते परन्तु ऐसी अपने मतकी खेच न करते तुम्हारेको तुम्हारी आत्माके अर्थ की इच्छानहीं किन्तु अपने मतकी पुष्टता करनेके वास्ते मिथ्यामोह में अपूजेहुये ऐसा विकल्प करते हो क्योंकि देखो इस सूत्र में ऐसा पाठ है कि जो साधु नन्दीश्वर द्वीपजाय और लौटकर यहां भरतक्षेत्र में आवे आलोयणा अर्थात् इर्यावही पडकमे विना जो काल करजाय तो भगवान्‌की आज्ञाका विराधक होय और जो आलोयणा अर्थात् इरयावही पडकने के पीछे जो वो काल करे तो भगवान् की आज्ञाका आराधक अर्थात् आज्ञाकारी होय इस पाठ के देखनेसे जाना साबित होता है जो नहीं जाता तो आलोयणा का पाठ कदापि सूत्र मे न होता क्योंकि लब्धी के वर्णन मे आलोयणा का कुछकाम नहीथा इस आलोयणा के पाठ होनेही से जाना साबितहोता है (पू०) अजी देखो जब नन्दीश्वर द्वीपकी यात्रा को जाने से उसको आलोयणा आई तो आलोयणा होने से चैत्यका वांधना ठीकनही क्योंकि आलोयणा विना करे जो काल करजाय तो विराधक ठहरता है (उ०) अरे! संशय मिथ्यात्व रूप समुद्र में पड़े हुये दुःखितआत्मा होकर भी तुम्हारे को सूत्र रूपी जहाज़ जिस के शुद्ध उपदेशक अर्थ के बतलाने वाले गुरू तुमको हाथ पकड़ निकालते है तो भी तुमसे निकला नहीं जाता है तो हा! इति खेदे महा मोहस्य विटंवना, अर्थात् मोह रूपी मिथ्यात्व की कैसी विचित्रता है? अरे भोले भाइयो! यह मनुष्य जन्म चिन्तामणिरत्न पायकर चेतो अर्थात् बुद्धिमें विचार करो कि आलोयणा जो है सो प्रमादि गतकी तिसका आलोयणा है क्योंकि लब्धी उपजनेके कारणसे एक तो इसकी आलोयणा अर्थात् लब्धी फांड़कर गया दूसरा परमाद तीरके वेगकी तरह उतावला अर्थात् जल्दीसे चला गया जाता थका वीचकी जो यात्रा प्रमुख सास्वता देहरा रह गया तिसका चित्तमे अति खेद उपजे इससे क्या आया कि गमनागमनकी आलोयणा नतु चैत्यादिक की आलोयणा देखो इसी रीतिसे दशवें काल कमे एसा कहा है कि जो साधु गोचारी करके अर्थात् लेकर आवे तव गुरुके पास आ लोवे सम्यक् प्रकारे अत्र इस जगह जो दोष लगा है उसीकी आलोयणा है, कुछ गोचरीकी आलोयणा नहीं क्योंकि देखो इस गाथाके अर्थसे मालूम होता है:—"अहो जिणेधि असा विज्जा वित्ती साहुणांदेसियाधम्म साहणा हे उस्स साहुदेहस्स धारणा" ॥ इस गाथामें ऐसा मतलब मालूम होता है कि साधू की जो वृत्ति सो जिन भगवान्‌ने असा विज्जाके० सावध्यन नसही क्योंकि धर्मके सहायदेने वाली जो गोचरी आदि वृत्ति सो साधूको शरीरके धारण करने के वास्ते है नतु परमार्थः जैसे गोचरी की आलोयणा नहीं सिर्फ गमनागमन अर्थात् जाने आने का जो परमाद उपयोग विना जो दूषण लगाहो उसकी आलोयणा है इसीरीति से वो चैत्यकी आलोयणा नही किन्तु जो जाने आने मे परमाद हुवा उसकी आलोयणा है

इसलिये बुद्धि में विचार के अपनी आत्माका अर्थ करो और भी देखो कि सूत्रों का ऐसा पाठ है कि जो साधु वा श्रावक रोजीना मन्दिर में दर्शन नहीं करे तो वेला अर्थात् दो उपवास अथवा पांच उपवासका दंड आवे श्री महाकल्प सूत्रमें ऐसा लिखा है सो पाठ लिखते हैं-" से भयवं तहा रूवे सभणं वा माहणं वा चेइ हरे गाछि झाहंता गोपमा दिणे दिणे गच्छिझासेभयवं दिणेदिणेण गच्छि झात उ पायच्छित्तं हव इझा गोयमां पमायं पडच्चतहा रुवं समणं वा महाणं वाजओदिणे दिणे जिरणहरेनगच्छि झात उंछडं तवदंसिझा अहवा डुवाल संपयछित्तं उवदं सिझा अहसे भयवं समणो वासगस्स यो सह सालाए पोहस दिणठिए पोसहवं भयारिकं जिण हेर गच्छि झाहुंता गोयमा गछिझा सेभयवंकेण ट्ठे गाच्छिझा गोयमानाण दसण चरण अट्ठे गच्छि झाजे केइ पोसहसालाए पोसः बं-भयारि जवं जिण जिणहरेन गच्छिझा तउंपायच्छित्त हवइझा गोयमा जहा साहुत हा भरिणं यव्वं छड अहवा दुवाल सगं पायच्छित्तं उवदं सिझा " ॥ अब देखो इस पाठ को देखने से जी रोजीना दर्शन नकरे वो साधु हो या श्रावकहो उसे प्रायश्चित् आवेगा-क्योंकि जो भगवानकी आज्ञा का आराधकहोय सोही इस पाठको अंगीकार करेगा और जो भगवान्‌की आज्ञाका आराधक होनेकी इच्छाही नही करता है वो स्व-कपोल कल्पित मनमानी इच्छा करनेवालेसे हमारा कुछ जोर नहीं क्योंकि हम तो उपदेश देनेवाले है ग्रहण करना तो उस जीवके अख्तियार है । (पू०) अजी आपने इस सूत्रका नाम लिखा सो तो ठीक लेकिन हमारे सूत्रोंमें तो नही इसलिये हमारे मान्य नहीं । (उ०) अजी तुम मानो न मानों सो तो तुम्हारे अख्तियार है क्यों-कि देखो जैसे रात्रिको चौकीदार हल्ला मचाता है कि "जागते रहो जागते रहो" परन्तु जागना सोना तो उन घरवालोंके हाथ है कुछ चौकीदारकी जबरदस्ती नहीं है जागेगा उसका माल चोर नही लेने पावेंगे और जो सोवेगा उसका माल चोर ले जायगे इसी रीतिसे जो वीतरागका स्याद्वाद मार्ग उसके जो उपदेश देनेवाले सद्गुरु चौकीदारके समान हैं सो उपदेश मानना न मानना तो तुम्हारेही हाथ है क्योकि जो तुम्हारेको आत्माका ज्ञानदर्शन चारित्ररूपी धनकी चाहना होगी तो उपदेश मानोंगे और जो इस धनकी तुमको इच्छाही नही है तो मिथ्यात् मोह की नींदमें सोते हुवे संसारमे रुलते फिरो अहो! इति आश्चर्य तुम्हारे विवेकरूप कमल पर कैसी मिथ्यात्‌रूप काई जमी हुई है कि हम इतना स्याद्वाद उपदेशरूप युक्ति करिके सिद्धान्तरूप जलसे धोते हैं तोभी तो मिथ्यात्‌रूप काई अलग नही होती है अरे भोले भाइयो! कुछ तो विचार करो कि पेश्तर तो हमने तुमको सर्व सूत्र पंचंगी समेत प्रमाण कराय दीनी है और फिर भी तुम्हारी हठ न गई क्योकि ॥ दोहा ॥ काग पढ़ायो पींजरा, पढ गया चारों वेद । जब सुध आई पाछली, रहो ढेढको ढेढ ॥ क्योकि देखो ३२ सूत्रमे तुम नन्दीजीको अंगीकार करते हो और नन्दीजीमे इस सूत्र (महाकल्प) का नाम लिखा हुवा है अब नन्दीजी यदि तुमको ३२ सूत्रमें प्रमाण है तो यह भी सूत्र प्रमाण हो चुका अब जिन पूजन सिद्ध करनेके अनन्तर जो तुम्हारा लिंग, जिन धर्मसे विरुद्ध है उसके लिये हम तुमको शिक्षारूपी हितकारक उपदेश देते है जो तुमको आत्माका अर्थ करनेकी इच्छा होय तो विरुद्ध लिंग छोड़ करके शुद्ध लिंग अङ्गीकार करो । (पू०) अजी हमारा क्या लिंग वि-

रुद्ध है जो हमको जैन धर्मके लिंगसे विरुद्ध कहते हो । (उ०) अजी अष्टपहर मुँहपर मुँहपत्ती बांधे रहना और इतना लम्बा ओघा रखना जिन आज्ञासे विरुद्ध है । (पू०) अजी मुँहपत्ती इसका अर्थ क्या है कि मुखपत्ती अर्थात् मुखपर रखनी क्या हाथपत्ती थोड़ी है जो हाथमे रखना । (उ०) अरे भोले भाइयो! इस तुम्हारी विचक्षण बुद्धिकी क्या शोभा करेकि विचारशून्य मनोकल्पनाका अर्थ करने लगे (मुखपत्ती) इस शब्दसे तुमने मुँहका बांधना सिद्ध किया तो (चद्दर) इस शब्दका अर्थ चांदपे रखना जेसे गँवार छानोकी पोट बांध शिरपर रखलाते है तैसे शिरके ऊपर रखना चाहिये शरीरपर ओढ़नेका कुछ काम नहीं ऐसेही दूसरा जो (पात्रा) उसको पैरमें रखना चाहिये आहार लाना नहीं कल्पे ऐसेही तीसरा (चोलपट्टा) नाम चूलेपर रखना चाहिये तुम जो ढूंगाके ऊपर बांधते हो सो ढूंगा पट्टा योड़ाही है इसीलिये मनोकल्पित अर्थ नहीं बनता ॥ (पू०) अजी उघाड़े मुख बोलनाभी तो शास्त्रोंमें नहीं कहा है क्योंकि उघाड़े मुख बोलनेसे तो जीव हिंसा होती है । (उ०) अरे भोले भाइयो! उघाड़े मुख बोलना तो हमभी अङ्गीकार नहीं करते है क्योंकि जिन धर्ममें उघाड़े मुख बोलनाभी मने किया है परन्तु मुख बांधनेसे लोग हँसते है और कुत्ता भूसते है और लोग निन्दा करते है क्योंकि जैन धर्मका साधु तो वही है कि जिसकी अन्यमती प्रशंसा करे और जो तुम कहते हो कि जीव हिंसा होती है तो बताओ किस जीवकी हिंसा होती है । (पू०) अजी उघाड़े मुख बोलनेसे वायु कायक जीवोंकी हिंसा होती है इसलिये मुँहपत्ती बाधते है । (उ०) अरे भोले भाइयो! हम तुमसे यह बात पूछते हैं कि वायुकायका जो जीव कितने फर्सवाला है जो तुम कहोगे कि आठ फर्सवाला है तो भाषाके दलिये कितने फर्शवाले हैं तुम कहोगेकि चार फर्शवाले हैं तो कुछ बुद्धिका विचार करके तो जरा देखोकि ४ सुफर्सवाली वर्गणा ८ सुफर्सवाले वायु कायके जीवोंको कैसे हणे इस तुम्हारी बुद्धिसे तो भील जो जङ्गलके रहनेवाले है सो भी ऐसा न कहेंगे कि ४ चार वर्षका बालक ८ वर्षके बालकको मारडाले इसलिये ये तुम्हारा कहना जो है सो निर्विवेकपणेका है । (पू०) अजी भला तुम विचार तो करो कि होठसे बाहिर निकलनेसे जो भाषा वर्गणा है सो ८ सुफर्सवाली हो जाती है इसलिये वायु कायका जीव हणा जाता है । (उ०) अब हम तुमको कहां तक बार २ कहें अब तुम हमारे वचनको सुनकर आंख मींचकर हृदय कमलमें विचार करो कि होठसे बाहिर निकलनेसे ८ सुफर्स होगये तो मुँहपत्ती बांधे हुयेभी जो शब्द निकलेगा उस शब्दकी भाषा वर्गणाका पुद्गल चौदहराजमें बिखरकर पीछे अपने कानमें शब्द होता है ऐसा "श्रीपन्नवणाजी" सूत्रमें कहा है तो ८ सुफर्सी होनेसे वायु कायके जीवोंकी हिंसा तो हुई फेर मुँहपत्ती बांधनेसे क्या प्रयोजन निकला इसलिये हे भोले भाइयो! उघाड़े मुख बोलनेसे वायु कायके जीवोंकी हिंसा होती है ये मानना तो तुम्हारा ठीक नही किन्तु उघाड़े मुख बोलनेसे मक्खी मच्छर आदिक जो मुखमें चला जाय उसकी रक्षाके वास्ते उघाड़े मुख नही बोलना औरभी देखो कि तुम मानते तो हो कि वायु कायके जीवोंकी हिंसा होती है सो तो नही किन्तु मुँहपत्ती अष्ट पहर बांधनेसे छः मूर्छम पञ्च इन्द्रिय मनुष्योंकी हिंसा तुम्हारेको लगती है इसलिये मुँहपत्ती बांधना ठीक नहीं क्योंकि "पन्नवणा" जी सूत्रमें ऐसा लिखा है कि खेलं जूल

इत्यादिक चौदह स्थानक और अशुचि आदिकमें छ मूर्छम् पञ्च इन्द्रिय मनुष्य उत्पन्न होते हैं इसलिये मुँहपत्ती हाथमें रखना ठीक है मुखपर बांधनेसे लड़केभी गलियोंमें हँसते हैं और दूसरे अन्यमती लोग ऐसीभी मसखरी करते हैं कि जो मुँहबांधे लोग सामने मिल जायँ तो अशकुन हो जाय तो देखो जिन धर्मके साधु मुनिराजकी तुम्हारीसी व्यवस्था न होगी क्योंकि जिसने जिनराजका धर्म अङ्गीकार किया है उसकी तो सर्वत्र प्रशंसाही होगी इसलिये मुँहपत्ती हाथमें रखनाही ठीक है और इस मुंहपत्तीके मध्ये बूंटेरायजीने तुम्हारे मतको छोड़ करके अपनी आत्माका कल्याण करनेके वास्ते शुद्ध धर्म अङ्गीकार किया उसकी बनाई हुई जो मुँहपत्तीकी चर्चा है उस पुस्तकमें सूत्रोंकी शाखें विस्तार करके लिखी हैं जिसकी इच्छा होय सो उस पुस्तकको मँगायकर देख ले इसलिये हमने इस ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसे बहुत विस्तार नहीं लिखा अब एक बात हम तेरह पन्थी ढूंढियोंकी लिखते हैं कि तेरह पन्थी ढूंढिये ऐसा कहते हैं कि बिल्ली चूहा अर्थात् मूसाको पकड़े तो नहीं छुड़ाना क्योंकि उसके छुड़ानेसे बिल्ली का आहार दूर हुवा जिससे छुड़ाने वालेको अन्तराय कर्म बंधेगा इसलिये न छुड़ाना ऐसा वो निर्विवेकी भिकुम् इस तेरह पन्थका चलानेवाला निर्दयीके वचनपर भव्य जीवोंको आस्ता नहीं करना चाहिये क्योंकि देखो जिन धर्मकी करुणा अर्थात् दया सर्व मतोंमे प्रसिद्ध है इसलिये भीकमपन्थियो ! हम तुमसे यह बात पूछते है कि जब तुम आहार आदिक लाते हो और उस आहार पर जो मक्खी आदिक बैठती है और उसको तुम उड़ाय देते हो तो वो तुम्हारेको अन्तराय कर्म न बंधेगा तो तुम अपने पेट भरनेके वास्ते तो नमानना और जो भोले जीव उनके हृदयसे अनुकंपा अर्थात् दयाको उठाय करके निर्दयी बनाते हो ऐसे उपदेशसे तो तुम्हारा अनन्त संसार बँधेगा जो तुम कहो हो कि जो हम मक्खीको आहारसे नहीं उड़ावें तो उस आहारमें पड़के उसका प्राण चला जाय इसलिये हम उसको उड़ाते हैं तो हम तुम्हारेको कहें हैं कि हे भिकम् पन्थियो ! विचारशून्य होकर क्यों वचन बोलते हो कुछ बुद्धिका विचार करो कि जैसे तुम उसका प्राण बचाते हो तैसेही उस मूसेको बचानेवाला भव्य जीव करुणानिधी उस चूहेके प्राण बचानेकी इच्छा है नतु बिल्लीके आहारके अन्तराय देनेकी इच्छा जो तुम ऐसा न मानोगे तो तुम लोगोंको बहकाय कर चेला चेली करते हो उनका भोग छुंडानेसे तुम्हारेभी भोग अन्तराय कर्म बँधेगा इसलिये दयाहीन निर्दयीपनेका उपदेश देना ठीक नहीं इसलिये अहो ढूढ मतियो इस मिथ्या जालको छोड़कर शुद्ध जिन धर्म वीतरागके वाक्यको अङ्गीकार करो जिससे तुम्हारी आत्माका कल्याण हो और संसारमें न डुलो इसलिये हमारेको तुम्हारी करुणा आती है इसवास्ते हम तुमको कहते हैं कि यह मनुष्य जन्म पायकर जिन धर्मरूपी चिंतामणी रत्नको क्यों गमाते हो फिर पछताओगे मिथ्यात्वको छोड़ अपना कल्याण करो ॥

इति श्री मज्जैनधर्माचार्य मुनि चिदानंदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकर तृतीय प्रश्नोत्तरान्तर्गत ढूंढिया मत निर्णय समाप्तम् ॥

अथ गच्छादि व्यवस्था निर्णय ॥

अब इस जगह वर्तमान कालमें जो जिन मतकी व्यवस्था गच्छ वासियोंमें होरही है सो किंचित् अपनी बुद्धयनुसार शास्त्रोंकी शाखसे लिखताहूं परन्तु मेरेको किसी गच्छका पक्षपात नहीं है जैसा कि वर्तमानकालमे पंडित और गीतार्थ नाम धराते हैं और गच्छोंके पक्षपात करते है उनकी तरह मेरा लिखना नहीं है किन्तु जो जो जिसकी परंपरा है उसकी परम्पराके मूजिब लिखकर दिखाता हूँ क्योंकि भव्य जीव इस संसारमें आत्मार्थी होय सो इन सबकी व्यवस्था देखकर सतासत् वस्तुका विचार करके जिन आज्ञाको अंगीकार करे क्योंकि जिन आज्ञामे धर्म है और मनुष्य भव श्री उत्तराध्ययनजीमें जो कहे दश दृष्टान्त उन करके पाना दुर्लभ है फिर मनुष्य भव पाया तो भी जिन धर्म पाना दुर्लभ है कदाचित् पुण्य संयोगसे जिन के कुलमें अर्थात् जैनी घरमे जन्मभी हुवा तो गुरु पाना जो कि आत्माका स्वरूप बतावे ऐसा मिलना मुश्किल है क्योंकि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज २१ मा श्रीनिमिनाथजीके स्तवन मे लिखते हैं:- (गाथा १०) "सूत्र अनुसार विचारी बोलूं सु गुरु तथा विधना मिल रे"—जब आनन्दघनजी महाराजके कहनेसे यह अनुमान सिद्ध होता है कि ऐसे पुरुषोंहीके समयमें गुरुओंका मिलना मुश्किल था तो अवार तो उनसे भी पड़ता काल है इसवास्ते हे सज्जन पुरुषो! जिन धर्मरूपी चिंतामणि रत्नको कदाग्रहरूपी कागलाके लार मत फैंको जिन आज्ञाको अंगीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो अब देखो कि कमला गच्छ श्री पार्श्वनाथ स्वामीके परम्परासे चला आता है और बृहत् गच्छ कोटगण चन्द्र कुलवज्र और खरतर विरुध ये भी परम्परावसे प्राचीन है परंतु इसमेंभी भेदान्तर बारह तेरह गद्दी बाजती है और वा गच्छभी प्राचीन है और वर्तमान्में जो तप गच्छ है सो भी परम्परासे प्राचीन है परन्तु बृहत गच्छे कोटि मणि चन्द्र कुले वज्र शाखामेंसे निकला हुवा है कितनेक काल पीछे सिथलाचारस्वामी बहुत होगयाथा फिर शुभ कर्म के उदय से वैराग्य रस मे परिपूर्ण श्री जगत्चन्द्र सूरिजा चैत्र वाल गच्छिया श्री देवभद्र गणिजी संयमी के समीप चारित्रोपसमपात अर्थात् फेर करके दिक्षा लीनी उस चैत्रवालगच्छ से फेर वो श्री जगत्चन्द्र सूरिजी से तपगच्छके नामसे प्रवृत्त हुवा इस में भी बारह तेरह वैसना हैं सो ये १२८५के साल मे चैत्रवालगच्छकी यह शाखा तप गच्छ है और वर्त्तमान काल मे मती कहते हे उनके नामभी लिखते है पूनमिया, आचलीया, साढ़पूनमिया, आगमया, पास चन्द्र और बीजामती और कड़वामती इनको वर्त्तमान काल में तो मति कहते है और ये लोग इसी नामसे अपना २ गच्छ बतलाते हे और जो शास्त्रों मे प्राचीन नाम गच्छोके लिखेहुये हैं उन उन नामों से उन गच्छकी परम्परा वाले देखने में कम आते हैं शायद कोई गुजरात में हो तो हमको निश्चय नही कदापि कोई होयगा तो होगा। अब देखो जो ऊपर लिखेहुये नाम मतों के बर गच्छों के हैं उनके आपस में तीस २ बोलका अनुमान से फर्क और ये लोग आपस मे

ऐसाभी कहते है कि हमतो श्री महावीर स्वामी जीकी शुद्ध परमपरा में हैं और हमारे से परे सब अशुद्ध परम्परा से हैं इसीलिये आनन्दघनजी महाराज कहते हे जो कि श्री अभिनन्द स्वामी के स्तवन में गाथा है उस का अर्थ नारायणजीने ऐसा लिखा है:-जिनधर्म्मकी तलाश करतेहुये भव्यजीवको कोई केवली प्रणीतका वंचक एकांतनयका पक्षी ऐसी बात सुनाय देवै कि जिस्से जिन धर्मकी प्राप्ति तो दूररही परंतु उलटा भ्रष्टहांके जिनधर्म्मका द्वेषी होजाय और भी देखो कि श्री अनन्तनाथजी भगवान्‌के स्तवन में श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हैं:- (तीसरी गाथा) गच्छिना भेद बहुनैन निहालता, तत्वनी वात कहता न लाजे उदर भरणादि निजकार करता थका मोहनडिया कलिकाल राजे ॥ ३ ॥ और ऐसाही देवचन्द्रजी महाराज वीस विहरमान की स्तवन में से १२ श्री चन्द्रानन जिनके स्तवन की गाथा छठी में लिखतेहै:-गच्छ कदा ग्रह सांच वेरेमाने धर्म प्रसिद्ध आत्मा गुणअकषाय तारे धर्म न जाने सुधो ॥ ऐसा कई जगह जो आत्मार्थी पुरुष कदाग्रह को निषेध किया है और शुद्ध मार्गको जाते है अब इन बातों की जो आपसमें कदाग्रह और क्लेशचलता है इसीसे शुद्ध जिनधर्मकी प्राप्तिहोना मुश्किल होगई क्योंकि कोई गच्छवाला अपनी परम्परा कहे है कि देवी देवताकी थुई नहीं कहना, कोई चौथकी, कोई पंचमी की छमच्छरी मानते है कोई कहता है कि सामायक करते वक्त श्रावक चरवला रक्खो कोई कहता है नहीं रक्खे कोई कहता है त्योहारमें कच्चा पानी पीवे, कोई कहता है उनापानी पीवे, कोई 'करेमिभंते' पहलेकरता है, कोई पीछे करता है; कोई तीन थूई माने, कोई चार माने, कोई कहता है १ करेमिभंते करो कोई कहता है तीनकरो, कोई कहता है कि जब दो श्रावण या दो भाद्र हों तब तो पिछले श्रावण और पहिलेभाद्रव में पजूसन करो, और कोई कहता है कि दो श्रवणहों तो भाद्र में करना, और जो दो भाद्रहों तो पिछले भाद्र में करना, कोई कहता है आमल में दो द्रव्यखाने चाहिये, कोई कहता है कि अनेक द्रव्य खाने चाहिये कुछहर्ज नहीं है; कोई कहता है कि श्री महावीर स्वामी जीके छकल्याणक कोई कहता है कि पांच? कोई सामके प्रति क्रमण में शांति वा शांतिप्राह रोज कहते हैं कोई खाली शांति रोजीना कहते है और कोई दोनों में से एकभी नहीं कहते हैं कोई कहतेहैं कान में मुँहपत्ती गेरकर व्याख्यान देना कोई कहतेहे विना गेरेदेना, कोई पीला कोई सफेद और कोई कहे साधवी व्याख्यान दे और कोई कहे नहीं दे इत्यादि आपसमें अनेक बातों के विषमवाद हैं सो जो हम इनका जुदा २ वर्णन करके लिखें तो ये ग्रन्थ इतना भारी होजाय कि एक आदमीसे उठना मुश्किल पड़जाय इस भय से मे नहीं लिखाताहूं किन्तु श्री तपगच्छ खरतर गच्छ ये दोगच्छ आवर वर्त्तमान काल में प्रसिद्ध जियादा हैं इसलिये इन दोनों गच्छों का जो तीसबोलका फर्क है जिस में से भी कुछ बात है जो प्रसिद्ध हैं उन बातों को दोनों की ओर से किञ्चित् २ कोटि उठाय करके दिखाते है देखो श्री तवगच्छ तो पहले इरियावही पीछे केरमीभंते और एकवारही और श्री खरतर गच्छ पहले करेमीभंते तीनवार और पीछे इरियावही श्रावकको करावते है अब प्रथम तप गच्छ की कोटि उठाय कर लिखते हैं:-

(त० प्र०) दशवै कालक में कहा है इरियापथ की के विना कोई क्रिया नहीं करनी १ (ख० उ०) दशवै कालक जो सूत्र है सा किसके वास्ते वना था। (त० प्र०) दशवै कालक मणक साधुके वास्ते बना था। (ख० उ०) तो देखो कि साधुके वास्ते बना था तो साधु की कोई क्रिया इरियापथ की के विना नहीं होय सो ठीक परंतु ग्रहस्थी की क्रिया उस दशवै कालक पर क्योंकर वने देखो कि गृहस्थी देश वृत्ति है और साधु सर्व वृत्ति है इसलिये उस दशवै कालक में सर्व साधु के ही आचार कहे है और गृहस्थी के वास्ते नही किन्तु साधु के ही उपदेश है सो पक्षपात को छोड़ कर बुद्धि से विचार करके आत्मा का अर्थ करो। (त० प्र०) अजी देखो कि मन्दिर मे पूजनादिक करते है सो पहले स्नान और पीछे पूजन करते हैं तो इरियापथ की वतौर स्नान के और करेमीभंते वतौर पूजन के है इति न्यायात्। (ख० उ०) अब देखो कि मन्दिर वा प्रतिमा की थापना होगी तो स्नान करके पूजन करेगा विना थापना के वा मन्दिर के स्नान करके किसका पूजन करेगा इसवास्ते करेमीभंते वतौर थापना के और इरियापथ की वतौर स्नान के और समता भाव वतौर पूजन के है सो मध्यस्थ होकर विचारणा चाहिये। (त० प्र०) अजी पहले खेत को हलादि से जोत साफ़ करके पीछे वीज वोते हैं ऐसे ही इरियापथ की पहिलें पीछे करेमीभंते रूप वीज वोया जायगा इस न्याय से इरियापथ की पहिले और करेमीभंते पीछे करणी चाहिये। (ख० उ०) इस जगह भी कुछ बुद्धिका विचार करो कि करेमीभंते वतौर खेत के है और इरियापथ की वतौर जो हल जोतने के हैं और समता प्रणाम रूप वीज वोया जाता है कदाचित् अपना खेत मुक़र्रर न हो तो उस हलादिक की क्रिया और वीज सर्वथा वृथा जाता है इसलिये करेमीभंते पहले करना सो वतौर अपने खेत को मुक़र्रर करना है फिर जो हलादिक क्रिया और वीज बोना सर्वथा सफल होगा इसलिये पहले करेमीभंते पीछे इरियापथ की करनी चाहिये (त० प्र०) अजी जो कोई मकान में जाय सो पेश्तर काजा निकाल कर पीछे सोना वैठना करता है इस लिये इरियापथ की वतौर काजा निकालनेके और करेमीभंते वतौर सोनेके इसलिये इरियापथ की पहले करणी चाहिये (ख० उ०) अजी देखो भाष्यकार ऐसा कहते है कि मकान के दरवाजे बन्द करके एक दरवाजा खुला रक्खे तब तो उस मकान का काजा निकल जायगा परन्तु जिस मकानके सर्व दरवाजे खुले हुए हैं उस मकानका काजा कदापि न निकलेगा कारण कि हवा के ज़ोर से उलटा काजा उस मकान में भरेगा इस हेतु करके इस जीव रूपी मकानके मन, वचन, काय करना, अनुमोदना ये दरवाजे है इनके खुले रहने से मिथ्यात् रूपी पवन के ज़ोर से आश्रव रूपी काजा कदापि न निकलेगा किन्तु भीतर को आवेगा इस वास्ते मन, वचन, काय, करना इन दरवाजोंको वन्द करके जो कोई काजा निकालेगातो सर्वथा काजा निकल जावेगा इस हेतु से भी करेमीभंते पहले इरियावही को पीछे करनी

---

१ (त० प्र०) इस चिह्न से तपगच्छ का प्रश्न और (त० उ०) से तपगच्छ का उत्तर और (ख० उ०) से खरतरगच्छ का उत्तर और (ख० प्र०) से खरतरगच्छ का प्रश्न जानो।

चाहिये ॥ (त० प्र०) अजी कुछका विचार तो करोकि पहले करोमीभंते२ तोते की तरह टांय२ करते हो देखो जब मैले वस्त्रको कोई रंगना विचारे तो पहले उसको पानी से धोय कर रंग चढायगा तो उम्दा रंग आयेगा नहीं तो रंग उम्दा नहीं चढ़ेगा इस न्यायसे इरियावही रूपी जल से जीव रूपी वस्त्रको धोयकर करेमीभंते रूपी रंग चढायेगा तो अच्छा रंग चढेगा इसीलिये पहिले इरिया वही करनी चाहिये (ख० उ०) अहो विचारशून्य बुद्धि विकल टैं २ करना कहीं स्वप्नेका याद आगया दीखेहै जरा बुद्धिका विचार तो करो कि जब कोई मैले वस्त्रको खार अथवा साबुन लगाकर धोवेगा तो उसका मैल कटैगा खाली जलमें धोनेसे मैल नहीं जाता इसवास्ते इस जगह भी बुद्धि का विचार करो तो जिनआगम का रहस्य प्राप्तहुई होय तो देखो इस जगह भी करेमीभंते रूपी साबुनको जीव रूपी मैले वस्त्रके लगायकर इरियावही रूपी जलसे धोयेगा तो समता रूपरंग अच्छी तरहसे चढेगा इसवास्ते इस जगह भी पहले करेमीभंते पीछे इरिया वही करनी चाहिये (त० प्र०) अजी देखो इन युक्ति करके तो अपने करेमीभंते पहले ठहराई परन्तु शास्त्रोंमें कहा है उसको आप क्या करोगे देखो कि—" नसीथ सूत्रमें ऐसा पाठा है कि नोकप्पइ इरियाए अप्पडिकंताए शिषायचेइयबंदणाई किंचित् इति वचनात्" किंचित् भी धर्म कार्य नहीं करणा तो करेमिभंते पहिले इरियावही पीछे क्योंकर बने (ख० उ०) जो धर्म कार्य इरियावहीके विना न करना तो देखो कि मन्दिरके जानेकी इच्छा करनेसे धर्म होता है वा प्रभुकी मूर्त्ति देखनेसे भी वही लाभ धर्म होता है प्रदक्षिणादेनेसे भी धर्म है वा साधु आदिकोंको वंदनादिक करना वो भी धर्म है साधुको लेनेको आना पहुँचानेको जाना ये भी धर्म क्रिया है अथवा साधु आदिकोको अपने घरपर आहारादिक देना यह भी परम धर्म निर्जराका हेतु है तो इत्यादिक धर्मकामोंसे पेश्तर इरियावही करके पीछे इन बातोंमें प्रवृत्त होना चाहिये तो इन बातोंमें तुम लोग क्यो नहीं करते हो क्या ये धर्म कार्य नही है और जो यह धर्म कार्य्य भगवान्‌ने गिनाये हैं तो इरियावहीके विना धर्म कार्य नहीं होता ये कहना तुम्हारा व्यर्थ हुवा इसलिये शास्त्रोंमें कहा है कि जिन्होने गुरुकुल वास सेवा है और जो गीतार्थ है और आत्माका जिनको उपयोग है और जिनको अध्यात्मसैलीसे जो अनुभव उत्पन्न हुवा वे लोग इस स्याद्वाद जैन धर्मका रहस्य जानते हैं प्रथम तो इस छेद ग्रन्थोंमें साधुओंके तई प्रायश्चित्तादिक अनेक प्रकारकी प्रेरणाकी जाती है तो देखो जिन ग्रन्थोंमें साधुओंको प्रेरणा (नसीहत) करी है उन ग्रन्थोंसे तो गृहस्थीकी कृपा कदापि न बनेगी कदाचित् कोई हठकरे तो जो सिज्झाय ध्यान चैत्य वंदनादि जो वचन 'नसीथ' सूत्रका है सो यह वचन सामान्य है यदि शास्त्रोंमें कहा भी है "सामान्य शास्त्र तो नुनं विशेषो बलवान् भवेत्" ॥ इति वचनात् ॥ अस्यार्थः—बहु व्यापको सामान्य अल्प व्यापको विशेषः जिसमें बहुत चीजोंकी विधि कही हो वो सामान्य शास्त्र होता है और जिसमें एक चीजका ही वर्णन करे सो विशेष शास्त्र होता है तो देखो कि "नसीथ" सूत्रमें कहाहै कि इरियावहीके विना चैत्य वन्दन नहीं करना और चैत्य वन्दन भाष्यमें जगन्न, मध्यम्, उत्कृष्टा तीन प्रकारका चैत वन्दन कहा है सो उत्कृष्टा चैत्य वन्दन इरिया वहीके विना न करना और जगन्न मध्यममे इरियावहीका कुछ नियम नहीं है

सो इसी कारणसे वर्त्तमान् कालमें सर्व जगह जो लोग चैत्य वन्दनादिक करते हैं वह इरियावहीके विना देखनेमें आते हैं ये एक प्रत्यक्ष प्रमाण प्रवृत्ति मार्गकाहै इसवास्ते देखो कि " नसीथ " सूत्र सामान्य है क्योंकि "नसीथ" सूत्रमें चैत्य वन्दन ऐसा नाम लेकर कहा तो भी चैत्य वन्दन भाष्यकी विशेषतः अङ्गीकार की गई क्योकि चैत्य वन्दन भाष्यमें खाली चैत्य वंदन की विधि है और नसीथ सूत्रमें अनेक क्रिया करने की विधि है सो हे भोले भाइयो! जो तुम्हारेको जिन आज्ञा अङ्गीकार है तो हठको छोड़ दो क्योकि नसीथ सूत्रमें करेमीभंतेका नाम भी नही एक आदि शब्दके कहनेसे खैच करना ठीक नहीं है अब देखो श्रीआवश्यक सूत्रकी जो चूर्णी जिसके कर्त्ता श्रीदेवगणिक्षमाश्रवणजी महाराज खुलासा लिखते है कि श्रावकको नाम उद्देश लेकरके करेमीभंते पहिले और पीछे इरियावही करने की आज्ञा है इस पाठको देखना होय तो रिद्धिपतो अनरिद्धी पतो श्रावकके अधिकारमे देखलेना और सूत्रकी टीकामे आश्रय २१००० के ऊपर श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजने २२००० टीकामें रिद्धिपतो श्रावकके वास्ते लिखा है कि श्रावक साधुके पास जायकर करे सो पाठ लिखते है " करोमीभंते समाइयं सावज्जं जोगं पच्छवात्रि दुविधंति विधं जाव साह पुज्जवा स्वाभी इत्यादि इरियावहीयं पडिक्कमामि " ऐसा पाठ खुलासे है जिसकी इच्छा होय सो देखलेना इसग्रन्थ में तो नाम लेकर कहा है इसलिये यह सूत्र विशेष है जो अवश्य करके करना उसी का नाम आवश्यक है और भी देखो कि श्री तपगच्छ नायक पूज्यपाद श्री देवइन्द्रसूरिजी श्राद्ध दिनकृत में कहते है कि पहले करेमीभंते पश्चात् इरियावहीयं पडक्क मामि और ऐसाही पाठ श्राद्ध विधिमें भी कहा है तो अब बुद्धिमें विचार करो ये ग्रन्थ तो श्रावक अर्थात् गृहस्थके धर्म कार्य्य परलोकके वास्ते ही रचेगयेहै इनको छोड़कर अपनी मत कल्पना करना जिन आज्ञा बाहिर है, और देखो कि श्री पार्श्वनाथजी के सन्तान में कमले गच्छ मे श्री देवगुप्तसूरिजी भवतत्व प्रकरण की टीका में लिखते हैं कि करेमिभंते सामाइयं पश्चात् इरियावहीयं पड़क्क मामि और ऐसा ही पाठ श्री हेमाचार्य्यकृत योगशास्त्रकी स्वपग्गीटीका में कुमारपाल भूपाल को उपदेश दिया है उसग्रन्थ में भी करेमिभंते सामाइयं पश्चात् इरियावही पड़क्कमामि ऐसेही पंचासक की वृत्ति आदि अनेकग्रन्थों में करेमिभंते समाइयं पहले और इरिया वही पीछे नाम उद्देश लेकर कहा है इरियावही पहले और करभिमंते पीछे ऐसा कोई ग्रन्थमें नहीं है अब देखो बुद्धिमें विचार करो कि हमने जिन जिन आचार्योंका नाम तुमको लिखकर दिखाया है क्या उन लोगोको जिन आज्ञाका भय नहीथा वा इन्होंने नसीथी सूत्र और दसवें कालक देखे सुने नहींथे? कि इनको समझमें इनकी अर्थ नहीं आया सो तो कदापि नहीं होना इसलिये भोले भाइयो! जिन आज्ञा आराधन करो पक्षपात छोड़ दो। (त० प्र०) अजी तुम अपनाही कहते हो परन्तु जिन मत तो नय निक्षेपा उत्सर्ग अपवाद मार्गसे हैं सो इरियावही पहले और करेमिभते पीछे करते होंगे तो क्या मालूम है क्योंकि आचार्योंके अनेक आशय हैं। (स० उ०) अजी यह कहनाभी तुम्हारा विचार शून्य मालूम होता है इसादा जो तुम कहते हो उसीपर उतारते हैं सो देखो कि १ नैगमनयसे तो मनमें

विचारे कि समायक करूं । २ संग्रहनयसे समायकके वास्ते आसन, मुँहपत्ति चखलादि संग्रह करना ३ व्यवहार नयसे करेमिभंतेका पाठ उच्चारना ४ रजू सूत्र नयसे जब समता परणाम आवे तबही समायक है । ५ शब्दनय कहेकि नाम स्थापना द्रव्यभाव नाम स्थापना सुगम है और द्रव्यके दो भेद हैं १ आगमसे २ नो आगमसे १आगम करके द्रव्य समायक उच्चारण रूप उपयोग नहीं और नो आगम के तीन भेद हैं– १ ज्ञेय शरीर २ भव्य शरीर ३ तदव्यति रिक्त, ज्ञेय शरीर मृतुक का कलेवर रूप उस का रहनेवाला जो जीव द्रव्य समायक करता था परन्तु उपयोग नहीं था भव्य शरीर किसी बालक को देखकर आचार्य कहनेलगे कि यह बालक कुछ दिन के पश्चात् सामायक करेगा उपयोग नहीं रक्खेगा तदव्यतिरिक्त के अनेक भेद है सो करनेवाला बुद्धि से समझ लेना और भाव निक्षेपा भी इसी रीति से जानलेना परन्तु उपयोग है इतना विशेष है ६ सम भिरुढ नय कहता है कि संसारी कार से बच कर दो घड़ी तक सिझाय ध्यान समता परिणाम से करना । ७ एवं भूतनय कहता है कि दो घड़ी ताई सर्व जीव ऊपर समभाव रक्खेगा और अपनी आत्म गुण विचारणा तब सामायक होगी–तो देखो इसनय और निक्षेपामें तो इरियावहीका नामही नहीं तो आगे पीछेका तो कामही क्या है और तुमने उत्सर्ग अपवाद कहा सोभी नहीं बनेगा क्योंकि उत्सर्ग अपवाद एक विषयमें अर्थात् एक जगहमें होता है करेमिभंते और इरिया वहीका विषय जुदा २ है क्योंकि करेमिभंते तो दो घड़ी ताई संसारी वा इन्द्रियोंका निषेध रागद्वेष त्यागरूप है और इरियावहीका विषय आलोपणा अर्थात् प्रायश्चित्त जो कि गमनागमनमे जीवकी विराधना हुई हो उसका मिछामि दुक्कड़ देना है सो अब देखो तुमही विचार करो कि जो तुमने कहा कि इरियावही पहले और करेमिभंते पीछे सो सिद्ध न हुवा हमने तो शास्त्रों की साक्षी वा युक्ति करके पहले करेमिभंते और पीछे इरियावही सिद्ध करचुके मानना नमानना तुम्हारा इख्तियार है । अब देखो एक तीनके ऊपरभी कुछ कहते हैं–(त०प्र०) क्या एक वार उच्चारण करनेसे नहीं होगी तो तीन वार उच्चारण करना ? इसलिये एक वार उच्चारण करना ठीक है क्योंकि लाघव होगा और ३ वारसे गौरव होगा । (ख०उ०) अरे भोले भाइयो ! निस्सही वा वोसरामि वा वन्दना आदि तीन तीन वार क्यों करते हो क्योंकि इस जगह भी गौरव और लाघव देखना चाहिये क्या एकवार करनेसे नहीं होती है (त० प्र०) अजी वोसरापी इत्यादिक त्रक गिनाये हैं इसलिये गौरव लाघव देखें तो श्रीभगवान् की आज्ञा नही बने और समायक तीन वार किस जगह लिखा है सो कहो । (ख० उ०) अजी तीनका उत्तर तो हम देंगे परन्तु एकका उच्चारण करना ऐसा पाठ तो नहीं है (त० प्र०) अजी देखो एक तो अर्थसे हो आता है क्योंकि आपने जो प्रमाण दीने हैं उसमें समायक उच्चारण करनेमें तीनका तो नाम नहीं है (ख० उ०) अजी जब ऐसा मानोगे तो उत्तराध्यनादि सूत्रमें सामायक, चौवीसत्थो वन्दनो पडक्कमणा-का उसगटा इस कहने से तो का उसग करना एक वार हुवा फिर तीन वार का उसगा क्यों करते हो अर्थ से तो एक वार का उसगा करना चाहिये, इसीलिये कहते हैं जिन आगम रहस्य विरले को प्राप्त होता है, जो सर्व को प्राप्त हो जाता तो ओघा मुँह पत्ती लेकर मेरु की बराबर ढिगला किया और मोक्ष की प्राप्ति न हुई ऐसा क्यो कहा

इसका कारण यही है कि जिन आगमके रहस्य की प्राप्ती नहीं और विना रहस्य के श्रद्धा ठीक नही और श्रद्धा विना मोक्षकी प्राप्ती नही इसलिये आगम में कहा है यदि उक्तं "दंसं भट्ठो भट्ठा दंसं भट्ठस्य नत्थी निव्वाणं" इति वचनात्, और जो तुमने पूछा कि तीन का प्रमाण किस शास्त्र का है सो देखो कि श्रीओघ, निर्युक्ति सूत्र मे तीन ही करना कहा है और उस मे तुम ही लोगो का प्रमाण भी देते है कि जब आप लोग राई संथारा करते हो उस वक्त तीन करेमिभंते उच्चारते हो तो अब हम आप लोगों को मध्यस्थ करके पूछते है कि राई संथारा में तीन वार उच्चारण करना और सामायक में एक वार उच्चारण करना तो यह तुम्हारे ही वचन से एक वार नहीं किन्तु तीन वार उच्चारण करना सिद्ध होगया दूसरा श्रीहरीभद्रसूरिजी कृत पंचवस्तु ग्रन्थ में श्रावक को सामायक में करेमिभंते तीन वार उच्चारण करना और साधु को ही तीन वार करे मिभंते उच्चारण कहा है सो गाथा यह है:—चिईवदनार इरन अट्ठसम्मा असनु सग्गो सामा इति अट्ठण पयाहिनंचेवतीखुतो ध० गुरुवो वामगणसे सेः सेह ठावेभि अहवणदितिः इकि क्ती खतोःइमण ताणे मुव ठन तीध ॥ १ ॥ इस गाथा में श्रावक को तीन वार करना खुलासे अर्थ है और भी देखो कि व्यवहार भाष्यके चौथे उद्दसे मे " सामाइय तिगुण मिति पदका व्याख्यान करता श्रीमलीयगीरीजीने भी तीन वेर सामायक उच्चारण ऐसा कहा है और इसी व्यवहारभाष्य की टीका मे इसी तरह लिखा है और भी देखोकि इसी तरह नसीथ सूत्र की चूरिणी मे लिखा है यथाः— "शमियय खुत्तो कट्टई" इत्यादि पाठ स्पष्ट लिखे हुए है सो जिस किसी को संदेह हो सो निगाह करके देखले। अब देखो कि तीन वार भी सामायक उच्चारण करना सिद्ध होचुका, और देखो इनके आपस मे पचखाण भी कराने मे फ़रक़ है सो भी दिखाते है कि रात के तिविहार पचक्खान करने में तप गच्छ वाले तो कच्चा पानी पीते है और खरतर गच्छ वाले ऊन पानी पीते हैं सो तप गच्छ वाले ऐसा कहते है। (त० प्र०) अजी तिविहार का पचक्खान करने से तीन आहार का त्याग है एग कच्चा पानी पीने से क्या हर्ज है क्योकि असणं, खायमं, सायमं। इन तीनों का त्याग हुवा एक पान्नं कहता 'पानी' वाकीरहा इस में कुछ गर्म पानी का नियम नहीं कि गर्म ही पीना तुम खाली अपनी खेच करते हो। (ख० उ०) अजी हमारे तो कुछ खेंच है नही परन्तु आप लोग अपने गच्छ की खैंच तान करके ऐसा अर्थ करते हो कि पान्नं कहतां एक पानी रहा सो ये कहना विचार शून्य है क्योकि देखो जब तुम तिविहार उपास करते हो तो उस जगह भी एक पानी बाकी रहता है तो उस जगह आप लोग गर्म पानी क्यो पीते हो क्योकि उस जगह भी तो ऐसा पाठ है कि—'अशनं खाइमं सायमं एक पानी बाकी रह गया तो उस जगह भी तुमको कच्चा ही पीना चाहिये इसवास्ते पक्षपात को छोड़कर जिनधर्म की इच्छा हो तो जिन आज्ञा अंगीकार करो। अब किञ्चित् पर्यूषण जो आगे पीछे होता है सो लिखते है। (त० प्र०) अधिक मास होने से जो दूजे श्रावण और पहले भाद्रव में करते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि जिनमत मे मास २ वढ़ते हैं, आषाढ १ और पोह २ और बाकी मास नही वधे इसलिये नहीं करना। (ख० उ०) अजी जिन मत मे दो२मास के सिवाय वृद्धि नहीं होती है सो ठीक है

परन्तु एकान्तता नहीं है जो एकान्तता मानेंगे तो देखो कि श्री विशेष कल्पभाष्य की चूर्णी के विषय अधिक मासका होना प्रमाण किया है और भी देखो तपगच्छ नामक श्री सोम प्रभु सूरिजीने भीमपल्ली में चतुर्मासा कियाथा वहां और कई मतके आचार्य्य थे सो श्री सोमप्रभु सूरिजी प्रथम कार्त्तिक में चतुर्मासी प्रतिक्रमण करके विहार करते हुये और मतवाले ११ आचार्य्य दूसरे कार्त्तिक में चौमासी कृत्य करके गये तो देखो कि दो २ मासके सिवाय और कोई दूसरा मास नहीं बढ़ता है यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है क्योंकि जब आषाढ़ और पूष दोही महीना बढ़ते हैं तो तुम्हारेही गच्छके आचार्य्य दो कार्त्तिक होने से पहले कार्त्तिक में विहार कैसे करगये । इस से सिद्धहुवा कि औरभी मास अधिक होते हैं इसलिये दूसरे श्रावण और पहले भाद्रवे में करना ठीक है। (त० प्र०) अजी देखो कि जो दूसरे श्रावण और पहले भाद्रवा मे करोगे तो पर्यूषनके बाद ७० दिन नहीं रहेंगे और सौ दिन होजायँगे तो पिछले ७० दिन नहीं लेने से सिद्धान्तसे विरुद्ध होगा इसलिये पिछले ७० दिन लेने चाहिये (ख०उ०) अहो अनुभवशून्य होकर बुद्धिकी चातुरता दिखातेहो कि देखो जो तुम पिछले ७० दिनकी कहते हो सो तुम्हारे न तो पिछले ७० दिन बनते हैं और न पचासदिन बनते है क्योंकि जब दो श्रावण होतेहै जब भाद्रव में करते हो इस में ८० दिन आषाढ़ चौमासी से होते हैं और जो दो भाद्रव होते हैं तो पिछले भाद्रव में करने से आषाढ चौमासीसे ८० दिन होते है तो इधर में तुम्हारे कातक चौमासी के ७० दिन बनगये परन्तु जब दो आसोज अर्थात् कुँवार होंगे तब ७० दिन कार्त्तिक चौमासी के क्योंकर बनेंगे क्योंकि दो आसोज होने से छमछरी से कार्त्तिक चौमासीतक सौ (१००) दिन होजायँगे तो तुमको दो आसोज होने से प्रथम आसोज मे पर्यूषण करना चाहिये कि जिससे कार्त्तिक चौमासी तक ७० दिनहों अब देखो इस तुम्हारी बुद्धि विचक्षण में न तो आषाढ़ चौमासी से पर्यूषण तक ५० दिन रहे और न छमछरी से कार्त्तिक चौमासी तक ७० दिन रहे तो इस में तो यह मसल मिलगई " दोनों खोईरे जोगडा मुद्रा और आदेश " अब देखो बुद्धि से विचारकरो कि शास्त्रो मे आषाढ़ चौमासी से ५० वे दिन छमछरी प्रतिक्रमण कहा है देखो श्रीमान् १४ पूर्वधारी श्री भद्रबाहु स्वामी जी श्री कल्पसूत्रजीके विषय कहतेहै, "वीसाई राई मासे वइक्कते" आषाढ़ चौमासी सेती वीस दिन और एकमास जाने से श्री महावीर स्वामी जी पर्यूषण पर्व करे इसीतरह विशेष कल्पभाष्यचूर्णी के विषय दसपचकडा में पर्यूषण करना कहा है यथा " आषाढ़ चौमासे पडिकंते पंचेहि २ दिवसे हिग एहिं तत्थ २ वास जोगखितं पडिपुन्नं । तत्थ २ पूज्जो सवेयव्वं । जाव सवी सई राइमासा " इत्यादि ॥ भावार्थ (आषाढ़ चौमासे का प्रतिक्रमण कियेके बाद पचास दिन व्यतीत होने से जहां २ वर्षा वासयोग्य स्थानकिया हो तहां २ पर्यूषण करे यावत् दश पंचक तक अर्थात् एक मास वीस दिनतक पर्यूषण करे दशमां पंचक अर्थात् पचासवें दिन तो अच्छे क्षेत्र नहीं मिले तो वृक्षमूल नीचे भी रहकर पर्यूषण करे ऐसाही श्री सामायांग सूत्रकी वृत्ति में सत्तरमे स्थानमे कहा है । " समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसई राइए मासे । वइक्कंते वासावास पज्जो सवेति " इसलिये आषाढ़ चौमासीसे एक मास वीसदिन जाने से पर्यूषण करना शास्त्रों से सिद्धहोता है और भी देखो कि कलिकाल गौतम अवतार जंगम युग

प्रधान श्री कालकाचार्य्य महाराजने जो पंचमी से चौथकी छमछरी चलाई सो आजतक जारी है सो उन्होंनेभी सूत्रका पाठ देखकरके पंचमी से चौथकी, और छटनकी देखो वह पाठ यह है :- अतस्वेसे कप्पई वहरनेसे न कप्पई " इस पाठ में भी असड में भी आषाढ़ चौमासी से पचास दिनके भीतर पर्यूषण होता है और पचास दिन से एक भी ऊपर जाने से पर्यूषण नहीं होता इसलिये दूजे श्रावण और पहले भाद्रवे में करना श्री भगवत् आज्ञा आराधन होगा हमने तो किञ्चित् मात्र इन दोनों गच्छों के जो विषम्वाद हैं सो शास्त्र और युक्ति समेत वतलाये जो हम इनके सर्व विषम्वादों को लिखें तो ग्रन्थ बढ़जाय और हमको किसी गच्छ से निमित्त भाव भी नहीं इसवास्ते दिग् मात्र दिखाय दिया है । (मध्य प्रश्न) महाराज साहब आपने इस जगह खतरगच्छकी अधिकता जताई और तपे गच्छकी कोटी मंद मालूम होती है परन्तु श्री आत्माराम जी महाराज श्री जैन तत्त्वादर्श के १२ वे परिच्छेद ५७५ के पृष्ठ मे १२०४ के सालमें खरतरकी उत्पत्ति लिखते हे और इसी परिच्छेदके ५८४ के पृष्ठमें ऐसा लिखा है कि जैसलमेर आदिकोंमे खरतरोंकी और मेवात देशमें बीजा मतियोंको और मोरवी आदिकोमें लोका मतियोंको प्रतिबोधक श्रावक बनाया सो आज तक प्रसिद्ध है तो इस जैन तत्त्वादर्शके लिखनेसे तो खरतरवालोंको फिर करके श्रावक बनाया इस लिखनेसे तो खरतर गच्छ कोई मतपक्षी दीखे ॥ भोदेवानोप्रिय ! अब जो तुमने यह प्रश्न किया है सो मैं तपगच्छ की कोटी मन्दके वास्ते तो आगे लिखूंगा जबसे समाचारीका फ़र्फ़ पड़ा है तबसे कोटी मन्द मालूम होती है किन्तु तपगच्छ, कमलेगच्छ, खरतर गच्छादि सब प्रमाणिक हे इनमें न्यूनाधिक कोई नही है सो तपगच्छकी तो हम प्रमाणीकही मानते है परन्तु जो जैन तत्त्वादर्श में कई विपरीत बातें है सो दिखाताहूँ-और जो आत्माराम जीने गच्छ मिमतरूप भंगके नशेमें जो कुछ लिखा है सो आकाशके फूल समान मालूम होता है क्योंकि देखो अब हम दिखाते है कि जैन तत्त्वदर्शमें तो खरतर गच्छ १२०४के सालमे उत्पन्न हुवा लिखते हैं और जोकि पार्वती ढूंढनीका खंडन बनाया है उस गप्प दीपिकामें लिखते हैं कि श्री नव अंगजीकी टीका श्री अभय देव सूरिजीने सम्वत् ११२० के लग भग रची है तो देखो श्री जिनेश्वर सूरिजी जिन्होंने खरतर विरुद्ध पाया है उनके तीसरे पाठमे श्री अभय देव सूरिजी हुयेथे अर्थात् उनके पोते चेलेथे तो अब इनका १२०४ का लिखना वंझाके पुत्र समान हुवा फिर आत्मारामजी जो कि प्रश्नोत्तर बनाये है (सम्वत् १९४५ के सालके छपे हुवे) उसमें लिखते हैं कि श्री जिनदत्त सूरिजी महाराजको सम्वत् १२०४ में सिद्धसेन दिवाकरजीने चित्रकूटके खंभामेंसे निकाली हुई पुस्तक जो उज्जैन नगरी श्री एवंती पार्श्वनाथजीके मन्दिरमें गुप्त रक्खीथी सो उनके हाथ लगी तो अब देखो यहांभी विचार करो कि श्री जिनेश्वर सूरिजी खरतर विरुद्ध जिन्होंने पायाथा उनके पांचवे पाठमें श्री जिनदत्त सूरिजी हुवे तो १२०४ के सालमें जो खरतर उत्पत्ति लिखी है वह और इस ऊपरके लिखे हुवेका प्रमाण उन्हींकी बनाई हुई पुस्तकमेसे लिखा है । तो अब देखोकि इनकी तीन पुस्तकोंमें तीन वचन हुये एकमें तो १२०४ के सालमे खरतर उत्पत्ति और दूसरी पुस्तकमें ११२० के सालमें नव अंगवृत्ति कर्त्ता और तीसरी पुस्तकमें १२०४ के

सालमें पांचवी पीढीवालेको श्री एवंती पार्श्वनाथसे पुस्तक हाथ लगी इन तीन लेखोंसे इनका लेख तीन तरहका होनेसे और संबन्ध नहीं मिलनेसे तुरंग अर्थात् घोड़ेके सींगके समान हुवा और जो ये लिखते हैं कि खरतर गच्छ आदिको प्रतिबोध दिया सो भी इनका लिखना कदाग्रहरूप मालूम होता है क्योंकि देखो इनकी बनाई हुई जो प्रश्न उत्तरकी पुस्तक उसमें पृष्ठ १०१ में (८० वे उत्तरमें) पृष्ठ १०३ तक लिखते हैं कि चार शाखासे चार कुल उत्पन्न हुये तिसमें दूसरा जो चन्द्रकुल तिसमें वड़गच्छ, तपगच्छ, खतरगच्छ, और पुरण पल्लिया गच्छ हुयेथे ॥ तो अब देखो कि एकचन्द्र कुलमेंसे ये चार शाखा हुई अब उनमेंसे एक शाखा वालेको जैसलमेर आदिमें शुद्ध श्रावक बनाया यह इनका जो लिखना है सो कदागृह रूप है और गच्छके निमित्त भाव होनेसे है । अब देखो हम श्री आत्माराम जीको बड़े गीतार्थ सुनतेथे सो उनकी पुस्तकोंकी लिखावट देखनेसे मालूम होता है कि गुरुकुलवास विना अनुभव शून्य बुद्धिका विचक्षण है क्योंकि देखो जैन तत्वादर्शके १२ वें परिच्छेद पृष्ठ ५७५ में लिखा है कि वड़गच्छका नाम तपा विरुद्ध दिया और निर्ग्रन्थ १ कोटिक २ चन्द्र ३ वनवासी ४ वड़गच्छ ५ और तपागच्छ छट्ठी अर्थात् छः हैं ऐसा लिखा है और प्रश्नोत्तरकी पुस्तक ८० वे प्रश्नके उत्तरमें १०३ के पृष्ठमें लिखा है कि श्री वज्रसैनजीने सोपारक पट्टणमें दिक्षा दीनीथी तिनके नामसे चार शाखा अर्थात् कुल स्थापन किये वे ये हैं–१ नागिन्द २ चन्द्र ३ निवृत्त ४ विद्याधर ये चारों कुल जैन मतमें प्रसिद्ध हैं तिनमेंसे नागिन्द कुलमें उदय प्रभु और मल्लषेण सूरि प्रमुख और चन्द्रकुलमें वड़गच्छ और तपागच्छ, खरतरगच्छ, पूरनपल्लिया गच्छ ऐसा लिखा है–और चार थुईकी चर्चामें जो कि राजेन्द्र सूरिके लिये बनाई है उसकी प्रशस्तिके नवें पृष्ठमें ऐसा लिखा है कि श्री वज्रस्वामी शाखायां चन्द्रकुले कोटिक गणे वृहत्त गच्छे तपगच्छ अलंकार भट्टारक श्री जगत्चन्द्र सूरिजी महाराज अपनेको स्थिलाचारी जानकर चैत्रवाल गच्छिया श्री देवभद्र गणि संयमीके समीप चारित्रो समपाद अर्थात् फेरके दिक्षा लीनी इस हेतुसे तो श्री जगत्चन्द्र सूरि महाराजके परम समेगी श्री देवेन्द्र सूरिजी शिष्य श्री धर्म रत्न ग्रन्थकी टीकाकी प्रशस्तिमे अपने वृहत् गच्छका नाम छोड़कर अपने गुरु श्री जगत्चन्द्र सूरिजीको चैत्रवाल गच्छिया लिखा और जैन वृक्ष जो श्री आत्मारामजीने बनाया है उसमें लिखते हे कि हमारा तपगच्छ अनादि है अर्थात् हमारा तपगच्छ श्री ऋषभदेव स्वामीसे चला आता है । अब मध्यस्थ होकर सज्जन पुरुषोंको अपनी बुद्धिमें विचार करना चाहिये क्योंकि देखो चन्द्र गच्छसे वनवास गच्छ हुवा और वनवास गच्छसे वड़गच्छ हुवा और वड़गच्छकाही नाम तपगच्छ हुवा तो देखो वड़गच्छका श्री पूज्य अभीतक मौजूद है इससे साबित होता है कि बड़गच्छका नाम तप नहीं पड़ा क्योंकि उस गच्छका श्री पूज्य परम्परावसे मौजूद है वो न होता तो इन-का लिखना ठीक हो जाता सो प्रत्यक्षमें अनुमानका कुछ काम नहीं पै जैन तत्त्व दर्शका लिखा हुवा कि बड़गच्छका तपगच्छ नाम हुवा सो तपगच्छ आकाशके पुष्पके समान होगया क्योंकि देखो इनहीका फिर दूसरा लेख दिखाते हैं कि जो प्रश्नोत्तरकी पुस्तकमें

लिखतेहै कि चन्द्रकुलमें वड़गच्छ, तपगच्छ, खरतर गच्छ, पूरण पल्लिया गच्छ है सो तीनगच्छ तो इसमें सिद्ध होते हैं परन्तु तपगच्छ तो जैन तत्त्वादर्शके लिखनेसे वड़ गच्छसे निकला मालूम होता है क्योंकि देखो श्री आत्मारामजीकी बनाई हुई "चतुर्थ स्तुति निर्णय" उसमें लिखा है कि जगत्चन्द्र सूरिजीने वज्रस्वामी साखायां चन्द्र कूलेको दिकगणे वृहत गच्छे इसको छोड़कर चैत्रवाल गच्छिया श्री देवभद्र गणिके पास फिर कर दिक्षालीनी ऐसा हम पेश्तर इनके ग्रन्थसे लिख चुके सो अब यहां इस लेखके देखनेसे ऐसा अनुमानसे सिद्ध होता है कि श्री जगत्चन्द्र सूरिजी महाराज किसी अशुभ कर्मके संयोगसे स्थिलाचारी होगयेथे वह स्थिलाचार होनेसे इनके गुरु आदिक ने अलग कर दिये होगे फिर शुभ कर्मके उदय होनेसे श्री जगतचंद्र सूरिजी महाराज चैत्रवाल गच्छिया श्री देवभद्रगणिके पास दिक्षा लेकरके चारित्र परिपूरण वैराग रसमे भरे हुवे देशोमें विचरते हुवे चित्तौरगढ़में राणाको प्रतिवोध देने वाले और ३२ दिगम्बर आचार्य्योंके साथ विवाद करते हुवे हीरा की तरह अभेद रहे तव राजाने "हीरालाजगत्चन्द्रसूरि" ऐसी विरुद्ध (पदवी) दिया और जिन धर्मकी वड़ी उन्नति करी सो देखो उन श्री जगत्चन्द्रसूरिके शिष्य समवेग रंग परिपूर्ण पूज्यपाद श्री देवेन्द्र सूरिजी महाराजने तो श्री धर्मरत्न ग्रन्थकी प्रशस्तिमें जैसी वात थी तसीही लिखदी इससे क्या प्रयोजन निकला कि चैत्रवाल गच्छके आचार्य्यके पासमे दिक्षा लेने वाले ऐसे श्री जगत्चन्द्र सूरिजी महाराजसे तपगच्छ प्रगट हुवा नतु वज्र शाखायां चन्द्रकुले कोटिक गणे वृहत्त गच्छसे निकसना साबित हुवा; और इस जगह दृष्टान्त देते है—कि जो लड़का जिसके गोद आवे उसका नाम चलेगा नतु प्रथम बाप का तो इस जगहभी श्री जगत्चन्द्रसूरिजीने अपने वृहत्गच्छ कुल परमूपराको छोड़कर चैत्रवाल गच्छमे फिर करके दिक्षा लीनी इसवास्ते इनको चैत्रवाल गच्छकी पाटावलीसे मिलाकर श्री महावीर स्वामीजीकी पाठावलीसे मिलाना ठीक था न कि वृहत् गच्छकी पाटावलीसे? और जैन वृक्षमें लिखते हैं कि हमारा श्री ऋषभदेव स्वामीजीसे तप गच्छ चला आता है यह लिखनाभी इनका आकाशके पुष्पके समान है क्योंकि देखो श्री महावीर स्वामीकी परमूपरा जो इन्होंने लिखी है कि सोमप्रभु तथा श्री मणि रत्नसूरिके पाट ऊपर श्री जगतचन्द्र सूरिजी वैठे सो तो तुम्हारे "चतुर्थ स्तुति निर्णय" में श्री देवेन्द्र सूरिजी महाराजकी शाखसे चैत्रवाल गच्छके शिष्य श्री जगत्चन्द्र सूरिजी सिद्ध हुवे तो अब देखो श्री महावीर स्वामीसेही जिस पाठ परम्परामें तुमने लिखे उस पाठ परमूपरामे नहीं मिले तो तुम्हारे लिखनेहीसे चैत्रवाल गच्छकी पाठ परम्परामें चले गये सो अब तुम चैत्रवाल गच्छकी पाठ परमूपरासे श्री ऋषभदेव स्वामीको मिलावो तो ठीक हो नहीं तो अपास्तं। और दूसरा देखो कि श्री सुविधि नाथजी तीर्थकरसे लेकर कई तीर्थ करोके बीचमे धर्म विच्छेद हो गया था अर्थात् साधु साध्वी विच्छेद हो गयेथे तो जब उस समयमें तपगच्छ कहां रहाथा और तीसरा देखो कि जब तपगच्छही सबसे पहलेका है तो श्री पार्श्वनाथ स्वामीके सन्तानियोंकी पाठ परमूपरा वर्तमान कालतक मौजूद है तैसे तुम्हारेको भी श्रीमहावीर स्वामीकी पाठ परमूपरामे मिलाना ठीक नहीं किन्तु ऋषभदेव स्वामीकी पाठ परम्परासे मिलाना ठीक था सो अब देखो

कि श्री ऋषभदेव स्वामीसे मिलाना बहुत दूर रहा परन्तु श्रीमहावीर स्वामीसे ही न मिला हां अलबत्ता चैत्रवाल गच्छकी एक शाखा तपगच्छ तुम्हारे लिखने ही से ठहरती है सो श्री तपगच्छ शुद्ध परम्परा वाला है जैसा श्रीमहावीर स्वामीके शासनके सैकड़ों हजारों गच्छथे तैसे यह भी गच्छ प्रमाणिक है न कि आंचलिया लोका वीजामतीके बराबर है किन्तु ११८५ के सम्वत्से लेकर धर्मसागर उपाध्यायके पहले २ तो सर्व गच्छोंके समान परम्परा प्रमाणिक चली आतीथी परन्तु जबसे धर्मसागर उपाध्यायने कदाग्रह करके अपनी खैंच तानसे कई तरहके विषम्वाद कर दिये और कदाग्रहके ग्रन्थ भी रच दिये सो कुछ दिन चलकर बीचमें बन्द हो गयाथा क्योंकि श्रीयश विजयजी उपाध्याय श्रीदेवचन्द्रजी इत्यादिकोंने वह कदाग्रह बुद्धि मिटा दियाथा जिससे मन्द चलता था खैर अब और देखो कि आत्मारामजी ऐसे गीतार्थ होकर प्रश्नोत्तर की संगीत नहीं मिलाते हैं क्योंकि देखो प्रश्न कुछही उठाते हैं और उत्तर कुछही देते हैं जैसे देखो श्री जैन तत्त्वादर्शके नवें परिच्छेदमें ४१७के पृष्ठमें लिखा है तथा ऐसा भी कुविकल्प न करना कि जो अविधिसे जिन मन्दिर जिन प्रतिमा बनीहै उसके पूजनेसे अविधि मार्गकी अनुमोदनासे भगवंतकी आज्ञा भंगरूप दूषण लगता है तथाहि श्रीकल्पभाष्ये ॥ गाथा ॥ निस्सकडमनिस्सकडे चेइए सव्वहिंथु इतिन्नी । वेलंच चेइआणीय नाउ इक्कि किया वावि ॥१॥ व्याख्या एकनेश्राकृत उसको कहते हैं कि जो गच्छके प्रतिवन्धसे बनी है जैसा कि यह हमारे गच्छका मन्दिर है दूसरा अनेश्राकृत सो जिस ऊपर किसी गच्छका प्रतिवन्ध नहीं है इन सर्व जिन मन्दिरोंमें तीन थुई पढनी जेकर सर्व मन्दिरोंमे तीन २ थुई देतां बहुत काल लगता जाणे तथा जिन मन्दिर बहुत होवें तदा एकेक जिन मन्दिरोंमें एकेक थुई पढ़े इसवास्ते सर्व जिन मन्दिरोंमें विशेष रहित भक्ति करे अब देखो यहां विचार करो कि इनको तो सिर्फ़ यही दिखलानाथा कि अविधिसे बने हुवे मन्दिर वा प्रतिमाके पूजनेसे भगवान्की आज्ञा भंग रूप दूषण नहीं होता है सो तो इस गाथाके अर्थमें कहीं आयाही नहीं क्योंकि सिर्फनेश्राकृत अनेश्राकृतमें अविधि नहीं आई किन्तु इस लिखनेसे तीन थुई वाले राजेन्द्रसूरिजीका नवीनमत पुष्ट करदिया जैसे कि मथुराकी मसल है कि "चौबे गये तो छब्बे होनेको दो गांठकेगमाये. और दुबे बन बैठे" सो यहां भी अविधि तो सिद्ध न हुई किन्तु तीन थुई पुष्ट हुई और देखो सम्वत् १९३९ में अजमेर नगरमें श्रीशिवजी रामजीने दो प्रश्न भेजेथे उनके भी उत्तरमें संगीत न मिली सो प्रश्न इस रीतिसे हैं कि:— अब यहां दो प्रकारकी गच्छ परम्परा चल रही है एक तो श्रीवीर प्रभुकी आज्ञाका आराधक सुधर्मास्वामी जंबू प्रभव संभ्रम भवादकी संततिमें जो महापुरुष जहांतक शुद्ध सुविहित मार्गका पालक प्रकाशक हुये उन्होंने सूत्र निर्युक्ति भाष्य चूर्णी टीका रची है उनामें जो गच्छका लक्षण कहा है कि—"अत्थ हिरण सुवर्ण हत्थेण पराणगं पिनो छिप्पे कारण समप्पिय पिहगोयम गच्छंतप भणियो ५० पुडविंदग अगणि मारुअ वणस्सइ तहत साणं विविहाणं मरणं तेविन पीडा करिइमणसातपं गच्छं ५१" ऐसा महानिशीथमें गच्छाधिकारमें है सो संबोध सत्तरी में लाये है उसी गच्छाचार पइन्नेमें है तहां शुद्ध गच्छमें वसनेका फल बताये सो ऐसे "जामद्ध जामदिण पक्ख मासंसंबछरं पिवा सम्मगा पडये गच्छे संवस माणस्स गोयमा" ये तीजी गाथा

से पांचवीं तक वर्णन किया है हाई यह है कि एक तो ऐसा गच्छ है अब यहां आत्मार्थी लोगों को इस गच्छ की परम्परा अङ्गीकार करना योग्य है उपदेश करना योग्य है वा इन पुरुषों की गच्छ परम्परा से भिष्ट राग द्वेषादिक परणिती में कलुषित आरंभ परिग्रह में तत्पर श्रीवीर प्रभुजी की आज्ञा का विराधक महा निशीथ में तथा गच्छाचार प्रमुख आगम मे वर्णन किया है खोटी गच्छ परम्परा का प्रवर्त्तायणें वाला आचार्यों की गच्छ परम्परा में चलना योग्य है इस का खुलासा सुविदित प्रणीत आगमकी शास्त्रमे लिखियेगा ॥ इति प्रथमप्रश्नः ॥ दूजा आपसे प्रश्न यह है कि "पूर्व वर्णितियां दोगच्छ परम्परा माहिली कौनसी गच्छ परम्परा आपने अङ्गीकार की है और उपदेश को नसा देते है सो खुलासा लिखके भेजियेगा ॥ इति द्वितीये प्रश्नः ॥ सम्वत् १९३९ चैत्रवदी१ (आत्मउत्तर) ॥ १ ॥

प्रथम प्रश्नका उत्तर श्री जिनराजकी आज्ञा संयुक्त गच्छ हमको प्रमाण है दूजा प्रश्नका उत्तर हम श्रीतपगच्छकी समाचारी करतेहै इसके सिवा दूसरा शुद्ध गच्छ कौनसाहै जो आपने अङ्गीकार किया है सो लिखना सेवकके हाथ भेजा पत्रका उत्तर संवत् १९३९ चैत्र वदी ॥ १ ॥

अब देखोकि एक प्रश्नतो सर्व जीव आत्मार्थी लोगोके आश्रयथा सो इसका उत्तर तो ऐसा देना चाहिये कि शुद्धगच्छ परम्पराको आत्मार्थी अङ्गीकार करे और उसी शुद्ध परम्पराका उपदेश दे और खोटी गच्छ परम्पराको छोड़े और इन्होने इस उत्तरको छोड़कर अपने आश्रय करके उत्तर दिया कि श्री जिनराजकी आज्ञा संयुक्त गच्छ हमको प्रमाण है तो जो हमने लिखाहै सो तो श्री शिवजी रामजी महाराजके प्रश्नका उत्तर बनताहै और इनका दिया हुवा उत्तर श्री शिवजी रामजी महाराजके उत्तरसे कुछभी सम्बन्ध नहीं रखता है और दूसरे प्रश्नके उत्तरमें यह लिखतेहै कि हम श्रीतपगच्छकी सामाचारी करतेहै ॥ यहां तक तो इनका लिखना ठीकहै परन्तु (इसके सिवाय दूसरा शुद्ध गच्छ कौनसाहै जो आपने अङ्गीकार कियाहै सो लिखना) अब और भी देखो कि—तीसरे जैन विषयके प्रश्न उत्तरकी पुस्तकमें प्रश्न १४७ वा और उत्तर दोनोंको लिखतेहै (प्रश्न) इस कालमें जो जैनी अपने पुस्तक किसीको नहीं दिखातेहै. वह काम अच्छाहै वा नहीं ? (उत्तर) जो जैनी लोग अपने पुस्तक बहुत यत्नसे रखतेहै यह तो बहुत अच्छा काम करतेहै परन्तु जेसलमेरमे जो भंडारके आगे पत्थरकी भीत चुनके भंडार बन्धकर छोड़ाहै और कोई उसकी खबर नहीं लेताहै क्या जाने वे पुस्तक मट्टी होगयेहै या शेष कुछ रहगयेहै इस हेतुसे तो हम इस कालके जैन मतियोंको बहुतही नालायक समझतेहै ॥ अब देखो सज्जन पुरुषोंको ऊपर लिखेहुवे प्रश्नोत्तरको विचारना चाहिये कि प्रश्न किस तरहका है और उसका उत्तर किस तरहका है कि प्रश्न तो यही था कि जैनी अपनी पुस्तक किसीको नहीं दिखातेहै यह काम अच्छाहै वा नहीं ? इसका उत्तर तो सुगमहै। देखो कि योग्य पुरुषको जिन मतकी पुस्तक दिखानेसे तो धर्मकी वृद्धि होतीहै और अयोग्यको जिन पुस्तक दिखाने अर्थात् देनेमे अनेक

---

१ कोष्टके मध्य लिखाहुवाहै उस लिखनेसे गच्छकी मिमतरूप भगके नशेमे चकचूर होकर बोलना मालूम होताहै।

अनर्थ उत्पन्न होतेहैं इसलिये योग्यको दिखाना अयोग्यको नहीं दिखाना क्योंकि देखो उपाध्यायजी श्री जसविजयजी महाराज अध्यात्मसारके पहले अधिकारमें जिसका श्री वीर विजयजी महाराजने अर्थ कियाहै उसमें ऐसा लिखतेहैं कि जो पुरुष योग्यहो।उसकोही सिखान। और पुस्तक देना और अयोग्यको नदेना और जो योग्य अयोग्य किसीको न देना यह काम जैनियोंका अच्छा नहीं उत्तर तो इतनाही था और जो कि आत्मारामजी उत्तरमें लिखतेहै कि जैसलमेरमें जो भंडारके आगे पत्थरकी भींत चुनके भंडार वन्धकर छोड़ाहै इस आत्मारामजीके लिखनेके ऊपर दोलेख दिखातेहैं सो सज्जन पुरुषोंको विचारना चाहिये कि हाल तो जैसलमेरका भंडार वन्ध हैनहीं कदाचित् वन्धभी होता तोभी आत्मारामजीको इस कालके जैन प्रतियोंको बहुत नालायक़ कहना नहीं था और दूसरे जो जैसलमेरके श्रावकों के कहनेसे तो आत्मारामजीको मृषावाद अर्थात् झूठका भांगा लगा उससे तो उनका दूसरा व्रत भंग होगया सो अब पहले युक्ति वन्धहोनेकी रीति दिखातेहैं कि भंडारका इस रीतिका वन्धहोना तो ठीकही मालूम होता है क्योंकि किसी बुद्धिमान् विचक्षण आचार्य की सलाहसे जैसलमेरके श्रावकोंने जो पत्थरकी भींत चुनवाई है सो कुछ समझकर चुनवाई होगी क्योंकि जैसलमेरके श्रावक कुछ सहजके न थे और जिन्होंने श्रीजसविजयजी उपाध्यायजी महाराजको प्रश्न कियेथे उन्होंने उनके प्रश्नोंके उत्तर दियेथे वो ऐसे विचक्षण श्रावक थे सो वेलोग बेसमझ का कामकरे सोतो नहीं वनता और इसीरीति से जो तुम कहोगे तो देखो चित्तौरगढ़के खम्भे में धरीहुई पुस्तक अगाईके आचार्योंने उस खम्भे का ऐसा ढक्कन लगाया था कि किसी को मालूम न पड़े परन्तु श्री सिद्धसैन दिवाकर जीने उस ढक्कन को अपनी योग्यतासे देखकर और अलग करके एकपुस्तक निकाली उसमें से एकपत्र वांचके पीछे एमंती पार्श्वनाथजी में गुप्तकरके रखदिये फिर वो कुछ दिनोंके बाद श्री जिनदत्त सूरिजी महाराजके हाथ लगी तो देखो ऐसे ही जैसलमेरका भंडार को किसी बुद्धिमान् विचक्षण आचार्य की सलाह से विचक्षण श्रावकने वन्धकिया होगा सो भी न मालूम कि कितने वर्ष हुएहैं उस भंडारके आगे पत्थर होने से श्री आत्मारामजी लिखते हैं कि हम इस कालके जैन मतियों को बहुत नालायक समझते हैं इस लेख के देखने से बड़ाखेद होता है कि देखो आत्माराम जी ऐसे गीतार्थ होके ऐसे वचन लिखते हैं जिससे कि आत्मारामजी इस कालके जैन मतियोंसे भिन्न मालूम होते हैं और वे इस कालके जैन मती अर्थात् श्री संघ पानेसाधु साध्वी, श्रावक श्राविका चतुर विधि संघसेभी अलग मालूम होते हैं—और मालूम होता है कि इसीलिये इन्होने सोरठ देशको अनार्य्य देश बताया कि जिसमें सत्रुंजाजी सिद्धाचलजी अनादि तीर्थ हैं इसकी चर्चामे पुन्यास श्री रत्न विजयजीने "आर्य्य अनार्य्य विज्ञापन पत्र" छपवाया सो पुस्तक प्रसिद्ध है कदाचित् ये बाहिर न होते तो इस कालके जैन मतियोंको हम बहुत नालायक़ समझते है" ऐसा कभी नहीं लिखते कदाचित् वे ऐसा कहें कि जैसलमेरके भंडारके पुस्तक मट्टी होगये हैं कि शेष कुछ रह गये हैं इस हेतुसे हमने नालायक शब्द लिखा है तो ये अब, इनका कहना छलरूप है और अपने निर्भाव करनेके लिये अर्थको फेरना है क्योकि खाली

जेसलमेरके श्रावकोको नालायक लिखते तो ठीकथा परन्तु इन्होने तो इस कालके जैन मतीयोंको बहुत नालायक समझा इसलिये आत्माराम जीका गीतार्थपना गुरु परम्परा अर्थात् गुरुकुल वास बिना अनुभवशून्य पंडिताईके अभिमानरूप नशेमें चकचूर होकर इसकालके चतुर्विध संघको बहुत नालायक कहनेसे बुद्धिमान् सज्जन पुरुषोंको जाहिर होगया और इस पंचम कालमें चतुर्विध संघको बहुत नालायक बनानेवालेभी गीतार्थ हैं—औरभी देखो कि ऊपरकी युक्तिसे उनका कहना 'इस कालके जैनमतीयोंको नालायक बनाना ठीक नहीं ठहरा। अब जो जेसलमेरके भंडारकी बाबत जो वहांके श्रावकोंसे वृत्तान्त सुना है सो उन श्रावकों की ज़ुबानीका हाल लिखाते हैं—कि आत्मारामजी तो कहते हैं कि भंडारके आगे भीत चुनदीनी और उसकी कोई खबर नहीं लेता है—और जेसलमेरके श्रावकों का ऐसा कहना है कि भंडार सालके साल ज्ञानपञ्चमीको खुलता है और धूप पूजन आदि सालके साल होता हे और जब कोई अच्छे पढ़े लिखे साधु वहाँ आते है तो उनकोभी दिखलाया जाता है बल्कि सम्वत् १९४४ में श्री मोहनलालजी जैसलमेरमें पधारेथे उस वक्त उन्होंनेभी उस भंडारको खुलवायकर देखाथा और दूसरा ऐसाभी हमने सुना है कि 'एक दिन राज मलमंधयाका मुनीम रतनलाल दासोत जेसलमेर वाला कि जिसके पास भंडारकी कुंजी रहती है उसने ऐसा ज़िकर किया कि एक अंगरेज़ जिसका नाम मै नहीं जानताहूं जैसलमेर में आया और उसने उस भंडारको देखा और कई पुस्तकेंभी उस भंडारकी पुस्तकोंमेंसे लिखाय कर ले गया और उस भंडार वा पुस्तकोंकी प्रशंसा (तारीफ़) की कि ऐसे पुस्तकोंका भंडार हरएक जगह नहीं है और आपलोग इस भंडारकी हिफ़ाज़त अर्थात् सार संभार अच्छी तरहसे करते हो बल्कि वह अंगरेज़ "सार्टीफ़िकेट" भी दे गया है सो उसकी मुहर लगे हुये सार्टीफ़िकेट हम लोग जो ताली रखनेवालेंहै सो हमारे पास मौजूद हैं अभीतक तो ऐसा किसी सालमें नहीं हुवा कि भंडारका ताला ज्ञान पंचमीको न खुला हो और धूपादिक ज्ञान पूजन न किया गयाहो किन्तु सालके साल ऐसा होता ही है ऐसा हमने उनकी ज़बानी सुना और वह श्रावक मौजूद है अब न मालूम आत्मारामजीने जैसलमेरके भंडारकी बाबत पत्थरकी भीत चुनकर बन्ध कर दिया और उसकी कोई खबर नहीं लेताहै—ऐसा जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरमें किस ज्ञानसे लिख दियाहै और जैन मतियोंको नालायक बनाया, मालूम होता है कि इस कालके जैन मतियोंसे भिन्नहै तो फिर इनको पीले कपड़े करना और ओघा आदि जैनियोंका लिङ्ग रखनाभी ठीक नही था क्योंकि इस कालके जैन मतीतो बहुत नालायक सो इन्होंने नालायकभी बताया और चिह्नभी जैनियो जैसा रक्खा अपने कृतको न देखा—पयूषण पर्वमें जन्मके दिन स्वप्नोंको (जो कि श्री महावीर स्वामीकी माताने देखेथे) उनके आकार मूजिब ऊपर छतपरसे नीचेको उतरवाना और उसके ऊपर श्रावकोंसे रुपया बुलवाना उन रुपयेको इकट्ठा करके अपनी पुस्तक लिखाना यह काम वह और उनकी समुदायवाले करतेहै अब इसमें बुद्धिजनोंको विचारकरना चाहिये कि यह देव द्रव्य हुवा वा ज्ञानद्रव्यहुआ क्योंकि देवके नाम और देवके स्वप्नोंसे जो धन इकट्ठा हो सो देवकृत अर्थात् मन्दिर आदिकमें लगाना चाहिये नकि ज्ञानादिक पुस्तकोंमें क्योंकि श्री संघका घर मोटा है दूसरा उनका कृत यह है कि श्री महावीर स्वामीके जन्मके पीछे पालनेमें झुलाना और

रुपया इकट्ठा करना (३) छमछरीके दिन जो कि १२०० सूत्र बचते हैं उनके ऊपर घृत अथवा नक़द रुपया बुलवायकर पन्ना हाथमें देना और रुपया इकट्ठा होने पर पुस्तकें लिखना यहभी एक नवीन रीति अन्य मतियोंके साहश्य है। जैसे कि जब अन्य मतके लोग भागवत पूरी करते हैं तो उस पर रुपया चढ़वाते हैं और अपने घरको ले जाते हैं उन्हींके माफ़िक़ जिन धर्ममेंभी चलने लगी यहां इतना तो फ़र्क़ है कि वह लोग अपने गृहस्थके अर्थमें लगाते हैं और यह पुस्तकोंको लिखाकर इकट्ठी करते हैं ! हाय! इति खेद !! सर्वज्ञ देवकी वाणी अमृतरूप चिन्तामणि रत्न सूत्रपर समान अन्य मतकी तरह रुपया वा घृत बुलवाय कर जैन धर्मकी हीलना करवाते हैं क्योंकि देखो श्री कल्पसूत्रजी मंगलीक तरन तारनसे भव्य जीवोंको उपदेश देना और त्याग पच्चखान निर्लोभ्यतासे भगवतकी देशना अमृतरूपको पान कराना तो शास्त्रमें कहा है नकि रुपया व घृत बुलवाय कर देशना देना जो कोई ऐसा कहै कि गुजरातमें ऊपर लिखी हुई बातोंकी प्रवृत्ति है सो आत्मारामजीकी समुदायमेंभी होता है तो क्या हर्ज़ है तो हम कहते हैं कि आत्मारामजीने बाइस टोला अर्थात् बूढ मतको छोड़कर आसरे २२ तथा २० जने उसको अशुद्ध वा डुबाने वाला जानकर अपनी आत्माका कल्याण करनेके वास्ते शुद्ध जिन धर्म संवेग मार्गको अंगीकार कियाथा और उनका कहनाभी ऐसा है कि वे शास्त्रके वा शुद्ध परम्परा मूजिब मानते हैं और चलते हैं। और उनकी समुदाय वाले उत्कृष्ट कहलातेहैं और वे अपनेके सिवाय दूसरे जो वर्त्तमान कालमें हैं सो सर्व शीथला चार्य-बतलाते हैं-हाय! इति खेद !! मुझको बहुत दुःख उत्पन्न होता है कि इस जिन धर्मकी क्या व्यवस्था होगई है और होती चली जाती है सो इस हालको देखकर अपनी भाषा वर्गणाको बहुत रोकता हूं अपने चित्तको कहता हूं कि हो जिन धर्मके भांड उपजीवी तू अपने घरका काजा (कूड़ा) निकाल तुझ को औरसे क्या जैसा कोई करेगा वैसा पावेगा, परन्तु शास्त्रमें कहा है कि एक काना मात्रभी ओछा अधिका कहे वा स्थिल प्रवृत्ति चलावे अथवा उस स्थिल आचारको निषेध न करे तो बहुल संसारी हो इसलिये लाचार हूं क्योंकि मैने तुम लोगोंसे प्रतिज्ञाकी है कि निषः-पक्षपात होकर अपनी बुद्धचनुसार उत्तर कहूंगा सो मैने अपनी भाषा वर्गणाको निकालना ठीक समझा क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि स्थिलमार्गको निषेध करनेमें और वीतरागके शुद्ध मार्गकी परूपना करनेमें दर्शन शुद्धी होती है तो अब देखो कि मसल है "जमात करामात इका दुकाका अल्लाह वेली है" इस मसलका तात्पर्य क्या है? सो कहो तो देखो आत्मारामजी २० तथा २२ जनें होनेसे जो ढुंढिया मतको छोड़ा सो बहुत जन होनेसे उत्कृष्ट और आत्मार्थीभी कहलाये क्योंकि समवेग मार्गको अंगीकार किया इन्होंनेही स्वप्न उतारना और पालना झुलाना वा श्रीकल्पसूत्रजीपर घृत वा रुपये बुलाना चला दिया क्या यह काम आत्मार्थका है? सो तो नहीं बल्कि आजीविका वालेभी नहीं करते हैं तो आत्मार्थी क्योंकर करेंगे क्योंकि देखो जो वर्तमान कालमें यती लोग हैं उनकोभी ऊपर लिखी बातें करते न देखा हां वे यती लोग पछोड़ियाके टके श्रावकोंसे लेते हैं न कि कल्पसूत्रजी आदिकपर रुपया या घृत बुलाते हैं और भी देखो कि आत्मारामजी और —की समदायवालोंने ऊपर लिखी हुई बातोंके लिये गुजरातका चलन अंगीकार किया

परन्तु गुजरात मारवाड़ पूर्वमें जो यती सवगी लोग कुल व्याख्यान देनेके समय मुँहपत्ती कानमें घालते है वह व्याख्यानके वक्त मुँहपत्ती कानमें घालना अंगीकार न किया और उलटा निषेध करके शास्त्रका प्रमाण माँगने लगे वलिक मुँहपत्ती बिल्कुल हाथमें रखना ही उठा दिया जब उनकी समुदायवाले साधुजन ठल्ले या गोचरी जाते है केवल रूमाल हाथमें रखते है तो देखो ऊपर लिखी हुई गुजरातकी बातें कि जिनमें इनके स्वार्थ सिद्ध हों सो अंगीकार करली और जो परम्परा गत व्याख्यानके वक्त मुँहपत्ती कानमें घालना अथवा जहां तहां मुँहपत्ती हाथमें रखना जब बोले तब मुँहपत्ती मुखके आड़ी रखना तो उड़ा दिया और रूमाल हाथमें रखना अंगीकार किया तो मालूम होता है कि यह भी कुछ दिनके बाद एक नवीन रूमाल पंथ प्रवृत्त हो जायगा क्योंकि इनके समुदायवाले साधु इसी रीतिसे प्रवृत्त होते हैं मुँहपत्ती विषय जिस जगह व्याख्यानके वक्त मुँहपत्ती कानमें घालना सिद्ध करेंगे वहां विशेष युक्ति दिखायेंगे परन्तु इसजगह श्री सिद्धसेन दिवाकर का आख्यान जो कि आत्माराम जीने जैन तत्त्वदर्श के बारहवें परिच्छेद ५६४ के पृष्ठ में लिखा है कि एकदा श्री सिद्धसेनजीने सर्व संघ इकट्ठा करके कहा कि जेकर तुम कहो तो सर्व आगमों को मैं संस्कृत भाषा में करदूं तब श्री संघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नहीं जानते थे जो तिन्होंने अर्द्धमागधी भाषा में आगम करे ऐसी बात कहने से तुमको पारांचिकनाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसे क्या कहे । तब सिद्धसेनने विचारकर कहा कि मै मौन करके बारह वर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रका रजोहरणादि लिङ्ग करके और अवधूत रूप धरके फिरूंगा ऐसा आख्यान आत्माराम जी लिखते हैं तो अब देखो कि श्री सिद्धसेन जीने तो अर्द्धमागधी भाषाकी संस्कृत भाषा बनाने को कहाया उस बारतो उनको ऐसा भारी प्रायश्चित्त आया और उन्होंने उसको अंगीकार करके उसको पूराकिया क्योंकि उनको श्री वीतरागके वचन ऊपर पूरी २ आस्ता थी और आत्मार्थ की इच्छाथी जिन धर्म का रहस्य जानते थे तो अब आत्मारामजी इस काल के जैनमतियों को बहुत नालायक समझते है ऐसा इन्होंने प्रश्नोत्तर की पुस्तक में लिखा है तो "जैनमती" इस शब्दसे तो इस काल में चतुर्विध संघ अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, और प्रवचन आदि जिनमती इस शब्दके अन्तर्गत ठहरा तो श्री सिद्धसेनजीने तो प्रवचन अर्थात् सिद्धान्तों की जो अर्द्धमागधी भाषा जिसकी संस्कृत भाषा बनाने में पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आया तो आत्माराम जीने तो प्रवचन और चतुर्विधि संघ जो कि जिन मतके अन्तर्गत है उस सर्व कोही नालायक बताया तो इस नालायक बताने का कितना बड़ा प्रायश्चित्त आवेगा और वे क्या लेवेंगे क्योंकि आत्मार्थियो को तो अपनी आत्माके अर्थ करनाहीं अवश्यमेव है नतु जिनमतका प्रायश्चित्त दंभी, मोहगर्वित, दुःखगर्वित, आडम्बरी धूर्तों के वास्ते । दूसरा जैसलमेरके श्रावकों के कहने से तो भंडार बन्ध है नहीं और उसकी पूरी २ सालकी साल संभारभी होती है तो इससे आत्माराम जी भंडार को बन्ध करके पत्थरकी भीति चुनदी तो मृषा वाद आया तिस मृषावाद के आनेसे उनका द्वितीय व्रत व्यवहार नयसे भंग होगया अर्थात् न इहां तो पञ्चमहाव्रतधारीपना क्योंकर बनेगा और निश्चय करके तो इस काल के जैनमतियों को अर्थात् चतुर्विधसंघ जो कि जिन

आज्ञा का पालने वाला उसे इन्होंने नालायक कहा उसका प्रायश्चित्त तो ज्ञानी जाने क्योंकि ऐसे रहस्यों को वही जन जानेंगे कि जिन्हों को जिन धर्म की रुचि और अपनी आत्मा का कल्याण करने की इच्छा श्री वीतराग के वचन के ऊपर सच्ची आस्ता होगी नतु ! उपजीव का जिन धर्मियों के वास्ते खैर अब और भी चौथी बात दिखाते हैं कि तुमने किसी गीतार्थ की संगत नहीं करी होगी क्योंकि जेकर जैन मतके चरण करणानुयोगके शास्त्रपढ़े होसे अथवा किसी गीतार्थ गुरुके मुखारविन्दसे वचन रूप अमृत पान करा होता तो पूर्वोक्त संशयरूप रोगकी कसमसी कदापि न उत्पन्न होती? क्योंकि जैन मतमें छः प्रकारके निर्ग्रन्थ कहे हे इस कालमें जो जैनके साधू हैं वे सर्व पूर्वोक्त छः प्रकारमेंसे दो प्रकारके हैं क्योंकि श्री भगवती सूत्रके पच्चीसवें शतकके छठे उदेसेमें लिखा है कि पंचम कालमें दो तरहके निर्ग्रन्थ होंगे उनोंसे तीर्थ चलेगा, कषाय कुशील निर्ग्रन्थ तो किसीमें परिणाम पेक्षा होगा, मुख्य तो दोही रहैंगे। यह ऊपरके लिखे ३ परिच्छेद पृष्ठ १०९ में जैन तत्त्वादर्शमें है और इसी विषयमें इसी परिच्छेदके १११ के पृष्ठमें ऐसा लिखा है तथा नशीथमें भी लिखा हैं! भाष्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे सुताव मूले गुणुत्तरगुणाय । इति रिपथ्थेयसंयम, नियंठवओ सापडिसेवी ॥ १ ॥ इस गाथाकी चूर्णीकी भाषा लिखते हे छः कायोके जीवों विषय जब ताई दयाके परिणाम हैं, तबताई बकुश निर्ग्रन्थ और प्रति सेवना निर्ग्रन्थ रहेंगे, इसवास्ते प्रवचन शून्य और चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवेगा तथा मूलोत्तर गुणोमें दूषण लगनेसे तत्काल चारित्र नष्ट भी नहीं होता, मूलगुण भङ्गमें दो दृष्टान्त हें उत्तर गुण भंगमें मंडपका दृष्टान्तहै–निश्चनयमें एक व्रतभंग हुवा सर्व व्रतभंग हो जाते हें परन्तु व्यवहार भयके मतसे जो व्रतभंग होवे सोही भंग होवे दूसरे नहीं इसवास्ते बहुत अतिचारके लगनेसे संयम नहीं जाता, परन्तु जो कुशील सेवे अरु धन रक्खे और कच्चा सचित पानी पीवे प्रवचन अब अपेक्षा यह साधू नहीं जहां ताईं छेद प्रायश्चित्त लगे जब ताईं संयम सर्वथा नहीं जाता तथा जो इस कालमें साधू न मानें सो मिथ्या दृष्ट है जैन तत्त्वदर्शके १०९ पृष्ठमें जो लिखा है कि तुमने किसी गीतार्थ की संगत नहीं करी होगी अथवा किसी गीतार्थ गुरुके मुखार्विंदमें वचन रूप अमृत पान करा होता तो ऐसी ससखसी अर्थात् बीमारी न होती ऐसा उनके लिखनेसे हमको बड़ा भारी संदेह होता है कि देखो श्री आत्मारामजी के गुरु श्री बुद्धि विजयजी अथवा प्रसिद्ध नाम बूटेरायजीको ऐसा भारी रोग उत्पन्न हो गया कि जैनधर्मी किस देशमें विचरे हैं और कितनी दूर हैं सो गुरूका तो ऐसा कहना कि जैन धर्मी इस कालमें नहीं और चेलाजी कहते हैं कि इस कालमें जो साधू नहीं माने सो मिथ्या दृष्टिहै सो श्रीबूटेरायजी जो कि मुँहपत्तीकी चर्चाकी पुस्तक छपाई है उसके४२वें पृष्ठमें लिखते हैं–कसमसी तो क्या उनको तो ऐसा भारीरोग उत्पन्न हुवाथा सो किंचित् उनके रोगको दिखाते है "तथा मती तो अपने २ मतमें सूता छे उसको तो सच्च झूठकी कुछ खबर नथी पड़ती सो मती तो इन देसांके सर्व देखे घणे तो अपने २ मतकी स्थापना करते दीखते है कोई विरला जीव शुद्ध परूपक पिण होवेगा इणक्षेत्रे तथा भरतक्षेत्रमें और क्षेत्र होवें परन्तु किते सुननेमें तो नथी आवता तथा कोई इना मतांके विषे

होवेंगे तो ज्ञानी महाराज जाणे जिम कवलप्रभाजी महाराज श्री महानसीथके पांचवें अध्ययन मध्ये तिसको भावाचार्य्य कहा ॥ मुँहपत्ती विषयचर्चा जो श्री बूटेरायजीकी बनाई हुई है उसके ४४ में पृष्ठ में लिखा है, " आत्मार्थी पुरुष मोनकरीने रहाहोवेगा तो ज्ञानी जाणे परन्तु प्रत्यक्ष मेरे देखने में कोई आयानहीं कोई होवेगा तो ज्ञानी जाणे देखने में तो घणे मती आवे हैं तत्त्व केवली जाणे जिम ज्ञानी कहे ते प्रमाण फिर मैंने विचार करी मत तो मैंने घणे देखे पिण कोई मती मेरे विचार मे आमदा न थी तथा और क्षेत्र में सुरण्या भी न थी जो फलाणे देश में जैन धर्मी विचरेंहै कितेदूर"॥ अब देखो कि बूटेरायजी ऐसा लिखतेहैं; और इनके चेला आत्माराम जी ऐसा लिखते हैं कि इस काल में शुद्धनमान तो मिथ्या दृष्टि है अब किसके वचन का एत्काद (भरोसा) करें अर्थात् गुरूका वचन मानाजाय कि चेले का दोनोंमें गीतार्थ किसको जानें और फिर देखो श्री आत्मारामजी आपही जैनतत्त्वदर्शके सप्तम परिच्छेद के ३०२ के पृष्ठ में ऐसा लिखतेहै कि " जिन वचन बहुत गम्भीर है और तिनका यथार्थ अर्थ कहनेवाला इस काल में कोई गुरु नहीं और फिर ३०४ के पृष्ठ में लिखतेहै कि शास्त्र का आशय अतिगम्भीर है और ऐसा गीतार्थ कोई गुरु नहीं है जो यथार्थ बतला देवे" अब देखो कि ऐसा लिखने से गीतार्थ है इस बात को अंगीकार करें या इसको अंगीकार करे कि इस काल में कोई यथार्थ अर्थ कहनेवाला (गीतार्थ) नहीं है तो अब इन दो वचन के होने से एक बातपर भी प्रतीति किसी को न होगी परन्तु शास्त्रों में तो गीतार्थो की विविक्षा की प्रतीत द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा लिये हुये मालूम होती है क्योंकि जैन मतके गीतार्थ तो अपेक्षा लिये हुये ऐसा वचन बोलते है कि जिससे जिज्ञासूका संशय दूरहोकर वह अपनी आत्माका अर्थ करें और उस वचन में किसी वादी का कुविकल्प न पहुँचसके और पासत्यादिक भी पुष्ट न हों और उन पासत्या आदिकों का उलटा निराकरण होजाय जिससे सूधा मार्गकी प्रवृत्ति होने लगे सोतो नहीं हुई किन्तु श्री आत्माराम जी के वचन से पासत्या आदिकों की पुष्टि का कारण मालूम होता है देखो कि जो इन्होंने नसीथ के गाथाकी चूर्णीकी भाषा लिखी है सो हमने उसको ऊपर लिखादी है और उसका अर्थ भी इनका लिखा हुवा वही लिख दिया है सो उस गाथा में मूल गुण उत्तर गुण में दूषण का तो अर्थ मालूम होता है परन्तु जो कुशील सेवे और धन रक्खे और कच्चा सचित पानी पीवे प्रवचन अन अपेक्षा वो साधुनहीं तो कुशील सेवना धन रखना कच्चा सचित पानीपीना प्रवचन अनपेक्षा सो तो साधु का काम नहीं परन्तु प्रवचन की अपेक्षा से जो कुशील सेवे धनराखे कच्चा पानी पीवे इनके लिखने से साधु होचुका तो अब देखो इस लिखने से वर्त्तमानकालमें जो यतीलोग सब काम करतेहैं अथवा (सम्बेगी) लोग जो धनादिक रक्खें उनकी सबकी पुष्टी होचुकी ऐसा इस जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थके सिवाय पासत्थों की पुष्टिका लेख किसी दूसरी पुस्तक में देखा नहीं और यती लोगभी वर्त्तमान काल में कई पंडित मेरे देखने में आये और उनकी प्रसिद्धी भी है परन्तु उनकी जबानी भी मैंने आज तककभी ऐसा न सुना क्योंकि देखो वे यती लोग धन भी रखते है कच्चा पानी भी पीते है और लेन देनादिक अनेक व्यवहार भी करतेहैं और जिस ग्रन्थ की इन्होंने साक्षी दी है उसको उन्होंने अच्छी तरहसे देखाहै और

अर्थ समझते हैं लगाते है परन्तु ऐसा नहीं कहते कि जैसा आत्मारामजीने खुलासा लिखा है किन्तु वे यती लोग ऐसा तो कहते हैं कि हमारे कर्मोंका दोष है वीतरागकी आज्ञा हमसे नहीं पले हम लोहेकेटके हैं यह हमारा दोष है कि हम नहीं पालते हैं—जो श्री वीतरागका मार्ग पालने वाला उसकी वलिहारी है तो अब देखो विचार करो जो लोग धन रखते हैं और कच्चा पानी पीते हैं और वे लोग इन सूत्रादिकोंको वांचते है श्रावकोंको सुनाते है परन्तु अपना ऐब दोष दबानेके वास्ते सूत्रको अगाडी नही करते फिर आत्मारामजी जो आत्मार्थी होकर ढूंढियोंमेसे निकलकर शुद्ध मतको अंगीकार करने वाले और वर्तमानमें उत्कृष्ट चलने वाले धर्मकी उन्नति करने वाले हैं उनको न मालूम ऐसा क्या दवाव आकर पड़ा कि जिससे गाथामें तो कुशील सेवना धन रखना सचित कच्चा पानी पीनेका अर्थ नहींथा। परंतु आत्मारामजीके अर्थसे तो बुद्धिमान् विचार अर्थात् अनुमान् सिद्ध करते हैं कि आत्मारामजी बहुत जनोंकी समुदाय लेकर जो २२ टोलाको छोड़कर आये और उत्कृष्टे आत्मार्थी और बहुश्रुत अर्थात् पंडितपनेमें प्रसिद्ध होगये परन्तु गाथाका जो अर्थ किया उस अर्थसे अपनी समुदायका निर्भाव किया क्योंकि (मूलगुण) इस शब्दसे जो उन्होने कुशील सेवना और धन रखना और कच्चा सचित् पानी पीना इसी अर्थको उन्होंने मूलगुण समझ लिया क्योंकि आत्मारामजी २२ टोलाको छोड़नेके बाद किसी समेगी साधू वो यती लोगसे तो जिन आगम देखे नहीं अर्थात् पढ़े नहीं केवल अन्यमतके जो पंडित हैं उनसे न्याय व्याकरण पढ़े और २२ टोलामें ढुंढियोंसे पढ़े हुयेथे परन्तु गुरुकुल वास बिना जिन आगमका रहस्य समझना मुश्किल है इसलिये श्री आनन्दघनजी महाराज श्री नेमनाथजीके स्तवनमें कह गये हैं कि " तत्त्वविचार सुधारस धारण। गुरु गम विण किम पीजेरे"। इसलिये आत्मारामजी गाथामें जो कर्त्ताका अभिप्रायथा उसको न पूगे खाली पासत्थोंका मार्ग पुष्ट किया और इस अर्थसे इनकी आत्माका अर्थ वा अनर्थ हुवा सो तो ज्ञानी महाराज जाने किंतु गाथामें तो केवल मूलगुण उत्तर गुणका दूषण लगनेका अर्थथा सो मूलगुण उत्तर गुणका अर्थ यह है याने अवारके कालमें प्रायः शुद्ध आहार पानीके अभाव होनेसे आधाकर्मी आहार पानी लेना यह मूलगुणमें दूषण है और श्रावक दृष्टि रागसे बज़ारसे मोल लाकर वस्तु साधुओंको देते हैं ये उत्तर गुणका दूषण है। औरभी मूलगुण उत्तर गुणका अर्थ दिखलाते है कि साधूके लिये चार वस्तु निर्दोष अर्थात् ४ दूषण करके रहित अर्थात् एकतो आहार दूसरा उपासरा अर्थात मकान, तीसरा कपड़ा अर्थात् वस्त्र चौथा पात्र अर्थात् काष्ठादि पात्र आहार करनेके लिये इन चारोंको लेना चाहिये सो प्रथम आहार चार प्रकारका है १ अशनं अर्थात् अन्नादिक रँधा हुवा; २ पानं अर्थात, पानी उष्ण अथवा २१ तरहके धोवनमेंसे कोई तरहका धोवन; ३ खायमं अर्थात् अचित् वस्तु जिससे पेट न भरे; ४ स्वादं अर्थात् कारण पड़े तो इलाइची, सुपारी, लौंग चूरण गोली औषधि आदि इस चार प्रकारके आहारमें पानी तो प्रायः सब जगह आधा कर्मी अर्थात् साधुओंके निमित्तही होता है और उसी पानीको साधू लोग लायकर भोग उपभोगमें लाते हैं सो यह मूलगुणकाही दृष्टान्त है और आहार आदिकम जब साधू विहार आदिक करते हैं तब रस्ते अर्थात् मार्गमें जो गांव आदि पड़े हैं उनमें

जिस जगह मन्दिर आमनावाले श्रावक नही उस जगह तो अलबत्त दूषण करके रहित आहार मिलता है और जहां मन्दिर आमनावाले जो श्रावक जिस गांवमें एक दो घर हों उस जगह तो सिवाय आधा कर्मीके निर्दूषण मिलना कठिन है और जिन नगरोमें मन्दिर आमनायके बहुत घर है उस जगहभी प्रायः करके दृष्टि रागसे आहारमें दूषण लगताही है सो यह आहारकाभी दूषण मूलगुणमेंही लगेगा ऐसेही औषधि आदिकमेभी प्रायः करके साधुओंको निमित्त वैद्य हकीम आदि को लाते हैं और औषधि (दवा) कराते हैं यह भी मूलगुण में ही दूषण आदि आहार में प्रायः करके लग रहे हे सो बुद्धिमान् निष्पक्षपाती आत्मार्थियोंके लिये तो ऊपर लिखे दूषण मूल गुण मे ही गिने गये नतु दम्भी मत ममत्ती आजीविका वाले आडम्बर से दुःख गर्वित मोह गर्वित वैराग वालों को । अब पुनः मकान या उपासरा के लिये देखो कि पहले तो साधू लोग वस्तीके बाहिर रहते थे अब काल दूषण होने से जंगलको छोड़ कर वस्तीमे रहने लगे तब गृहस्थ लोगो ने साधुवोंके निमित्त धर्मशाला उपासरा बनाये और बनाते हे तो उन्हीं मकानो में प्रायः साधू ठहरते हैं हां कोई २ उत्कृष्टे उन मकानो को निषेध करके गृहस्थ के मकान में भी ठहरते हैं परन्तु जो निमित्त साधुवो के मकान बनाया उसमें ठहरने से साधुवों को मूल गुण में ही दूषण लगेगा क्योंकि साधू के तीन करण, तीन योग अर्थात् नौकोटी पच्चखान हे फिर तीसरा जो कि वस्त्र साधुवो के वास्ते शास्त्रों में जीर्ण अभिप्राय धौला कहा है सो तो अब लेते हैं नहीं किन्तु नवीन वस्त्र लेते हैं तो प्रायः करके गृहस्थी लोग खरीद करके ही साधुवों को देते हैं यह भी मूलगुण में ही दूषण हे । ४ जोकि पात्र सोभी गृहस्थ लोग नवीन बनवा नया रंगवाना खाली साधुवों के ही निमित्त बनवाते या रंगवाते हैं और साधुवोंको देतेहै और दंड आदि खराद पर उतरा हुवा इत्यादि सब वस्तु साधुवो के लिये ही बनवाकर देते हे यह भी सब मूल गुण में ही दूषण है नतु कुशील सेवना धन रखना कच्चा पानी पीना और उत्तर गुण का दूषण देखो कि यथावत् शास्त्र युक्त पढ़ लेना वस्त्र आदि की न करना वस्त्र आदि धोना हाथ पैर आदि धोना अथवा शरीर आदि पोछना शरीर की विभुशा करना इत्यादि अनेक उत्तर गुण मे दूषण लगते हैं ग्रन्थ विस्तार भय से किंचित् उपरोक्त लिखे दूषण वर्तमान् काल में बराबर लगते हे ॥ और इसी आशय से श्री भगवती जी में कषाय और कुशील वाले पंचम काल मे साधू पावेंगे ऐसा लिखा है और निर्ग्रंथ पणा तो परणाम की अपेक्षा से कोई होगा तो ज्ञानी जाने और फेर देखो कि पदच्छेद ग्रन्थों की जो बातें हैं सो साधुवों को छेद देना अर्थात् प्रायश्चित्त देने के ग्रंथ है नशीथ नाम नसीहत देना अर्थात् देखो गृहस्थी लोग भी जो अपने पुत्रादिक को नसीहत नाम शिक्षा करते है सो एकान्त में बैठकर करते हे सर्वज्ञ वीतराग की भी यही आज्ञा है कि जो नवीन दिक्षा लिया हुवा साधू हो उसको पेश्तर फलाना ग्रंथ पढ़ाना और पांच वर्ष के बाद फलाना और सात वर्ष के बाद फलाना पढ़ाना इसी रीति से जब गुरु आदिच्छेद ग्रंथ के लायक समझें तब उसको च्छेद ग्रंथादिक बाँचने दें । सर्व ग्रन्थ के बांचने के लायक उस समय होता है जब साधू की २० वर्ष की सम्पूर्ण पर्याय हो जाती है तब ही सर्व ग्रन्थ का अधिकारी होता है तो देखो कि साधू को ही जैसा २ योग जाने तैसा गुरु

उपदेश करे ऐसा श्री पूज्यपाद उपाध्याय जी श्री यशविजय जीका ढुंढिया लोगों पर बनाया हुवा जो डेढसौ गाथा का स्तवन जिसका बालावोध किया हुवा श्री पद्मविजय जी गणी का है उसके छठी ढालके बालावोध में लिखते हैं सो स्तवन प्रकरण रत्नाकर के तीसरे भाग में है जिस की इच्छा हो सो देख लो परन्तु इस पंचम काल में इस जिन मत में कोई सिरधरा न होने से धर्म की कैसी व्यवस्था हो गई हा ! इति खेदः पूज्यपाद श्री यशविजय जी उपाध्यायजी महाराज जो २ बातें कह गये हैं सो प्रत्यक्ष मिलती हैं उनका साढेतीनसै गाथाके स्तवन पहली ढाल की १४ मीं गाथा यह है—" जिम जिम बहु श्रुत बहु जन संमत बहु शिशें पर वरियो। तिम तिम जिन शासन नो वयरी जो नवी निश्चय दरी ओरे ॥ जिन० ॥ वी० ॥ १४ ॥ अब देखो श्री उपाध्याय जी महाराज जिन मत के गीतार्थ और जिन्होने परमत में काशीके पंडितों को जीत कर न्याय विशारद पद पाया ऐसे महापुरुषों ने जो ये गाथा बनाय कर लिखी है सो निज आगम के वे भी जानीकार थे क्योंकि जिन शास्त्रों में गीतार्थोंको कल्पवृक्ष और समुद्र मेरु आदिक की सोलह उपमा दीं और गीतार्थों को मुख्य आचार्य्य कहा और श्री यशविजय जी महाराज ने गीतार्थों को पुष्ट किया और जिन शास्त्रों में यह भी लिखा है कि आचार्य्य लोग पांच २ सौ हज़ार २ साधुवों के साथ विचरते थे और जिन आचार्यों को पहिले राजा आदिक मानते थे तो अब देखो कि इन बातों को जान कर फिरसे गाथा जो उन्होंने कही है सो कुछ अपेक्षा देख कर कही है सो इस गाथा का अर्थ मेरी तुच्छ बुद्ध्यनुसार कहता हूँ परन्तु ऐसे गीतार्थों का आशय समझना कठिन है किन्तु ऐसे पुरुषों के किये हुवे ग्रन्थों पर मुझ को श्रृद्धा वा विश्वास पूरा २ है इस आशयको लेकर कहताहूं कि बहुश्रुत कहतां जो कि ब्राह्मण लोगोंसे न्याय व्याकरण आदि काव्य कोश पढ़े हुए हैं अथवा ब्राह्मण पंडितोंको अपने पास रखते हैं और स्वमतके गुरुकुल वास विना अपनी बुद्धिसे अथवा उन पंडितोंकी बुद्धिसे स्वआत्म अनुभव शून्य होकर ग्रन्थोंको बॉचते हैं उसमें कर्त्ताके अभिप्रायको बिना जाने स्वमति कल्पनासे शब्दका अर्थ न्याय व्याकरण अथवा कुयुक्तिसे लगायकर दुरुस्त कर लेते हैं और उत्सर्ग अपवाद कारण कार्य अपेक्षा द्रव्य क्षेत्रकाल भाव गुरु परम्परासे तो जानते नहीं क्योंकि अपेक्षा शब्द उत्सर्ग अपवाद कारण कार्य सांकेत शब्दगुरु आदिकोंहीसे मालूम हो सक्ता है न कि स्वमति कल्पना या अन्यमतके पंडितोंकी सहायतासे और अपने तांई अपवाद मार्गको खेंचते हैं और जिससे विरोध हो उसके तांई उत्सर्ग मार्ग लेकर खंडन करते हैं ऐसे तो बहु श्रुत॥ अब बहुजन संमत कहतां जो कि अपनी दृष्टि राग बांधकर उनको काव्य अलंकारादि चरित्र अथवा राग रागिनी सुनायकर अथवा गच्छका परम्परा बॅधायकर वा मंत्र यंत्रादि बतायकर अपना दृष्टि राग बांध कर बहुमानादि अनेकरीतिसे लड़ायकर उनको अपने दृष्टि रागमें बांध लेते है अथवा उन लोगोंको जिन धर्मकी अर्थात् आत्माके अर्थकी अपेक्षा तो है नहीं केवल दृष्टिरागकी अपेक्षा है सो दशवीस बड़े आदमियोंको रागमें फँसाय लेते हैं याने वे भी उनके रागमें फँस जाते हैं और जो लोग हैं सो गांडकर प्रभावके तुल्य है या बहुत आडंबरादि होनेसेभी बहुत लोग उसको मानने लगते हैं ऐसे जो कि गच्छके रागसे वा आडम्बरसे वा स्तवन सिझायके गानेसे अथवा बड़े आदमियोंके

मान्य करनेसे बहुत जनोंके संमत है वह बहुजन संमत है और बहुशिष्य पखरियो कहतां जो कि मोल लेकर शिष्य करना अथवा भूखन मरते हुवे बालकोंको खानेके लालचसे अथवा जो गृहस्थी अपने पास आते हैं उनके लड़कोंको अनेक तरहका लालच देकर उस गांवसे दूसरे गांव भेजकर दिक्षा देना वा महीना, दो महीना, चार महीना तक छिपाये रखना फिर उसको दिक्षा देना अथवा किसी भेषधारीके चेला आदिककी पुस्तक पन्ना अथवा खाने पीनेका लालच दिखायकर उसको अपना चेला बनाय लेना ऐसे शिष्योंकी जो समुदायका गुरु अथवा इन शिष्योंको लेकर विचरनेवाला ऐसा बहु शिष्यवाला॥ तिन२ जिन शासनके वैरी कहतां दुश्मन अर्थात् जैनकी हीलना करानेवाला है क्योंकि देखो जो मोल लेकर शिष्यका करना उसमे तो कोई तरहका वैराग्य नहीं और इसलिये अपनी उमर (अवस्था) पर आयकर जिन धर्मकी हीलना करायेगा जो भूखे मरता वा खानेके वास्ते शिष्य हुवा है प्रायः करके जब उसकी भूखकी निवृत्ति होगी और अच्छा माल खायगा और श्रावक श्राविकोंका संग करेगा तब हीलना धर्मकी करावेगा और दृष्टी राग वन्धेगा। और तीसरा जो गृहस्थके बालकको बहकाय कर परदेश भेजकर दिक्षा देते है तो अब देखो कि उसके माँ, बाप, लुगाई, बहन, भाई आदि विलपात अर्थात् रोते पीटते झीकते जगह २ भटकते खोजते हुवे फिरते हैं और उनको नाना प्रकारके आर्त रुद्र ध्यान संयुक्त दुःख होते हैं और जब उनको यह खबर होती है कि हमारे बेटाको फलानी जगह फलाने साधूने दिक्षा दीनी तो उस जगह वे गृहस्थी लोग भागकर पहुँचते है और साधुवोंसे लड़ते है यहां तक कि राजतकमे पहुंचते है। अब देखो विचार करो इससे जियादः धर्मकी हीलना क्या होगी क्योंकि देखो भगवत्की आज्ञा नही गुरुकी तथा माता, पिताकी आज्ञा नहीं तो तीन प्रकारके अदत्ता या चोरीभी उनको आई और शेष जो दिक्षा लेनेवाले है सोभी उल्टी जिन धर्मकी हीलना कराते है परन्तु धन्य हैं इन वर्तमान कालके श्रावकोंको जो उनके विपरीत आचरण देखकर दवाते है कि जिन धर्मकी हीलना नही हो परन्तु अन्य मतवाले देख २ कर हँसते है और कहते है कि देखो जैनके साधू ऐसा २ कर्म करते है और गृहस्थियोंके बेटाको बहकाकर दूर भेजकर दिक्षा देते है इसलिये कहते हैं जैनके साधुवोंका संग नहीं करना हाय इति खेदे! कि शास्त्रोमे कहा है कि जिन मतके साधुओंकी अन्यमत वालेभी शोभा करते है क्योंकि शांत दान्त देखकर हरेकका चित्त चलता है और महात्मावोंके पास आनेसे हरेक जीवको जिन धर्मसे धर्मकी प्राप्ति होती है सो अब हरेक जीव जिन धर्मसे धर्म की प्राप्ति होना ऊपर लिखे हुये लक्षणोंसे मिट गया क्योंकि हम जैनियोमेही प्रत्यक्ष प्रमाण देते है कि अबके चौमासेमे अजमेरमेही दो चार गुजराती लोग रहतेथे उनके दो एक लड़के वाले कभी२ हमारे पास आतेथे सोभी आत्मारामजीके सिंगाडे में जो कि गुजरातमें फिराथा उस विवेक मुनिके परिचयसे आतेथे सो उनके बाप महतारी मना करतेथे परन्तु वे दुवका चोरी आतेथे जब मुझको इस बातकी खबर हुई कि उनके घरके लोग मना करते है तब मैंने उनसे कहदिया कि भाई तुम मेरे यहां मत आवो क्योंकि तुम्हारे घरके लोग तुम्हारे माँ, बाप मना करते है तो तुम मेरे यहां क्यो आते हो? जब उन्होंने कहा कि आप तो ऐसा काम नहीं करते हो लेकिन् हमारे देशमे कई लड़कोंको बहकायकर परदेश भेज-

कर दिक्षा दे दीनी इस डरसे हमारे माँ बाप हमको मना करते हैं अब देखो जब श्रावकों कोही ऐसा डर है तब तो और अन्य मतीयोंका तो कहनाही क्या । इस जिन धर्मकी हीलना करानेसे जैन मतके वैरी हैं जो नवी निश्चयने दरीयो कहतां निश्चय आत्म अनुभव गुरु कुल वास समगतके विना जिन्होंने ऊपरकी बातोंका आचरण किया है उनको समगतादिक निश्चय ज्ञानकी प्राप्ती न भई इस रीतिसे इस गाथाका अर्थ मेरी तुच्छ बुद्धिमें आया जैसा मैंने वर्णन किया । अगाड़ी याती उनका आशय वह जाने वा बहुश्रुत कहे सो ठीक अब देखो कि खरतर गच्छकी आचार्य्य गद्दीके हीराचन्दजी यती जिनके शिष्य श्री सुखलालजी उपाध्याय वड़ोदा शहरमें गयेथे उस जगह श्रावकोंने उनको कहा कि ऊना पानी मंगाते हो और ठंढा पानी पीते हो और लोग ठगाई करते हो जब उन्होंने उन श्रावकोंको जवाब दिया कि भाई हमारे तो लोग ठगाईका कुछ काम नहीं ऊना पानी मंगातेहैं और ऊनाही पीते हैं जैसा हमारी गुरु परम्परामें हैं वैसाही शुद्ध उपदेश देते हैं परंतु हमारे भाई बन्धु अर्थात् जो जातिके यती लोग हैं वो कच्चा पानीभी पीते हैं और धनभी रखते हैं सो वे लोग शास्त्रकी अपेक्षा लेकर धन रखते हैं और कच्चा पानी पीते हैं किन्तु उनका साधूपन नहीं जाता है इस बातको सुन श्रावक कहने लगे कि भला महाराज ! यह शास्त्र युक्त बात है तो किस शास्त्रमें है जब उपाध्यायजीने आत्मारामजीका बनाया हुवा जैन तत्त्वादर्श ३ परिच्छेदमेंके १११ के पृष्ठमें लिखा है कि जो कुशील सेवे और धन रक्खे और कच्चा सचित पानी पीवे प्रवचन अन अपेक्ष वह साधू नहीं । ऐसा दिखाय करके कहने लगे कि जो प्रवचनकी अपेक्षासे यह काम करे तो साधु पनाही है इसवास्ते यती लोगभी शास्त्रकी अपेक्षा लेकरके कच्चा पानी पीते हैं और धन आदिक रखते है इसलिये उनका साधूपन नहीं जाता इस वचनको सुनकर वे श्रावक लोग इस जैन तत्त्वा दर्शके प्रमाणोंसे चुप होगये और कुछ जवाब न दे सके तो अब इस जैन तत्त्व दर्शकेप्रमाणने सर्व यती लोगोंके पुष्ट किये अर्थात् धन रखने कच्चा पानी पीने और कुशील सेवनेसे भी साधूपन नहीं जाता वह प्रमाण सर्वको सिद्ध हो चुका और भी देखो कि चतुर्थ परिच्छेदमें १९९ के पृष्ठमें मंदिरकी पूजनसे अल्प पाप और वहुत निर्ज्जरा है ऐसा उनका लिखना जिन शास्त्रसे विरुद्ध मालूम होता है क्योंकि देखो कि आवश्यक आदि सूत्रोंमे ऐसा लिखा है कि "सुभानु बंधी वहुतनिर्ज्जरा भवति" और श्री जवर सागरजी जो इनके गुरु भाई बूटेरायजीके शिष्य हैं उन्होने रतलाममें राजेन्द्रसूरिसे झगड़ा कियाथा और एकान्त निर्ज्जरा ठहराईथी इसवास्ते आत्मारामजी जो अल्प पाप श्री जिन राजकी पूजन में कहते हैं उससें उनकी श्रद्धा विपरीत मालूम होती है क्योंकि शास्त्रोंमें एकान्त निर्ज्जरा मालूम होती है । और यह एकान्त निर्ज्जरा तुम्हारे चौथे प्रश्नके उत्तरमें जहां श्रावककी दिनकृतथी मन्दिरजीकी पूजनकी विधि कहेंगे उस जगह युक्ति सहित और शास्त्रोंके उक्त दृष्टान्तोंसे ठहराई जायगी उस जगह वर्णनकी जायगी सो उस जगह देख लेना इत्यादि अनेक बातें हैं परन्तु मैंने प्रसंग गत थोड़ीसी बातें दिखलाई हे अब देखो जो जन कहते हैं कि कानमे मुँहपत्ती गेरके व्याख्यान नहीं देना उनका कहनाभी ठीक नहीं क्योंकि जो शुद्ध आचार्य्योंने परम्परासे कानमें गेर कर व्याख्यान करना कुछ समझकरही चलाया है

जो कहो कि जब ढूंढियोंकी मुँहपत्ती बांधना क्यों निषेध करते हो तो हम कहते है कि ढूंढिया लोगतो अष्ट प्रहर मुँहपत्ती बांधते हैं इसलिये हम निषेध करते हैं तो भला तुम्हारा कानमें गेरना किसी सूत्रमें है या कोरी परम्पराको मानते हो. तो हम कहें हैं कि सूत्रतो शुचिमात्र होताहै और अर्थ शुद्ध आचार्यों की प्रवृत्ति मार्गसे मालूम होता सो प्रवृत्ति मार्गमें परम्परासे मुँहपत्ती कानमें डालकर व्याख्यान देतेहैं और जो तुम कहो कि हमको सूत्रमें बतावो तो हम कहते हैं कि सूत्रोंमें ऐसा लिखाहै कि जिस समयमें साधू टल्लेजाय उस समय कानमे घाले अथवा कानमें छिद्र न हों तो नासिकाको ढकके गुद्दीपर बांधे और जिस जगह वस्ती अर्थात् उपासरा वा धर्मशालामें पर माजेन करे अर्थात् दण्डेसे काज्यानिकाले उस समय यातो कानमें मुँहपत्ती घाले या गुद्दी पर बांधे इन दो बातोंके वास्ते तो शास्त्रोंमें लिखाहुवा है तो इस जगहभी गीतार्थ आचार्योंने कारण कार्य लाभको जान करके व्याख्यानके समय मुँहपत्ती कानमे घालना चलाया होगा सो चलता है जो कहो कि बूटेरायजीने जो मुँहपत्तीकी चर्चा बनाई है उसमें श्रीकेशी कुमार देशना देतेथे उस समयमें जो परदेशी राजा गयाथा उस समयमें परदेशी राजाने अनेक तरहके निन्दा रूप विकल्प अपने चित्तमें उठाये परन्तु ऐसा विकल्प न उठा कि यह देखो मुंह बांधे देशना देता है इसलिये श्रीकेशीकुमारजी श्री गौतम स्वामीजी श्री सुदर्मा स्वामीजी आदिक १४ पूर्वधारी चार ज्ञानके धणियोंको कारण कार्य लाभ मालूम न हुवा और यह पंचम कालके तुच्छ बुद्धिवाले आचार्योंने लाभ कारण जान करके कानमें मुँहपत्ती घालके व्याख्यान वोंचना चलाया सो ठीक नहीं है तो हम केहे हैं कि बूटेरायजी ने जैन मतके रहस्यके अभिप्राय विना जाने श्रीकेशीकुमारजी आदि आचार्योंके नाम लेकर कानमें मुँहपत्ती घालना निषेध कियाहै जो तुम कहो कि अभिप्राय क्याहै तो हम केहे है कि अभिप्राय यहहै कि श्रीकेशीकुमार आदि आचार्य महाराजतो १४ पूर्व और चार ज्ञानके धणीथे सोभी वह १४ पूर्व कंठस्थथे कुछ पुस्तक पत्रालेकर व्याख्यान थोड़ाही देतेथे इसलिये जब वह देशना देतेथे उस वक्त डांये हाथसे तो मुख वस्त्रसे मुखकी जैणा और जीवणे हाथसे देशना देतेथे अबारके कालमें जो कोई विना पुस्तकके देशना दे और ऐसा करे तो कानमें घालनेकी कुछ जरूरत नहीं परन्तु पुस्तक हाथमे लेकरके जो देशना देने वालेहैं उनको अवश्यमेव कानमे डालना होगा क्योंकि जब एकहाथमे पुस्तक और दूसरे हाथसे मुखकी जैणा रक्खेगा तो देशना शून्य हो जायगी और जो देशना शून्य नहीं होगी तो उघाड़े मुख बोलना होगा जो तुम कहो कि देशनाभी शून्य नहीं होनेदेंगे और उघाड़े मुखभी नहीं बोलेंगे तो हम केहे हे कि सिद्धान्तसे विरुद्ध होजायगा 'यदि युक्तं" एक समय नत्थीदो उपयोग " एक समयमें दोकाम नहीं होता इसवास्ते कानमें मुँहपत्ती घालकर व्याख्यान देना चाहिये अब देखो सफ़ेद कपडे वाले तो इतने सूत्रका प्रमाण देतेहैं । श्रीआचारंगजी श्रीसुगडांगजी श्रीनसीथ ओघ निर्युक्ति श्री आवश्यक निर्युक्ती श्रीपंचासक श्रीठाणांग सूत्र, श्रीगच्छाचार पइन्नासूत्र, श्रीपिंडनिर्युक्ति श्रीभगवती सूत्र, श्रीकल्पसूत्र इन सूत्रोंके मूलपाठ और वृत्ति चूरणी आदिकमे श्रीवीरभगवान्‌के साधुओंके वास्ते श्वेत मानो पेद जीर्ण अभिप्राय वस्त्र धारण करना कहा और वर्षादिकमें कारण

पड़े तो धोनेकी विधि कहीहै पिण रंगनेकी आज्ञानहीं परन्तु पीले कपड़ेवाले ऐसा कहते हैं कि श्रीनसीथ सूत्र अथवा चूर्णी अथवा ओघ निर्युक्ती चूर्णीमें कारण पड़ें रंगनेकी आज्ञा दीहै तिसवास्ते हमभी कारण पाय कर रंगते है क्योंकि वर्तमान् कालमें ढूंढियोंका जोर होनेसे पूर्व आचार्योंने यती लोगोंका स्थिलाचार देखकर पीले कपड़े चलाये इसमें कुछ हर्जनहीं । (प्र०) अजी महाराज साहब सफेद कपड़ोंकी तो आपने बहुत ग्रन्थकी साक्षी दीनी और पीलेकी तो आप दो ग्रन्थकी साक्षी देकर कारण बतलायकर अलग होगये परंतु आप तो कहते हो हम निर्पक्षपाती हैं तो इतने ग्रन्थोंकी साक्षी छोड़कर दो ग्रन्थों· की साक्षीसे पीले कपड़े आपने भी कर लिये यह तो आपको मुनासिब था कि जिसमें बहुत ग्रंथका प्रमाण हो वह काम करते तब तो आप निर्पक्षपाती होते परन्तु आपको पीलेकाभी पक्षपात है इसलिये आपनेभी पीले करलिये । (उत्तर) भोदे० जो तुमने कहा कि तुम्हारे पक्षपात पीलेका है इसलिये पीले करलिये सो मेरे तो कुछ पक्षपात् पीलेका है नहीं कदाचित् जो मेरे पक्षपात होता तो ऊपर लिखे हुवे ग्रंथोंका श्वेत कपड़ोंके वास्ते प्रमाण नहीं देता किंतु मैंने जो कारणसे पीले किये सो कारण यह है कि कोटि गच्छ वज्र शाखा चन्द्र कुल खरतर विरुद्धमें श्रीक्षमा कल्याणकजी उपाध्याय जीने क्रिया उद्धार करके पीले कपड़े कियेथे उसी कुलमें आयकर मैंने जन्म लिया इसवास्ते मुझको पीले करने पड़े दूसरा कारण यह कि श्री शिवजी रामजी महाराज अनुमान् २२ के सालमें यती· पन छोड़कर क्रिया उद्धार करके २४–२५ के सालसें इस मारवाड़में विचरतेथे सो ३४ के सालतक तो कुछ रगड़ा न उठा और ३४ के सालसे अभी (५० के साल) तक भेखधारी ऐसा रगड़ा उठाया अर्थात् झगड़ा करते हैं कि कुछ लिख नहीं सकता जो सिर्फ़ उनके सफ़ेद कपड़े होनेसे ही औरभी कई तरहका जाल उनके संगमें फँसाते हैं परंतु श्री शिवजी रामजी तो अभी तक किसीसे दबे नहीं और अपने सफ़ेद कपड़े रखे हुये ही विचरते हैं सो मैंने भी ४३ के साल तक सफ़ेद कपड़े रक्खेथे फिर मैंने इस झगड़ेको देखकर अपने चित्त में विचार किया कि इस वर्तमान कालमें भेष धरियोंके झगड़ेमें अपनी उमर खोना और भेष धारियोंसे झगड़ा करना नाहक़ है क्योंकि तैने जो अपना घर छोड़ा है सो अपनी आत्माके अर्थके वास्ते छोड़ा है सो आत्माका कार्य्य तो श्री वीतरागकी आज्ञारूप धर्म्म पालनेमें है और अपने परिणाम शुद्धसे जो वीतरागकी आज्ञाका विश्वास करेगा तो अपनी आत्माका कल्याण होगा क्योकि वीतरागके कहे हुवे धर्म्म पर विश्वास करके अपनी आत्माके स्वरूपको विचार कर परिणामको दृढ़ राखेगा तो आत्माका कल्याण होगा किंतु पीले वा श्वेत वस्त्र नहीं तारेंगे दूसरा मैंने यहभी अपने चित्तमें विचार किया कि श्वेत वस्त्र जीर्ण अभिप्राय अर्थात् पुराना वस्त्रलेना ऐसी परमेश्वरकी आज्ञा है सो वर्तमान कालमें जीर्ण वस्त्र तो कोई लेता है नहीं खाली श्वेत वस्त्र लेतेहै सो भी शास्त्रोमें चान्दी वरणा भड़कदार भी साधूको लेना नही कहा इसवास्ते हे देवानुप्रिय ! जो आपने ऊपर लिखे हुवे कारणोंको कह आयाहूं इन हेतुसे मैंने पीले कपड़े कियेहै और मुझको पीले कपड़ेकी कुछ पक्षपात नहीं है जो शास्त्रमें लिखा है सो मै तुम्हारेको कहताहूं । (प्र०) अब कोई तीन थुई कहते है कोई चार कहते है तिसका कारण क्या ? (उ०) भो० दे० शास्त्रमें

तीनभी हैं और चारभी हैं (प्र०) तो आत्मार्थी तीनको अंगीकार करे या चारको ? (उ०) भो० दे० आत्मार्थी दोनों अंगीकार करे तीनवाला तीनको और चारवाला चारको क्योंकि देखो तीन थुईका प्रमाण तो सिद्धान्ती है इसलिये तीन करने वाला भी मिथ्यात्वी नहीं और चार थुई है सो आचरण अर्थात् आचार्योंकी ग्रहणकी हुई है वह आचार्य्य कौन कि चौदह पूर्व धारी श्री भद्रवाहु स्वामीजी सो उनकी आचरणा सिद्धान्तसे विरुद्धनहीं किन्तु सिद्धान्तरूप श्रुतकेवलीकी आचरणा होनेसे सिद्धान्तरूप प्रमाणिक है इसलिये चार करने वाला भी मिथ्यात्वी नहीं इसलिये जो श्री भद्रवाहु स्वामीकी पाट परम्परामे है उनको चार थुई करनाही युक्त है और वे चार करने ही से भगवत् आज्ञा आराधक होंगे और जो कि श्रीभद्रवाहु स्वामीसे अलग आचार्य्य विचरतेथे और श्री भद्रवाहु स्वामीकी आचरणाको दूषण भी नहीं देतेथे उन आचार्य्यकी पाट परम्परामें जो चले आते हैं वो लोग जो तीन करे तो वे भी भगवत् आज्ञा विराधक नहीं है। (प्रश्न) आपने जो ऊपर लिखाहै उससे तो राजेन्द्रसूरिका मत तीन थुईका चलाया हुवा पुष्ट होता है फिर उनको लोग जो मिथ्यात्वी कहते हैं सो कहना ठीक नहीं है क्योंकि भगवान्‌की आज्ञा तो तीन थुईकी भी सिद्धान्तोंमें है ? (उ०) भो० दे० हमारे मिथ्यात्वी कहना तो बुद्धिमें जचता नहीं क्योंकि जिस वचनसे दुःखलगे उसे वैसा वचन नहीं कहना चाहिये परन्तु राजेन्द्र सूरिजीने जो श्री सुधर्मा स्वामीसे अपनी पाट परम्परा मिलाई है उस पाटपरम्परासे राजेन्द्र सूरिजीसे चौथी पीढीमें जो श्री विजय देवेन्द्रि सूरिजी हुये हैं उनके शिष्य श्री क्षमाविजयजी और क्षमाविजयजीके शिष्य प्रमोदविजयजी ये इनके पाट परम्परा में तीन पीढ़ी हुई तो अब राजेन्द्र सूरिजी से पूछना चाहिये कि यह आपके तीन पीढ़ी वाले तीन थुई करते थे कि चार ? तो राजेन्द्र सूरिजी को कहना ही पड़ेगा कि चार करते थे जब वे लोग चार करते थे तो इनका तीन करना क्योंकर बनेगा क्योंकि देखो कि राजेन्द्र सूरिजी से तो श्री विजय देवेन्द्रसूरिजी चारित्र पालने मे वा गीतार्थ पने में गुरुकुल वास से ये हुये थे जो शास्त्रोका रहस्य उनको मालूम होगा सो राजेन्द्र सूरिजी को हमारी बुद्धिसे उतना न मालूमहोगा तो देखो कि श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजीने श्री भद्रवाहु स्वामी के आचरणा को शुद्ध जानकर गुरु परम्परासे चली हुई जो चार थुईकी परम्परा उसको छोड़कर तीन अंगीकार न किया कदाचित् वेही तीन करते होते तो जैसे पासचन्द्र और कड़वा मती आदिक जो तीन थुई करने वाले हैं उन को लोग कहतेहैं कि उन्होंने नवीनमत निकाला तैसा श्री विजयदेवेन्द्र सूरि जी का नाम सुनने मे न आया इसलिये राजेन्द्र सूरिजी को अपनी बुद्धिसे विचारना चाहिये कि श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजीने जो चार थुई अंगीकार की तिनको छोड़कर जो मैं तीनथुई करूंगा तो इनकी आज्ञा का विराधक होजाऊंगा ऐसा तो राजेन्द्र सूरिजी को ही विचारना चाहिये कि जो श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजी की आज्ञाको लेकर जो उनको अपने परम्परा में गुरुबुद्धि करिके मानना है तब तो उनको चारही करना उचित है कदाचित् जो श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजी इनकी पाट परम्परा को छोड़कर जो कि श्री महावीर स्वामी के वक्त से शुद्ध मार्ग के चलाने वाले आचार्य्य थे और जिन्होंने श्री भद्रवाहु स्वामी के आचरण को निषेधभी न किया और अंगीकार भी न किया और हमेशा से जो

उनकी परम्परा सिद्धान्त रीतिसे चलीआई उन आचार्यों की परम्परा में जो कोई आचार्य्य विद्वानहो उनकी परम्परा वा गच्छको अंगीकार करके जो यह तीन थुई करें तो ठीक है जब उन्ही से अपनी पटावली मिलावे न कि श्री विजयदेवेन्द्र सूरिजी सूं क्योंकि श्री विजय देवेन्द्र सूरिजी से तो अपनी पाट परम्परा मिलाना और उनकी आचरण की हुई चार थुई का निषेध करना और उनको मिथ्यात्वी कहना और आप तीनकरना ऐसा होना तो बंझा के पुत्रके समान है क्योंकि देखो कोई पुरुष कहनेलगा कि मेरी यह माहै परन्तु है बांझ तो देखो मा कहना और बांझ बताना जैसे ही राजेन्द्र सूरिजी का कहना हुवा कि चार थुई वाले को अपना गुरू भी बनालेना और उनकी जो कृत चार थुई आदिक उसको निषेध भी करना मैं तो जैसा मेरी तुच्छबुद्धि में तैसा उनको कहचुका अख्तियार उनको है जो चाहें सो अंगीकार करें अब जो कोई कहतेंहै कि चौथकी करने वाला मिथ्यात्वी पंचमीकी छमछरी करनेवाला मिथ्यात्वी सो इन दोनों का कहना कदाग्रह रूप है क्योंकि देखो ५ वीं के करने वाले अनंती चौवीसी पंचमी की करनेवाले तीर्थंकरों को वा वर्त्तमान काल में महाविदे क्षेत्र आदिकों में करने वाले उनकी असातना का सूचक ५ मीको मिथ्यात्व का कहना है और जोकि चौथके करनेवालों को मिथ्यात्वी कहते है वह लोगभी अज्ञान विवेक शून्यहोकर बोलते हैं क्योंकि जंगम युग प्रधान श्री कालका आचार्य्य जी महाराजजीने ५मी से चौथकी छमछरी को अंगीकार की सो भी शास्त्रों में लेख है कि सर्वज्ञदेव बीतराग श्री महावीर स्वामी अपने मुखारविन्द से वर्णन करगये हैं कि पंचम काल में श्री कालका आचार्य्य होगा सो पंचमीकी चौथकरैगा सो मेरी आज्ञा आराधक होगा तो देखो श्री महावीर स्वामी ने ऐसा फ़रमाया तो जो श्री कालकाचार्य की परम्परा वाले शुद्धाचरणविधि मार्गके चलने वाले जो चौथकी छमछरी करते हैं सो वे लोग तो भगवान् की आज्ञा के आराधक है परन्तु जो लोग इस परम्परा में से कदाग्रह वा गुरूआदिक पै द्वेष बुद्धिकर धूर्त्तपने से कपट क्रियाकरके भोले जीवोंको वहकाय कर चौथकी निषेधकर पंचमी को चलाते है तो महामूढ़ अज्ञानी विवेकशून्य गुरु परम्परा आचार्यों के विराधक होने से भगवत् आज्ञा के भी विराधक हैं अब जो कोई साध्वी के व्याख्यान अर्थात् कथा करने को वा अंगोपांग आदि बांचने वा साध्वी को अंग आदिक पढ़ाने को निषेध करते है तो यह उनका एकान्त कहना जो है सो जिन आगम के रहस्य को नहीं जाननेसे है अथवा कितने ही लोग अपनी महिमा घटजाने के लिये निषेध करते हैं क्योंकि उनको इतना बोध तो है नही कि जो सभा रंजन करे और केवल यही ख्याल है कि साध्वीका अच्छा व्याख्यान लोग सुनेंगे तो हमारे पास कोई नहीं आवेगा इसलिये उनका एकान्त निषेध करना ठीक नहीं क्योंकि देखो वीतराग भगवान्का अनेकान्त स्याद्वाद मत है सोही दिखाते है देखो कि जो साध्वीको अंगादि पढ़ाना निषेध होता तो नीचे लिखी हुई बात क्योंकर बनेगी कि श्री वज्र स्वामीको गुरु बहर करके झोलीमें लायेथे उस वक्त गुरुने साध्वियोंको आज्ञा दीनी कि इस लड़केको तुम अपने उपासरेमें राखो श्राविका लोग इसका पालन करेंगी सो श्री वज्रस्वामी पालनेमें झूलते २ ग्यारे अंग

याद कर लिये-क्योंकर याद किये ? कि वह जो साध्वी गुरुसे वांचना अर्थात् संता लाय कर उपासरेमें घोकतीथी उनकी घोकना सुनते २ ही श्री वज्रस्वामीने ११ अंग कंठ कर लिये यह बात कल्पसूत्रमें लिखी हुई है और लोगोंमेंभी प्रसिद्ध है अब इसपर कोई ऐसा कहे कि वह तो अगाड़ीका कालथा परन्तु अवारका काल ऐसा नहीं क्योंकि देखो जब साध्वी व्याख्यान देती है तो व्याख्यानमें अनेक तरहकी चेष्टा करनी पड़ती है तो पुरुषोंके सामने स्त्रीको अनेक तरहकी चेष्टा करनी ठीक नही है औरभी देखो कि जो पुरुष अच्छे कपड़ा पहन अलंकार आदि शोभित तेल फुलेल आदि लगायकर जो व्याख्यानमें आते हैं उनको देखकर इतर आदिककी खुशबूही उड़नेसे साध्वीका उस पुरुषपर चित्त चल जानेसे चारित्र भ्रष्ट हो जायगा; औरभी देखो साधू रहते साध्वी व्याख्यान देगी तो साधूका जो ज्येष्ठ धर्म अर्थात् बड़ापन है सो न रहेगा क्योंकि साध्वी सौ वर्षकी दीक्षित साधू एक दिनके दीक्षितको वन्दना करे इसलिये साध्वीका व्याख्यान न होना किन्तु साध्वीके पासमें पच्चखान करनाभी ठीक नही तो हम कहते हे कि यह तो पंचम कालहीकी बाते हैं कुछ चौथे कालकी बातें नही है श्री वज्रस्वामी तो पंचम आरेमेंही हुवे हैं और फिर किसी गीतार्थ शुद्ध आचार्य्यने कि साध्वीके ताई अंग आदिक पढ़ाना या व्याख्यान देना निषेधभी तो नहीं किया जो तुमने चेष्टाकी कही तो हम कहते हे कि देखो कि जो वैराग्य रसमें परिपूर्ण अध्यात्म मार्गके बतानेवाले वा द्रव्याण योगके कथन करनेवाले शास्त्रोका साध्वी व्याख्यान देतो कोई तरहका हर्ज नही है हां अलबत्त जैसे चन्द्रकी चोपाई चरित्र अथवा मानवतिका चरित्र आदिक जो कि शृंगार रस अथवा स्त्रियोंके चरित्र वा अलंकार आदि हैं ऐसे ग्रन्थोंको बांचना तो साध्वीको युक्तही नही है परन्तु जिससे संसारसे उदासीन भाव होकर वैराग्यकी प्राप्ती होय और जो आत्माका कल्याण हेतु हो ऐसे शास्त्रोका व्याख्यान साध्वी पुरुषोंकी सभामें अवश्यमेव दे । और जो ऐसा कहो कि अलंकार आदिसे साध्वीका चित्त चल जायगा ऐसा जो कहना है सो उनका विवेकशून्य जिन मतके अजान मूढ़पनेका है देखो कि कर्म ग्रन्थमें तीन वेदोंके उदयपर कहा है कि पुरुष वेदतो तिनका या घासकी अग्निके समान है और स्त्रीका वेद छाणाकी अग्नि समान है और नपुंसक वेद नगर दाहके समान है अब देखो विचार करो कि जब साधू व्याख्यान दे रहा है उस समयमें जो स्त्री आदिक अच्छे गहने कपड़े पहनकर इतर फुलेल लगायकर छम २ करती व्याख्यानमें आती हैं उनके आभूषण (जेवर) के बाजेकी आवाज़ और चेष्टाको देखकर तो पुरुष वेद जो तिनकाकी अग्निके समान है सो तो उन स्त्रियोंकी चेष्टा देखकर तुरंतही चारित्रसे भ्रष्ट होजायगा जब तो साधुवोंको स्त्रीके सामने व्याख्यान देना न बनेगा और साधूको गृहस्थींके घरमें आहार आदि लेनेकोभी जाना न बनेगा इसलिये ऊपर लिखी हुई बातको जो कोई कहता है वह महामूर्ख अज्ञानी विवेकरहित जिन धर्म का अजान कदाग्रह करनेवाला चरित्रसे भ्रष्ट मालूम होता है जो ऐसा कहते हे कि साधूका ज्येष्ठ धर्म है तो हम कहते हे कि ये कहना तो उनका ठीक है क्योंकि जो साधु अच्छे महात्मा द्रव्य क्षेत्र काल भाव उत्सर्ग अपवाद कारण कार्यके जाननेवाले जिस जगह उतरे हों और व्याख्यान देते हों उस जगह साध्वी उनके यहां जाकर व्याख्यान सुने

और अपने व्याख्यानको बंद करे और उस साधू मुनिराजसे अध्यात्म शास्त्रा-दिकभी पठन पाठनकरे और कदाचित् ऐसे महात्माके पास साध्वी न जाय और अपना व्याख्यान बन्द न करे और अपने रागियोंके अपनी दूकान जमानेके वास्ते प्रपंच में करके साधुवोंके पास न जानेदे वह साध्वी भगवान्‌की आज्ञा के विराधक हैं परन्तु जिसने साधू नाम धरायकर पीले कपड़े करलिये और जो लौकिकमें साधू वाजते है किन्तु व्यभिचारी हैं धन आदिकको रखते हैं किसी सारवीने जो उनका संग किया उनको चारित्रसे जो भ्रष्ट कर देने वाला है ऐसे साधुवोंके जो व्याख्यान आदिक भी होता है और उनको लोग भी मानते हों तो जो साध्वी वैराग्यवान शुद्ध क्रियाकी चलनेवाली धर्मको दीपाने वाली है वह उसके व्याख्यानमें कदापि न जाय अर्थात् उसका मुख भी न देखे किन्तु जो लोग उसके रागमें फँसे हुवे हैं उनसे द्वेष बुद्धि मिटानेके वास्ते व्या-ख्यान न करे क्योंकि लोग तो गाडर प्रभाव है और दृष्टी रागमें गुण परीक्षा नहीं करते अब इस लिखनेमें जो कोई पक्षपात समझे तो मेरे पक्षपात नहीं हैं क्योंकि देखो जो मेरे पक्षपात होता तो मेरे व्याख्यानके दूबरदू कई साध्वीने व्याख्यान किया तो मैं भी उसको निषेध करता क्योंकि देखो ३८ के सालमें गुलाबसेरी साध्वीने मेरे बराबर व्याख्यान बांचाथा और श्रावकोंने मना किया तो भी न मानी और ४३ के सालमें प्रताप श्री साध्वीने व्याख्यान बांचाथा और मेने भी व्याख्यान बांचता था और ४९ के सालमें लक्ष्मी श्रीने व्याख्यान बांचा लोगोंने मना भी किया परन्तु न माना तो अब देखो विचार करो कि हम ऊपर लिख आये हैं उस बमूजिब साध्वीको व्याख्यान नहीं करना था और उन्होंने किया भी तो भी मुझको शास्त्रसे विपरीति उनको निषेध करना न जनाये यह बात मेने अपना पक्ष छोड़कर लिखा जो मुझको पक्ष होता तो जैसा और लोगोंने साध्वियोंके पास पच्चखानादि करना निषेध किया है तैसे मैं भी निषेध करता और साध्वीयोंके व्याख्यान निषेध करनेमें कोई बुराभी न कहता परन्तु जिन्होंने स्याद्वाद अने-कान्त जिन मार्ग अंगीकार किया है उनको पक्षपात रहित होकर जिन वचनकी शुद्ध परूपना करनी चाहिये अब हम सूत्रोंका प्रमाण देते हैं कि साध्वी पुरुषोंके सामने व्याख्यान दें सो सूत्र तो मेरे पास हैं नहीं परन्तु सूत्रोंके नाम लिखता हूं जिसको इच्छा हो सो देखले नसीथ सूत्रकी चूरिणीमें १० वें उदेशमें कहा है कि सूधूको योग वाई नहोतो साध्वी व्याख्यान दे ऐसा ही तपगच्छमें श्री शैनसूरिजी महाराजका १३१ किया हुवा ग्रन्थ प्रश्नोत्तरमें २५४ के प्रश्नमें श्रावक श्राविका सहित साध्वी उपदेशदे तथा महाबल मलिया सुंद्रीना चरित्र तथा रासमें मलिया सुन्दरी साध्वीने राजाको घने दिवस उपदेश दिया है और उपदेश मालामें भी साध्वीको व्याख्यान देना कहा इसलिये साध्वीका व्याख्यान देना ठीक है (प्र०) महाराज साहब आपने जो यह आपसमें ऐसी व्यवस्था कहकर लिखाई इसमें हमको कैसे प्रतीत हो कि कौन जैनी है क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि करे मानेकरे इस वाक्यसे विपरीति कहने वाले जमालीको निन्नव और बहुत संसारी कहा है अब आपके ऊपरके दिखाये हुवे आपसके फ़र्क़ जो हैं इनसे हम किसको तो जैनी कहे और किसको निन्नव कहैं और यह भी सुनते है कि श्री ऋषभदेव स्वामीके ८४ गण

धरये उनके ८४ गच्छथे और श्री महावीर स्वामीके ग्यारह गणधर और नवगच्छथे सो गच्छ नाम किस चीज़का है क्या समाचारिका फ़र्क होनेसे गच्छ है व गच्छ क्या चीज़ है सो आप कृपा करिके इस व्यवस्थाको समझा दीजिये। (उ०) भो० दे० इस हुंड सर्पिणी पञ्चम कालके दोष होनेसे इस श्री वीतराग जिन धर्मके मार्गकी व्यवस्था छिन्न २ होगई क्योंकि देखो कल्पसूत्रमें कहा है यदि उक्तं "वहुवो मुंडा अल्प सरमणा" मुंडा वहुत होंगे और साधू थोड़े होंगे देखो उपाध्यायजी श्री समयसुन्दरजीने वेकर जोड़ी स्तवनमें ऐसा कहा है "जिन धर्म २सव कहेरे थापे अपनी वात समाचारि जूई२करेरे सांसे परचो मिथ्यात" फिर भी देखो उपाध्यायजी श्रीजसविजयजी १२५ गाथाके स्तवनमें कहते हैं गाथा सप्तमी "विषय रसमां गृही माचिया। नाचिया कुगुरुमद पूररे ॥ धूमधाने धमा धम चली ज्ञान मार्ग रह्यो दूररे ॥ और देखो स्तवनकी गाथा–"परमपरादयी लोप अनादि करत विवाद अर्थ करे न्यारी सम्भेगी वती ढूंढ सव मिलकर गच्छ वांध टोलाकर राह विगारी" फिर देखो श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हैं "गच्छना भेद वहु नैन निहालता तत्त्वनी वात करतां न लाजे। उदर भर्णादि निज काज करतां थकां, मोह नडिया कलिकाल गाजे' फिर देखो उपाध्यायजी श्रीदेवचन्द्रजी कहते हैं श्रीचन्द्रानन प्रभुके स्तवनमें "गच्छ कदाग्रह साधवेरे माने धर्म प्रसिद्ध, आत्मगुण अकषायतांरे धर्म न जाने शुद्ध ॥" इत्यादि अनेक महत्पुरुष गीतार्थोंके वचन देखता तो अवारके वक्तमे तो शुद्ध जिन धर्मकी परूपना करनेवाला गुरु कोई विरलाही होगा इसलिये भो देवानुप्रिय इस व्यवस्थाके प्रश्नोत्तरसे दिलको खेचकर अपने घरका काज़ा निकालो देशका काजा किसीसे निकला नहीं इसवास्ते जो तुमको अपनी आत्माका कल्याण करना हो तो जो हम कह आये हैं और जो अगाड़ी श्री वीतरागका मार्ग कहेंगे उन सभी वातोको' अपनी बुद्धिमें विचार कर शास्त्र और युक्ति सहित जो श्री वीतरागका मार्ग सत्य है उसको तो ग्रहण करना और असत्यको छोड़ देना ऐसा जो तुम अपनी बुद्धि मे हेय और उपादेयको अंगीकार करोगे तो श्री वीतरागके मार्गकी प्राप्ती तुम्हारेको होकरके तुम्हारी आत्माका कल्याण हो जायगा जो तुमने गच्छके शब्दका अर्थ पूछा सो अव हम कहते हैं गच्छ नाम समुदायका है वा जो एक सुभियत शुद्ध गीतार्थकी आज्ञामे चलने वाले साधू साध्वी उनका जो समुदाय उसीका नाम गच्छ है और शास्त्रोंमे जो गच्छका लक्षण कहा है सो शास्त्रका प्रमाण देते हैं "जत्थ हिरणा सुवण्णं हत्थेण पराणगं पिनी छिप्पे कारण समप्पिय पिहु गोय मंगच्छं तयं भणिमो ॥ ७० ॥ पुढविदग अगणि मारुअ वणस्सइ तहत साणं विविहाणं मरणं ते विन पीडाकीरइ मणसा तयं गच्छं ॥ ५१ ॥" ऐसा जिसमें लक्षण है वोई गच्छ है और जो तुमने समाचारीके वास्ते पूछा सो अव हम कहते हैं कि हमारे अनुभवमें और शास्त्रके देखनेसे तो सर्व गच्छोंकी समाचारी एक मालूम होती है जो तुमने श्री ऋषभदेव स्वामीके चौरासी गणधर और चौरासी गच्छ कहे और श्री महावीर स्वामीके ग्यारह गणधर और नव गच्छ कहे इन सवोंकी समाचारी एक मालूम होती है जो जुदी २ इनकी समाचारी होती तो जमालीको करे माने अकरे इतने वचन कहनेसे निन्नव और समुदायके वाहिर न निकालते दूसरा जो गच्छोंमें फ़र्क होता तो दिगम्बरीको वोटक

मती निन्नव न कहते और देखो जिस वक्त श्री केशीकुमारजी श्री पार्श्वनाथजीकी परम्-परामें चले आतेथे सो श्री महावीर स्वामीजीकी परम्परामें कई तरहका आचरणामें फर्क था सो जब श्री गौतम स्वामीसे श्री केशीकुमार स्वामीका मुकाविला हुवा उस वक्त श्री केशीकुमार गुरुने शिष्योंकी शङ्का दूर करनेके लिये श्री गौतम स्वामीसे प्रश्नोतर करके श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी आचरणाको छोड़कर वर्तमान काल श्री शासननायक श्री वीर भग-वान्के शासनकी समाचारी अंगीकारकी, यह अधिकार श्री उत्तराध्ययनजीमें है सो उस जगह इसका विस्तार पूर्वक है ऊपर लिखी युक्ति और शास्त्रके प्रमाणसे समाचारी एकही मालूम होती है नतुः जिन धर्में भिन्न समाचारी (प्र०) महाराज साहव आपने प्रश्नके वास्ते मनाकिया परन्तु हम लोगोंके चित्तमें किंचित् सन्देह है-कि देखो श्री वीतराग सर्वज्ञ देवका कहा हुवा स्याद्वाद मार्ग चिंतामणि रत्न समान जिन धर्मको पायकर फेर आपसमें विरोध क्यों करते हैं इसका कारण आप कृपा करके वताइयेगा ? (उ०) भो० दे० इसकाकारण यह है कि श्री यशविजयजी उपाध्यायजी महाराज अध्यात्मसार ग्रन्थमें छठे वैराग भेद अधिकारके विषयमे कहते है कि वैराग तीन प्रकारका है सो वहांके दो श्लोक ७ मा और ९ मा लिखते है– "गृहेन्नमात्रदौर्लभ्यं लभ्यंते मोदका व्रते । वैराग्यस्याय मर्थोहि दुःखगर्भस्य लक्षणं ॥ ७ ॥ कुशास्त्राभ्याससंभूतभवनैर्गुण्यदर्शनात् । मोह गर्भ तु वैराग्यं मतं बालतपस्विनां ॥ ८ ॥ सिद्धान्तमुपजीव्यापि ये विरुद्धार्थभाषिणः । तेषा मप्येतदेवेष्टं कुर्वतामपि दुष्करं ॥ ९ ॥ संसारमोचिकादीनामिवैतेषां न तात्विका । शुभोपि परिणामो यज्जाता ज्ञानरुचिस्थितिः ॥ १० ॥ अमीषां प्रशमोप्युच्चैर्दोषपो-षाय केवलं । अंतर्निलीनविषमज्वरानुभवसन्निभः ॥ ११ ॥ कुशास्त्रार्थेषु दक्षत्वं शास्त्रा-र्थेषु विपर्ययः । स्वच्छंदता कुतर्कश्च गुणवत्संस्तवो ज्झनं" ॥१२॥ अर्थ–अहो घरमें तो पूरो अन्न पण मिले नहीं अथवा माता पिता मरगये इधर उधर भटकता फिरे अथवा किसी का देना बहुत होगया अथवा किसी राजाका भय आदिसे विचारने लगा कि इससे तो मेरेको दीक्षा अर्थात् किसी जैनीसाधूका चेला होजाना ठीक है क्योंकि मुझको लाडू आदिक अनेक मालकी प्राप्ती होगी तो दीक्षा लेनेमें कुछ दुःख नहीं ऐसा जान करके अथवा अपने दुःख निवृत्ति पेट भरनेके वास्ते जो कोई दीक्षा लेता है उसका नाम दुःख गर्भित वैराग्य है अब मोह गर्भित वैराग्य के श्लोकों का अर्थ करते हैं : अर्थ–कुशास्त्र के अभ्यास होने से प्रगट हुवा जो संसारका निर्गुणपना उसीका नाम मोह गर्भित वैराग्य है जो बाल तपस्वी आदिक जानलेना ॥ ८ ॥ जो सिद्धान्तों से उपजीवन अ-र्थात् अपनी आजीविकाके वास्ते जो सूत्रको अर्थ विपरीत कहे है सो प्राणी दुष्कर करणी कहतां कष्टकृपाकरे है तो पिण उसको वैसाही जानलेना ॥९॥ संसारके दुःख छु-ड़ानेके अर्थ जो मुसल्मान घोड़े आदिक को दुःखी देखकर उसको दुःख से छुड़ानेके वास्ते दया भाव करके मारडाले है वह मुसल्मान पिण शुभ प्रणाम की बुद्धि रखते हैं तो भी परमार्थ पापही जानना तैसे ही मोह गर्भित वैराग्य वालेको प्रणाम शुभहोय तो भी परमार्थ मे ज्ञानकी रुचि होवे नहीं ॥ १० ॥ जैसे अन्तरंग मे हाड़ज्वर शरीर मे लीन हो-कर दुःखदायी होता है तैसे ही मोह गर्भित वैराग्यवालेको प्रसम आदि अर्थात् क्रिया अ-

नुष्ठान आदिक जो करता है परन्तु वो क्रिया आदिक केवल दुःखदायी है लेकिन् गुणकारी नहीं है क्योंकि मिथ्यात्व गयेविना वैराग्य भी दुःखदायी है ॥ ११ कुशास्त्र के अर्थ करने में बड़े चतुर हे और शास्त्रका अर्थ विपरीत अर्थात् अपनी जबान से निकले हुवे खोटे अर्थ को परभव से नहीं डरते हुये कुयुक्ति लगाय कर सर्वज्ञों के वचन को अन्यथा सिद्ध करते हे और प्राचीन नवीन जो शुद्ध अर्थ कहने वाले हें उनके अर्थ को नहीं मानते हे और स्वइच्छा बमूजिब चलते हे और किसी के साथ में मेल नहीं रखते हे कैसाही कोई गुणी होय उसकी कदापि प्रशंसा नही करें किन्तु अपनी प्रशंसा और दूसरे गुणी जनकी निन्दा से काम रक्खे हे ॥ १२ ॥ अब देखो श्री यशविजय जी महाराजके कहने से ऊपर लिखे तीन वैराग्य मे से प्रायः करके दुःख और मोह वैराग्य की बाहुलता दीखे है इस कारण से जो वर्त्तमान कालमें साधू लोग जब तक उनके दुःखकी निवृत्ति वा अपनी दुकानदारी न जमे तब तक तो वे कृपा अनुष्ठान कपटसे करके लोगोको अपने रागमे बांधकर दूसरे साधुओंसे द्वेष करायकर निश्चल हो बैठते है क्योंकि जो वे लोग अपना राग और दूसरेसे द्वेष न करावें तो जो लोग उनके पास आने वाले हे जो वे दूसरेके पास जाय और उनकी सोहबत करें और उनसे जो होय गुणकी प्राप्ति उस गुणसे वुद्धिकी निर्मलता होनेसे पहले जो बँधा हुवा दृष्टी राग और उनकी कपट क्रिया और दम्भपना मालूम हो जाय तो फिर वो उनका संग न करे इसलिये वो पहलेसे ही अपनी दृष्टीरागमें फँसायकर कहते हैं कि देखो जो तुम उनका संग करोगे तो तुम्हारी समगत भ्रष्ट हो जायगी क्योकि उनकी श्रद्धा ठीक नहीं है इतने वचनको वो सुनकर रागी श्रावक उन्हीके पशु बने रहते हैं औरोंके पासमें नहीं जाते हैं और उस दृष्टि रागसे उन श्रावकोको उन साधुवोंके अवगुण भी नहीं दिखता है क्योकि जगत्‌की चालहे-(दोहा) रागी अवगुणना गिने, यही जगतकी चाल ॥ देखो काले कृष्णको कहत जगत सब लाल ॥ और भी देखो श्री देवचन्द्रजी महाराज कहते है कि दृष्टि रागनो पोष जहां समकितगीने स्याद्वादकी रीति न देखे निज पनै ॥ इसवास्ते इस हुन्डा सर्पिणीके दूषणसे पञ्चम कालमें ज्ञान वैराग्यकी अधिक न्यूनता होनेसे और दो प्रकारके ऊपर लिखे हुये वैरागकी वाहुल्यता होनेसे जिन धर्मकी ऐसी व्यवस्था हो रही है सो इसके ऊपर एक दिवाली कल्पका दृष्टान्त देताहूं कि मैने एक दफै दिवाली कल्पमें ऐसा वांचाथा कि जिसका भावार्थ थोड़ासा यहां लिखताहूं सो वह भावार्थ यह है-"कि जंगलमें एक सिंह रहताथा सो वो सर्व पशुओंका तिरस्कार करताथा सो उसकी दहशतसे कोई पशु उसका सामना करनेके योग्य नहींथा परन्तु कितनेही दिनके वाद उस सिंहका जीव तो निकल गया और खाली शरीर रहगया सो उस सिंहके शरीरको देखकर कोई पशु उसके पासमें आयकर तिरस्कार न करसका क्योंकि पहिलेके जो प्रबल तेज उसके डरे हुए तिरस्कार न करसके परन्तु उस सिंहके शरीरमें जो उत्पन्न हुई कृमि वो कृमिही उस सिंहका तिरस्कार करने लगी। इस दृष्टान्तको दार्ष्टान्त पर उतारते हें देखो कि श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवका चलाया हुवा जो स्याद्वाद जिन धर्मरूपी सिंह जिसमें प्रबल प्रतापवाला जाति स्मरण आदि ज्ञान प्रबल तेजरूप सिंहके जीवने अन्यमत सर्व पशुवोंका कियाथा तिरस्कार सो तो हुंडा सर्पिणी पंचम

कालके दूषणसे जिन धर्म सिंहका जातिस्मर्ण ज्ञानादिवाला जीव तो चला गया खाली जिन धर्मरूपी शरीर रहगया सो इस शरीरसे इस शरीरका अभ्यमत सर्व पशु पेश्तरके डरे हुये तिरस्कार न करसके परन्तु इस जैनरूपी शरीरमें उत्पन्न हुई कृमि नाम वेष धारी सो आपसमें विरोध अर्थात् झगड़ा करते हुये जैनरूपी शरीरका तिरस्कार करते हैं इसलिये ऊपर लिखी बातोंसे ज्ञान वैराग्यके न होनेसे यह व्यवस्था हो रही है शास्त्रोंके देखनेसे तो ऐसा मालूम होता है कि राग द्वेष अनन्तान बंधी चौकडी आदिकोंको जिन मार्गकी रीतिसे जैनी लोगोंको मिटाना चाहिये परन्तु मिटना तो एक तरफ़ रहा और प्रबल होता चला जाता है कि देखो आत्मारामजी लिखते हैं कि गुजरातके लोग बड़े हठीले और पक्षपाती होते हैं और जितने मत मतान्तरकी खेंचतान गुजरातमें है जितनी किसी जगह न होगी और जितनी बातें नवीन जिन धर्ममे चली है सो सर्व गुजरातसेही चलती है परन्तु अब पंद्रह सोलह वर्षसे मारवाड़ लश्करादि पूर्व देशमें वा दिल्ली आदि देशोमे भेष धारियोने ऐसा राग द्वेष बढ़ा दिया है कि देखो ३४ के सालसे पहले लश्कर वा आगरेमे ऐसा समता पुरणामथा कि क्षेत्रोंकी सब कोई शोभा करतेथे और धर्मका अच्छी तरहसे निर्वाह होता था परन्तु ३४ के सालसे ऐसा कदाग्रह हो गया है कि बिल्कुल श्रावकोंमे सम्मत न रहा और राग द्वेष इतना बढ़गया कि सिवाय क्लेशके बिल्कुल धर्मकी व्यवस्था न रही और देखो मारवाडमें पाली अजमेर आदि क्षेत्रोंमें जो कि अगाड़ी किंचित् राग द्वेष और खेंच तान आपसमे करतेथे सो २७–२९के सालमें जो श्री शिवजी रामजी पाली आदिक क्षेत्रोंमें विचरते थे सो ३१–३२ के साल तक सब जगहकी खेचतान मिटाय करके सब समुदायको इकट्ठी करदी और आपसमें सब लोगोंमें सम्मत करादी और अच्छी तरह धर्म ध्यान होता था ऐसा मेरे श्रवण करनेमें श्रावक लोगोंकी ज़बानीसे आया है परन्तु उनदिनोंमें साधू लोगोंका श्रावक लोगोंके बहुत परच्यारथा और साधु लोगोंका विचरना इस मुल्कमें कमथा यह समुदायका रंग मैंनेभी ३१–३९ के सालमे चौमासा करके देखा तो उन दिनो तो समुदायमें कोई तरहका विषमवाद न था परन्तु उसही ३९ के सालमें जयपुरमे श्रावक श्राविकोंमें इतना राग द्वेष हुवा सो अभीतक बढ़ता हुवा चला जाता है और अजमेरभी श्रावकोंके आपसमें मन राग तो इतना है कि उनकी आत्मा जाने या ज्ञानी जाने सिवाय द्वेष बढानेके किंचित्भी सम होनेका कोई उपाय नहीं दीखता अब न मालूम इन लोगोंकी क्या गति होगी कि यह नाम तो साधू धराते हैं आप लडते है और गृहस्थियोंको लड़ाते हैं; अन्य मतीको हँसाते हैं; जिन धर्मकी हीलना कराते है; हा! इति खेदे! इस जैन धर्ममें कोई सिरधरा न होनेसे इस हुंडा सर्पिनी काल पंचम औरमें दुःख गर्भित मोह गर्भित वैराग्य वालोंकी कैसी बन पड़ी दुःखसे छुटाना और मालाका खाना और जगत्में पुजाना और ऐसा सोचना कि "यह भव तो परभव किसने दीठा" ऐसा इनका जो विचार होय तो इनकी बड़ी भारी अज्ञान दशा है कि देखो श्री यशविजयजी उपाध्याय अध्यात्म मत परीक्षा ग्रन्थमें कहते हैं कि जो भेषधारी गृहस्थियोके चोखे २ माल लायके खाते हैं परन्तु उनको परभवमें उन गृहस्थियोंके गाय, भैंस, ऊंट. गोला आदि बनकर उस माल खानेका बदला देना पड़ेगा और भी देखो वर्तमानमें कई साधू साध्वी ऐसा भी कहते हैं

कि जिस गच्छकी समुदाय बहुत है उसकी देखा देखी न करे और शुद्ध अशुद्धकी जो खोजना करे तो वह जियास्ती समुदाय वाले हम लोगोंका सत्कार आदि न करे तो अब देखो कि जिन साधु साध्वियोंकी ऐसी इच्छा है और जो वे देखादेखी करने वाले हैं तो अब कहो इनमें ज्ञान वैराग्यका क्योंकर भेप मिले देखो श्री यशविजयजी उपाध्यायजी अध्यात्मसारके दशवें अधिकारमें जो पांच प्रकारके अनुष्ठान कहे है सो यह है—१ विषय २ गरुल ३ अन्योन्या ४ तद्धेतु ५ अमृतक्रिया, सो देखो पहले तीनको तो बिल्कुल निषेध किया है "निषेधायानयोरेव विचित्तानर्थदायिनोः ॥ सर्वत्रैवानिदानत्वं जिनेंद्रैः प्रतिपादितं ॥ ७ ॥ प्रणिधानाद्यभावेन कर्म्मानध्यवसायिनः ॥ संमूर्छिमप्रवृत्त्याभमनतुष्ठानमुच्यते ॥८॥ " अब इन पांच अनुष्ठानोंमेंसे पूर्व उक्त दो अनुष्ठान तो सर्व तीर्थकरोंने निषेध किये है क्योंकि ये महा अनर्थके उपजाने वाले है और ऐसेही तीसरा भी देखा देखी जो अनुष्ठान है जो क्रियाका अद्यव सहाय रहित पणा शून्य मनकी प्रवृत्तिये अथवा देखा देखी जो क्रिया करे सो अन्योन्या अनुष्ठान है इसका विस्तार अध्यात्मसारमें बहुत खण्डन मण्डनसे किया है जिसकी इच्छा हो सो देखो परन्तु भगवान्‌की आज्ञामें शास्त्र ध्ययन पेक्षत जो अशुद्ध क्रियाका करना सो कदापि शुद्ध फलका देनेवाला न होगा इसीलिये दीवाली कल्पमे लिखा भी है सो दीवाली कल्पमें भी अन्य शास्त्रकी साक्षी दी है कि श्री वीर भगवान्‌के शासनमें आचार्य्य साधू, साध्वी, श्रावक, श्राविका, ये पांचनैाकड़ा जैनी नाम धरायकर नरकमें जांयगे सो इस लेखसे ऐसाही मालूम होता है कि जो हमने ऊपर लिखे जो वैराग्य और अनुष्ठान और कारण बतलाये है उन चीजोंके प्रवर्त होने वाले आचार्य और साधू साध्वी उनके रागमें फँसे हुवे जो श्रावक और श्राविका सो नरकमें जाते दीखे है क्योंकि सर्वज्ञका वचन है सो हे देवानु प्रिय! ऊपर लिखी हुई व्यवस्थाको सुनकर चित्तसे कदाग्रहको दूर हटाकर राग द्वेष रहित निर्मल बुद्धिसे श्री वीतराग सर्वज्ञ देवका प्रकाशा हुवा जो शुद्ध जिनधर्म उसमें देव गुरु निमित्त कारण जानकर अपनी आत्माको उपादान कारण समझकर जो कि अब हम तुम्हारे चौथे प्रश्नके उत्तरमे कहैंगे उसमें कारण कार्य उत्सर्ग अपवाद समझकर शुद्ध सर्वज्ञ वीतराग आरिहंतदेवके वचनों पर श्रद्धा रखकर अपनी आत्माका कल्याण करो कि जिससे अनादि संसार और जन्म मरण रूपी दुःखसे दूर होकर सादि अनन्त सुखको प्राप्तहो अर्थात् मोक्षको प्राप्तहो ॥

इति श्री मज्जैन धर्माचार्य मुनि चिदानंदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकरे गच्छव्यवस्था निर्णय वर्णनोनाम तृतीय प्रश्नका उत्तर समाप्तम् ॥

अथ चतुर्थ प्रश्न का उत्तर प्रारंभः ॥

अथ चतुर्थ प्रश्नमें जो तुमने श्री वीतरागकी आज्ञारूप उपदेश पूछा सो सुचित्त चित्त होकर सुनो कि जो वीतरागकी शुद्ध आज्ञा है सो गुरु परम्परा वा अनुभव अथवा शास्त्रों

के संयुक्त कहता हूं कि प्रथम इस सर्वज्ञ देव वीतरागकी वाणीका संबंध आदि चतुष्टय कहताहूं कि प्रथम ग्रन्थकी आदीमें १ सम्बन्ध २ विषय ३ प्रयोजन और चौथे अधिकारी यह चार अनुबन्ध होतेहैं जब तक यह चार अनुबन्ध ग्रन्थके आदिमें नहीं हों तब तक जिज्ञासूकी प्रवृत्ति नहीं होती इसवास्ते ग्रन्थकर्ताको सम्बन्ध आदिक चतुष्टय अवश्यमेव कहना चाहिये (शंका) कोई ऐसा विचार करे कि ग्रन्थकी आदिमें करना चाहिये तो तीन प्रश्नोंके पहले संबन्ध आदि चतुष्टय क्यों नही कहे ? (समाधान) आदिके जो तीन प्रश्नो के उत्तर दिये हैं उनकी आदिमें जो संबन्ध आदिक चतुष्टय नहीं किये उसका कारण यह है कि उन तीन प्रश्नोंके उत्तरमें वीतरागकी स्याद्वाद रूप वाणीका है ज्ञेय उपादेय रूप कथन नहीं था किंतु जिज्ञासूको दृढ़ करानेके वास्ते उन तीन प्रश्नों के आदि में एक वाक्य रूप विलास दिखायाथा इसवास्ते न किया दूसरा कर्ता की इच्छाके अभाव से तीन प्रश्नकी आदि में न किया तीसरा कारण यह है कि श्री वीतराग सर्वज्ञ देवाधिदेव श्री अरहंत भगवंत के वचन रूप अमृत को पान करने वाला योग्य होगा सो ही करेगा इसवास्ते कर्त्ता ने सम्बन्धआदि चतुष्टय वीतराग के सत्य उपदेश निरूपण मेंही मुख्यता जानकर और उनकी यहां कहने की इच्छा करके आदि में न कहे क्योंकि इस ग्रन्थकर्त्ता को वीतरागके हेय ज्ञेय उपादेय रूप उपदेश पर दृढ़ विश्वास और रुचि होने से भव्य जीवों का इसी प्रश्न के उत्तर में उपकार जाणकर इस जगह ही वर्णन करने की इच्छा हुई सो सम्बन्ध चतुष्टय यह है कि १ सम्बन्ध २ विषय ३ प्रयोजन ४ अधिकारी । प्रथम सम्बन्ध किस को कहते हैं कि ग्रन्थका और विषय का प्रतिपाद्य और प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है ग्रन्थ प्रतिपादक है और विषय प्रतिपाद्य है जिस का प्रतिपादन करने वाला होवे सो प्रतिपादक है और जो प्रतिपाद्य करने के योग्य होवे सो प्रतिपाद्य है और अधिकारी का वा फल का प्राप्य प्रापक भाव सम्बन्ध है फल प्राप्य है अधिकारी प्रापक है जो वस्तु प्राप्त होवे उसको प्राप्य कहतेहैं जिस को प्राप्तहोवे सो प्रापक कहिये अधिकार और विचार का कर्तृ कर्त्तव्य भाव सम्बन्ध है अधिकारी कर्त्ताहै और विचार कर्तव्य है करने वाला होवे सो कर्त्ता कहिये है और करने के योग्य होवे सो कर्त्तव्य कहिये है ऐसेही जन्य जनक सम्बन्ध आदि अनेक प्रकार के सम्बन्ध जानलेना इस ग्रन्थ में विषय क्या चीज है जो वीतराग की कही हुई वाणी जिस में जो हेय, ज्ञेय उपादेय आदिक है यही इस ग्रन्थका विषय है जिस चीज को प्रतिपादन करो है सो विषय कहलाता है इस ग्रन्थ का प्रयोजन क्या है ? ज्ञेय को जानना और हेय को छोड़ना और उपादेय को ग्रहण करना उससे जो परमानन्द की प्राप्ती होना और जन्म मरण रूपी दुःखकाहेतु अनर्थ उसको हेय जानकर छोड़ना अर्थात् उससे निवृत्तहोना यही ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन है अब अधिकारीका लक्षण कहते हैं कि अधिकारी भव्यजीव है भव्यजीव का लक्षण यह है –" पंचसमवाय आदि मिलन ज्ञानादि अनन्त चतुष्टय भवतु इतिभव्यः" यह तो भव्य का लक्षण हुवा अब संसारी जीव तीन प्रकार का है एकतो अभव्य २ जाती भव्य ३ भव्य अब अभव्य तो उस को कहते हैं कि जैसे बंझा स्त्री होय अर्थात् जिस के किसी रीतिसे सन्तान नहीं हो तैसेही अभव्य जीव जो है सो भी वैराग्य आदि चारित्र

अंगीकार करे परन्तु अन्तरङ्ग चारित्र में पलटण स्वभाव न होने से देवलोकादि मे तो जाय परन्तु मोक्षमे न जाय दूसरा जातीभव्य जैसे औरत का व्याह हुवा और पति मरगया उस औरत मे सन्तान होने की कुदरत तो है परन्तु पुरुष का सयोग न होने से सन्तान नहीं हो ऐसेही उसे जातीय भव्य जीवको कारण संयोग मिलने से तो मोक्षकी प्राप्तिहोय परन्तु अनन्ता काल होगया और अनन्त काल होजायगा किन्तु उस निगोद मेही बना रहेगा इसलिये उसको जातीय भव्य कहा तीसरा जो भव्य है उसके दो भेद हैं एकतो दूर भव्य दूसरा निकट भव्य दूर भव्य उसको कहते हैं कि जैसे स्त्री का व्याह हुवा और पुरुष का संयोगभी हमेशा उसका बना रहा है और सन्तानकी उत्पत्ति बहुत काल पाछे होवे ह उसको दूरभव्य कहते हे कि जैसे स्त्री का व्याह होतेही सन्तान की उत्पत्तिहो- जाय तैसेही निकटभव्य को कारण सामग्री मिलने से मोक्षकी प्राप्ती होय ऐसे श्री वीतरा- ग अरिहंतदेवने केवल ज्ञानसे देखकर शास्त्रों में वर्णन किया सो मैने भी उनके अनुसार किञ्चित् रूप करके जीवों का स्वरूप लिखा अब जो कोई कहे कि उस भव्य जीवको क्या कारण सामग्री मिलने से मोक्षहोती है ? सो कहो तो हम कहते है कि जीव अना- दि कालका मिथ्यात्व में पड़ा हुवा नदी घोल न्यायेन अर्थात् जैसे कोई पहाड़ के ऊपर पानी बरसने से उस पानी के साथ पत्थर पड़कर नदी मे लुड़कता हुवा पानीके वेगमें ठोकर खाताहुआ चिकना सुहावना अर्थात् कोई तरहका एक आकार को प्राप्त हुवा तैसेही वह जीव जन्म, मरण अकाम निर्जरा करता हुवा संज्ञी पंचेन्द्रिय वा मनुष्यपने को प्राप्त हुवा ऐसी काल लब्धीके संयोगसे मर्कट वैराग्य अथवा और कोई कारणसे वैराग्य उदासीन प्रणामसे ज्ञानावर्णी, दर्शनावर्णी, वेदनीय अंतराय ४ कर्मोंकी ३० कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति और गोत्र कर्म नाम कर्मकी २० कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति है और मोहनी कर्मकी ७० कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति है और एक आयु कर्मको छोड़कर ऊपर लिखे सात कर्मोंकी एक कोड़ा कोड़ी सागरोपममेंसे १ पल्योपनका असंख्याता भाग करे और एक भाग उस कोड़ा कोड़ी सागरोपममेंसे कमती करके ऊपर लिखी कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थिति राखे बाकी १९ और ६९ और २९ कोड़ा कोड़ी सागरोपम और कुछ अधिक खपावे अर्थात् दूरकरे इसको यथा प्रवृत्ति करण कहतेहैं इस करण को जीव अनंतीवार करे परन्तु कोई कार्यकी सिद्धि होय नहीं इसलिये इसको यथा प्रवृत्ति करण कहा है जैसे कोठीमे नाजभरा हुवा है और नीचेका ढकना खोलनेसे बहुत नाजका नीचे वा बाहिर ढिगला हो जाय परन्तु उस कोठीके चारों तरफ़ और कोनोंमे लगा हुवा नाज उस ढक्कनके खोलनेसे नहीं निकलता इसलिये जीव १ कोड़ा कोड़ी सागरोपम पल्योपमका असंख्यातवां भाग न्यून स्थिति रखकर बाकी सब कर्म दूर करदे उस वक्त कोई जीव किञ्चित् विशेष प्रणामसे अपूर्व करण करे सो अपूर्व करण ऐसा स्वरूप है—जो एक कोड़ा कोड़ी सागरोपमकी स्थितिसे कुछ कम जो स्थिति उसमेंसे एक अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दोघड़ीसे कुछ कम और अनादि मिथ्यात्व जो अनंतान बन्धी क्रोधमान माया लोभकी चौकड़ी है सो खपानेके लिये अज्ञान जो हेय है उसको छोड़े और ज्ञान जो उपादेय है उसको आदरे वा अंकीकार करे यह इच्छा रूप अपूर्व अर्थात् पहले कभी नहीं आया होय ऐसा जो परिणाम उसको अपूर्व करण कहते

हैं इस अपूर्व करणमें त्यागरूप, और ग्रहण रूप परणाम पेश्तर कभी नहीं आयाथा इसलिये इसको अपूर्व करण कहा अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि अपूर्व नाम तो थोड़ीसी देर ठहरनेका है क्योंकि थोड़ीसी देर ठहरकर फिर परणाम गिर जाय फिर आ-जाय जैसे किसीके पुत्र होकर मरगया और फिर दूसरा पुत्र हुवा तब वो उसको अपूर्व मानकरही आनन्द मानेगा ऐसा अपूर्वका अर्थ होता है तो हम कहते हैं कि जिसको ऐसी शंका होती है और जो ऐसी कोटी उठाता है वह जिन आगमके रहस्यको नहीं जानता है क्योंकि देखो जो कि पेश्तर अपूर्व करण करता है सो अपूर्व करण अनादि शांत है इसलिये अपूर्व करण वही बनेगा और जो वह थोड़ी देर ठहरनेको अपूर्व मानते हैं सो सादि शांत अपूर्व करण है और अपूर्व करण करनेके बाद अनिवृत्ति करण करके जो समगतकी प्राप्ती होवे उसके बाद फिर इन पिछले किये हुवे करणोंको कोई जीव न करेगा इसलिये वह अपूर्व करण अनादि शांतही है देखो यहां दृष्टान्त देते हैं—कि कोई तीन पुरुष मन वांछित नगरकी इच्छा करके पुरसे चले सो महा विकट अटवी अर्थात् जंगलमे गये सो रास्तेमें जाते हुवे दो चोरोंको सामनेसे आते हुवे देखे उन चोरोंको देखकर एक तो पीछा घर भग गया और दूसरेको पकड़ लिया और तीसरा उनसे लड़कर और मार पीटके अपने प्रबल बलसे अगाड़ी चल दिया यह दृष्टान्त हुवा अब दार्ष्टान्त कहते हैं—कि अभव्य और दूरभव्य और निकट भव्य ये तीनों समगत रूपी नगरके वास्ते जातेथे सो जन्म मरण रूपी अटवीमें राग द्वेष रूपी चोरोंको आते देखकर अभव्य तो भग गया और दूर भव्यको अपूर्व करणके पासही पकड़ लिया और निकट भव्य जो था सो उन राग द्वेष रूपी चो-रोंसे मार पीटकर अपूर्व करणसे निकलकर अनवृत्ति करणमे प्रवेश कर गया । अब यहां प्रसंग गत बात याद आगई है सो भी लिखते हैं कि कितनेही आग्रन्थ अनुसार तथा विधि परम्परा वाले कहते हैं कि भव्यको पूर्व सुर्त नहीं होय तथा कोई एक ग्रन्थमें ऐसा कहा है कि पूरा दश पूर्व नहीं होय नो पूर्वसे कुछ अधिक होय अब इस जगह बहु श्रुत कहे सो ठीक परन्तु जिसने दशा पूर्व संपूर्ण पढ़े होंय उससे अगाड़ी चौदह पूर्व तक नियम करके समगत है यदि युक्तं श्री कल्प भास्ये "चउदसदसय अभिन्ने नियमा सम्मत्त सेसयामयणा" पूर्वोक्त अपूर्व कारण उससे निकलकर जो ग्रन्थीको भेदनेके वास्ते वज्ररूपी परिणाम करके तथा भूतते जीव विशुद्ध मन परणामकी निर्मलता बढनेसे मुहूर्त मात्र अनिविर्ती करनेमें गयोथको ग्रन्थ भेद करता अन्तर मुहूर्त लगे तिहां चढते परिणामै ग्रन्थी भेदकरी अनिविर्ती करण करे तिस करके अति विशुद्ध परिणाम धारासूं मिथ्यात्व मोहनीके पुञ्जकी दो स्थिति होय तिसमें पहली स्थिति अन्तर मुहूर्त्त वेदे याने एक अन्तर मुहूर्त्त जो कि कोड़ा कोड़ी सागरोपममां पल्योपमका असंख्यात्वां भाग न्यून, प्रणाम जो स्थिति रहीथी उसमेंसे अन्तर मुहूर्त्त प्रमाण जुदी खेंचे बाकी शेष रही हुईको जुदो पुञ्जराखे इन दोनों स्थितिके बीचमें जो खाली जगह रही उस अनिवृत्ति करणके जोरसूं अन्तर करण करे वो अन्तर मुहूर्त्तके दलियोंको खपावे और मोटी स्थितिमेंसे आवते दलियोंको उप समावे अर्थात् दबाय देवे, अन्तर मुहूर्त्त तक उदय न आवे ऐसा करे इसलिये अनवृत्ति करणमें दो कार्य करे एक तो मि-थ्यात्व स्थितिके दो भाग करे और अन्तर करण करे और दूसरे अन्तर मुहूर्त्त वेदे

प्रथम लघु स्थितिको खपावे इतनेमें अनवृत्ति करण काल सम्पूर्ण होय तिस पीछे अगाड़ी अंतरकरणमें प्रवेश करे उस वक्त हे नाथ! आपकी कृपासे क्षायक आदनी परे उत्कृष्टो नहीं पिण सामान्य पणे अल्पकाल उप समनाम समकित पावे सो समकित पानेसे आनन्दकी प्राप्ति होती है सो उपमा करके दिखाते हैं कि जैसे कोई पुरुष शूरवीर रण संग्राममे चढ़े और वैरीको जीते उस वक्त परमाअनन्दको प्राप्त होता है तैसेही अनादिकाल का ये राग द्वेषरूप महान् शत्रु तज्जनत अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभ ये चार वैरियोंको जीतकर परमाअनन्द सरीखी समकितको पायकर जो अन्तरकरण करता है और जो आनन्द होता है सो गाथासे दिखलाते हैं गाथा—"संसार गिमत वियो ॥ तत्तो गोसी सचंदण रसोव्वं, अई परम निवुं इकरं, तस्सं तेलहइसम्मतं ॥" संसार गिम्म क० कोई वटोई उष्णकालके मध्याह्न समय मरुस्थल देश सरीखे जंगलमें चलते हुये सूर्यकी किरणोंकी उष्णतासे तप्त होकर और लूओंकी झपटसे अतिव्याकुल और तृषा जिसको लगरही है इत्यादि अनेक व्याकुलता संयुक्त उस वटोईको उस जंगलमें शीतल मकान मिले फिर कोई उस मकानमें वामना चन्दन का रस उसके ऊपर छींटे और शीतल जल पिलावे उस वक्त उस वटोईको कैसा आनन्द प्राप्त होय इसीरीतिसे यहां भव्य जीवरूप वटोई अनादिकाल का संसाररूप अटवी मे उग्र उष्णकाल जन्म मरणादिरूप निर्जल वन में कषायरूप उग्र ताप करके पीड़ित और रोग शोक आदि लूहके झपट्टा उन करके जलाहुवा तृष्णारूप मोटी प्यास करके गला सूखता हुवा अत्यन्तपीड़ा पाता हुवा अनवृत्ति करणरूप शुद्धसरल मार्ग दूरसूं अन्तरकरणरूप शीतल स्थान देखकर खुश होकर घुसताहुआ उस स्थानमें वमना चन्दनरूपी उपसम समकित को प्राप्त होता हुवा उस वक्त अनन्तानुबंधी मिथ्यात्व कृत परिताप अथवा तृषाआदि सर्व व्याधि मिटगई इसरीति से तीन करण का स्वरूप कहा अब इसजगह प्रसङ्गगत सिद्धान्त से और कर्म ग्रन्थ का जो भिन्न २ मतान्तर है उसको किञ्चित् दिखाते हे कि सिद्धान्त मत से तो विराधक समगती समगतसे गिगहुवा अनवृत्ति करणमें जो कही हुई स्थिति उससे उत्कृष्टी कर्मोंकी स्थिति न बांधे और दूसरा सिद्धान्तमें यहभी है कि समकितसे गिराहुवा फिर समकित पाय करके कोई जीव एक जीव छटी नारकी तकभी जाय और कर्मग्रन्थ वाला ऐसा कहता है कि जो समकित पाय करके समकितसे पीछा पड़े तो कर्मोंकी उत्कृष्टी स्थिति नहीं बांधे सो उत्कृष्टी स्थिति ३०,२० और ७० की न बांधे इससे कमती कितनी ही बांधो और दूसरा जो समकितसे पड़ाहुवा फिर समगत पावे तो वैमानिक विना दूसरी आयू बांधे नही यदि युक्तं "सम्मत्तंमिउलद्धं विमाणवज्जं न वंधए आउ। अहवन्न संमत जहो, अहवनवंधा उ ओपुविं ॥" अब ये जो सिद्धान्त और कर्मग्रन्थका जो आपसमें विरोध है इस में जीवोंको कईतरहके विकल्प उठते हे सो सिद्धान्तके रचनेवाले तो सर्वज्ञ हैं जो कोई ऐसा कहे है कि सर्वज्ञकी कहीहुई द्वादशाङ्गी तो वारह वर्ष दुःख काल आदि पड़नेसे साधुओंको कंठस्थ न रही इसवास्ते पीछेसे श्री देवर्धीक्षमाश्रमण आदि आचार्योंने साधुवोंको इकट्ठे करके जो कण्ठसूत्र रहे उनका संग्रह करके पुस्तकों लिखा है तो हम कहैहैं कि श्री देवर्धीक्षमाश्रमण आदिक आचार्य्य पूर्व धारीथे इसवास्ते किंचित् श्रुत केवली

के समानहीथे और कर्म ग्रन्थके कर्त्ताभी गीतार्थ बहुश्रुतथे फिर सिद्धान्तसे मतान्तर कहना सो सम्भव नहीं होता इसवास्ते इन दोनो सिद्धान्तकार और कर्मग्रन्थके कर्त्ताका विरोध मिटानेके वास्ते जैसा मेरे अनुभवमें दोनोंका अभिप्राय आता है सो लिखाताहूं कि देखो सिद्धान्तकार जो कोड़ा कोड़ी सागरोपम किंचित् न्यून स्थिति मानते हैं सो अभिप्राय यह है कि जो उत्कृष्टी स्थिति कर्मोंकी बांधनेवाली जो अनादिकालकी मिथ्यात्वरूप ग्रन्थी थी सो तो निवड मिथ्यात्वरूप ग्रन्थीको पेश्तर छेदकर समगतकी प्राप्तीकी तो जो अनादि कालसे मिथ्यात्वरूप ग्रंथी कर्मोंकी उत्कृष्टी स्थिति बांधतीथी सो तो नष्ट होगई और समगतसे गिरेहुवे जीवको निवड़ मिथ्यात्वरूप अनादिकी ग्रंथी तो फिर उत्पन्न होय नहीं इसवास्तेही वह फिर यथा प्रवृत्ति अनिवृत्ति आदिक करण न करे अनादि मिथ्यात्व न होनेसे जो स्थिति सिद्धान्तमें कही है उससे जियादः न बांधे और जो कदाचित् उत्कृष्टी स्थिति मानोंगे तो ग्रन्थी भेद करनेवाला और दूसरा नहीं करनेवाला दोनों बराबर हो जांयगे और समगत पायके बाद जो उत्कृष्टा संसारमें रुले तो अर्ध पुद्गल परावर्त्त करे तो इस कहनेकोभी विरोध आजायगा क्यों कि जैसे ग्रन्थी अभेदीभी उत्कृष्टी स्थिति बांधे तैसेही ग्रंथी भेदीभी उत्कृष्टी स्थिति बांधे तो ग्रन्थी भेद करनेका फलही क्या हुवा इसवास्ते कर्मग्रंथ करनेवालेका अभिप्राय ऐसा मालूम होता है कि जो सिद्धान्तमें कहा है उससे उत्कृष्टी स्थिति न बांधे क्योंकि उत्कृष्टीस्थिति नबांधे ऐसा कर्म ग्रन्थवाला कहता है इससे हम यह अभिप्राय लेते हैं कि जो शास्त्रमें कही उससे उत्कृष्टी न बांधे क्योंकि जो गीतार्थ बहुश्रुत होते हे सो सिद्धान्तसे विरुद्ध कदापि न कहेंगे जो ऐसेही बहुश्रुत सिद्धान्तोंसे विरुद्ध कहेंगे तो फिर सिद्धान्तोंका कहना कौन मानेगे इसवास्ते सिद्धान्तोमें कही जो स्थिति उस्से उत्कृष्टी स्थिथि बांधनेका अभिप्राय कर्मग्रन्थकर्ताका नहीं और इसी रीतिसे जो समकितका पड़ाहुवा फिर समगत पावे और कोई जीव (६) छठे नरकमें जाय तो सिद्धान्तकारका कहना मेर अनुभवमें ऐसा बैठता है कि छठे नरकीकी आयु बांधेके पीछे समकित पावे वह जीव नरकमें जाय क्योंकि देखो कि कृष्ण श्रेणक आदिकों को आयु कर्म बांधेके बाद समकितकी प्राप्ती हुई इस अभिप्रायसे सिद्धान्तकार कहता है और कर्मग्रन्थके कर्ताका ऐसा अभिप्राय मालूम होता है कि जो आयु कर्म नहीं बांधा होय वह देवलोकके सिवाय दूसरी गतिमें नहीं जाय क्योंकि समकित पायाहुवा जीव ऐसा नरकादि गतिका आयु बांधनेका पापादिक ही न करे कदाचित् जो देवलोकके सिवाय दूसरी गति नही जाय तो कृष्ण श्रेणकादिक क्यों नरकमें गये इसवास्ते ऊपर कहे हुवे अभिप्रायसे मतान्तरका विरोध मिटता है आगे तो बहुश्रुत कहे सो ठीक अब जो कोई कहे कि पूर्व आचार्य ऐसे २ होगये उनको ऐसा अभिप्राय न मालूम हुवा कि जो सिद्धान्त और कर्म ग्रन्थकर्ताका विरोध मिटाते तो हम कहें है कि जैसा मेरे अनुभवमें अभिप्राय आया वैसा कहा ने कुछ बहुश्रुत नहीं हूं जो मेरे इस कहनेमें जो कुछ सिद्धान्त व बहुश्रुतसे विपरीत होय तो मे मिथ्या दुःकृत देता हूं क्योंकि मुझको अपने वचन कहनेका पक्ष नही है क्योंकि मैने तो शुद्ध "वीतराग" का मार्ग बहुश्रुत गीतार्थोंके कियेहुवे ग्रन्थोंके आसरेसेही कहा है आगे तो जो ज्ञानी बहुश्रुत कहे सो मुझको प्रमाणहै । (प्र०) हम

लोगोंको इस कथनके सुनते ही बड़ा आश्चर्य पैदा हुवा कि ऐसे (अमृतरूपी) वाक्यको पूरा करते ही आपने मिच्छा दुकड़त क्यों दिया कि जिससे हजारहां आदमी तिरजांय क्योंकि आपने सिद्धान्त और कर्म ग्रंन्थकर्ताके दीखते विरोधको यदि जो निश्चयमे नहीं है इस तरहसे मिलाया कि जो परस्पर फर्क नजर आताथा और जिससे श्रद्धा विपरीति होजातीथी वह बिल्कुल मिट गया और यहभी तो है कि आपने ऐसे दीखते परस्पर विरोध मिटानेको जो कोटी लिखी सो सिद्धान्त और कर्मग्रन्थसे विपरीत नहीं है और आपने किसीको झूठाभी न कहा? (३०) हे भोले भाइयो! कुछ इधरतो दृष्टी करो कि 'वीतराग'का मार्ग बहुत नाजुक है अर्थात् इसका रहस्य समझना बहुत कठिन है क्योंकि देखो जिस चौथे आरेके समयमें जो चौदह पूर्वधारी और छत्तीस गुणके धारण करनेवाले चार ज्ञान सहित आचार्य्य विचरतेथे उस समयमें कि जिन के सामने सामान्य केवली व्याख्यान न दे और वे आचार्य सभामें व्याख्यान देतेथे कि जिनकी सभामें सामान्य केवलीको आदि लेकर साधु साध्वी श्रावक श्राविका चतुर्विध संघ व्याख्यान सुनतेथे उस समय उन आचार्योंके केवल ज्ञान न होनेसे अर्थात् छद्मस्त होनेसे कोई वचन केवलियोंके ज्ञानसे विपरीति निकलता तो व्याख्यानके बाद केवली महाराज उन आचार्योंसे कहते कि केवली ऐसा देखता है कि तुमने जो वह कहा सो केवलीके देखनेसे भिन्न है तो उसी समय ऐसे आचार्य्य महाराज सभाके समीप कहते कि केवली ऐसा देखते हैं मैंने जो वचन कहा है तिसका मिथ्या दुकड़त देता हूं तो देखो हे देवानुप्रिय! मैंने अनादि कालसे इस संसार रूपी अटवीमें जन्म मरण करना हुवा इस हुंडा सर्पिनी कालके पंचम आरेमें जन्म लिया परन्तु कोई शुभ कर्म उदयसे वीतरागका कहा हुवा स्याद्वाद जिनधर्म चिन्तामणी रत्न मेरे हाथ लगा फिर भगवत् आज्ञा संयुक्त जो चतुर्थ विध संघ तिनके चलाने वाले जो सिद्धान्ती और बहुश्रुत गीतार्योंके वचन हे उनकी कोई तरहकी असातना होनेके डरसे मैंने मिथ्या दुकड़त दिया क्योंकि मुझको इतना भी निश्चय नही किमैं भव्य हूं वा अभव्य हूं इस बातको ज्ञानी जाने तो फिर उस चिन्तमणी रत्नको कि जो शुभ कर्मके उदयसे मुझे प्राप्त हुवा अभिमान रूपी वचन कागलेके पीछे फेंककर अपना बहुल संसार क्यों करूं? इसलिये मेरेको देना उचित था सो दिया, बहुश्रुतके वचन प्रमाण हे, प्रसंगसे इतनी बात कही अब ऊपर लिखे बमुजिब जो समगत पाया हुवा भव्यजीव विवेक वैराग्य षट् संपत्ति मुमुक्षुता ये चार साधन संयुक्त है वो इस ग्रन्थका अधिकारी है विवेक उसको कहते है जिसको हेय उपादेय अर्थात् सत असत्का विचार है कि जैसे मेरी आत्मा सत्य अविनाशी है सो उपादेय हे अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है तैसे ही परवस्तु अर्थात् पुद्गलविनाशी असत् है सो हेय अर्थात् छोड़ने के योग्य है इसका नाम विवेक है जिसको विवेक नही उसको वैराग्य आदि कारण सर्व निष्फल हैं विवेक अर्थात् विचार ही सर्वका हेतु है वैराग्य नाम त्यागका है जो संयमादि क्रिया अनुष्ठान उसके फलकी इच्छा अर्थात् निहाना नही करना अर्थात् मोक्षकी इच्छाका भी त्याग उसीका नाम वैराग्य है षट् संपत्ति नाम शम, दम, श्रद्धा, उपराम, तितिक्षा और समाधि है समनाम मनको विषयसे रोककर एकाग्र करना है और इन्द्रिय गणों को अपने विषय से रोकना उसी का नाम दम है और सर्वज्ञ देवके कहे हुये सिद्धान्त उनके सतः

उपदेश देने वाले गुरूके वचनों पर विश्वास करना उसी का नाम श्रद्धा है और जो संसार के स्त्री पुत्र कलत्र आदि अथवा इन्द्रिय आदिकों के विषय से ऐसा भागे कि जैसे सर्पको देख करके भागतेहैं उसीका नाम उपराम है और क्रिया अनुष्ठान करता हुवा शीत ताप, क्षुधा, तृषा अर्थात् परीसोंको सहता हुवा अपनी संयमरूपी कृतको न छांडे उसी का नाम तितिक्षा है और चित्तकी एकाग्रताका नाम समाधि है और अपने स्वरूपकी प्राप्ति और बन्धरूप कर्मकी निवृत्ति होनेकी इच्छा उसीका नाम मुमुक्षती है संबंध आदि चतुष्टय करनेके अनन्तर वीतरागको उपदेश कहते हैं सो पहले देव गुरु और धर्मकी परीक्षा करे तो इस जगह अब "पदार्थ ज्ञाने प्रति पक्षी नियामका" इससे क्या आया कि पदार्थके ज्ञानके लिये प्रतिपक्षी नियम करके होता है तो पहले देव और गुरू और धर्मके प्रतिपक्षी कुदेव कुगुरु और कुधर्म हुवा इसवास्ते पेश्तर कुदेव और कुगुरु और कुधर्मका स्वरूप दिखाते हैं क्योंकि पहले खोटेको देखकर खोटेको खोटा जानले तो सत्यको देखतेही उसपर विश्वास उसी दम हो जाता है इसवास्ते प्रथम कुदेवका लक्षण कहते हैं जो देव तो है नहीं परन्तु लोगोंने अपनी बुद्धिसे परमेश्वरका आरोप कर लिया है सो उस कुदेवका स्वरूप तो जो हम आगे देवका स्वरूप कहेंगे उसके स्वरूपसे विपरीति होने वालेको सर्व बुद्धिमान् आपही जानलेंगे परन्तु किंचित् स्वरूप जो कि श्री हेमाचार्य कृत योगशास्त्रमें कहा है उसको श्लोकसेही दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ "ये स्त्री शस्त्राक्ष सूत्रादि, रागाद्यंक कलंकिताः निग्रहानु ग्रहपरा, स्ते देवास्पुर्न मुक्तये ११॥ १॥ स्त्री जिसके पास होय और शस्त्र अर्थात् धनुष, चक्र, त्रिशूल आदि जिसके पासमे होय और अक्ष सूत्र जपमाला आदि शब्दसे कमंडलु होवे फिर राग द्वेष आदि दूषणोंका चिह्न जिनमें होवे वे कुदेवके लक्षण हैं, शापका देना और वरका देना ये भी कुदेवके लक्षण है, स्त्रीका जो संग है सो कामको कहता है शस्त्र जो है सो द्वेषको कहता है जयमाला है सो व्यामोहको कहनेवाली है और कमंडलु अशुचिको कहता है और निग्रह अर्थात् क्रोध करके शाप देकर रोग शोक आदि निर्धनादि नाना प्रकारके दुःखोंमें पटकना यहभी कुदेवके लक्षण हैं और जो अनुग्रह अर्थात् खुशी हो करके जो देवलोक इन्द्रादि पदवी देना अथवा राज्य आदि पदवी अथवा पुत्र कलत्र धन आदि नाना प्रकारके सुख देनेवालाभी कुदेव है अब देखो देव वा कुदेव प्रत्यक्ष तो हैं नहीं परन्तु जिस२ ने जो २ देवमाने हैं उन्होंने अपने २ शास्त्रोके अनुसार अपने २ देवोंकी मूर्ति वा चित्र बनायकर जैसा उनके शास्त्रों में लिखा है उस चिह्न संयुक्त मकानों मे अर्थात् मन्दिरों में स्थापन कररक्खे हैं और उनकी सेवा पूजन करते है सो उन मूर्त्तियों के चिह्नों को देखकर आत्मार्थी देव और कुदेव की परीक्षा आपही करलेगा परन्तु तो भी एक दृष्टांत लिखते हैं:— उज्जैन नगरीमे राजा भोजके समयमें राजाका जो पुरोहित था उस पुरोहित का कुछ अगाड़ी का धन उसके घर में था परन्तु उसको मिलता न था सो उस समय में एक आचार्य उस उज्जैन नगरी में आये सो उन आचार्य्य से उस पुरोहितका आगे से कुछ गृहस्थीपने का परिचय था इसवास्ते वह पुरोहित उन गुरू महाराज के पास में गया और जायकर वन्दना नमस्कार करके उन के समीप बैठगया थोड़ी देरके बाद कहनेलगा कि गुरूमहाराज मेरे घर में जो पहले का धनथा सो नहीं मिलता है सो

आप कुछ कृपाकरो तो वह धन मेरे हाथ लगे तो मेरा मनोर्थ सिद्धहोय तब गुरू महाराज बोले कि भाई! हमारे को क्या लाभहोगा तो पुरोहित कहने लगा कि महाराज जो मेरे घरका धन मेरे हाथ लगेगा तो मै आपको आधा धन बांटदूंगा तब गुरूमहाराज कहने लगे कि देवानुप्रिय! तू पक्का रहना हम तेरे से आधा लेलेंगे इतना कहकर लाभकारण जानकर उसको उपाय वतलाय दिया उस उपाय से उस पुरोहित के घरका धन हाथ लग गया तब वह पुरोहित उस धन में से आधाधन लेकर गुरू महाराज के पास पहुँचा और गुरू महाराज से कहने लगा कि मेराधन मिलगया सो आप ये आधाधन लीजिये उससमय गुरू महाराज कहने लगे कि हे भाई! इस धनकी तो मुझे दरकार नहीं क्योंकि साधू तो द्रव्य नहीं रक्खे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज-मैंने तो आपसे आधे धनका क़रार किया सो आप लीजिये तब गुरूमहाराज कहने लगे कि हेभाई यह! धन तो हमको नहीं चाहिये तेरे घर में जो धन है उसमें से आधादे तब पुरोहित कहने लगा कि और क्या धन है जिसमें से आधादूं जब गुरू महाराज बोले कि हे देवानुप्रिय! तेरे दो पुत्र रूप धनहे तिस में से एक पुत्ररूप आधा धनदे इस बात को सुनकर वह पुरोहित गुम्म होगया और चित्त में विचारने लगा कि जो पुत्रों को कहूं और पुत्र कोई अंगीकार न करे तो फिर मै गुरू महाराज को क्या जवाब देऊंगा। उसने ऐसा चित्त में विचारकर गुरू महाराज को कुछ उत्तर न दिया और उदास होकर अपने घरको चला आया फिर लज्जाके मारे महाराज के पास न जासका और गुरूमहाराज भी २ तथा ४ दिवस के बाद वहां से अन्यत्र विहार करगये वह पुरोहित भी कुछ काल के बाद आयु कर्म पूर्ण होने के समय गुरूमहाराज को वचन दिया था उस वचन को विचारता हुवा दुःख पाता था और दोनो पुत्र पास में बैठेहुये थे अपने पिताका हाल देखकर कहने लगे कि हे पिता जी आप किसी चीज में चित्त मतरक्खो और परलोक सुधारो जो आपकी इच्छा होय सो आप हमारे ऊपर आज्ञा करो हम उस को करेंगे आप कोई तरह की चित्त में न रक्खो जो आपके दिल में होय सो आप फरमाइये उस वक्त पुरोहित ने सारी बात पिछली कह करके कहा कि मेरे को उस आचार्य्य गुरू महाराज का ऋण देना है सो तुम दोनों जनों मे से एकजना जायकर उनके पास दीक्षा लो ता मेरा ऋण अर्थात् क़र्ज़ा दूर होजाय जो मेरे दिलकी बातथी सो मैने कहदी अब तुम दोनों मेंसे जिसकी खुशी होय सो दीक्षा लो इस बातको सुनकर बड़ा बेटा तो उदास होकर नीचेको देखने लगा और कुछ न बोला उस समय छोटा पुत्र कहने लगा कि हे! पिताजी जो आपने फरमाया है सो मै आपके परलोक हो जानेसे १२ दिनके बाद गुरु महाराजके पास जाकर दीक्षा ले लूंगा आपकोई तरहकी चिन्ता मत करो अपना परलोक सुधारो मैं आपके वचनको पूरा करूंगा इतनी बात सुनकर पुरोहित परलोक अर्थात् देवलोकमें गया १२ दिनके बाद उस छोटे लड़केने उस आचार्यके पास जाकर दीक्षा लेली और बड़े पुत्रको पुरोहित पदवी मिली सो वह पुरोहित जैन मत वालोंसे द्वेष करने लगा और अनेक तरहके उपद्रव करने लगा और जैनके साधूको जहां तक बनसका वहां तक नगरमें न घुसने देता, ऐसा जब उपद्रव होने लगा तब वहांके श्रावकोंने उन

आचार्योंको समाचार भेजा कि महाराज आप इस पुरोहितके भाईको दीक्षा न देते तो क्या जिन धर्ममे साधुवोंकी कमी होजाती इस पुरोहितके भाईको दीक्षा देनेसे इस नगरमें साधू लोगोंका आना प्रायः करके बंद होगया क्योंकि पुरोहित साधुवोंको दुःखदेता है साधुवोंके नहीं आनेसे धर्मकी हम लोगोंके बहुत अन्तराय पड़ती है इसवास्ते आप कृपा करके ऐसा उपाय कहिये कि जिससे हमारा सुखसे धर्म ध्यान होवे ऐसी खबर सुनकर आचार्य्य महाराजने उस पुरोहितके छोटे भाईको उपाध्याय पद देकर कहा कि तुम साधुवोंको सङ्ग ले जायकर जो उज्जैन नगरीमें तुम्हारा जो गृहस्थीपनेका भाई है उसको प्रतिबोध देवो कि जिससे वहांके श्रावकोंके धर्मकी अन्तराय दूरहोजाय ऐसा गुरु महाराजका हुकम सुनकर उसने साधुवोंको साथले वहांसे विहार किया रास्तेमें भव्य जीवोंको प्रतिबोध देते हुवे उज्जैन नगरीके पास आये सायङ्काल देख करके दरवाजेके बाहिर ही ठहर गये रातभर उसी जगह अपना धर्म ध्यानकरते रहे और प्रातःकाल अपनी क्रियासे निवृत्त होकर नगरमें प्राप्त होते हुवे दरवाजेमें घुसते हुवे उनका गृहस्थीपनेका भाई सामनेसे आता हुआ मिला और उन साधुवोंको देख करके कहता हुवा कि "गर्दभ दन्त भदन्त नमस्ते" इतना शब्द सुनके उपाध्याय महाराज उस पुरोहितसे कहने लगे कि "मरकहास्य वयस्य सुखं" जब पुरोहितने ऐसा शब्द सुना तब तो अपने मनमें विचारने लगा कि यह तो मेरा छोटा भाई दीखे ऐसा समझकर लज्जा खायकर कहने लगा कि आप कहां ठहरोगे उस समय मुनिराज ऐसा कहने लगे कि जहां तुम आज्ञादोगे वहां ही ठहरेंगे इतना वचन सुनकर दरवाजे के बाहिर अपने कामको चला गया और मुनिराज जिस जगह जिन भगवान्का मन्दिर था उस जगह दर्शन करनेके वास्ते पहुंचे जब तक मुनिराज भगवान्के दर्शन करतेथे इतनेमें श्रावक लोगोंको खबर लगनेसे वे भी आपहुंचे और इधरसे वह पुरोहित भी आपहुंचा और मुनिराजसे विनती करके अपने घरले गया और अपनी आज्ञासे उन साधुवोंको उतार दिये और अपने घरमें उन साधुवोंके वास्ते नाना प्रकारके भोजन तय्यार कराये और आयकर साधुवोंसे कहने लगा कि महाराज भोजनके लिये पधारिये तब मुनिराज कहनेलगे कि जो हमारे निमित्त करे उसके घरका आहार हमको न कल्पे इसवास्ते हम दूसरे गृहस्थियोंके घरमें जांयगे जैसा शुद्ध आहार मिलेगा वैसा ले आवेंगे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज! वक्त होगया और साधूभी झोली पातरा ले करके गृहस्थियोंके घरमें जाने लगे वह पुरोहित भी उन साधुवोंके संग हो लिया और किसी गृहस्थीके घरमें पहुंचे सो उसके और तो आहारका संयोग मिलानहीं परन्तु वह एक दहीकी हांडी लेकर सामने आया और कहा कि यह शुद्ध आहार है जब साधू पूछने लगे कि भाई यह कितने दिनका है उस वक्त गृहस्थी कहने लगा कि दिन चारेकके करीबका होगा साधू कहने लगे कि यह तो हमको नही कल्पे जब पुरोहित कहने लगा कि महाराज क्या इसमें जीव पड़ गये तब साधू कहने लगे कि गुरुजाने पुरोहितने उस हांडीको लेलिया और गुरुके पास आया और कहने लगा कि जो इसमें जीव पड़ गये सो मुझको दिखावो इसमें तो जीवका नाम ही नहीं क्यों तुम लोग वृथा क्रिया कलाप दुःख उठाते हो तब गुरु महाराज कहने लगे कि जो इसमें जीव हम तुम्हारेको दिखादें तो तुम क्या करोगे उस

वक्त इतना वचन सुनकर पुरोहित कहने लगा कि मै आपका धर्म अङ्गीकार करूंगा जब गुरु महाराजने उसी समय अल्ता अर्थात् पोथी मंगाय कर पानीसे भिजोयकर उसका मुँह बांधकर धूपमे रखदी उसके धूप लगनेसे उसमें जो सफ़ैद कृमि पड़ी हुईथी सो ठंढक जानकर उस लाल वस्तु पर रिगने अर्थात् चलने लगी जब तो पुरोहितने यह देखकर उनका धर्म अंगीकार किया और श्रावकके १२ वृत ले लिये और जिन धर्मको अच्छी तरहसे मन वचन काय करके पालने लगा और लोगोंके जो धर्मकी अंतरायथी सो दूर होकर सुखसे धर्म ध्यान होने लगा फिर कुछ दिनके वाद राजा भोजको किसीने कहा महाराज! आपका पुरोहित जिन धर्मी हो गया सिवाय जैन देवके दूसरेको नही मानता तब राजाने पुरोहितकी परीक्षाके वास्ते नाना प्रकारके पूजनके द्रव्य केशर चंदन आदि मँगाय कर थालमे रक्खे और पुरोहितको बुलायकर कहा कि देवकी पूजन कर आवो और आदमियोंको साथ भेजे कि यह कहां कहां जाय और किस २ जगह पूजन करे और पुरोहित हाथमें थाल लेकर वहांसे चला और अपने मनमें विचारने लगा कि किसीने राजासे मेरी चुगली खाई है इसलिये राजा मेरी परीक्षा करता है सो खैर मेरे तो सिवाय वीतराग देवके दूसरा कोई देव नहीं में तो वीतराग देवहीकी पूजन करूंगा जो कुछ होना है सो हो जायगा और उस सभासे निकलकर पहले देवीके मकान पर पहुँचा और उस देवीका स्वरूप देखा कि एक हाथमें तो खड्ग और दूसरे हाथमें मनुष्यका शिर कटा हुवा लिये हुये है ऐसा विकरालरूप देखकर वहांसे लौट आया फिर शिवके मन्दिरमें गया उस जगह योनिमें लिङ्गका आकार देखकर वहांसेभी लौट आया और फिर ब्रह्माके मन्दिरमें पहुँचा उस जगहभी हाथमें माला और कमंडलु देखकर लौट गया और फिर रामचन्द्रके मन्दिरमें पहुँचा उस जगहभी उनको धनुष वाण हाथमें लिये हुवे देखकर वहांसेभी लौट आया फिर श्री कृष्णके मंदिरमें पहुँचा उस जगह स्त्रीको पास बैठी हुई देखकर अपना एक कपड़ा उनके सामने आड़ाकर वहांसेभी चल दिया फिर श्रीऋषभदेव स्वामीके मंदिरमें पहुँचा और सामनेसे भगवत्‌का शांतिरूप योग मुद्राको देखकर नमस्कार कर विधिसे पूजन करने लगा और जो आदमी उसके पीछे आयेथे वह दम दम राजाको खबर पहुँचाते रहे और आखिरकार खबरदी कि पुरोहितजी तो जिन मन्दिरमें पूजा करनेलगे इधरसे पुरोहितभी पूजनसे निश्चिन्त हो चैत्य वन्दन आदिक करके राजसभामें पहुँचा तो राजा पूछने लगा कि पुरोहित जी पूजन कर आये ? जब उसने कहा कि हे राजन् ! कर आया तब राजाने पूछा किसका पूजन किया जब पुरोहित कहने लगा कि आपने देवका नाम लियाथा सो मैं देवकी पूजन कर आया जब राजाने पूछा कि आप इतने मन्दिरोंमें गये क्या वहां देवपना नहीं था सो आप सबको छोड़कर जिन मन्दिरमेंही गये और उसी जगह आपको देवकी प्रतीति हुई तब पुरोहित कहने लगा कि हे राजन् ! जो में कहता हूं सो ध्यान देकर सुनो कि जब में देवीके मकान पर गया तो विकरालरूप देखकर मुझको भय मालूम हुवा सो पूजन न करसका फिर मैं महादेवके मन्दिरमें गया सो मैने योनिमें लिङ्ग देख कर विचारा कि इनके चरण तो है हीं नहीं तो नमस्कार किसको करूं फिर मस्तकभी इनके नहीं है केशर चन्दनादि किसको चढ़ाऊं इसीलिये वहांसेभी चल दिया और ब्रह्माके

मन्दिरमें पहुँचा वहांभी देखा कि वे माला लिये जप कर रहेथे तो मैंने विचारा कि यह तो किसीका जप कर रहे हैं सो देव औरही है जिसका यह जप करते हैं फिर मैं रामचन्द्रके मकान में पहुंचा तो धनुष वाण हथियार सजे देखकर विचार करने लगा कि यह तो युद्ध-के लिये तय्यार हुवे हैं तो इनका कोई शत्रु है जिसके शत्रुहे उसमे देवपना कदापि न होगा देवके शत्रुका काम क्या फिर वहांसे लौटकर मैं कृष्णके मकानपर पहुँचा तो उनके पास औरतको देखा और मुझे वड़ी शरम आई और दिलमे विचारने लगा कि नीति शास्त्रमें कहा है कि जिस जगह दो मनुष्य वैठे हों उस जगह तीसरेको नहीं जाना चाहिये और जिस जगह स्त्री पुरुष हों उस जगह विशेष करके नहीं जाना चाहिये इस शर्मसे मैंने अपना क-पड़ा ढक दिया कि और कोई इनको आयकर न देखे और वहांसे चलकर श्री वीतराग अरिहंतके मन्दिरमें पहुँचा और शांतरूप निर्विकारी योग मुद्रा पद्मासन दृढ़ ध्यान देखकर चित्तमे विचारने लगा कि राजाने जो देवका पूजन कहा हैं सो देवपना इस में है इस के सिवाय दूसरा देव जगत् में कोई नहीं क्योंकि जो देव आप तिरा होगा वोही दूसरे को तारेगा इसवास्ते हे राजन्! मैंने उस देवाधि देव का पूजन किया जो आप कहते कि फलाने का पूजन कर आओ तो मैं उसी का कर आता इसवास्ते मैंने देव की परीक्षा करके देवकी पूजन की । पुरोहित की इतनी बात सुन राजा चुप हो रहा और पुरोहित जी फिर सुख से अपने धर्म ध्यान में मग्न अपनी आत्मा का कल्याण करने लगा ॥ अव वुद्धिमान् पुरुषों को अपनी वुद्धि से देव और कुदेव का स्वरूप जान लेना चाहिये. और कुगुरु का वर्णन हम पीछे कर आये हैं क्योंकि जो अनात्मा का उपदेश करने वाले और शुद्ध देव का स्वरूप न बताने वाले और अपने भ्रमजाल में फँसाने वाले और संसार में जन्म मरण कराने वाले हैं वही कुगुरु हैं और जो हम गुरु का लक्षण कहेंगे उससे भी कुगुरु की प्रतीति हो जायगी जो कुदेव और कुगुरु का उपदेश है वही अधर्म है अब इस निष्प्रयोजन को बहुत बढ़ाने से सरा अर्थात् लिखाना ठीक नहीं है अव शुद्ध देव का स्वरूप कहते हैं—'सर्वज्ञ वीतराग अरहंत देवः' अब अरहंत का लक्षण कहते है कि अरहंत शब्द के तीन भेद हैं— १ अरुहंत २ अरहं ३ अरिहंत । तो नारु हंती अंकुरा यस्य स अरुहंतः २ अर्थात् नहीं है जन्म मरण रूपी अंकूरा जिसमे उसका नाम अरुहंत ऐसा कौन २ कि सिद्ध भगवान् है और अरहं शब्द जो है सो पूजावाची है अर्थात् पूजनेके जो भोग उस का नाम अरहंत इन्द्रादि देवता और चक्रवर्ती को आदि लेकर जो मनुष्य इस का पूजन अर्थात् सेवा करने के योग्य हो सो कौन है कि श्री तीर्थं कर महाराज चतुर्विध संघ के स्थापन करके तीर्थ की चलाने वाले उन का नाम अर्ह है, और अरिहंत उस को कहते हैं कि अरि जो वैरी तिस को जो हने सो अरिहंत सो अरि-हंत दो प्रकार का है एक तो लौकिक २ लोक उतराश्रय लौकिक अरिहंत, राजा आदिक को कहते है क्योकि राजा आदिक भी अपने शत्रु को हनते हैं और लोक उत्तर का लक्ष-ण यह है कि "चित्त वारि कर्मा निर्घाति याने केवलं मुत्तपादय इति अरिहंत" और लक्षण उस को कहते हैं कि जिस में अति व्याप्ति और अव्याप्ति और असंभव ये तीन दूषण न हो अब इन तीनों को दृष्टांत देकर बतलाते हैं जैसे कि गाय सींग वाली होती हैं तो अब

इस लक्षण से बकरी भेंस इत्यादि सींगवाले सब जानवर आगये यह अति व्याप्ति है क्योंकि जो लक्षण बहुत जगह चला जाय उसी को अति व्याप्ति कहते है, अव्याप्ति उस को कहते हैं कि जो सिर्फ एक देश में रहकर सर्व सजाती का स्वरूप न कहे जैसे गऊ काली होती है तो देखो गऊ काली भी होती है पीली भी होती है इसलिये सर्व गौवों का लक्षण न हुवा इसीलिये अव्याप्ति हुवा असम्भव उस को कहते है कि जिस चीज़का लक्षण करे उस का तो एक अंशभी न आवे और दूसरी जगह चलाजाय जैसे एक खुरवाली गऊ होतीहै तो एक खुरतो गधे वा घोड़े के होता है और गऊ तो दो खुर ही होती है तो गाय में एक अंश भी लक्षण का न गया इसलिये असंभव हो गया तो गाय का असल लक्षण क्या हुवा कि जैसे गऊ के सासन् अर्थात् गले का चमड़ा लटकता हुवा और सींग और पूंछ हो उस का नाम गाय है इस लक्षण से सर्व गायों की प्रतीति हो जायगी अर्थात् गऊ के सिवाय और में यह चिह्न न पावेंगे। इसी रीति से सब जगह लक्षण का स्वरूप जान लेना ऐसे ही श्री अरिहंत का लक्षण जान लेना कि चार कर्मघाती को हने और केवल ज्ञान केवल दर्शन प्रगट अर्थात् उत्पादन करे ऐसा जो अरिहंत सो देव है अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि कर्मों को जब हनें नाम मारे तो फिर इन को अहिंसक कैसे कहना तो हम कहते हैं कि हे भोले भाइयो! जिन आगम के रहस्य को जान और हिंसा का स्वरूप देख क्या होता है कि "प्राण वियोग अनुकूल व्यापारा इति हिंसा" अर्थ–कि प्राण जुदे होने का व्यापार करना उस को हिंसा कहते हे सो इस जगह कर्म जो है सो पुद्गल अर्थात् अजीव है इस अजीवरूपी कर्मों में कोई प्राण है नहीं इसलिये कर्म हनने में हिंसा न हुई अब इस जगह सजाती विजाती की चौभंगी दिखाते है, सजाती नाम किस का है कि जिस का लक्षण गुण एक मिले जैसे जीवका लक्षण उत्तराध्ययनजी मे ऐसा कहा है (गाथा) नाणंचदं सणंचव चारित्रंच तवो तहा वीरियं उव उनोय एवं जीवस्स लक्षणं॥" अर्थ–१ज्ञान २ दर्शन ३ चारित्र ४ तप ५ वीर्य और ६ उपयोग ये छः जीवके लक्षण है इस से विजाती वह हैं जिस में यह लक्षण न मिले, तो सजाती तो कौन ठहरा कि जीव और विजाती पुद्गल अर्थात् कर्म अजीव हैं इन दोनों की चौभंगी उत्पन्न होती है कि १ जीव को जीवहने, २ जीवको अजीव हने, ३ अजीव को जीवहने और ४ अजीव को अजीव हने. (प्रथम भंगा) जैसे मोटामच्छ छोटेमच्छको खाजाय, अब देखो इनकी आपस में सजाती हैं परन्तु क्षुधारूप वेदनी के जोर से वह उसको खाता है वह क्षुधा जो वेदनी कर्म की होने से पुद्गलीक अर्थात् अजीव है परन्तु उस विजातीके लिये उस स्वजाती को खाता है अर्थात् हनता है तैसे ही कोई राजा आदि लोभ के वश हुवा थका दूसरे राजा का देश लेने के लिये उसपर चढ़ाई करे और उसको मारे और उसका देश ले अब देखो प्रत्यक्ष राजापने से वा मनुष्यपने से वा जीवपने से स्वजाती है परन्तु लोभ दशा अर्थात् तृष्णाके लिये उस स्वजाती को हनता है किन्तु अज्ञान वश अजीवके वास्ते हनता है. सो उस स्वजाती जीव के भी दो भेदहैं १ द्रव्य २भाव उस राजा के प्राण जुदेकिये सो तो द्रव्य जीवको हना अर्थात् द्रव्य हिंसा हुई और भाव करके उस राजा के हनने से जो बाँधा कर्म उसमे जो अपने आत्म प्रदेश के गुण

को हनन किया क्योंकि जन्म, मरण, वाधान से जीवने जीव को हना यह पहला भांगा हुवा (द्वितीय भांगा) क्योंकि देखो ठाणांग जी में कहा है । " एगेआया जीवा " इसलिये जीव सरीखा गुण लक्षण होने से स्वजाति हुवा अब इस जीव के लक्षण से भिन्न अ- जीव अर्थात् अचेतन चेतना करके रहित वह विजाती अजीव हुवा उस अजीव के पांच भेदहैं १धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ काल, ५ पुद्गलास्तिकाय इन पांच में से चार को तो हने नहीं पांचवां जो पुद्गल अजीव उसके भी तीन भेद हैं १ विश्रसा. २ मिश्रसा. ३ प्रयोगसा इत तीनों में से विश्रसा का तो कुछ जरूर है नहीं और मिश्रसा, प्रयोगसा के ही आठ भेद हैं—१ ज्ञानावर्णी, २ दर्शनावर्णी, ३ वेदनी. ४ मोहनी. ५ आयू. ६ नाम. ७ गोत्र. ८ अन्तराय. यह आठ हैं इन्हींकी आठ वर्गणाभी होती हैं. १ उदारिक वर्गणा. २ वैक्रिय वर्गणा. ३ आहारिक वर्गणा. ४ तेजस वर्गणा. ५ भाषा वर्गणा. ६ उस्वास वर्गणा. ७ मनोवर्गणा ८ कारमाण वर्गणा यह आठ वर्गणा कही दो परमाणु इकट्ठे होनेसे द्व्यणुक खंध होता है च्यार परमाणु मिलनेसे चतुर णुक खंध होता है ऐसेही असंख्यात् परमाण मिलनेसे असंख्यातका खंध होय और अनन्ता प्रमाण मिलनेसे अनन्ताको खंध होय परन्तु इस पुद्गल परमाणुका खंध सर्व जीवको ग्रहण करने योग्य नहीं है परन्तु अज्ञानपनेसे लेता है देखो कि अभव्यसे अनन्त गुणे परमाणु इकट्ठे होंय तव एक उदारिक वर्गणा लेने योग्य होती है इस उदारिकसे अनन्त गुणे पर- माणु इकट्ठे होंय तब वैक्रिय प्रमाण वर्गणा लेनेके योग्य होती है अव एक २ वर्गणासे अनन्त गुणीं बढ़ती हुई मनोवर्गणासे अनन्त गुणे परमाणु इकट्ठे होंय जब कारमाण वर्गणा लेनेके योग्य होती है पहिलेकी च्यार वर्गणा तो वादर हैं उसमें २० गुण पाते हैं ५ वर्ण. ५ रस. २ गंध ८ स्पर्श पिछले चार सूक्ष्म हैं जिसमें वर्ण. गन्ध. रस तो उतनेही पावे परन्तु स्पर्श चारही पावें सब मिलकर १६ पावें और एक परमाणुमें ५ गुण होंय १ वर्ण. १ रस. १ गंध और दो स्पर्श इस रीतिसे पुद्गलके अनेक विचार हैं अब जो पुद्गल अजीव है सो जीवका गुण नहीं क्योंकि अचेतन है इसलिये विजाती है उस अजीव कर्म रूप पुद्गलको आत्मा अर्थात् जीव हने यह दूसरा भांगा॥हुवा अब अजीव जीवको हने जैसे कर्म- रूप पुद्गल आत्माके गुणोंको दबावे अर्थात् घातकरे क्योंकि देखो ८ कर्म आत्माके ८ गु- णोंका घात करते हैं कि ज्ञानावर्णी १० अनन्त ज्ञानको दबाता है और दर्शनावर्णी अन- न्तादर्शनको दबाता है इसी अनुक्रमसे अनन्तो अव्यावाध अनन्तो चारित्र अनन्तो अनवगा- हना अरूपी अगुरु लघु अनन्त वीर्य यह गुण हने जाते हैं इसवास्ते कर्मरूपी अजीवने जीवको हना यह तीसरा भांगा हुवा (चतुर्थ भांगा) अव चौथा भांगा कहते हैं कि अजी- वको अजीव हने जैसे मट्टीका घड़ा अजीव रक्खा है उसके ऊपर दीवारसे कोई ईंट गि- रपड़े और वह घड़ा फूट जाय इस तरहसे अजीवने अजीवको हना यह चौथा भांगा हुवा॥ इन चार भांगोंमें से जो दूसरे भांगेसे कर्मरूप अजीवको हननेवाला है उसीका नाम अरिहंत है अब इस अरिहंत वीतरागको देवबुद्धि निमित्त कारण माननेवाले भव्य जीव संसारसे तिरेंगे सो भी अरिहंतदेव का ५७ वाले करके स्वरूप दिखाते हैं सो वे ५७ बोल यहहैं—१ व्यवहार. २ निश्चय. ३ द्रव्य ४ भाव ५ सामान्य. ६ विशेष. ७ नामनिक्षेपा. ८ स्थापना निक्षेपा.

९ द्रव्य निक्षेपा. १० भाव निक्षेपा. ११ प्रत्यक्ष प्रमाण. १२ अनुमान प्रमाण. १३ उपमान प्रमाण. १४ आगम प्रमाण. १५ द्रव्यथी. १६ क्षेत्रथी. १७ कालथी. १८ भावथी. १९ अनादिअनंत. २० अनादिसशांत. २१ सादि सशांत. २२ सादि अनन्त. २३ नित्य पक्ष २४ अनित्यपक्ष. २५ एक पक्ष. २६ अनेक पक्ष. २७ सत् पक्ष. २८ असत् पक्ष. २९ वक्तव्य पक्ष. ३० अवक्तव्य पक्ष. ३१ भेद स्वभाव. ३२ अभेद स्वभाव. ३३ भव्य स्वभाव. ३४ अभव्य स्वभाव. ३५ नित्य स्वभाव. ३६ अनित्य स्वभाव. ३७ परम स्वभाव. ३८ कर्ता. ३९ कर्म. ४० करण. ४१ संप्रदान. ४२ अपादान. ४३ अधार. ४४ नैगमनय. ४५ संग्रहनय. ४६ व्यवहारनय. ४७ ऋजु सूत्रनय. ४८ शब्दनय. ४९ समभिरूढ़ नय. ५० एवम् भूत-नय. ५१ स्यात अस्ती. ५२ स्यातनास्ती. ५३ स्यातअस्ति नास्ति. ५४ स्यात अवक्तव्य. ५५ स्यात अस्ति अवक्तव्य. ५६ स्यात नास्ति अवक्तव्य. ५७ स्यात अस्ति नास्ति युगपद् अवक्तव्य ॥ अब (१) व्यवहारसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जो १८ दूषण करके रहित और १२ गुण करके संयुक्त और ३४ अतिशय ३५ वाणी करके जो संयुक्त हो उसको व्यवहार करके देव कहते हैं। १२ गुणमें चार तो मूल अतिशय और ८ महा प्रतिहार हैं यह शास्त्रोंमें प्रसिद्धहै इसलिये नहीं लिखे और अन्तराय कर्मके नष्ट होनेसे पांच लब्धि पैदा होती हैं दान देनेमें अंतराय सो प्रथम दोषहै और (२) लाभ अन्तराय. (३) वीर्य अन्तराय. (४) भोगअन्तराय और (५) उपभोग अंतराय और (६) हास्य (७) रति अर्थात् प्रीति (८) अरति (९) भय सो सात प्रकारका है (१०) जुगुप्सा अर्थात् किसी मलीन वस्तुसे जुगुप्सा (घ्रणा) करना (११) शोक अर्थात् चिन्ताकरना (१२) काम नाम स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनों वेदोंका विकार (१३) मिथ्यात्व (१४) अज्ञान (१५) निद्रा (१६) अविर्त (१७) राग (१८) द्वेष। ये ऊपर लिखे १८ दूषण जिसमें न हों.जिसमें एकभी दूषण पावे वह व्यवहारसे देव नहीं। ऐसेही ३४ अतिशय ३५ वाणीका विस्तार शास्त्रोंमें कहाहै इसलिये मैंने नहीं कहा और प्रसिद्धभीहै ॥ अब (२) निश्चय देव का स्वरूप कहते हैं-निश्चय देव अपनी ही आत्मा है, संग्रह नय की सत्ता देखता हुवा जीव. स्वरूप. ज्ञान. दर्शन. चारित्र. वीर्यमयी शक्तिभाव, अर्थात् वो भाव में सिद्ध के समान तरण तारण अपनी आत्मा ही है क्योंकि उपादान कारण है और पंच परमेष्ठी से अधिक है. श्री हेमाचार्य वीतराग स्तोत्र में कहते हैं:- "यः परात्मा परं ज्योतिः परमःपरमेष्ठिनं। आदित्यवर्ण तमसः परस्तादामनंतियं ॥ १ ॥ सर्वे येनोदमूल्यंत समूलाः क्लेशपादपाः" इत्यादि ॥ अब (३) द्रव्य देव का स्वरूप कहते हैं कि जिस वक्त तीसरे भव में पुन्यानबन्धी पुण्य के उदय से तीर्थंकर नाम गोत्र बांधा अथवा देवलोक वा नारकी में जो तीर्थंकर का जीव है वह नैगम नय के आगामी भेद की अपेक्षा लेकर द्रव्य देव है (४) भाव देवः-भाव देव जब कहेंगे कि जब देवलोक वा नारकी से आयकर माता के पेट में उत्पन्न होवे और तीन ज्ञान सहित हो और माता १४ स्वप्न देखे उस वक्त में इन्द्र अवधि ज्ञान से देखकर नमो थुणं आदि स्तुति करे इस जगह पूजा अतिशय अरहं इस शब्द की अपेक्षा करके भाव देव है। (५) सामान्य देव का स्वरूप कहते हैं-अरहंत ऐसा नाम लेने से सर्व देव समान्य पने से भासी हुवे क्योंकि इस में जिसने चार कर्म क्षय किये और

केवल ज्ञान उत्पन्न किया अथवा जो तीर्थंकर आदि सर्व हैं वे सामान्य पनेसे इस अर्हंत शब्दमें प्राप्त हुवे इसलिये सामान्य देव अरहंत है अथवा सर्व तीर्थंकर या सामान्य केवलीने जो स्वरूप देखा उसमें किसीके कहनेमें फर्क न पड़ा अथवा अनंत ज्ञान, अनंत, दर्शन अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य ये सर्वका सामान्य होनेसे सामान्य देव कहते है । (६) विशेष देवका स्वरूप ऐसा है–कि जो तीर्थंकर होते हैं उनके श्रीगण धरादिक साधू, साध्वी, श्रावक श्राविका जबतक शासन रहे तबतक उनही की विशेषता मानते हैं क्योंकि वे श्रीतीर्थंकर महाराजजी निष्कारण उपकारी हैं जैसे कि वर्त्तमान कालमें श्रीमहावीर स्वामीका आश्रय लेकरके जो कथन करते हैं और तीर्थंकरोंका नाम नहीं लेते इसलिये विशेषता वर्तमान कालमें श्री महावीर स्वामीकी है यह विशेष देव हुवा अब ४ निक्षेपका स्वभाव कहतेहैं–(७) नामदेवको कहतेहैं–कि जैसे अरहंत ऐसा नाम लेनेसे परमेश्वरका बोध होता है अथवा (नामदेव) जो किसीका नाम (देव) ऐसा हो यह नामदेवका स्वरूप है । अब (८) स्थापना निक्षेपासे देवका स्वरूप कहतेहैं–स्थापनाके दो भेदहैं एक तो अकृत्रिम दूसरे कृत्रिम अकृत्रिम तो उसे कहतेहैं जो सास्वती जिन प्रतिमा है जैसे देवलोकमें और नन्दीश्वर द्वीप, मेरु आदिक पर्वतोंमें जो जिन प्रतिमाहै और कृत्रिमके भी दो भेदहैं. १ असद्भूत. २ सद्भूत. अद्भूत उसको कहतेहैं कि जिसमें कोई आकार न हो और किसी चीजको स्थाप देना । जैसे चन्दन आर्य आदिककी स्थापन पंच परमेष्टीकी करतेहैं, और सद्भूत उसको कहतेहैं कि जैसा भगवान्का आकार था उसी बमूजिब चित्र अथवा पाषाण आदिमें ज्योंका त्यों आकार बनाना उस आकारमें कोई तरहकी कसर न हो जैसे वर्तमान कालमें मंदिरोंमें जो मूर्ति स्थापन की जाती है उस मूर्तिके देखनेसे साक्षात् देवकी प्रतीति होना इसका नाम स्थापना है इस स्थापनाकी पूजनकी विधि तो जिस जगह श्रावकको मंदिरमें जानेकी विधि कहेंगे वहां कहेंगे । अब (९) द्रव्य निक्षेपासे देवका स्वरूप कहतेहै द्रव्य निक्षेपाके दो भेदहे १ आगम २ नो आगम. आगमसे जो देवका स्वरूप जाने परन्तु उपयोग न हो "अन उपयोगो द्रव्यं" इति वचनात् । अब नो आगम द्रव्य निक्षेपाके तीन भेद होतेहैं. १ ज्ञेय शरीर. २ भव्य शरीर. ३ तद्व्यतिरिक्ति शरीर. अब ज्ञेय शरीर उसको कहतेहैं कि जैसे तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी निर्वाण अर्थात् मोक्ष पधारेथे उस शरीरका जब तक अग्नि संस्कार न हुवा और वह जितनी देर तक रहा उस शरीरका ज्ञेय शरीर द्रव्य निक्षेपा कहतेहैं अथवा जो कोई देवका स्वरूप भव्य जीव भाव करके जानता हो उसका जीव तो परलोक चला गया हो उसके शरीरको भी ऐसा कहेंगे कि देवका भाव स्वरूप जानने वालेका यह शरीरहै इसकोभी द्रव्य निक्षेपा ज्ञेय शरीर कहतेहै और भव्य शरीर द्रव्य निक्षेपाका स्वरूप ऐसा है कि जब तीर्थंकर महाराज माताके पेटमेंसे जन्म लेकर बाल अवस्थामें रहतेहैं उनका जो शरीर है उसको भव्य शरीर द्रव्य निक्षेपा कहतेहैं अथवा किसी भव्यजीवको बाल अवस्थामे किसी आचार्य्यने ज्ञानसे देखा कि वह भव्य शरीर कुछ दिनके बाद भाव करके देवका स्वरूप जानेगा उसकोभी भव्य शरीर द्रव्य निक्षेपा कहतेहै । (१०) भाव निक्षेपाका स्वरूप कहतेहैं कि जिस वक्तमें तीर्थंकर समोसरणमें विराजमान चतुर्विदसंघ १२ परगदामें भव्य जीवोंको उपदेश देतेहै, उस वक्त देवका भाव निक्षेपा कहतेहै अथवा कोई भव्यजीव देवका यथावत् स्वरूप जानकर अपने भावमें उसको

निमित्त कारण अङ्गीकार करे और जो अपने गुण प्रगट करनेके वास्ते भाव देव माने इस कोभी अपेक्षासे भाव निक्षेपा कहतेहैं। (११) प्रत्यक्ष प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहैं कि जैसे जिस कालमे इस भरत क्षेत्रमें केवल ज्ञान संयुक्त तीर्थंकर विचरतेथे उस वक्त जो लोग देखतेथे उन देखनेवालोको वो प्रत्यक्ष देवथे वा जैसे महाविदेह क्षेत्रमें केवली तीर्थंकर महाराज उपदेश देते हुवे विचरतेहै वेभी प्रत्यक्षदेवहै अथवा उन प्रत्यक्ष देवोको देखकर जो उनके आकारसे चित्र अथवा मूर्ति बनाई है उससे वो प्रत्यक्ष देव है क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि जिन प्रतिमा जिनके समान है (१२ अनुमान प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहै–अनुमान किसरीतिसे है कि जैसे धूमको देखनेसे अग्निका अनुमान होता है कि अग्नि है इसीतरह वचनके सुननेसे पुरुषका अनुमान होताहै तो इस जगहभी पक्षपात रहित अमृतरूपी स्याद्वाद अनेकान्त करके संसारका स्वरूप मोक्षका मार्ग बतायाहै ऐसे वचनों करके मालूम होता है कि कोई सर्वज्ञ देव है अथवा उसका चित्र वा मूर्ति देखनेसे अनुमान करतेहै कि जैसे यह मूर्ति शांति ध्यानारूढ़ पद्मासन लगाये है और अविकारी है इसके देखनेसे भव्य जीव अनुमान करतेहै कि जिसकी यह मूर्ति है उसकाभी स्वरूप शान्त ध्यानारूढ पद्मासन अविकारी है कोई देवही होगा इस अनुमानसे देवका स्वरूप कहा। (१३) उपमा प्रमाणसे देवका स्वरूप कहतेहै–कि जैसे लोक व्यवहारमें कहतेहै कि यह पुरुष कैसा वीतरागी है इस वीतराग शब्दकी उपमा देनेसे सिद्ध होताहै कि कोई वीतराग था कि जिसकी उपमा देतेहै अथवा जैसे श्रेणकका जीव आवती चौवीसी में तीर्थंकर होगा तो उनको उपमा देते है कि जैसे इस काल मे श्री महावीर स्वामी हुये उस मुवाफ़िक़ श्री पद्मनाथ स्वामी होंगे वर्त्तमान काल के चौवीसवें तीर्थंकर की भविष्यत् काल में होनेवाले प्रथम तीर्थंकर है उनको उपमा देकर वर्णन किया यह उपमा प्रमाण हुवा (१४) आगम प्रमाण से देवका स्वरूप कहते है कि जो आगमो मे देव का स्वरूप लिखा है कि ३४ अतिशय ३५ वाणी इत्यादि अनेक प्रकार करके आगमों में बहुत वर्णन किया है सो यहां लिखने की कुछ ज़रूरत है नहीं क्योंकि आगम में प्रसिद्ध है इस करके देव का स्वरूप कहा (१५) द्रव्य थी देव का स्वरूप कहते हैं सो द्रव्यथीके दो भेद है १ लौकिक. २ लोकउत्तर लौकिक देव तो उसको कहते है कि जो भवन पति, व्यंतर, ज्योतिषी वैमानिक हैं जैसे अमरकोष में कहा है कि "अमरा निर्जरा देवा" इन को लौकिक में द्रव्यथी देव कहते है लोक उत्तरदेव उसे कहते है कि जिस समय में तीर्थंकर महाराज दीक्षालेकर चार ज्ञान सहित विचरते थे अथवा केवल ज्ञानी केवल ज्ञानकरके सहित देशना न देवे उसवक्त मे द्रव्यदेव होते हैं इस रीति से द्रव्यथी देवका स्वरूप कहा। (१६) क्षेत्र थी देवका स्वरूप कहते हैं–कि जिस क्षेत्र में तीर्थंकर विचरे उसको क्षेत्रथी कहते है जैसे १५ कर्म भूमि इस में ५ भर्त और ५ अईर वृत और ५ महाविदेह इन १५ क्षेत्रों में विचरने वाले जो है उस में भी जैसे भरत क्षेत्र मे २५ आर्य्य देश कहे तथा जिन क्षेत्रों में तीर्थंकरों का गर्भ उत्पत्ति जन्म दीक्षा केवल ज्ञान निर्वाण होय वा केवल ज्ञानी विचरे उनको क्षेत्रथी देव कहिये (१७) कालथी देवका स्वरूप कहते हैं कि जिस काल में तीर्थंकरों का जन्म अथवा दीक्षा होय वा केवल ज्ञान होय जैसे श्री ऋषभदेव स्वामी

तीजे आरे में उत्पन्न हुये जबसे लेकर २४ में श्री महावीरस्वामी चौथे आरे के अन्त में मोक्ष गये तो इन दश क्षेत्रों की अपेक्षा से काल इसी रीतिसे लिया जायगा और पांच महाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षा करके तो काल शास्वता है क्योंकि उन क्षेत्रों में कोई समय ऐनसा नहीं कि जिस समय में तीर्थंकर वा केवली न पावे ये काल से देवका स्वरूप कहा । (१८) भावथी देवका स्वरूप कहते हैं कि जिस समय समोसरण में बैठेहुवे भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हैं आत्मा का स्वरूप बताय कर भव्य जीवों को मोक्ष में पहुँचाते हैं उस समय में भावथी देव कहना चाहिये यह भावथी देवका स्वरूप हुवा । (१९) अब अनादि अनन्त भागे से देवका स्वरूप कहते हैं—कि अनादि अनन्त शब्द का अर्थ यह है कि—जिस की आदि नहीं और अन्त नहीं उसको अनादि अनन्त कहते हैं तो देखो कि ' अरिहंत ' इस शब्द को अनादि अनन्त कहते हैं क्योंकि यह शब्द कब उत्पन्न हुवा सो नहीं कह-सके और यह शब्द कभी नष्ट होजायगा येभी नहीं कहसके इसलिये नाम से अनादि अन-न्त देव हुवा स्थापना से जो कि शास्वती जिन प्रतिमा है क्योंकि न तो वे किसी की बनाई हुई है और न कभी उन जिन बिम्बों का अभाव होगा इसलिये स्थापना करके अनादि अनन्त है महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा करके एकसा कभी न होगा कि उस जगह छदमस्थ तीर्थंकर न पावे और इसी क्षेत्रकी अपेक्षा करके कभी भाव तीर्थंकर न पावे न पावेंगे ऐसा कोई काल में न होगा इसरीतिसे अनादि अनन्त देवका स्वरूप हुवा । (२०) अब अनादि शांत भांगे से देवका स्वरूप कहते हैं—जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे देव को मानता हुवा और ऋजुसूत्र नयसे अपने में हीं देवपना उपयोग देकर मानने लगा अथवा आठवें गुण ठाणे वाले जीवने क्षेपक श्रेणी करके बार में गुण ठाणे में अपना देवपना प्रगट किया तो जो अन्य को अनादि से देव बुद्धिमान् तथा वह बुद्धि अन्यको देव मानने की अनादि की थी सो उसजगह शांतहोगई यह अनादि शांत भांगे से देवका स्वरूप कहा । (२१) अब सादि शांति भांगे से देवका स्वरूप कहते हैं—कि जो भव्यजीव व्यवहार नय से आवर भाव जो तीर्थंकरों का देवपना है उस को निमित्त कारण मानकर स्तुति करता है और ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से क्रोधान रूप अपनी आत्मा में उप-योग देता हुवा अपने ही को देव मानना हुवा ।फिर ऋजुसूत्र नय का उ-पयोग दूर होवे तब व्यवहार नयसे अरिहंत को देव मानने लगा तो अपनी आत्मा को देव माना उस की आदि है फिर जब अरिहंत को देव माना तो अपनी आत्मा को देव माना था तिस का अन्त हुवा अथवा दूसरी रीति से कि जिस वक्त शुद्ध देवको देव बुद्धि करके मानता है उस वक्त तो शुद्ध देव माननेकी उत्पत्ति नाम आदि हुई और फिर मिथ्यात्वके प्रवृत्त उदय होनेसे शुद्धदेवको छोड़कर कुदेवको माननेलगा इस रीतिसे सादि शांति भांगेसे देवका स्वरूप कहा ॥ (२२) अब सादि अनन्त भांगेसे देवका स्वरूप कहते है कि देखो जो तीर्थंकरोंके नाम गोत्र कर्म करके उदयसे जब देवपना प्रगट हुवा उस देवपनेके प्रगट होनेकी तो आदि है फिर देवपना उनका कभी मिटेगा नहीं इसलिये सादि अनन्त हुवा अथवा जिस किसी भव्य जीवने चार घन घाति कर्मोंको क्षय करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त

वीर्य प्रगट किये और जो प्रगट हुआ देवपना उसकी तो आदि है और उस देवपनेका कभी अन्त नहीं होगा इसलिये अनन्त है यह सादि अनन्त भांगेसे देवका स्वरूप कहा। (२३) अब नित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हे–कि देव जो है सो नित्य है क्योंकि सिद्धकी अपेक्षा करके देव नित्य है अब कोई ऐसी शङ्का करके चार घाति कर्म क्षय करे उसको देव माना है फिर सिद्धिमें क्यों घटाते हो तो हम कहते हैं कि देखो अरिहंत यह शब्द नित्य है अब यहां कोई ऐसी शङ्का करे कि जिस वक्त सर्पनी उत्सर्पनी कालके वीचमें जो धर्मका बिल्कुल उच्छेद हो जाता है फिर नवीन तीर्थंकर नोकारादि बताते हे जैसे अब प्रथम श्री ऋषभदेव स्वामी उत्पन्न हुयेथे उनके पेश्तर तो नोकार कोई नहीं जानता था श्री ऋषभदेव स्वामीके पीछे "णमो अरिहंताणं" इस पदको जानने लगे ऐसेही पञ्चमे आरेके अन्तमें जब धर्म विच्छेद होगा तो नोकारभी विच्छेद हो जायगा फिर जब श्री पद्मनाथ तीर्थंकर उत्पन्न होंगे तब फिर "णमो अरिहंताणं" इस पदको जानेंगे इसलिये यह अनित्य ठहरा तो इस शङ्काका समाधान यह है कि–"००णमो अरिहंताणं" यह पद तो नित्य है परन्तु धर्मके जानने वालेके अभावसे इस पदका त्रोधान होगया इसलिये यहपद नित्यही दूसरा ठहरा समाधान यह है कि महाविदेह क्षेत्रमें इस पदका किसी कालमें त्रोधान नहीं होता है और उस महाविदेह क्षेत्रमे द्रव्य और भाव करकेभी अरिहंतका किसी कालमें अभाव नही इसवास्ते देव नित्य ठहरा यह नित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२४) अब अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जो भव्य जीवने १२ गुण ठाणेमें च्यार घाति कर्म क्षय करके जो केवल ज्ञान, केवल दर्शन, उत्पन्न किया सो अपना देवपना प्रगट होनेसे अन्यदेवको जो देव बुद्ध करके मानता था सो वह अन्यदेव बुद्धी अन्यतताको प्राप्त हो गई यह अनित्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२५) अब (एक) पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं कि जो चारघाति कर्म क्षय करे और केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न करे वह सर्व जीवोंकी एक रीति है क्योंकि कोई इस रीतिके सिवा दूसरी रीतिसे केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं करसके इसीवास्ते जिन धर्ममें "णमो अरिहंताणं" इस पदके कहनेसे सर्व तीर्थंकर और सामान्य केवली सर्व इस पदके अन्तर्गत होनेसे एक पदसे सर्वको नमस्कार हो गया यह एक पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२६) अब अनेक पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं–कि जैसे अबकी चौवीसीमे चौवीस तीर्थंकर हुये उनको जुदे२ तीर्थंकर मानते हैं और उनकी देहकी अवगाहना जुदी २ होनेसे जुदे २ देव कहे जाते हैं और जिस २० भव्य जीवको जिस तीर्थंकरके शासनमें समकित वा मोक्षकी प्राप्ति होय वह भव्य जीव उसी तीर्थंकरको विशेष अपेक्षासे देव मानता हुवा; इसवास्ते अनन्ती चौवीसीमें अनन्ते तीर्थंकर हुवे तो द्रव्य करके अनन्ते देव हुवे; यह अनेक पक्षसे देवका स्वरूप कहा। (२७) अब सत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते हैं–कि देवका द्रव्य, देवका क्षेत्र, देवका काल, देवका भाव, इन करके तो देवपना सत्य है–तो देवका द्रव्य क्या है कि गुण पर्यायका भाजन उसीको द्रव्य कहते हैं क्षेत्र उसको कहते हैं कि जिसमें ज्ञानादि गुण रहे काल उत्पाद व्यय अर्थात् जिस समयमें ज्ञान है उस समयमें दर्शन नहीं और जिस समयमें दर्शन है उस समयमें ज्ञान नहीं इस तरह जो ज्ञान और दर्शनका उत्पाद

व्यय उसीका नाम काल है; भाव उसको कहते है-कि जो अपने स्वरूपमें रमणता करना इस करके देव सत्य है अथवा देव उसीका नाम है जो तारनेवाला है क्योंकि वह सत्य स्वरूपकाही उपदेशक है और सत्य स्वरूपही है जो उसके सत्य स्वरूपको देखकर उसके कहेहुये सत्य उपदेशको ग्रहण करके जो क्रिया करेगा सो सत्य स्वरूपको प्राप्त होगा यह सत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा । (२८) अब असत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहते है कि असत्य देव अर्थात् कुदेवका द्रव्य कुदेवका क्षेत्र, कुदेवका काल, कुदेवका भाव व इन चारों करके कुदेवके स्वरूपसे देवका स्वरूप असत्य है जो कुदेवके स्वरूपसे देवका स्वरूप असत्य न माने तो कोई कार्यकी सिद्धि नहीं होय और सत्यदेवपनेमें भी असत्यपना आजाय और भव्य जीवोंका कोई कार्य सिद्धि न होय इसवास्ते कुदेवकी अपेक्षासे सत्यदेव भी असत्य है यह असत्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा ॥ (२९) अब वक्तव्य । (३०) अवक्तव्य इन दोनों पक्षोंसे देवका स्वरूप कहते है वक्तव्य क० देवका स्वरूप अनेक रीतिसे जिज्ञासूको समझाते है और स्तुतिआदिक करते हैं परन्तु उसके गुण स्वरूपका पार नही आता है इसवास्ते अवक्तव्य स्वरूप है क्योंकि जैसा देवका स्वरूप है वैसा मनुष्य, देवता, की तो क्या चले परन्तु केवली भगवान् ज्ञानसे जाने किन्तु वचनसे कह नहीं सके यह वक्तव्य, अवक्तव्य पक्षसे देवका स्वरूप कहा । (३१) अब भेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहते है-देखो कि जितने तीर्थंकर होते है उन सबमें आपसमें अवगाहना लक्षणोंसे भेद होता है अथवा सामान्य केवलीसे तीर्थंकरोंमें भेद होता है क्योंकि देखो तीर्थंकर महाराज त्रिगडामे बैठकर देशना देते हैं और सामान्य केवली विना त्रिगडेमें बैठे देशना देते है अशुच्य केवली आदिक देशनाही नहीं देते हैं एक तो इसरीतिसे भेद स्वभाव है दूसरी रीतिसे यह है कि जो भव्य जीव स्तुति आदिक करता है कि हे प्रभु ! मेरेको तारो भेद स्वभाव होनेही से यह कहना बनता है अथवा २४ तीर्थंकरोंको जुदा २ देव मानते है; ये भेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा । (३२) अब अभेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहते है-कि जितने तीर्थंकर हुये अथवा जितने सामान्य केवली हुये उनमे कोई तरहका भेद नहीं है क्योंकि अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्रमे रमणता करना यही सबका स्वभाव है इस रमणता रूप स्वभावमें किसीके में फर्क नहीं अथवा जिस वक्तमें जो कोई भव्य जीव व्यवहार नयसे स्तुति करता हुवा देवकी व्यक्त भाव स्वरूपको विचारता हुवा ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षासे अप शक्ति भावमें उस देवकी व्यक्ति भावका अध्यारोप अभेद करके अभेद स्वभाव मानता है, यह अभेद स्वभावसे देवका स्वरूप कहा । (३३) अब भव्य स्वभाव और (३४) अभव्य स्वभावसे देवका स्वरूप कहते हैं, भव्य नाम उसका है कि जिसका पलटण स्वभाव हो तो देखो जो देवका भव्य स्वभाव न हो तो जो ज्ञेयका पलटण रूप उसको कदापि न देख सके अथवा जो भव्य जीव देवके स्वरूपको विचारे है उस वक्त जो २ देवके स्वरूपके गुणादिकोंको स्मरणरूप करता हुवा त्यों २ उस भव्य जीवका परणाम जो है सो उस प्रभुके गुण अनुयायी पलटता हुवा चला जाता है तो देवका भव्य स्वभाव होनेसे उस देवको माननेवाला भी भव्य स्वभाव हुवा अब इससे जो विपरीति स्वभाव है जो कदापि न पलटे उसको अभव्य स्वभाव कहते हैं तो जो देवमें देवपना प्रगट हुवा सो कदापि न पलटेगा अथवा

जो कोई भव्य जीवने शुद्ध निश्चनयसे जो देवका स्वरूप ओल खलिया (जानलिया) वो उस भव्य जीवसे देवका स्वरूप कदापि न जायगा इसरीतिसे भव्य अभव्यसे देवका स्वरूप कहा। (३५) नित्य स्वभाव (३६) अनित्य स्वभावसे देवका स्वरूप कहते है देवमें भव्य जीवको तारनेकाही नित्य स्वभाव है अथवा जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उसमे जो रमणना वही उसका नित्य स्वभाव है इससे जो विपरीति सो अनित्य स्वभाव है अर्थात् परवस्तुमें न रमणता करना उस परवस्तुमे प्रवृत्त न होना इसकी अपेक्षा करके अनित्य स्वभाव है अथवा जो जीव उसको देव न माने उस जीवको वो न तार सके इस अपेक्षासे देवका अनित्य स्वभाव हुवा। (३७) परम स्वभाव देवका यही है कि जो भव्य जीव देवको देवबुद्धि मानकर उनके उपदेशको अंगीकार करे उसीको वे तारतेहै उनमे जो तारनेका स्वभाव सोही परमस्वभाव है यह देवमें परम स्वभाव कहा। अब छः कारकसे देवका स्वरूप कहते है (३८) कर्ता (३९) कर्म (४०) कारण (४१) सम्प्रदान (४२) अपादान (४३) आधार—जिस वक्तमें जो जीव देवपना प्रगट करनेको प्रवृत्त होता है वह जीव कर्ता है और देवपना प्रगट होना वह उसका कार्य्य है और जो शुक्ल ध्यानादिकसे जो गुणठाणेका चढ़णा यह उसमें कारण है जिसके अर्थ कार्यको करे उसका नाम सम्प्रदान है तो इस जगह सम्प्रदान कौन है कि आत्मामें रमणके वास्ते—यह सम्प्रदान हुवा अपादान उसको कहते है कि पहली पर्यायका व्यय होना और नवीन चीजका उत्पाद होना उसका नाम अपादान है तो इस जगह चार कर्म घातियोंका क्षय होना और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र अनन्त वीर्य्य का प्रगट होना यह इस जगह उपादान हुवा आधार उस को कहते हैं कि जो प्रगट हुई चीज को धार रक्खे तो इस जगह आधार कौन है कि जो गुण प्रगट हुए उन को आत्मा मे धारण किया इसलिये आत्मा मे आत्मा का आधार है अब ७ नय से देव का स्वरूप कहते हैं (४४) नैगम नय से जिस वक्तमें तीर्थंकर महाराजका जन्म हुआ उस वक्त सुधर्मा इन्द्र ने अवधि ज्ञान से देख भगवत् का जन्म जान अपने देवलोकमें घंटा बजाया इसी रीतिसे ६४ इन्द्र भगवत् का जन्म महोत्सव के वास्ते भगवत् को मेरु पर ले जाय कर महोत्सव करके अपने जन्म को सफल करते हैं इस जगह भगवत् की पूजा अतिशय प्रगट हुई। (४५) अब संग्रह नय से देव का स्वरूप कहते हैं कि जब भगवान् को लोकान्तक देवतों ने आय कर वरधायन अर्थात् विनती करने लगे कि हे प्रभो! तीर्थ को प्रवर्तावो और भव्य जीवों को तारो फिर भगवान् वर्षी दान देने लगे और फिर वर्षीदान देकर दीक्षा के उत्सवमें मनुष्य और देवता सब इकट्ठे होकरके वनमे जहां उन को दीक्षा लेनी थी वहां जाय पहुँचे यहां तक संग्रह नय का स्वरूप हुवा। (४६) अब व्यवहार नय से देवका स्वरूप कहते हैं—कि जब भगवत् ने आभरणादिक सब उतार कर सर्व वृत्त सामायक उच्चारण किया और पंचमुष्टी लोच करके अनगार अर्थात् साधु बन गये और पांच समती तीन गुप्ती पालते हुये देशो में विचरने लगे यहां तक व्यवहार नय हुई! (४७) अब ऋजुसूत्र नय से देव का स्वरूप कहते हैं कि जब भगवत् अपनी आत्मा का अन्तरंग उपयोग देकर आठमे गुणं ठाणे में सविकल्प पृथकत्व सपरि विचार शुक्ल ध्यान का प्रथम पाये में आतम स्वरूप विचारने लगे यहां तक ऋजुसूत्र नय हुई। (४८) अब शब्द

नय से देव का स्वरूप कहते है कि जव क्षीण मोही बारहमे (१२) गुण ठाणें को प्राप्त हुवे तव एकत्व वितर्क अप्र विचार नामा दूजे पाये में स्थित होकर चार घन घाती कर्म को क्षय करते हुये यहां तक शब्द नय हुवा । (४९) अब समभिरूढ नय से देव का स्वरूप कहते है कि जव चार घन घाती कर्म को क्षय किया उसी वक्त केवल, ज्ञान, दर्शन, उत्पन्न होकर लोक अलोक के भूत, भविष्यत, वर्तमान कालके स्वरूप को दर्शन से देखते हैं; ज्ञान से जानते हैं; यहां तक रूढ समभिनय से देव का स्वरूप हुवा । (५०) अव एवं भूत नय से देव का स्वरूप कहते हैं-कि जब भगवत् को केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुवा उसी वक्त ६४ इन्द्र आय कर चार निकाय के देवताओंने मिलकर समोसरण की रचना करी और आठ महा प्रत्यहार संयुक्त सिंहासन के ऊपर भगवत् विराजमान् हुवे तीन छत्र शिर के ऊपर ढलते हुवे इन्द्र चमर करते हुवे तीनों तरफ तीन बिम्ब सहित भगवत् विराजमान् होते हुवे चौंतीस अतिशय पैंतीस वाणी बारे परखदा के सामने देसना देते हैं उस वक्त एवं भूत नय वाला देव माने ७ नय करके देव का स्वरूप कहा इन नयोंके अनेक भेद हैं क्योंकि नय चक्र में २८ भेद कहे हैं विशेष आवश्यक में ५२ भेद कहे हैं कहीं ५०८ भेदकहे हैं और कहीं सातसौ भेद भी कहें हैं; अव जो सव खुलासा करके नयों का स्वरूप कहें तो ग्रन्थ वहुत वढ़ जाय इसलिये दिगमात्र ही यहां कहा है—अब सप्त भांगी से देवका स्वरूप कहते हे । प्रथम (५१) स्यात अस्तिभंगा है स्यात शब्द का अर्थ कहते हैं कि स्यात अव्यय है सो अव्यय के अनेक अर्थ होते हैं यदि उक्तं "धातुनां अव्यानां अनेक अर्थानी को ध्यानी" इसवास्ते स्यात पद दियाजाता है स्यात देवअस्ति स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल स्वभाव करके अस्ति है यह प्रथम भांगा हुवा । (५२) स्यात देवनास्ति देव जो है सो स्यात नहीं है किस करके कि कुदेव करके सो कुदेवका द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव करके नास्ति है जो कुदेव करके देव मे नास्तिपना नहीं मानें तो हमारा कार्य सिद्धही नहीं हो क्योकि कुदेव में तो कुगति देने का स्वभाव है और देव में देवगति अर्थात् मोक्षही देने का स्वभाव है जो देव में कुदेव का नास्तिस्वभाव न होता तो हमारा मोक्ष साधन निमित्त कारण कभी नहीं बनता इसवास्ते 'स्याद देवो नास्ति' यह दूसरा भांगा हुवा । (५३) अब स्यातअस्ति स्यातनास्ति भांगा कहते हैं कि जिस समय में देवमें देवत्वपनेका अस्तित्व है उसी समय देव में कुदेवपने का नास्तित्व पना है सो यह दोनों धर्म एकही समय में मौजूद हैं इसवास्ते तीसरा भांगा कहा(५४) अब स्यात अवक्तव्य नाम भांगा कहते हैं तो स्यात देव अवक्तव्य है अवक्तव्य नाम कहने में न आवे तो जिस समय देव में देवत्वपनेका अस्तिपना है उसीसमय देव में कुदेव पनेका नास्तिपना है तो दोनों धर्म एक समय होने से जो अस्ति कहें तबतो नास्तिपनेका मृषावाद आता है और जो नास्ति कहें तो अस्तिपनेका मृषावाद अर्थात् झूंठ आता है क्योंकि दो अर्थ कहनेकी एक समयमें वचनकी शक्ति नहीं कि जो एक संग दो वस्तु उच्चारण करें इसवास्ते अवक्तव्य है । (५५) अब स्यात अस्ति अवक्तव्य तो स्यात अस्तिदेव अवक्तव्य यह हुवा कि देवके अनेक धर्म अस्ति पनेमें हैं परन्तु ज्ञानी जान सकता है और कहनही सकता क्योंकि जैसे कोई गानेका समझने वाला प्रवीण पुरुष गानेको श्रवण

करके उस श्रोत्र इन्द्रियसे प्राप्त हुवा जो गानेका रस उसको जानता है परंतु वचनसे यह ही कहता है कि आहा ! क्या बात है. अथवा शिर हिलानेके सिवाय कुछ नहीं कह सक्ता तो देखो कि उस राग रागिनीका मजा तो उस पुरुषके अस्तिपनेमें है परन्तु वचन करके न कह-सके इसीरीतिसे देवमें देवत्वपनेमें जानने वालेको देवत्वपना उसके चित्तमें अस्ति है परन्तु वचनसे न कहसके इसवास्ते स्यात् अस्ति अवक्तव्य पांचमॉ भांगा हुवा (५६) अब स्यात् नास्ति अवक्तव्य भांगा कहतेहैं स्यातदेव नास्ति अव्यक्तव्यतो नास्तिपनाभी देवमें अस्तिपनेसे है परन्तु वचनसे कहनेमें नहीं आवे क्योंकि जिस समयमें देवका अस्ति-पना है उसी समय कुदेवका नास्तिपना उस देवमें बने हुवेको विचारने वाला चित्तमें विचार-ताहै परन्तु जो चित्तमें ख्याल है सो नहीं कह सकता है इसलिये स्यात नास्ति अवक्तव्य छठा भांगा हुवा (५७) अब स्यात अस्ति नास्ति युगपद अवक्तव्य भांगा कहतेहै कि स्यात्देव अस्ति नास्ति युग पद अवक्तव्य तो जिस समय में देवमें अस्तिपना है उसी समय कुदेव का नास्तित पना युग पद कहतां एक काल में अवक्तव्य कहतां जो नहीं कहसके क्योंकि देखो मिश्री और कालीमिर्च घोटकर जो गुलाब जल मिलाकर बनाया है जो पुरुष उस प्याले को पीता है वो उस मिश्री का और मिर्च का एक समय में पीता हुवा स्वाद को जानता है परन्तु उनके जुदे २ स्वभाव एक समय कहने के समर्थ नहीं क्योंकि वह जानता तो है कि मिर्च का तीखापन है और मिश्री का मीठापन है क्योंकि गलेमें मिर्च तो तेजी देती है और मिश्री मीठी शीतलताको देती है परंतु दोनोंके स्वादको जानकर कह नही सके इसीरीतिसे देवका स्वरूप विचारने वाला देवमें देवत्वपनेका अस्ति और कुदेवत्वपनेका नास्ति युग पदको तो एक समयमें जानता है परन्तु कह नहीं सके इस करके स्यात अस्ति नास्ति युग पद अव-क्तव्य सातमां भांगा कहा, यह जो सप्तभंगी है सो नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत्, असत्, वक्तव्य, अवक्तव्य, भिन्न, अभिन्न, भव्य, अभव्य ऐसे अनेक रीतिसे गुणमें, पर्यायमें, द्रव्यमें उत्पन्न होती है जो कि ५७ बोल देवके ऊपर उतारके देवका स्वरूप बतलाया है उन हर एक बोलके पांच २ भेद होते है सो पांच बोल उतारकर दिखाते हैं—१ ज्ञेय २ हेय, ३ उपादेय, ४ उत्सर्ग, ५ अपवाद ५७ बोल करके जो व्यवहारसे देवका स्वरूप कहा है उसमे इन पांचोंको दिखलाते हैं—कि ज्ञेय कहतां जो जाननेके योग्य है तो यहां देव और कुदेवका स्वरूप जाननेके योग्य है और कुदेव हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य है और देव उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है और देवके ज्ञान, दर्शन चारित्र अव्या बाधादिक निज गुणको निमित्त कारण जानकर विचारना सो उत्सर्ग मार्ग है और जब इसमे चित्त न ठहरे अथवा देवके निज गुणके विचारनेकी समझ न होय तो बाह्य रूप ३४ अतिशय ३५ वाणी ८महा प्रत्यहा-रादि विचार अथवा हे प्रभु ! तू तारने वाला है मुझको मोक्ष दे मै तेरे आधीन हूं मैं तेरा से-वक हूं हे नाथ! तेरे सिवाय और कोई मुझे तारनेवाला नहीं इत्यादिक अनेक निमित्त कारण तिस मुख्य कर्त्ता देवकोही मानकर स्तुति करे वह अपवाद मार्ग है. अब दूसरी तरहसे जो भव्य जीव हैं और जिन्होंने शुद्ध गुरुकी संगतसे आत्मस्वरूपको जाना है उनके वास्ते व्यवहारसे देवके स्वरूपमें इन्हीं पांच बातोंको दूसरी रीतिसे उतारते हैं कि ज्ञेयसे तो देवका स्वरूप जानना और देवमें हेय क्या चीज़ है उसको दिखलाते हैं जिस वक्तमें भव्य

जीव देवके अंतरंग गुणोंको सुमरने लगा उस वक्त बाह्य जो देवताकृत अतिशय वह महा प्रतिहारादि हेय अर्थात् छोड़नेके योग्य है और भगवत्के निज गुण जो हैं सो उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेके योग्य है ॥ और उत्सर्ग मार्गसे भगवत्के गुणोंको अपने आत्मगुण में अभेद से विचारने लगा जब तक चित्तकी वृत्ति भगवत् के गुण और आत्मगुण में अभेदता रही तब तक उत्सर्ग मार्ग है और जब उस अभेद वृत्ति में चित्त वृत्ति स्थिररूप नहीं रही तब प्रभुके गुणों को जुदा २ विचारने लगा सो अपवाद मार्ग है अब निश्चय से देवका स्वरूप जो ऊपर लिख आये हैं उस में भी यह ही पांच बोल उतारते हैं इन्द करके तो आत्म का स्वरूप जो जानें उस आत्मस्वरूप में ही देवबुद्धिको जाने और उस में ही गुरुबुद्धिभी जाने क्योंकि " तत्त्वं ग्रह्णाति इति गुरुः " जो तत्त्व को ग्रहण करे उसी का नाम गुरू है तो यह आत्माही ग्रहण करने वाली है धर्म क्या कि आत्मा का स्वरूप सोही धर्म है इस करके तो ज्ञेय हुवा जोकि निमित्त कारण आलम्बन पहले लिखा था उस को हेय अर्थात् छोड़कर निरालम्ब होकर अपनी आत्मा को ग्रहण करता हुवा इस का नाम उपादेय हुवा. अब उत्सर्ग मार्ग से जो स्वरूप ऊपर लिखा उस स्वरूप का निर्विकल्प एकत्वपने से जो विचार करे सो उत्सर्ग मार्ग है उस में निर्विकल्प मे चित्त की वृत्ति न ठहरने से अपवाद मार्ग अंगीकार करे तब सविकल्प पृथक्त्व स परिविचार अर्थात् सविकल्प से आत्मध्यान करे उसका नाम अपवाद मार्ग है अब यहां सविकल्प और निर्विकल्प का दृष्टान्त कहकर दार्ष्टान्त को दिखाते हैं:—सविकल्प उसको कहते हैं कि जिस वस्तुका विचार करे उसी वस्तु के अवयवों का जुदा २ स्वरूप विचारे अन्य का नहीं जैसे गऊ का स्वरूप विचारने लगे तब गऊ के अवयवों को स्मरण करे, कि जैसे गऊ के सींग होते हैं; गऊ के पूंछ होती है; गऊ के एक पग में दो खुर होते हैं; और गऊ के शासन अर्थात् गलेका चमड़ा लटका रहता है इन अवयवों को विचारना इस विचारका नाम गऊ का सविकल्प विचार है; निर्विकल्प उस को कहते हे कि गऊ के अवयवो को जुदा २ न विचारे केवल ऐसा विचारे कि गऊ है; यह तो दृष्टान्त हुवा अब दार्ष्टान्त कहते हैं-कि अपनी आत्मा का अवयवों से विचार करे कि मेरे मे अनन्त ज्ञान है मैं अनन्त दर्शनमयी हूं; मै अनन्त चारित्रमयी हूं; मैं अनन्त वीर्यमयी हूं; मैं अव्याबाध हूं; मै अमूर्त्तिक हूं; मै निरंजन हूं ऐसा जो अपनी आत्मा के ही निःकेवल अवयवों का विचार करना उसका नाम सविकल्प है जब इन अवयवों को छोड़कर केवल सब अवयवों संयुक्त आत्माही का विचार एकत्व में लयलीन होजाना उसका नाम निर्विकल्प है ! इसरीति से तो इन दो बोलों को इन पांच पांच बोल करके दिखाये और येही पांच बोल इसीरीति से (५७) बोलके भी ऊपर उतर जायँगे परन्तु ग्रन्थ के विस्तार भयसे यहां सब बोलों का नहीं उतारा इसी का नाम वीतरागने स्याद्वाद कहा है इसीरीति से जो स्याद्वाद मतको अंगीकार करनेवाले और गुरुकुल वास सेवन किया है जिन्होंने वही लोग षट्द्रव्य इस स्याद्वाद अनेक रीतिसे विचारनेवाले जिन धर्म को प्राप्त होंगे नतु जैनी नाम धराने से वा भेष ले लेने से इस रीतिसे ५७ बोल करके किञ्चित् देवका स्वरूप कहा. अब भव्यजीव के लिये गुरू का स्वरूप कहते हैः—"महा व्रतधरा धीरा भिक्षा मात्रोप जीविनः । सामायिकस्था धर्मोप

देशका गुरवो मता ॥ " अर्थ–अहिंसादिक पंच महाव्रतका पालनेवाला होय और आपदा नाम कष्ट पड़ने से धीर बनारहे अर्थात् अपने व्रतों को किसी तरह का दूषण न लगावे और मधुकर अर्थात् भौंरा की तरह ४२ दूषण टालकर गृहस्थो के यहां से भिक्षावृत्ति अपने चारित्र पालने के लिये और शरीर के निर्वाह के वास्ते भोजनकरे सोभी पूराभोजन न करे दूसरे दिनके लिये रात्रिको आहारादि न रक्खे और धन धान्य आदि कुछभी संग्रह न करे सिवाय उपकरण के और कुछ न रक्खे राग द्वेष रहित होकर मध्यस्थ वृत्ति से रहे अर्थात् समता परिणाम रक्खे और जो धर्म का उपदेश भव्यजीवों को दे तो सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र रूप जो अरिहंत भगवान्ने स्याद्वाद अनेकान्त रीति से कहा है वैसा उपदेश दे और उस में भगवत् वचन में कोई तरह का भिन्न उपदेश न करे और जिन भव्य जीवों को उपदेशदे उन भव्य जीवों से भोजन वस्त्र पात्र किसी तरह की कांक्षा न रक्खे और धर्म उपदेश के अर्थात् आत्मा के अर्थके विना ज्योतिष शास्त्र, ग्रह गोचर, मंत्र, यंत्र, तंत्र औषधि, जड़ी, बूटी, रसायन आदि कुछ न बतावे और अपनी मान बड़ाई के वास्ते उनकी किसी तरह की शिष्टाचारी न करे उसी को जिनमत में गुरू कहना नतु भेष मात्रसे गुरु होगा ॥ अब पांच महाव्रतका स्वरूप कहते है–प्रथम अहिंसा व्रत है त्रस जीव, बे इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचइन्द्रिय और स्थावरमें पृथ्वी काय अपकाय अर्थात् जल अग्नि काय वायु काय और वनस्पति काय इन त्रस और स्थावर जीवोंके प्रमादके वश हो करके मन, वचन, काय करके आप मारे नहीं दूसरेसे मरावे नहीं मारते को भलाजाने नहीं इस रीतिसे अहिंसाव्रत पाले अब दूसरा महाव्रत कहते है कि साधु ऐसा वचन बोले कि जिस वचनके सुनतेही दूसरा जीव हर्ष पावे और वचन दूसरेको हित अर्थात् लाभकारी हो और सत्य वचन हो परन्तु इतना विशेष है कि व्यवहारसे सत्यभी हो परंतु अगले जीवको दुःखदायी होवे ऐसा वचन न बोले क्योंकि देखो काणेको काणा और अंधेको अंधा चोरको चोर इत्यादि कहनेमें दूसरेको दुःख होता है इसलिये न बोले तथा ऐसा भी वचन न बोले कि अगाड़ीको अनर्थका हेतु हो। अब तीसरा अदत्ता दान अर्थात् चोरी का व्रत कहते है कि मालिकके दिये विना जो वस्तुका लेना उसका नाम चोरी है सो चोरी चार प्रकार की है प्रथम (१) "स्वामी अदत्त" कि जो जीवरहित घास काष्ठ पाषाणादि वस्तुको स्वामीके विना पूछे जो साधु ले तो स्वामीकी चोरी लगे। (२) जीव अदत्त उसको कहते है कि जैसे हिंसक लोग भेड़, बकरी, गाय कसाइयोंके बेचे और कसाई लोग उनको मारे परन्तु स्वामीने तो उसको दे दिया किन्तु उस जीवने तो अपना शरीर नही दिया इसका नाम जीव अदत्त है (३) तीर्थंकर अदत्त उसको कहते है कि जो २ वस्तु आधा कर्मादि आहार अचित जीव रहित है और उस वस्तुका देनेवाला स्वामी भी है परन्तु तीर्थंकरकी आज्ञा नहीं है और साधु जो उस वस्तुको लेवे सो तीर्थंकरो की चोरी है। (४) गुरु चोरी कहते है कि जो वस्तु निर्दोष है आहार पानी आदि उसके देनेवाला स्वामी भी है और तीर्थंकरोने उस वस्तुको निषेध भी नही किया परन्तु गुरुकी आज्ञा विना जो साधु उस वस्तुको लेवे सो गुरुकी चोरी है इसीरीतिसे अदत्ता दान कहा (५) अब मैथुन महाव्रतका स्वरूप कहते हैं कि देवताकी जातिके जो देवी और मनुष्य संबंधी जो स्त्री आदि

और तिर्यंच संबंधी जो विषय आदिकका जो सेवन करे करावे करतेको भला जाने मन, वचन, काय करके ऐसा जो मैथुन सेवनेका जो त्याग करे उसको ब्रह्मचर्य्य व्रत कहते है। पांचमां परिग्रहव्रत उसको कहतेंहै कि जो नौ विध परिग्रह है उसमेंसे कोई न रक्खे, धर्म साधनके उपकरणके सिवाय कुछ न रक्खे उसके उपरांत रक्खे सो साधु नहीं यह पंच महाव्रत कहे। अब प्रथम महाव्रतकी पांच भावना कहते हैं ॥ श्लोक ॥ मनो गुप्त्येषण दानै, र्याभिः समितिभिः सदा दृष्टान्न पान ग्रहणो नाहिंसा भावयेत्सुधिः ॥ १ ॥ (व्याख्या) मनको पापके काममें न प्रवर्ते किन्तु पापके कामसे अपने मनको अलग कर लेवे इसको मनोगुप्ति कहते हैं यदि पके काममें मन प्रवर्तावे और वाह्य वृत्ति करके हिंसा नहीं भी करता हो तो भी प्रश्न श्रीचन्द्रराज ऋषिजीकी तरह सातवीं नरकके जाने योग्य कर्म उत्पन्न कर लेता है इसवास्ते मुनिको मनोगुप्ति करनाही चाहिये यह प्रथम (१) भावना कही। दूसरी भावना एषणा सुमति है सो आहारादि चार वस्तु आधा कर्मादिक बयालीस दूषण रहित लेवे सो पिंड निर्युक्ति वा पिंड विशुद्धि श्री जिन वल्लभसूरिजी कृत वा प्रवचन सार उद्धार आदि ग्रन्थोंसे जान लेना किञ्चित् यहां भी कहते हैं– पहले गृहस्थी १६ दूषण लगाता है सो गृहस्थीको न लगाने चाहिये आधा कर्मी साधुके वास्ते अधिक आहार रांधके दे और कुछ अपने वास्ते भी करे। (२) उद्देशक दोष ओ साधुके वास्तेही आहार बनाकर देवे (३) प्रति कर्म यह शुद्ध आहारमें अशुद्ध आहार पानी पड़ते हुवे दे; कैसे दे? कि जैसे कच्चे पानीके वर्तनमें शुद्ध आहार देना (४ मिश्र जाति दोष–ये सब भेषधारी पाखंडी साधु साधर्मी आदिक सबके ताई करके दे (५) स्थापना दोष–साधुके वास्ते दूध दही आदिक थाप करके रक्खे कि साधु आवें तब दे (६) प्राभृत दोष जो सूखड़ी प्रमुख भोजन साधुको देवे (७) प्रादूप्त दोष–अन्धेरेमें किया हो और उजीतेमें प्रगट करे पीछे बहरा देवे (८) कृत दोष–साधूके वास्ते आहार मोल लेकर देवे। (९) प्रामित दोष–अपने घरमें वस्तु नहीं हो दूसरेके पाससे उधार लायकर साधुको देवे। (१०)प्रावर्त–साधुके वास्ते अपने घरका निरस आहारके वदलेमेंसे दूसरे घरसे सरस आहार लाकर दे। (११) अभिहतदोष–साधु बहरनेके वास्ते घर आया आहारथाली आदिक प्रमुखमें सामने लेकर आये (१२) उद्भिन्नदोष कुवा वा हांडी मुद्रा लगी हुई हो उसको खोलकर घी आदिक वा ताला आदिक खोलकर आहारादिक दे। (१३) मालहृतदोष–जो ऊपर छींके पर रक्खी हुई चीज साधुको दे अथवा नीचे भूमिमेंसे निकालकर साधुको दे। (१४) अछ दोष–जो जोरावरी दूसरेसे छीनकर साधुको आहार दे। (१५) अनिसृष्टिदोष जो दो चार जनेके साझेका आहार होय और उनके छाने साधुको दे। (१६) अध्यव पूरक दोष–जो छाछ अथवा दाल थोड़ी हो उसमे पानी मिलाय करके जियादा वधायकर साधुको दे ये उद्गमनके सोलह दोष गृहस्थीको लगते है सो उसको न लगाने चाहिये। अब उत्पादके सोलह दोष साधु लग ते है सो कहते हैं (१) धात्री पिंड दोष–धायकी तरह गृहस्थीके बालकको रमावे व चुटकी आदिक बजायकर उनके माता पिताको राजी करके आहार ले। (२) दूति पिंडदोष–दूतकी तरह ग्राम, नगर आदि सम्बन्धियोंके समाचार कहकर आहार लेवे। (३) निमित्त पिंडदोष–टेवा, जन्मपत्री, ग्रह, गोचर, ज्योतिष

कहकर आहार लेवे। (४) आजीवका दोष—अपनी उत्तम जाति गृहस्थको जनायकर आहार ले। (५) वनीयक दोष—दातारकी खुशामद करके उसकी शोभा दिखायकर अपनी दीनताकर आहार ले। (६) चिकित्सा दोष—नाड़ी देखकर ओषधि चूर्णादि देकर आहार ले (७) क्रोधपिंड दोष—शाप देवे रोष करे भय प्रमुख दिखायकर आहार लेवे (८) मान पिडदोष- साधुवोंमें अहंकार सहित प्रतिज्ञा करके गृहस्थीके घरसे आहार लावे (९ मायापिंड दोष—कपटाई करी रूप परावर्त वचन परावर्त करके अषाड भूत साधुकी तरह आहार लेवे। (१०) लोभपिंड दोष—रसका गृधी होकर जिस गृहस्थीके सरस आहार मिले उसीके यहांसे मूर्छितपने व्याकुल होकर सरस आहार ले। (११) संस्तव दोष—दातारकी प्रशंसा करे और कहे कि तुम्हारे माता पिता बड़े दातार, उदारचित्तथे सो तुम्हारे घरकी क्या शोभा करें अथवा सासू श्वशुरेकी बड़ाई करे और उससे आहार ले। (१२) विद्यापिंड दोष—आहारके वास्ते उसको विद्या भणावे अथवा देवी आदिकका आराधन बतावे (१३) मंत्रपिंड दोष—मंत्र, तंत्र, यंत्र, आदिक उनको सिखावे अथवा आप करके दे और आहार लेवे। (१४) चूर्णपिंड दोष—ओषधादि चूर्ण गोली दे अथवा स्नान करावे ज्वरादिकसे अथवा किसी करतबके वास्ते उसको वास क्षेपदे। (१५) योगपिड दोष—वशीकरण अंजन इन्द्रजाल आदि चमत्कार दिखावे सौभाग्य आदिकका कारण बतायके आहार लेवे। (१६) मूलपिड दोष—गर्भपात करायके आहार लेवे अथवा मूल जेष्ठा आदि नक्षत्रोंका पूजन कराय कर आहार ले यह १६ दूषण साधु लगाता है सो साधुको नहीं लगाने चाहिये कदाचित् वे कारण जो साधु लगाते हों वो भगवान्की आज्ञामें नहीं अब १० दोष जो साधु और श्रावक दोनोंसे उपजे है सो ग्रहण एषणा दोष कहलाते हैं सो लिखते हैं—(१) संकित दोष- आधा कर्मी दोषकी शंका होते हुवे आहार लेवे देवे। (२) मृक्षित दोष—सचित् चीजसे शुद्ध आहार खरड़ा हुवा अथवा हाथादिकके सचित् चीज़ लगी हो फिर उससे आहार देना। (३) निक्ष प्रदोष—अकलपनीय वस्तुमें आहार पड़ा हो उसे लेवे। (४) विहित दोष—जो सचित् वस्तुसे आहार ढका हुवा हो उसे ले। (५) साहरित दोष—भारी ठाममेंसे छोटी ठाममें करके आहार ठहरावे या पछा कर्म अर्थात् पीछेसे वर्तन धोवे। (६) दायक दोष—जो गर्भकी अथवा रोगी असमर्थ अथवा अंधा, लूले, पागलेसे आहारादि वहरे। (७) उनमिश्र दोष—अकलपनीय आहार मिलाय करके वहरावे। (८) अपरिणत दोष—जो पूरा आहार पका नहीं जो घृघरी तथा मक्कीया प्रमुख लेवे। (९) लिप्त दोष—जो दही, दूध, क्षीर, प्रमुख पतला द्रव्य हाथपर लगेहुए को पीछे पानीसे धोवे। (१०) छर्दित दोष—जो घृतसे झरता हुवा टपका पड़ता हुवा आहार लेवे यह सर्व मिलकर ४२ दूषण हुए इन सर्व दूषणोंको टालकर जो साधु आहार लेते है वो जिन मतमें शुद्ध साधु है अब साधुके आहार करते समयके पांच दूषण औरभी कहते है प्रथम संयोजन दोष जो क्षीरमें मीठा थोड़ा हो फिर दूसरी जगहसे लायकर उसमें मिलावे तथा खिचड़ीमें दूसरी जगहसे घृत लायकर खावे (२) अप्रमाण दोष—सिद्धान्तमें कहे प्रमाणसे अधिक आहार करे अर्थात् ३२ कवाग्रसे विशेष आहार करे अथवा नित्य भोजी एकवारसे

दूसरीवार विन कारणके गोचरी करे । (३) इग्रा दोष- आहार करते समय आहारकी शोभा करता हुवा जो आहार करे तो चारित्रकोंको मिलाके समान काला करे (४) धूमदोष-आहारकी निन्दा करता हुवा जो आहार करे तो चारित्रको धूवांके समान करे । (५) आकारण दोष-आहार करनेके कारण दो हैं एक तो वियावच्च करनेके वास्ते दूसरा इरिया सुमती सिझाय ध्यान प्रमुख करनेके वास्ते दो कारणके वास्ते साधु आहार करे इनके विना जो शरीरपुष्टी अथवा रूपादिक वल बढानेके वास्ते करे वो साधु नही ये मांडलीके पांच दूषण हुये सर्व मिलके ४७ दूषणोंको आत्मार्थी शुद्ध साधु टाले क्योंकि अशुद्ध आहार लेता महापाप लगे इसवास्ते टालना चाहिये । अब तीसरी भावना आदान भंडमंत निखेवणा सुमती है जो कुछ पात्रदण्ड फलक इत्यादिक लेना पड़े और भूमिपर रखना पड़े सो पहले उसको देखकर पीछे रजोहरण करके पूंज लेवे पीछे लेना होय तो ले और रखना होय तो रक्खे क्योंकि बिच्छू सर्पादिक अनेक लेहरी जीव उस उपकरणके ऊपर बैठ जाते हैं जो रजोहरणसे उपकरणो वा जमीनको पूंजे तो वह जीव अलग हो जाय जो ऐसा न करे तो वह जानवर अपनेको काट खाय तो अपनेको जहर आदिककी व्याधि होय उससे सिजाय ध्यानादिक न बने अथवा कोई कोमल जीव आके बैठा हो तो हाथके स्पर्शसे वह जीव मरजाय तो उसका पाप लगे इसवास्ते यत्न पूर्वक वह काम करना चाहियें अव चौथी इरिया सुमती कहते है कि जब साधु मार्गमें चले तव अपनी आंखोंसे चार हाथ भूमि देखता हुवा चले क्योंकि देखकर चलनेमें कई गुण प्राप्त होते हैं एक तो पैरमें कांटा न लगे दूसरे ठोकर न लगे तीसरे कोई जीव कीड़ी मकोड़ी आदिका भी बचाव होवे चौथे लौकिकमें ही लोग देखे सो शोभाकरे कि देखो यह मुनिराज कैसे है कि जिनकी दृष्टि ऐसी है कि मार्गमे ही देखते हुये जाते है और इधर उधर कुछ नहीं देखते है । अब पांचवीं भानना कहते हैं कि साधु अन्न पानी गृहस्थीके घरसे प्रकाश वाली जगहमें लेवे अंधकारकी जगहमें न लेवे क्योंकि अन्धकारकी जगहमे एक तो कीड़ी मकोड़ी जीवादिक न दीखे और उनकी हिंसा होय । (२) सर्प, विच्छू काटने का डर रहता है । (३) गृहस्थकी कुछ वस्तु जाती रहे तो गृहस्थीको अनेक तरहकी शंका उत्पन्न हो जाती है क्योंकि क्या जानै अन्धेरेमे साधु जी ले गये होंय अथवा अंधेरेमें साधुका अच्छा रूप देखकर विकार वाली स्त्री उसके लिपट जाय तो साधुका चारित्र जाय और दूसरा कोई देखता होय तो धर्मकी हीलना होवे अथवा स्वरूपवान् स्त्रीको देखकर साधु का चित्त चलजाय और उस स्त्रीको साधु पकड़े और स्त्री हल्लामचावे तो धर्मकी बहुत हानि होवे और साधुकी प्रतीति उठजाय इसवास्ते साधु अंधेरी जगहसे आहारादिक न लेवे यह प्रथम महाव्रतकी पञ्च भावना कहीं ॥ अब दूसरे मृषावादकी भावना कहते है (१) भावनाका स्वरूप कहते है कि साधु किसीकी हँसी न करे क्योंकि "रोगकाघर खांसी और लड़ाईका घर हांसी" देखो श्री रामचन्द्रका दृष्टान्त देते हैं कि रावणकी बहन शूर्पणखा की हँसी श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मण जीने करीथी तब शूर्पणखा क्रोधमें होकर अपने भाई रावणके पास गई और सीताका रूप वर्णन किया तो रावण सीताको हरले गया तब रामचन्द्रने रावणसे बड़ा भारी संग्राम किया सो कथा आज तक लौकिकमें चली आती है इस सारी रामायणका सारांश

शूर्पणखा की हँसी है। इसवास्ते साधु किसीसे हँसी न करे ॥ दूसरी भावना लोभ का त्याग करना है क्योंकि जो लोभी होगा सो अवश्य अपने लोभके वास्ते अवश्य झूठ बोलेगा क्योंकि यह बात सर्व लोकोंमे प्रसिद्ध है जो लोभी होगा वह अवश्य झूंठ बोलेगा ये दूसरी भावना हुई॥ तथा भय न करना क्योकि भयवंत पुरुषभी झूठ बोल देता है, ये भय त्याग रूप तीसरी भावना हुई॥ तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष क्रोधके वश होगा वह दूसरेके हुए अनहुए दूषण जरूर बोलेगा, इसवास्ते क्रोध त्याग रूप चौथी भावना हुई॥ तथा प्रथम मनमे विचार करलेवे पीछेसे बोले क्योंकि जो विचार करे विना बोलेगा वह अवश्य झूठ बोलेगा इसवास्ते विचारपूर्वक बोलना, ये पांचवी भावना; ये दूसरे महाव्रतकी पांच भावनाहे ॥ अब तीसरे महाव्रतकी पांच भावना लिखते हैं जिस मकानमे साधुको रहनेकी इच्छा होवे तो उस मकानके स्वामीकी आज्ञालेकर रहे और आज्ञा न ले तो चोरी लगे, विना आज्ञाके जो ठहरे तो कदाचित् मकानका स्वामी रातको वाहर निकालदे तो रात्रिको साधु कहां जा सकताहै और नाना प्रकारके क्लेश उत्पन्न होय इसलिये स्वामीकी आज्ञा लेकर रहे ॥ अब दूसरी भावना कहतेहे कि मकानके स्वामीकी वारम्वार आज्ञालेनी चाहिये क्योंकि कदाचित् साधुको कोई रोग उत्पन्न होय तो उसके मल मूत्र करनेके लिये जगह जरूर होनी चाहिये, घरके स्वामीकी आज्ञाके विना जो उसके मकानमें मल मूत्र करे तो चोरी लगे इसलिये घरके स्वामीकी वारम्वार आज्ञा लेनी चाहिये दूसरी भावना हुई ॥ तीसरी भावना यह है कि मकानके भूमिकी मर्यादा करलेवे कि हमको इतनी जगह तक तुम्हारी आज्ञा रही जो मर्यादा न कर लेवे तो अधिक भूमिको काममे लानेसे चोरी लगती है इसवास्ते मकानकी मर्यादा पहले ही करलेवे ये तीसरी भावना हुई ॥ अब चौथी भावना कहे हैं कि जो साधु समानधर्मी होवे और वह पहले ही किसी जगहमे उतरा हुवा होवे, पीछे दूसरा साधु जो उस मकानमें उतरना चाहे तो प्रथम साधुकी आज्ञा विना न रहे जो प्रथम साधुकी आज्ञा न लेवे तो स्वधर्मी अदत्त लागे॥ पांचवी भावना यह है कि साधु जो कुछ अन्न पान वस्त्र पात्र शिष्यादिक लेवे सो सर्व गुरुकी आज्ञासेलेवे जो गुरुकी आज्ञाविना लेलेवे तो गुरु अदत्त लागे, यह पांचवी भावना हुई। ये तीसरे महाव्रतकी पञ्च भावना हुई ॥ अब चौथे महाव्रतकी पांच भावना कहतेहे। जिस मकानमे स्त्री आदिकके चित्रामनहो और नपुंसक तिर्यंच स्त्री जिस मकानमे न हो वह मकान ऐसा हो कि जिसकी भीतके पास ऐसा मकान कोई न हो कि जहां कोई स्त्री आदिक अपने मकानमें क्रीड़ा करती हों उनका शब्द आवे अर्थात् और भी कोई उस मकानमें ऐसा शब्द उसके कानमें न पड़े कि जिससे मोह रूपी विकार पैदा हो यह प्रथम भावना हुई ॥ दूसरी भावना यह है कि, सराग (प्रेम सहित) स्त्रीके साथ वार्ता न करे और स्त्रीके देश, जाति, कुल शृंगार प्रमुखकी कथा सर्वथा न करे क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो पुरुष स्नेह सहित काम शास्त्र इत्यादिककी कथा करेगा सो अवश्य विकार भावको प्राप्त होगा इसलिये कोई कथा वा चारित्र समय शृंगार रस और स्त्रियोंके चरित्र हो वो साधु न कहे ॥ अब तीसरी भावना कहतेहें। दीक्षा लियेके पहले जो कि गृहस्थीपनेमें स्त्रीके संगमें काम क्रीड़ा, विषय, सेवन, प्रमुख नाना प्रकारके संसारी भोग विलास करतेहे उनको साधु कदापि मनमे न चिते क्योंकि पिछला भोग याद करनेसे काम

रूपी अग्नि जागती है, यह तीसरी भावना हुई ॥ अब चौथी भावना कहतेहैं कि स्त्रीके अंगो पंग अर्थात् आंख, नाक, मुख, स्तन, आदिक सहराग दृष्टिसे न देखे क्योंकि सहराग दृष्टि देखनेसे विकार आदिककी उत्पत्ति होवे इसलिये साधुको देखना मना है कदाचित् राग रहित दृष्टिसे देखनेमें आजावे तो कुछ दोष नहीं तथा अपने शरीरको संस्कार करना स्नानादिक हाथ, पग मल २ के धोना तेल आदिक लगाना नख, दांत, केश आदिक अवयवोंको सम्हारना अच्छा वस्त्रादिक चमकता हुवा पहरना इत्यादिक अनेक विकार होनेकी चेष्टा न करे, यह चौथी भावना हुई । अब पांचवीं भावना कहते हैं—स्निग्ध मधुर आदि रस ऐसी चीजोंका अधिक आहार करना और निरस आहारको न लेना ऐसा साधु न करे क्योंकि साधुको ऐसा करना चाहिये कि जहां तक बने वहां तक रूखा सूखा आहार लायकर करे सो भी पूरा पेट न भरे क्योंकि रूखा सूखा भी खूब पेटभर खाने से इन्द्रियों की पुष्टि होती है इसवास्ते साधु पूरा पेट न भरे क्योंकि शास्त्रों में ऐसा कहा है कि साधु पेटके चार भाग करे सो दोभागतो अन्नसे भरे एकभाग जलसे भरे और एकभाग खाली रक्खे जिससे श्वासो श्वास सुगमता से आता जाता रहे यह पांचवीं भावना कही ॥ अब पांचवें महाव्रतकी पांच भावना कहते हैं कि पांचों इन्द्रियों की जो पांच विषय रस, वर्ण, गंध, स्पर्श आदिक में जो अत्यन्त गृद्धिपणा है सो वर्जना और स्पर्श आदिक अमनोज्ञ पांच विषयों में द्वेष न करना यह पांचवें महाव्रतकी पांच भावना कही इन पांच महाव्रत की पचीस भावना जिसमें होवें वह जैनका साधु और गुरु है॥ और चरण सित्तरी और करण सित्तरी इन करके संयुक्तहो सो ही जिन मत में गुरु है । अब चरण सित्तरी के नाम लिखते हैं—५ महाव्रत, १० यतिधर्म १७ प्रकार का संयम १०प्रकार की वियावञ्च और ९ प्रकार की ब्रह्मचर्य्यकी वाड १२ प्रकार का तप और क्रोधादि ४ कषाय निग्रह, १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र यह कुल चरण सित्तरी के ७० भेदहुवे इनकर के जो संयुक्तहो सो गुरु है और करण सित्तरी के भेद यह है—पिंडविशुद्धि ४ प्रकार की ५ सुमती. १२ भावना १२ पडिमा ५ इन्द्रियों का निग्रह. २५ पडलेहना. ३ गुप्ती और ४ प्रकारका अवग्रह यह ७० भेद करण सित्तरी के हैं, इस करण सित्तरी, चरण सित्तरी के जो बोल है इनका जो अर्थ सो वहुत ग्रन्थो में लिखा हुवा और जिन मत में प्रसिद्धहै इस वास्ते मैने इन बोलों का अर्थ नही किया दूसरा इन को निश्चय, व्यवहार, द्रव्य, क्षेत्र,काल, भाव, की अपेक्षा लेकर जो इसका अर्थकरूं तो ग्रंथ वहुत वढ़जाय इस भयसे मैं नहीं लिख सका ऊपर लिखी हुई वृत्ति बमूजिव जो कोई होय वही जैनका गुरू है इसरीतिसे साधु का स्वरूप कहा इस से जो जो विपरीत हो सो साधु नहीं । (प्रश्न) तो वर्त्तमान काल में इस वृत्ति वाला कोई साधु देखने में नहीं आता है तो फिर इन को साधु वा गुरू मानना क्योंकर वनेगा? (उत्तर) भो देवानुप्रिय? यह तुम्हारा एकान्त करके निषेध करना ठीक नहीं क्योंकि जैन मत में स्याद्वाद, उत्सर्ग, अपवाद, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे वर्तमान कालमें भी आत्मार्थी भगवत् आज्ञानुसार अल्प मुनि राज पावेंगे क्योकि भगवत्ने ऐसा कहा है कि मेरा शासन पंचमे आरेके अन्त तक रहेगा इसवास्ते इस कालमें भी जो आत्मार्थी निष्कपट होकर जो भगवत्ने आज्ञाकी है उसी

बमूजिब उपदेश देने वाले भव्य जीवोको मार्ग बतलाने वाले जो मुनिराज हैं उनको साधु वा गुरु नहीं माननेसे भगवत् आज्ञा विरोधक होते है क्योंकि देखो श्री भगवती जी सूत्रके पचीसवें शतकके छठे उद्देशामें लिखा है कि इस हुंडा सर्पिनी काल पंचम आरे में दो तरहके साधु होंगे उनसे मेरा शासन चलेगा और निर्ग्रन्थ तो प्रमाणकी अपेक्षा कोई विरलेमें पावेगा मुख्यतामें दोही रहेंगे इसलिये उनको साधु मानना ठीक है उन दोका नाम बकुश और कुशील है। अब बकुश और कुशीलका स्वरूप लिखते हैं जो ब-कुशा निर्ग्रंथ है तिसके दो भेद हैं सो कहते है, तहां जो वस्त्र पात्रादिक उपकरणकी विभूषा करे सो "उपकरण बकुश" यह प्रथम भेद और जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विभूषा करे सो शरीर बकुश यह दूसरा भेद जानना इन दोनों भेदोके पांच भेद हैं–प्रथम आभोग बकुश, जो साधु जानता है कि यह करनेके योग्य नही तो भी उस कामको जो करे सो आभोग बकुश; और जो अनजाने करे सो दूसरा अनाभोग ब-कुश; और जो मूल गुण, उत्तर गुणमें छुप कर दोष लगावे सो संवृत बकुश; और जो मूल गुण उत्तर गुणमें प्रगट दोष लगावे सो चौथा असंवृत बकुश; और जो नेत्र, नासिका, मुखादिकका मेल दूर करे सो पांचमा सूक्ष्म बकुश जानना; ॥ अथ उपकरण बकुशका स्वरूप कहते हैं–जो उपकरण बकुश है सो पावसऋतु विनाभी जल क्षारसे वस्त्र धोता है। पावस ऋतुमें तो सब गच्छवासी साधुओंको आज्ञा है क्योंकि जो वर्षासे पहिले एक बार सर्व उपकरणको जल क्षारसे न धो लेव तो वर्षाऋतुमें मैलके संसर्गसे निगोद आदिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावे और यह जो बकुश निर्ग्रंथ सो पावस ऋ-तुविना अन्यऋतुमेंभी जल क्षारसे उपकरण आदिक धो लेता है और बकुश निर्ग्रंथ सुन्दर सुकोमल वस्त्रभी चाहता है और कुछ उपकरण विभूशा शोभाके वास्ते पहिरता है और पात्र दंड आदिक घोंटेसे घोटकर सुकुमार करे तथा घी, तेल, चौपड़ कर चमक-दारकरे और विभूशाके वास्ते बहुत उपकरण रक्खे ॥ अब शरीर बकुशका स्वरूप कहते है देह बकुश जो है सो विना कारण हाथ, पग, आदिककी विभूशा करे जलादिकसे धोवे ऐसे उपकरण और शरीर यह दोनों प्रकारका बकुश निर्ग्रंथ परिवार इत्यादिककी ऋद्धि चाहता है और ऋद्धि गारव, रसगारव, सातागारव, इन तीनोके गर्भोमें आश्रित होवे और रात दिनकी क्रिया समाचारीमें बहुत उद्यम न करे और यहभी जानता है कि साधुके करणे योग्य यह काम नहीं है तोभी प्रमादसे उस कामको करे लेता है तिसकी विशेष विस्तार श्री भगवती जीमें देख लेना ॥ अब कुशीलका स्वरूप कहते है शील कहे चारित्र सो जिसका चारित्र खोटा है सो कुशील निर्ग्रन्थ इसके दो भेद है एक तो प्रति सेवना कुशील, दूसरा कषायो करि कुशील ॥ जो संजलकी कषाय करके कुशील सो कषाय कुशील यह दोनों पांच प्रकारके होते हैं। १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५, यथा सूक्ष्म ज्ञानादि कुशील; तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप यह चारो आजीविकाके वास्ते करे अथवा पुजानेके वास्ते इन चारोको सेवे सो प्रति सेवना कुशील और कोई देखकर कहे कि यह तपस्वी है ऐसा सुनकर बहुत खुशी होवे सो पांचवा यथा सूक्ष्म प्रति सेवना कुशील है और जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संजलके कषाय उदयसे जो इनका व्यापार

करे सो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, कुशील जानना. और कषायके वश होके किसीको श्राप दे और जो मनमें क्रोध आदिकको सेवे सो यथा सूक्ष्म कुशील है अथवा कषायके उदयसे ज्ञानादिककी विराधना करे सोभी ज्ञान कुशील जानना ये दो प्रकारके साधु पंचमे आरेके छेडे तक रहेंगे इसलिये इनको साधु मानना अवश्य है । (प्र०) उत्तर गुण, मूल गुण किसको कहते है ? (उ०) मूलगुण उसको कहते हैं कि जो अहिंसादिक साधुके व्रत कहे है उनमें दूषण लगे उसको मूलगुण दूषण कहते हैं कि जैसे वर्तमान कालमें प्रायः करके गरम पानी गृहस्थी लोग साधुके निमित्त करते हैं वह पानी साधु जो पीते हैं वह साधुवोंको मूलगुणमें दूषण लगता है अथवा जो साधु दृष्टि राग बांध करके श्रावकोंके घरसे आहारादिक लावे अपने दिलमें जानता है कि यह मेरे निमित्त बनाया है और फिर उस आहारको भोगता है वहभी मूलगुणमें दूषण है और उत्तर गुण उसको कहते है कि जो गृहस्थी साधुकी दृष्टि रागसे बाज़ारसे मोल लायकर आहार वस्त्र पात्र बना हुवा जो साधुको दे और उस आहारादिकको साधु भोगे तो वह उत्तर गुणमें दूषण है इसरीतिसे मूलगुण और उत्तर गुणके दूषण होतेंहैं (प्र०) ऐसे दूषण लगानेका कारण क्या है ? (उ०) दूषण लगानेका कारण तो ऐसा अनुमानसे सिद्ध होता है कि अवारके कालमें दुःख गर्भित, मोह गर्भित वैराग्यवाले तो बहुत और ज्ञानगर्भित वैराग्यवाले आत्मार्थी प्रायः करके किंचित् मालूम होतेंहैं इसवास्ते दुःख गर्भित, मोहगर्भित वैराग्य वालेको अपने आत्मार्थकी इच्छा तो है नहीं केवल अपने पुजानेकी इच्छा और मान बड़ाईके वास्ते आपसमें एक दूसरेसे कलह करते हैं और गृहस्थियोंको अपने रागमें फँसानेके वास्ते जुदी २ परुपना करते हैं इसीवास्ते उपाध्यायजी महाराज श्री यशविजयजी १२५ गाथाके स्तवनमे ऐसा लिखतेहैं सो प्रकरण रत्नाकर भाग तीसरेके लेखानुसार दिखाते है गाथा —"विषय रसमें गृहीमांचथा । नाचिया कुगुरुमद पूररे ॥ धूमधामे धमाधम चली । ज्ञान मार्ग रह्यो दूररे ॥ स्वामी० ॥ ७ ॥ व्याख्या गृही कहतां गृहस्थ जो विषय रसमे ही राच्या अनादि अभ्यास छः और सुगुरुकाने न लाग्या तेवली अने कुगुरुने मद पूरे माच्या अन्न पान दातारना मान माटे निज उत्कर्षे हर्षा एम करतां बहुने धर्मकी खटपट टलीते माटे धूम धामे धमा धमाम चली यानी उनमार्गज चाल्यो इत्यर्थः ॥ यहां धमाधम कहतां धक्का धूम तेणेकरी धमा धमक० धींगा मस्ती चाली शुद्ध क्रिया वेगली रही अशुद्ध क्रिया ना घणी डाकड मारचा मांडे मोटाई में मांची आद्या पड़े केवल धींगाणु प्रवर्त्युं वली पोते गृहस्थने प्रेरणा करे कि ग्राममें आवता विशेष सामा आववुं, विशेष सामहुं (सामेणो) करो विशेष प्रभावना करो जेम जिन शासननी उन्नति दिखायए धूम केमके कुमारगनुं वचन छः जे कारणः पोतेज यशना अर्थी थया त्यां धर्म गयो केमके साधुनो माण एवो छः कांईपण उन्नति वांछः नहीं सहेज भावें थाय तो थावो ते माटे यहां धूमते उनमार्गी पासत्थादिकनुं प्राक्रम अने धामतो एनाणी मेला गृहस्थ लोकनुं प्राक्रम तथा धमाधमते एबनेनी करनी जाणवी वली शरीरनी शुश्रूषा राखे शरीरनो मैल दूर करे शरीर लुछः सरस आहार करे नौकल्पी व्यवहार न करे श्रावक श्रावकोंने घणो परिचय करे; श्रावकने घरे भणावाजाय श्रावक साथे घणी मिठासी करे. पोतानां आत्मानो अर्थ साधेज नहीं भला चन्द्रुआ बंधाय तहां रहे रेशमी नवा वस्त्र पहर

सावूए धोया वस्त्र पहिरे हृष्ट पुष्ट शरीर राखे वस्त्र पात्रना दूषण धरे गीतार्थनी आज्ञा न माने अणजाण्योमार्ग चलावे अणजण्यो कहे मार्गे हिंडता वात करे गृहस्थ साधे घणी अलाप सलाप करे इत्यादिक एहवी करणी ए पोते साधु पणुं पोता मांहे सर्दहे अने गृहस्थने पण साधु पणो सर्दहरावे दर्शननी निंदा करे पोता पणु वखाणे पोतानो आडम्बर चलावे गृहस्थ पासे पण पोतानी भक्ति प्रमुख नो आडम्बर चलावरावयो इत्यादिक सर्व ठामे १ धूम. २ धाम ३ धमाधम. ए तीन बोल जाणवा ज्ञानादिक मार्ग पुस्तकादिके हतो ते करवा–जाणवा माटे वेगलो रह्यो झूंठा बोला घणाछः ॥ ७ ॥ गाथा १० मी ॥ वहु मुखे बोल एम साभली नवोधरे लोक विश्वासरे ॥ ढूंढता धर्म ने ते थया ॥ भमर जेम कमल निवासरे ॥ १० ॥ व्याख्या ॥ एम बहुमुखे के० घणाने मोटे बोल जुदा २ सांभलीने लोको विश्वासने धरे नहीं? अने जेम भ्रमरा कमलिनी वासनी इच्छाये भ्रमता फिरे पण करे डोयते न पामे तेम ते लोको धर्मने ढूंढ़ता थया, जे कोण साधु पास धर्म होसे १ एवा सब भ्रमे फरे" ॥ १० ॥इत्यादिक अनेक रीति से इस जैन मतमे वखेड़ा होनेसे जो किञ्चित् कोई आत्मार्थी है उसको भी उपद्रव होने से जैन मत पालना मुश्किल होगया अर्थात् अपनी आतमाका अर्थ करना मुश्किल होगया इसलिये जो कोई आत्मार्थी हो सो द्रव्यक्षेत्र काल भावसे देखकर अपनी आत्मा अर्थकरे किञ्चित् गुरूका स्वरूप कहा बुद्धिमान् इसको जियादः समझलेगा ॥ अब धर्मका स्वरूप कहना चाहिये सो. प्रथम धर्मका लक्षण कहतेहैं कि:–"अधोगति पतन ज्ञानादि अनंत चतुष्टय सादि अनन्त सुखस्व सुभाव धारियेति धर्मः" धर्मका यह लक्षणहै– जो कहो कि धर्म किसको करना है तो हम कहे है कि जो संसारी जीव है उसको करना है-संसार अर्थात जगत् सत्य है वा असत्यहै और इस जगत्का अनादि होनेसे क्यों कर वाद होगा इस जगह प्रसंगत ख्यातिका कहना जरूर हुवा क्योकि इस जगत्के वादमे सर्व मतवाले अपनी २ ख्याति कहतेहें ॥ ख्या प्र कथन धातुकी ख्याति बनती है जो जिस रीतिसे कथन करे सो उसकी ख्याति है सो छः ख्यातिहें छः के अनेक भेदहै उन छः ख्यातियोंके नाम यहहै–(१) असत्य ख्याति. (२) आत्मख्याति. (३) अन्यथा ख्याति. (४) आख्याति. (५) अनिर्वचनीय ख्याति. (६) सत्य ख्याति इनके अंतर्गत भेद भी कई है परन्तु मुख्य भेद ६ हैं–सो अब कौन, कौनसी ख्याति मानते है, सो ख्याति कहतेहै–दोहा । चिदानन्द विन कोइ ना, कह्यो ख्याति परसंग । स्याद्वाद जिन धर्ममें, ख्याती सत्य अभंग ॥१॥ अनुभव गुरुकुल वास विन, मिले न पूरो मर्म । प्रथम अंग सत्य ख्यातिका, खोल दिया सब भर्म ॥ २ ॥ ख्यातिनाम कथनका है जगत्की निर्वृत्तिके वास्ते रज्जु और सुकतिमें जो सर्पका और चांदीका भ्रम होता है तैसे ही इस जगत्कोभी भ्रमरूप मानतेहें जब रज्जु अर्थात् जेवड़ी जिसको कोई रस्सी और कोई सीधड़ा भी कहतेहें उसमे अज्ञानसे सर्पका भ्रम होताहै उस भ्रमको दूर करनेके वास्ते आचार्य्य जब उसको यथावत् जेवड़ी का ज्ञान कराय देते हैं तब सर्परूप जो भ्रम है सो दूर हो जाता है ऐसे ही शुक्ति अर्थात् सीपमे अज्ञानसे रजत अर्थात् चांदीका भ्रम होता है उसको भी जब गुरु उपदेश देकर यथावत् सीपका ज्ञान कराय देता है तब चांदीका जो भ्रम होता है सो उसीदम भ्रम दूर हो जाता है इस रीतिसे जगत् जो अनादिका भ्रम रूप अज्ञानसे विभाव दशामें पड़के अपने

स्वरूपको यथावत् नहीं जाननेसे जन्म मरण रूपी संसारमें भ्रमण करता है जब कोई सद्गुरु उपदेशक यथावत् उसकी आत्माका स्वरूपको बतायकर ज्ञान कराय देता है तब जगत् रूप जो भ्रम सो दूर हो जाता है इस भ्रम स्थलमें जो कथन करना उसीका नाम ख्यातिहै सो नास्तिक मतवाला असत् ख्यातिको अंगीकार करके जगत्को असत्य कहता है और विज्ञानवादी अर्थात् बौद्ध मतवाला आत्मख्याति अंगीकार करता है और नैयायिक और वैशेषिक अन्यथा ख्यातिको अंगीकार करते है और साङ्ख्य मतवाला आख्यातिको अंगीकार करता है और वेदान्ती अनिर्वचनीय ख्यातिको अंगीकार करता है और जिनमतमें सत्यख्याति अंगीकार है सो इस जगह ख्यातियोंकी रीति कहकर उनका खण्डन दिखलाते हैं सो इस जगह चार ख्यातियोंको अनिर्वचनीय ख्यातिसे खण्डन करके फिर अनिर्वचनीय ख्यातिका खण्डन दिखायकर सत ख्यातिका निरूपण करेंगे सो प्रथम असत्य ख्यातिके तीन भेद हैं तिसमें प्रथम शून्यवादीकी रीतिसे असत्यख्यातिका वाद और उसका खण्डन दिखाते हैं—असत्यख्याति वाला अनुभव और युक्तिसे शून्य है किसीकी बुद्धिमें आरूढ होवे नहीं इसलिये इसका निराकरण है तथापि थोड़ासा कहते हैं एक तो शून्यवादी नास्तिक असत्यख्याति माने है उसके मतमें तो सारे पदार्थ असत्यरूप हैं इसलिये सीपमें चांदी भी असत्य है शून्य वादीके मतमें तो असत् अधिष्ठानमें रजत् असत् है इसलिये निराधिष्ठान भ्रम है इसलिये ज्ञाता ज्ञान भी असत् है यह कहना इसका अनुभव विरुद्ध है । क्योंकि शून्यवादमे सर्व स्थानोंमें शून्य है इसलिये किसीका व्यवहार प्रसिद्ध नहीं होना चाहिये और शून्यसे जो व्यवहार होवे तो जलका काम अग्निसे और अग्निका काम जलसे होना चाहिये अग्नि और जल सत् वा मिथ्या कही है नहीं केवल शून्य तत्त्व है तो सर्व जगह एकरस है उसमें कोई विशेषता नही जो शून्यमें विशेष मानोगे तो शून्यवादकी हानि होगी क्योंकि वह विशेष भी शून्यसे भिन्न है जो ऐसा कहे कि शून्यमें विशेष है उसको विलक्षणता कहते है जिससे व्यवहार भेद होवे है वह विशेष और व्यवहार तथा व्यवहारका कर्त्ता भी परमार्थसे शून्य है इसलिये शून्यताकी हानि नहीं यह कहना उसका असम्भव है क्योंकि शून्यमे विशेष है यह कहना विरुद्ध है क्योंकि विशेष वाला कहे तो शून्यताकी हानि होवे और जो शून्य कहे तो विशेषता की हानिसे व्यवहार भेदका असंभव है इसरीतिसे शून्यवादीका कहना संभव नहीं. अब दूसरा तान्त्रिककी रीतिसे असत्यख्याति की रीति कहते हैं उसके मतमें शुक्ति आदि पदार्थ व्यवहारिकतो असत् नहीं किन्तु भ्रम ज्ञानके विषय जो चांदी आदिक माने हैं वह असत् है इसलिये व्यवहारिक चांदी आदिक अपने देशमे है तिनका सीपमे संबन्ध नहीं और अन्यथा ख्याति वादीकी तरह शुक्तिमें रजत्वकी प्रतीति भी होवे नहीं और अनिर्वचनीयसे रजत् उपजे नहीं और अख्यातिवादीकी तरह दो ज्ञान भी नहीं, शून्यवादीकी तरह शुक्ति असत् नहीं और ज्ञाता ज्ञान भी असत् नही शुक्ति किन्तु सुकती ज्ञान ज्ञाता सत्य हैं दोष सहित नेत्रका शुक्तिसे सम्बन्ध होवे तब शुक्तिका ज्ञान होवे नहीं किन्तु शुक्ति देशमें असत् रजतकी प्रतीति होवे है यद्यपि अन्यथा ख्यातिवादमें रजत् असत् है और स्त्रीके हाथमें तथा हृदयमें सत् रजत् दोनों मतमें है तथापि

अन्यथा ख्यातिवादमें देशांतर स्था सत रजत् वृत्ति रजत्वका शुक्तिमे भान होवे है और असत् ख्याति वादमे देशांतरमें रजत् तो है तिसके धर्म रज तत्वका शुक्तिमें भान होवे नहीं किन्तु असत् गोचर रजत ज्ञान है शुक्तिसे दोष सहित नेत्रके संबन्धसे रजत भ्रम होता है तिसका विषय शुक्ति नहीं जो रजत भ्रमका विषय शुक्ति होता तो " इयंशुक्ति " ऐसा ज्ञान होना चाहिये जो शुक्तित्व रूप विशेष धर्मका दोष बलसे भान नहीं होता सामान अंशका (इयं) इतनाही ज्ञान होना चाहिये इसलिये भ्रमका विषय शुक्ति नही ऐसेही भ्रम का विषय रजत भी नहीं क्योंकि सन्मुख देशमे तो रजत है नहीं ॥ और देशांतरमे रजत है जिससे नेत्रका संबन्ध नहीं। इसरीतिसे रजत भ्रमका विषय कोई नहीं और शुक्ति ज्ञान उत्तर कालमें " काल त्रियोप रजतं नास्ति " ऐसी प्रतीति होती है इसलिये रजत भ्रम निर्विषयक होनेसे असत् गोचर होको असत् गोचर ज्ञानको असत् ख्याति कहते हैं॥ तीसरा न्याय वाच स्पत्यकार की रीति से असत् ख्यातीवाद—इस की रीति से कहते हैं कि यह ऐसा कहता है कि शुक्ति से नेत्र के सम्बन्ध से रजत् भ्रम होवे इसलिये रजत् भ्रम का विषय शुक्ति है परन्तु शुक्ति में शुक्तित्व और शुक्तित्व तत्त्व का समवाय दोनों दोष से भान होवे नहीं किंतु शुक्ति में रजतत्व का समवाय भान होता है जो रज तत्त्व का समवाय शुक्ति में है नहीं इसलिये असत्यख्याति है रजतत्त्व प्रतियोगी का शुक्ति अनुयोगिक समवाय असत्य है । उस की ख्याति कहिये प्रतीति उसको असत्यख्याति कहते हैं रजतत्त्व प्रति योगिक समवाय रजत् में रजतत्त्व का प्रगट है और शुक्ति अनुयोगिक समवाय शुक्ति मे शुक्तित्व का प्रसिद्ध है ॥ और रजत् प्रतियोगिक समवाय रजतानुयोगिक प्रसिद्ध है ॥ शुक्ति अनुयोगिक नहीं और जो शुक्ति अनुयोगिक समवाय प्रगट है सो शुक्तित्व प्रति योगिक है रजतत्त्व प्रतियोगिक नहीं इसरीति से रजतत्त्व प्रतियोगिक शुक्ति अनुयोगिक समवाय अप्रगट होने से असत्य है उसकी प्रतीति को असत्यख्याति कहते हैं॥ शुक्ति जिसका अनुयोगी कहिये धर्मी होवे उसको शुक्ति अनुयोगिक कहते है रजतत्त्व जिसका प्रतियोगी होवे उसको रजतत्त्व प्रतियोगिक कहते है; इसका भाव ऐसा है कि केवल समवाय प्रसिद्ध है और रजतत्त्व प्रतियोगिक समवाय भी रजत् से प्रसिद्ध है और शुक्ति अनुयोगिक समवाय भी शुक्ति धर्म का शुक्ति मे प्रसिद्ध है और प्रसिद्ध समवाय मे समवायत्व धर्म है रजतत्त्व प्रतियोगित्वभी समवाय से प्रसिद्ध है जैसे ही शुक्ति अनुयोगित्त्व भी समवाय में प्रसिद्ध है परन्तु रज तत्व प्रतियोगित्व, दोनों धर्म एक स्थान में समवायमें अप्रसिद्ध होने से शुक्ति अनुयोगित्व विशिष्ट रजतत्त्व प्रतियोगित्व विशिष्ट समवाय अप्रसिद्ध होने से असत्य है इसे असत्यख्याति कहते हैं, यह न्याय वाचस्पत्याकारका मत है। इसरीतिसे अधिष्ठान को मानि करके असत्यख्याति दो प्रकार की माने है॥ एक तो शुक्ति अधिष्ठान में असत् रजत् की प्रतीति है । और दूसरी शुक्ति में असत् रजतत्त्व समवाय की प्रतीति रूप है ॥ दोनों असत वाद ख्याति का खंडन—इन दोनों जनों का कहना असंगत है क्योंकि जो असत्य ख्याति मानते हैं उनको ऐसा पूछना चाहिये कि असत्यख्याति इस वाक्य में अवंध्या विलक्षण असत् शब्द का अर्थ है वा असत् शब्दका अर्थ निःस्वरूप है, जो कहे कि असत् शब्द का अर्थ निःस्वरूप है तो (मम मुखे जिह्वा नास्ति) इस वाक्य की तरह

असत्ख्याति वाद का अङ्गीकार करने का काम निर्लज्जपना है क्योंकि सत्ता स्फूर्ति रहितको निःस्वरूप कहते हैं इसलिये सत्ता स्फूर्ति शून्य भी प्रतीति होवैहै यह असत्य ख्यातिवाद है तैसे सिद्ध होवे है "सत्ता स्फूर्ति शून्य की प्रतीति कहना विरुद्ध है इसलिये अवंध्या विलक्षण असत् शब्द का अर्थ कहैं हैं तो अवंध्या विलक्षण वंध्या होवें हैं, वंध्याके योग को वंध्या कहैं हैं इसरीति से वंध्या के योग की प्रतीति अर्थात् बाँझ के पुत्र के समान असत् ख्याति सिद्ध हुई, इसलिये असत् ख्याति का मानना असङ्गत है ॥ अब दूसरी आत्म ख्याति का अभिप्राय और खण्डनः-आत्मख्याति वादी भी असङ्गत है क्योंकि विज्ञानवादीके मत में आत्मख्याति है क्षणक विद्वान को विज्ञानवादी आत्मा कहते हैं जिसके मत में वाह्य रजत तो है नहीं किंतु अंतर विज्ञान रूप आत्मा है उस का धर्म रजत है दोष बल से वाह्य प्रतीति होती है शून्यवादीके मत विना अंतर पदार्थ की सत्तामें किसी सुगत शिष्य का विवाद नहीं वाह्य पदार्थ तो कोई मानता है और कोई नहीं मानता है इसलिये वाह्य पदार्थ की सत्ता में तो उनका विवाद है और अन्तर विज्ञान का निषेध शून्यवादी विन कोई नास्तिक करे नहीं इसलिये अंतर रजत का विज्ञान रूप आत्मा अधिष्ठान है जिसका धर्म रजत अंतर है दोष बल से वाह्य की तरह से प्रतीत होवै है ज्ञानसे रजतके स्वरूपसे वाद होवे नहीं किन्तु रजतकी वाह्यताका वाद होवे है इस लिये आत्मख्याति मतमें रजतका तो बाध मानते हैं नही क्योंकि शून्यवादीसे भिन्न सकल सौगतके मतमें पदार्थोंकी अंतर सत्तामें विवाद नहीं इसलिये स्वरूपसे रजतका बाध मानतेहैं नहीं केवल वाह्यताका रूप इदन्ताका वाद मानतेहै क्योंकि आत्मख्यातिमें धर्मीके बाध विना इदंता रूप धर्म मात्रके बाधको ही मानेहैं यह आत्मख्याति वादीका अभिप्राय है इसमतमें रजत अन्तर सत्य है जिसकी वाह्य देशमें प्रतीति भ्रम है इसलिये रजत ज्ञानमें रजत गोचरत्व अंश भ्रम नहीं किंतु रजतका वाह्यदेश स्थित्व प्रतीत अंशमें भ्रमहै ॥ इसका खंडनः-यह कहना आत्मख्यातिवाले का समीचीन नहीं क्योंकि रजत अन्तर है ऐसा अनुभव किसी को होवे नहीं भ्रमस्थल में वा यथार्थ स्थल में रजतादिकों की अन्तरता किसी प्रमाणसे सिद्धहोवे नहीं क्योकि सुखादिक अन्तर है और रजतादिक वाह्य हैं यह अनुभव सर्व को सिद्ध है रजत को अन्तरमाने तो अनुभव से विरुद्ध है और अन्तरता का साधक प्रमाण वा युक्ति कोईहै नहीं इसलिये अन्तर रजतकी वाह्य प्रतीति मानना असंगतहै और भी आत्मख्याति माननेवालेके भी वाह्यपदार्थों में दो भेदहै सो इसजगह ग्रन्थके बढ़ने के भयसे नहीं लिखे और दूसरा इन में कोटियों की क्लिष्टता भी है और इसकी जिनमत में प्रवृत्तिभी कम है इसवास्ते दिग्मात्र प्रसंग से दिखाई है ॥ अब अन्यथा ख्यातिवादी का तात्पर्य कहते है-कि जिस पुरुषकी सत्यपदार्थ के अनुभव जन्य संस्कार होवें जिसके दोष सहित नेत्रका पूर्व दृष्ट सदृश्य पदार्थ से सम्बन्ध होवें वहां पूरोवर्ति सदृश्य पदार्थ के सामान्य ज्ञान से पूर्वदृष्टिकी स्मृति होवै है अथवा स्मृति नहीं होवे सदृश्य के ज्ञान से संस्कार उद्बुत होवे है जिस पदार्थ की स्मृति होवे अथवा जिस के उद्भूत संस्कार होवे उस पदार्थ का धर्म पुरोवर्त्त पदार्थ मे प्रतीतिहोवे है जैसे सत्य रजतके अनुभवजन्य संस्कार सहित पुरुषका रजत सदृश्य शुक्तिसे दोष सहित नेत्रका सम्बन्ध हुये रजत की स्मृतिहोवे है जिस स्मरण-

करे रजतका रजतत्व धर्म शुक्ति में भाषे है अथवा नेत्रका सम्बन्ध हुये रजत भ्रम में विलम्ब होवे नही इसलिये नेत्र सम्बन्ध और रजत के प्रत्यक्ष भ्रमके अन्तराल मे रजत की स्मृति नहीं होवे है किन्तु रजतानु भवके संस्कार उद्भूतहोय के स्मृति के व्यवधान विना शीघ्रही शुक्ति में रजत्त्व धर्मका प्रत्यक्ष होवे है। स्मृति स्थल मे जैसे पूर्व दृष्ट सदृश्य के ज्ञान से संस्कारका उद्बोध होवे है। तैसे भ्रमस्थल मे पूर्वदृष्टके सदृश्य पदार्थ से इंद्रियका सम्बन्ध होतेही संस्कारका उद्बोध होयके संस्कार गोचर धर्मका पुरोवर्ति मे भानहोता है इसको अन्यथा ख्याति कहते हैं अन्य रूप से प्रतीति को " अन्यथा ख्याति " कहते है शुक्ति पदार्थ में शुक्तित्व धर्म है रजत्व नहीं है और शुक्तिकी रजत्व रूप से प्रतीतहोवे है इसलिये अन्य रूपसे प्रतीति है ॥ (इदं रजतं) इत्यादिक भ्रमतो उक्त रीतिसे संभव नहीं, क्योंकि शुक्तिसे नेत्रका सम्बन्ध और रजत्व स्मृतिको (इदंरजतं) या ज्ञानकी कारणता मानै जिसको यह पूछते हैं कि शुक्तिसे नेत्रका सम्बन्ध होयके शुक्ति रजत साधारण धर्म चाकचिक्य विशिष्ट शुक्तिका इदं रूपसे सामान्य ज्ञान होयके रजतकी स्मृति होती है इससे उत्तर भ्रमहोता है अथवा शुक्तिके सामान्य ज्ञान से पूर्वही शुक्ति से नेत्रका सम्बन्ध होवे उसीकाल में रजत्व विशिष्ट रजतकी स्मृतिहोय के (इदंरजतं) यह भ्रमहोता है कि जो प्रथम पक्ष कहे तो सम्भव नहीं क्योंकि प्रथम तो शुक्तिका सामान्य ज्ञान जिससे उत्तर रजतत्त्व विशिष्ट रजतकी स्मृतिसे उत्तर रजत भ्रम इसरीति से तीनों ज्ञानो की धारा अनुभवमे बाधित है (इदंरजतं) यह एकही ज्ञान सबकी प्रतीति होता है ॥ और जो ऐसा कहें कि प्रथम सामान्य ज्ञान शुक्तिके हुए विना शुक्ति से नेत्रके संयोग काल में रजतकी स्मृति होयके (इदंरजतं) यह भ्रम होता है। सो भी संभव नहीं क्योंकि सकल ज्ञान चेतनरूप स्व प्रकाश है वृत्तिरूप ज्ञान साक्षी भास्य है; कोई ज्ञान किसीकाल मे अज्ञान होवे नहीं (यह वार्त्ता आगे प्रतिपादन करेंगे) इसलिये शुक्ति में नेत्रके संयोगकाल में रजतकी स्मृति होती तो स्मृतिका प्रकाश होना चाहिये स्मृति में चेतन भागतो स्वयंप्रकाश है और वृत्ति भागका साक्षी आधीन सदा प्रकाश होता है, इसलिये स्मृतिका अनुभव होना चाहिये। और नैयायिक को शपथ पूर्वक यह पूछते है कि शुक्ति मे (इदंरजतं) इस भ्रमसे पूर्वकाल मे रजत स्मृति का अनुभव तेरेको होताहै। तब यथार्थवक्ता होवे तो स्मृति के अनुभव का अभावही कहे, इसलिये शुक्ति से नेत्र संयोग काल मे भ्रम के पूर्व रजत की स्मृति संभव नहीं। और जो ऐसा कहें कि रजतानुभवजन्य रजत गोचर संस्कारसहित नेत्र संयोग से रजतभ्रम होता है, संस्कार गुण प्रत्यक्ष योग्य नहीं, किन्तु अनुमेय है; इसलिये उक्त दो नही ॥ तथापि उसको यह पूछते है कि उद्बुद्ध संस्कार भ्रम के जनक है अथवा उद्बुद्ध और अनुद्बुद्ध दोनों [illegible] लखी। भ्रमके जनक हैं ॥ जो दोनोंकी जनकता कहे तो संभव नही क्योंकि अनुद्बुद्ध [illegible] की स्मृत्यादिक ज्ञान कदापि नहीं होवे जो अनुद्बुद्धसेभी स्मृति होवे तो अनु[illegible] क्योंकि सर्वदा स्मृति होनी चाहिये। इसलिये उद्बुद्ध संस्कारसे स्मृति होती है [illegible] सत् होता तो उद्बुद्ध संस्कारसेही संभव है इसलिये उद्बुद्ध संस्कार भ्रमके जन[illegible] लगी है तो मरु संभव है नही क्योंकि संस्कारके उद्बोधक सदृश्य दर्शनादिक[illegible] जाग्रितमें जिस पुरुषको

संयोगसे चाक चिक्य विशिष्ट शुक्तिका ज्ञान हुये पीछे रजत गोचर संस्कारका उद्बोध संभव है, नेत्र शुक्तिके संयोग कालमें रजत गोचर संस्कारका उद्बोध संभव नहीं इसलिये यह मानना होवेगा. प्रथम क्षणमें नेत्र संयोग. द्वितीय क्षणमें चाक चिक्य धर्म विशिष्ट शुक्तिका ज्ञान, जिससे उत्तर क्षणमें संस्कारका उद्बोध जिससे उत्तर क्षणमें रजत भ्रम संभव है । इसीरीतिसे नेत्र संयोगसे चतुर्थ क्षणमें भ्रम ज्ञानकी उत्पत्ति सिद्ध हुई, सो अनुभवसे वाधित है नेत्र संयोगसे अव्यवहित उत्तर क्षणमें चक्षु ज्ञान होता है वैसाही अनुभव होता है इसलिये उक्त रीतिसे असंगत है ॥ अन्यथा ख्यातिका संक्षेप वर्णन किया ॥ अब आख्यातिका वर्णन करते हैं-प्रभाकरका आख्याति वाद है सो उसका तात्पर्य यह है कि अन्य शास्त्रोंमें यथार्थ अयथार्थ भेदसे दो प्रकारका ज्ञान कहते हैं उन शास्त्रकारोंका यह अभिप्राय है कि यथार्थ ज्ञानसे प्रवृत्ति निवृत्ति सफल होवे है और अयथार्थ ज्ञानसे प्रवृत्ति निर्वृत्ति निष्फल होवे है यह लेख सकल शास्त्रोंका असङ्गत है क्योंकि अयथार्थ ज्ञान अप्रसिद्ध अर्थात् है ही नहीं सारे ज्ञान यथार्थही होते हैं जो अयथार्थ ज्ञानभी होता तो पुरुषको ज्ञान होते ही ज्ञानत्व सामान्य धर्म देषिक उत्पन्न हुवे ज्ञानमें अयथार्थका संदेह होनेसे प्रवृत्ति निवृत्तिका अभाव होवेगा क्योंकि ज्ञानमें यथार्थत्व निश्चय और अयथार्थता संदेहका अभाव पुरुषकी प्रवृत्ति निवृत्तिका हेतु है और अयथार्थताके संदेह होनेसे दोनों सम्भव नहीं और अयथार्थ ज्ञानको नहीं माने तब उत्पन्न हुये ज्ञानमें उक्त संदेह होवे नहीं क्योंकि कोई ज्ञान अयथार्थ होवे तो तिसकी ज्ञानत्व धर्मसे सजातीयता अपने ज्ञानमें देखकर अयथार्थत्व संदेह होवे सो अयथार्थ ज्ञान है नहीं । सारे ज्ञान यथार्थही हैं इसलिये ज्ञानमें अयथार्थता संदेह होवे नहीं इस रीतिसे भ्रम ज्ञान अप्रसिद्ध है जहां शुक्तिमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवे है और भय हेतु रज्जुसे निवृत्ति होवे है तहांभी रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है जो रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान उक्त स्थलमें होवे तो यथार्थ तो संभव नहीं इसलिये अयथार्थ होवे सो अयथार्थ ज्ञान अलीक है इसवास्ते उक्त स्थलमें रजतका और सर्पका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं किन्तु रजतका स्मृति ज्ञान है और शुक्तिका इदं रूपसे सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष, तैसे पूर्वानुभव सर्पका स्मृति ज्ञान है और सामान्य इदं रूपसे रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञान है शुक्तिसे तथा रज्जुसे दोष सहित नेत्रका सम्बन्ध होवे है इसलिये शुक्तिका तथा रज्जुका विशेषरूप भाषे नहीं किन्तु सामान्यरूप इदंता भाषे है और शुक्तिसे नेत्रके सम्बन्धजन्य ज्ञान हुवे रजतके संस्कार उद्बुद्ध होयके शुक्तिके सामान्य ज्ञानसे उत्तर क्षणमें रजतकी स्मृति होवे है तैसे रज्जुके सामान्य ज्ञानसे उत्तर क्षणमें सर्पकी स्मृति होवे है यद्यपि सकल स्मृति ज्ञानमें
र्थकी तत्तावी भाषे है तथापि दोष सहित नेत्रके संबन्धसे संस्कार उद्बुद्ध होवे जहां
नेत्रका माहात्म्यसे तत्ता अंशका प्रमोष होवे है इसलिये प्रमुष्ट तत्ताकी
से पूर्वदृष्टि होती है प्रमुष्ट कहिये लुप्त हुई है तत्ता जिसकी सो प्रमुष्ट तत्ताक
है जिस पदार्थ है इसरीतिसे (इदं रजतं अयं सर्पः) इत्यादि स्थलोंमें दो
पुरोवर्त्त पदार्थ मे प्रतीति का और रजतका सामान्य इदं रूपका प्रत्यक्ष ज्ञान यथार्थ
रजत सदृश्य शुक्तिसे दोष सर्पका स्मृति ज्ञानभी यथार्थ है । यद्यपि विशेष करके

शुक्ति और रज्जु भागको त्यागके प्रत्यक्ष ज्ञान हुवा है और तत्ता भाग रहित स्मृति ज्ञान हुवा है तथापि एक भाग त्यागनेसे अयथार्थ ज्ञान होवे नहीं किंतु अन्यरूपसे ज्ञानको अयथार्थ कहें हैं इसलिये उक्त ज्ञान यथार्थ है अयथार्थ नही इसरीतिसे भ्रम ज्ञान अप्रसिद्ध है यह इसका कहना समीचीन नहीं क्योंकि शुक्तिमें रजत भ्रमसे प्रवृत्ति हुवे पुरुषको रजतका लाभ नही होनेसे पुरुष ऐसा कहता है कि रजत शून्य देशमें रजत ज्ञानसे मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई इसरीतिसे भ्रम ज्ञान अनुभव सिद्ध है तिसका लोप संभव नहीं और मरुभूमिमें जलका बाध होवे तब पुरुष यह कहताहै कि मेरेको मरुभूमिमें मिथ्या जलकी प्रतीति हुई इस बाधसेभी मिथ्या जल और उसकी प्रतीति होवे है और आख्यातिवादीकी रीतिसे तो रजतकी स्मृति और शुक्तिज्ञानके भेदाग्रहमें मेरी शुक्तिमें प्रवृत्ति हुई ऐसा बाद होना चाहिये और मरुभूमिके प्रत्यक्षसे और जलकी स्मृतिसे मेरी प्रवृत्ति हुई ऐसा बाध होना चाहिये और विषय तथा भ्रम ज्ञान दोनों त्यागके अनेक प्रकारकी विरुद्ध कल्पना आख्यातिवादमें है तथाही नेत्र संयोग हुवे दोषके महात्म्यसे शुक्तिका विशेष रूपसे ज्ञान होवे नहीं यह कल्पना विरुद्ध है तैसेही तत्तांशके प्रमोषसे स्मृति कल्पना विरुद्ध है और विषयका भेद है सो भाषे नही ऐसे ज्ञानोके भेदहैं सो भी भाषे नही यह कल्पनाभी विरुद्ध है और रजतकी प्रतीति कालमें सन्मुख देशमें रजत प्रतीति होवे है इसलिये आख्याति वाद अनुभव विरुद्ध है और आख्यातिवादीके मत में रजतका भेद ग्रह प्रवृत्तिका प्रतिबोधक होनेसे रजतके भेदग्रहका अभाव जैसे रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु माना है तैसेही सत रजत स्थलमें रजतका अभेदग्राह निवृत्तिका प्रतिबोधक अनुभव सिद्ध है इसलिये रजतके अभेद ग्राहका अभाव निवृत्तिका हेतु होवेगा इसरीतिसे रजतके भेदज्ञानका अभाव रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है और रजतके अभेद ज्ञानका अभाव रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु है शुक्ति देशमें(इदं रजतं) ऐसे दो ज्ञान होवें तहां आख्याति वादीके मतमें दोनों है क्योंकि शुक्तिमें रजतका भेद तो है परन्तु दोष बलसे रजतके भेद-का शुक्तिमें ज्ञान होवे नहीं इसलिये प्रवृत्तिका हेतु रजतके भेद ज्ञानका अभाव है और शुक्तिमें रजतका अभेद है नहीं और आख्याति वादमे भ्रमका अंगीकार नही इसलिये शुक्तिमें रजत का अभेदका ज्ञान संभव नही इसरीति से शुक्ति से रजतार्थी की निवृत्ति का हेतु रजत के अभेद ज्ञानका अभाव है रजतार्थी की सामग्री दोनो है और प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों परस्पर विरोधी है और एक काल में दोनो संभव नहीं और दोनों के असंभव होनेसे दोनो का त्याग करे सोभी संभव नही क्योंकि प्रवृत्ति का अभावही इस स्थान में निवृत्त पदार्थ है इसलिये प्रवृत्तिका त्यागकरे निवृत्तिका प्रायः होवे है और निवृत्तिका त्यागकरे प्रवृत्ति प्रायःहोवे है इसरीति से दोनों के त्याग में और दोनों के अनुष्ठान में आसक्तहुवा आख्यातिवादी को व्य कुल होके लज्जासे बोलना न बनेगा इस अर्थ में अनेक कोटी है कठिन होने से इसजगह नहीलिखी।

अब अनिर्वचनीय ख्यातिका खण्डन मण्डन तो दूसरे प्रश्न मे जहां वेदान्... क्योंकि
खाया है उसीजगह अच्छीतरह से लिखआये है परन्तु प्रसंगवश से कि... सत् होता तो
मीय ख्याति का स्वरूप कहते हैंः—अन्तःकरण की वृत्ति नेत्रद्वारा नि... थास लगी है तो मरु
मान आकार को प्राप्तहोती है जिस से विषयों का आवरण भंग... हां जाग्रितमें जिस पुरुषको

तहां प्रकाश भी सहायक होता है, प्रकाश विना पदार्थ की प्रतीति होती नहीं जहां रज्जु में भ्रम होता है तहां अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र द्वारा निकली भी और रज्जु से उसका सम्बन्ध भी होता है, परन्तु तिमिरादिक दोष प्रतिबन्धक हैं इसलिये रज्जु के समानाकार वृत्तिका स्वरूप होता नहीं, इसलिये रज्जु का आवरण नाशै नहीं; इसरीति से आवरण भंग का निमित्त वृत्तिका सम्बन्ध होने से भी, जब रज्जु का आवरण भंग होता नहीं तब रज्जु चेतन में स्थित अविद्या में क्षोभ होके सो अविद्या सर्पाकार परिणाम को प्राप्तहोती है सो अविद्या का कार्य्य सर्पसत होता तो रज्जु के ज्ञान से उसका बाध होतानहीं और बाध होता है इसलिये सत्यनहीं और असत् होता तो वंझा पुत्र की नाई प्रतीति नहीं होती और प्रतीति होती है इसलिये असत्य भी नही किन्तु सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय है; शुक्ति आदिक में रूपादिक भी इसी रीति से अनिर्वचनीय उत्पन्न होती है उस अनिर्वचनीय की जो ख्याति कहिये प्रतीति और कथना, सो अनिर्वचनीयख्याति है जैसे सर्प अविद्याका परिणाम है तैसे उस की ज्ञान रूप वृत्ति भी अविद्या काही परिणाम है. अन्तःकरण का नहीं क्योंकि जैसे रज्जु ज्ञान से सर्प का बाध होता है वैसे उसके ज्ञान का भी बाध होता है अन्तःकरण का ज्ञान होता तो बाध नहीं होना चाहिये, इसलिये ज्ञानभी सर्पकी नाई अविद्याका कार्य सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय है परन्तु रज्जु उपहित चेतनमें स्थित तमोगुण प्रधान अविद्या अंशका परिणाम सर्प है और साक्षी चेतनमे स्थित अविद्याके सतोगुणका परिणाम वृत्ति ज्ञान है रज्जु चेतनकी अविद्याका जिस समय सर्पाकार परिणाम होता है उसी समय साक्षी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकार परिणाम होता है क्योंकि रज्जु चेतन आश्रित अविद्यामें क्षोभका जो निमित्त है, उस निमित्तसेही साक्षी आश्रित अविद्या अंशमें क्षोभ होता है इसलिये भ्रम स्थलमें सर्पादिक विषय और उनका ज्ञान एकही समय उत्पन्न होता हैं और रज्जु आदिक अधिष्ठानके ज्ञानसे एकही समय लीन होता है इसरीतिसे सर्पादिक भ्रम विषय बाह्य अविद्या अंश सर्पादिक विषयका उपादान कारण है, और साक्षी चेतन आश्रित अंतर अविद्या अंश उनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादान कारण है और स्वप्नमें तो साक्षी आश्रित अविद्याकाही तमोगुण अंश विषयरूप परिणामको प्राप्त होता है उस अविद्यामें सतोगुण अंश ज्ञानरूप परणामको प्राप्त होता है इस स्वप्नमें अंतर अविद्याही विषय और ज्ञान दोनोंका उपादान कारणहै इसीसे बाह्य रज्जु सर्पादिक और अन्तर स्वप्न पदार्थ साक्षी भाष्य कहतेहैं; अविद्याकी वृत्तिद्वारा जिसको साक्षी भाषै कहिये प्रकाशै सो साक्षी भाष्य कहिये ॥ यह तुम्हारी अनिर्वचनीय ख्याति नहीं बनी ॥ शंका ॥ रज्जुके ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति बने नहीं क्योंकि मिथ्या वस्तुका जो अधिष्ठान होवे उस

ष्ठानके ज्ञानसे मिथ्याकी निवृत्ति होती है: यह अद्वैत वादका सिद्धान्त है और मिथ्या से पूर्वहेष्ठान रज्जुचेतनहै; रज्जुनही, इसलिये रज्जुके ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं है जिस पदार्थ:—रज्जु आदिक जड़पदार्थका ज्ञान अन्तःकरणकी वृत्ति रूप होता है पुरोवर्त्त पदार्थ मे मेतका प्रयोजन है सो आवरण अज्ञानकी शक्तिहै इसलिये आवरण रजत सदृश्य शुक्तिसे दोष—तू जड़का अधिष्ठान जो चतन, उस के आश्रित है

इसलिये रज्जु समानाकार अंतःकरणकी वृत्तिसे रज्जु अवछिन्न चेतनका ही आवरण भंग होता है वृत्तिमें जो चिदाभास है उससे रज्जुका प्रकाश होता है. चेतन स्वयं प्रकाश है, उसमें अभावासकी उपयोग नहीं इसरीतिसे चिदाभास सहित अन्तःकरण की वृत्ति रूप ज्ञानमें जो वृत्ति भाग उसका आवरण भंगरूप फल चेतनमें होता है, और चिदाभास भागका प्रकाशरूप फल रज्जुमे होता है, इसलिये वृत्तिज्ञानका केवल जड़ रज्जु विषयनहीं किन्तु अधिष्ठान चेतन सहित रज्जु साभास वृत्तिका विषय है इसी कारण से यह लिखा है—"अन्तःकरण जन्यवृत्ति ज्ञान सरेब्रह्म का विषय करे है" इस प्रकार से रज्जु ज्ञानसे निरावरण होके सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवछिन्न चेतन का भी निज प्रकाशसे भान होता है इसलिये रज्जु का ज्ञानही सर्पके अधिष्ठान का ज्ञान है जिससे सर्प निवृत्ति सम्भव है ॥ अन्य शंका ॥ यद्यपि इसरीतिसे सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानसे सम्भव है तोभी सर्प के ज्ञानकी निवृत्ति संभव नहीं क्योंकि सर्पका अधिष्ठान रज्जु अवछिन्न चेतन है और सर्प के ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी चेतन है पूर्वउक्तप्रकार से रज्जुज्ञान से रज्जु अवछिन्न चेतनकाही भान होता है साक्षी चेतनका नहीं इसलिये रज्जुका ज्ञान होने सेभी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षी चेतन अज्ञात है और अज्ञात अधिष्ठान मे कल्पित की निवृत्ति होवै नहीं किन्तु ज्ञात अधिष्ठान मेही कल्पितकी निवृत्ति होतीहै इसलिये रज्जु ज्ञानसे सर्प ज्ञानकी निवृत्ति बनै नही समाधानः—जिसके विषयके आधीन ज्ञान होता है उस विषयके अभाव से ज्ञानकी निवृत्ति होजाती है तो विषय जो सर्प जिसकी निवृत्ति होतेही सर्प के ज्ञानके विषयके अभावसे आपही निवृत्ति होती है परन्तु तुम्हारे यहां सर्पकी निवृत्ति से सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनेनही क्योंकि कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान ज्ञानविना होती नहीं और सर्पका ज्ञानभी कल्पित है जिसका अधिष्ठान साक्षी चेतन है जिसके ज्ञानविना कल्पित सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनेनही। अब हम तुमसे यह पूंछे है कि तुमकहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है तुम अनिर्वाच्य किसको कहते हो क्या वस्तु कहनेवाला शब्द नहीं है वा शब्दका निमित्त नही है, प्रथम पक्ष तो तुम्हारा बनेहीगानही क्योंकि यह जगत् है, यह रसाल है, वह तमाल है ऐसे शब्द तो प्रत्यक्षसेही सिद्ध है जो दूसरा पक्ष अंगीकार करो तो क्या शब्दका निमित्त ज्ञान नही है वा पदार्थ नहीहै?प्रथम पक्ष तो समीचीन नही सरल रसाल ताल तमाल इत्यादिकका ज्ञान तो हर प्राणीको प्रतीत है सब जीव देखने वाले जानते हैं और इनका ज्ञान हमकोभी है. जो दूसरा पक्ष अंगीकार करो तो हम पूछते है कि पदार्थ भावरूप नहीं है या अभावरूप नही है? जो कहो कि पदार्थ भावरूप नही है और प्रतीति होती है तो हम कहेंहें कि तुमको असत् ख्याति माननी पडी और तुम्हारे मतमे असत् ख्याति माननी महा दूषण है जो कहो कि पदार्थ अभावरूप नही तो भावरूप सिद्ध हुवे जब पदार्थ भावरूप सिद्ध हुवे तो सत ख्याति माननी पड़ेगी औरभी देखो कि तुह्मारे मतका ऐसा सिद्धान्त है कि सम सत्ता साधक बाधक है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं क्योंकि जगत् जैसे मिथ्या है तैसेही वेद और गुरुभी मिथ्या है जो वेद और गुरु सत् होता तो इस मिथ्यारूप जगत्‌की निवृत्ति कदापि न होती कि देखो जलकी प्यास लगी है तो मरुस्थल देशके प्रातिभासक जलसे कदापि तृषा दूर नहीं होती ऐसेही जाग्रितमें जिस पुरुषको

भूख लगी है उसको स्वप्नमें नाना प्रकारके भोजन मिले और उस पुरुषने स्वप्नमें अच्छी तरहसे खाया और तृप्त हुवा और जब वो जगा तब भूख उसको बनी रही उसने स्वप्नमें भोजन भी तृप्त होकर किया पर जाग्रतकी भूख न मिटी अब देखो कि जब सम सत्ता साधक बाधक है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं है तो हे विचार शून्य बुद्धि विचक्षण नेत्र मीचकर हृदयमे विचार करो कि रज्जु सर्पकी सत्ता प्रतिभासक मानो हो तो रज्जु सर्प प्रतिभासिक हुवा और उसका साधक रज्जुका विशेषरूप करके जो अज्ञान तिसको मानो हो तो इस अज्ञानकी सत्ता व्यवहारिक है इसलिये यह अज्ञान व्यवहारिक ठहरा और रज्जुके ज्ञानसे प्रतिभासक सर्पकी निवृत्ति मानो हो तो इस रज्जुका ज्ञानभी व्यवहारिक है तो सर्प प्रतिभासक कैसे हो सके जो सर्प प्रतिभासक होय तो व्यवहारिक रज्जुका अज्ञान इस सर्पका साधक हो सके नहीं और रज्जुका व्यवहारिक ज्ञान सर्वका बाधक हो सके नहीं ऐसेही स्वप्नमें समझो कि व्यवहारिक जो निद्रा सो तो स्वप्नकी साधक है और व्यवहारिक जो जाग्रत वा सुषुप्ति यह स्वप्नके बाधक हैं तो स्वप्न प्रतिभासिक कैसे हो सकै और देखो कि ब्रह्मको तुम सर्वका साधक मानों हो तो ब्रह्मकी परमार्थ सत्ता है और सर्व जगत् व्यवहारिक सत्ता है तो अब देखो कि तुम्हारा सिद्धान्त तुमकोही बाधा देता हुवा तुमको समझाता है परंतु शुद्ध गुरुके विदून तुमको तुम्हारा अभिप्राय नहीं प्रतीति होता क्योंकि देखो समान सत्ताकाही साधक बाधक है तो ब्रह्म किसीकाभी साधक बाधक नहीं होना चाहिये इसलिये सर्वकी साधकता बाधकताके निर्वाहके अर्थ सर्वकी एकही सत्ता मानो अब जो सर्वकी प्रतिभासिक सत्ता मानोगे तब तो ब्रह्मकोभी मिथ्या माननाही पड़ेगा सो तो तुमको अभिमत है नहीं और जो सर्वकी व्यवहार सत्तामानो तो ब्रह्म व्यवहारिक पदार्थ सिद्ध होगा तो तुम व्यवहारिक पदार्थको जन्य मानों तो ब्रह्मकोभी जन्य मानना पड़ेगा तो यहभी तुमको अभिमत है नहीं इसलिये सर्वकी परमार्थ सत्ता अर्थात् सत्त सत्ता मानों इस सत्ताके माननेमें तुम्हारे सर्व काम सिद्ध हो जांयगे इस युक्तिको सुनकर वेदान्ती आशक्त होकर अनिर्वचनीय ख्याति माननेमें लज्जावान् होकर आपही अनिर्वाच्य होगये अर्थात् वचन कहनेके योग्य न रहे और इन ख्यातिके विषय समझाने वाले गुरु कोई विरलेही हैं अब इन चार युक्तियोंको सुनकर लज्ज्यावान होकर इस अनिर्वचनीय ख्यातिको जलाञ्जली देनेसेही उनका उद्धार होगा, नतु अन्य रीतिसे सो वेचारों युक्तियां यह हैं:— १लोक अनुभव विरुद्ध, २तुम्हारे विना और सकल शास्त्रोंसे विरुद्ध ३तुम्हारेसे विरुद्ध ४तुम्हारेको तुम्हारे ही सिद्धान्तका त्याग होगा अब प्रथम लोकानुभव विरुद्ध युक्ति दिखलाते हैं जिस देशमें शुक्ति और रज्जु अर्थात् जेवरी जिसे सीधड़ा भी कहते हैं; अथवा अंगार सहित ऊसर भूमिमें जलका और जो भ्रम स्थलके स्थान हैं वे सब इसी रीतिसे जानना सो देखो जिस २ स्थलमें जिस २ पुरुषको भ्रम ज्ञानसे जिस २ वस्तुके इष्ट साधन की इच्छासे उस भ्रम ज्ञानके होनेके साथही भ्रमस्थलमें पहुंचतेही उस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होवे वह पुरुष कहता है कि मेरेको मेरी इष्ट वस्तुका भ्रम ज्ञान हुवा मेरी मेहनत वृथा गई इस कहनेका तात्पर्य्य यह है कि जिस पुरुषको शुक्तिमें रजतका भ्रम हुवा उस पुरुषको शुक्ति देशमें पहुंचनेसे और रजतके न मिलनेसे वह पुरुष कहता हुवा कि मेरेको चां-

हीका मिथ्या ज्ञान हुवा अर्थात् विरुद्ध ज्ञान हुवा इसलिये इसमें मेरी प्रवृत्ति वृथा हुई परंतु वह पुरुष ऐसा नहीं कहता कि मेरेको अनिर्वचनीय रजतका भ्रम ज्ञान हुवा किन्तु यही कहेगा कि मेरेको सत् रजतका भ्रम ज्ञान हुवा, नतु अनिर्वचनीय रजतका, इसरीतिसे रज्जुमें जहां दंड, सर्प, माला इत्यादिक भिन्न पुरुषोंको भ्रम ज्ञान होता है उस जगह भी रज्जु देश जाने पर वे सर्व पुरुष अपने २ भ्रमको कहते हुये कि हमको रज्जुमें सत् सर्पका मिथ्याभाव हुवा कोई कहता है कि मेरेको मालाका भ्रम रज्जुमें मिथ्या होगया इत्यादि जिस २ पुरुषको जिस २ सत्य वस्तुका भ्रम हुवा है वह उसीका नाम लेकरही भ्रमज्ञान कहता है परन्तु अनिर्वचनीय दंड अनिर्वचनीय माला अनिर्वचनीय सर्प इत्यादि भिन्न २ अनिर्वचनीय नाम लेकर कोई नहीं कहता कि मेरेको अमुक अनिर्वचनीय वस्तुका भ्रम ज्ञान हुवा किन्तु जो कहता है सो सत्यवस्तुकाही भ्रम ज्ञान कहता है यह अनुभव लोकमें प्रसिद्ध है सो बुद्धिमान् पुरुष भ्रमस्थलमें सत्य वस्तुकाही भ्रम ज्ञान माने तो क्या अपूर्व है परन्तु जो पामरलोग विवेक रहित नाई, धोबी तेली, तम्बोली, जाट, गूजर, भील, आदिकोंसे पूछो तो वे भी भ्रमस्थलमें रजत अर्थात् चांदी वा सर्प, माला दण्ड इत्यादिकोंका नाम लेकर कहेगे कि हमको इन वस्तुवोंका भ्रम ज्ञान हुवा परंतु ऐसा कोई नहीं कहेगा कि हमारेको अनिर्वचनीय अमुक वस्तुका भ्रमज्ञान हुवा इसरीतिसे लोक अनुभव विरुद्ध सिद्ध हुवा। दूसरा तुम्हारे विना सकलशास्त्रसे विरुद्धभी देखो कि तुम्हारे मुख्य वेद अर्थात् श्रुति जिसमें मंत्र वा मंत्रोंकी व्याख्यामें कहीभी अनिर्वचनीय ख्यातिका कथन नहीं। अथवा अनिर्वचनीय कोई पदार्थ नहीं माना ज्ञान वा अज्ञान इसके सिवाय और कोई तीसरा अनिर्वचनीय पदार्थ नहीं इस वेदके सिवाय न्याय, बौद्ध, सांख्य, मीमांसा, पातञ्जलि, जैनी आदिक कोईभी इस अनिर्वचनीय पदार्थको नहीं मानते है । और किसी शास्त्रमें अनिर्वचनीय पदार्थका कथनभी नहीं है। हां अलवत्ता अनिर्वचनीय शब्दका तो प्रयोग शास्त्रोंमें दीखता है सो शास्त्रकार अनिर्वचनीय वाक्यका अर्थ करते है कि जो न कहनेमे आवे उसीका नाम अनिर्वचनीय है इसलिये तुम्हारा अनिर्वचनीय पदार्थ मानना तुम्हारे विना सकल शास्त्रोंसे विरुद्ध सिद्ध हो गया । अब तीसरी युक्तिसेभी विरोध सिद्ध दिखलाते है:-कि देखो वेदान्तशास्त्रमें तीन सत्ताका अंगीकार है सो एक तो परमार्थ, दूसरे व्यवहारिक, तीसरे प्रतिभासिक इन तीनों सत्ताओंमें से कोई किसीका साधक बाधक नहीं क्योंकि समसत्ता साधक बाधक है विषम सत्ता साधक बाधक नहीं इस बातको तुम अंगीकार करो हो तो अब देखो कि जिस जगह शुक्तिमें रजतका भ्रम हुवा उस जगह तुम सत रजतको मानो नहीं अनिर्वचनीय पदार्थ प्रतिभासिक रजत मानो हो और दूसरा यहभी मानो हो कि शुक्तिका ज्ञान होनेसे रजत ज्ञानकी निवृत्ति होवे है तो अब देखो इस जगह नेत्र बन्दकर हृदय कमल ऊपर बुद्धिसे विचार करो कि स्वसत्ता साधक बाधक है तो शुक्तिका ज्ञान होनेसे अनिर्वचनीय रजतकी निवृत्ति माननी असंभव है क्योंकि शुक्ति तो व्यवहारिक सत्तावाली है और अनिर्वचनीय रजत प्रतिभासिक सत्तावाली है तो व्यवहारिक सत्तावाली शुक्तिका ज्ञान होनेसे अनिर्वचनीय रजत प्रतिभासिक सत्तावालीका क्योंकर बाद हुवा कदाचित् शुक्ति ज्ञानसे अनिर्वचनीय रजतका बाद मानोगे तो समसत्ता साधक

बाधक है । इस कहनेको जलाञ्जली देनी पड़ेगी और विषमसत्ता साधक बाधक हो जायगी तो ऊपर लिखी युक्तिसे विरोध होगा. चौथे तुम्हारेको तुम्हारे ही सिद्धान्तका त्याग होगा सो देखो कि तुम्हारा ऐसा सिद्धान्त है कि समसत्ता साधक बाधक है विषमसत्ता नहीं इस समसत्ताको साधक बाधकही सिद्धकरनेके वास्ते तुम्हारे ही शास्त्रोंमें लिखा है कि वेद और गुरु सत् नही किन्तु मिथ्या है क्योंकि जगत् प्रपंच मिथ्या है तो जो वेद और गुरु सत्य होय तो मिथ्यात्वकी निवृत्ति होय नही इसलिये वेद और गुरु मिथ्या है तिस मिथ्यात्व वेद गुरुसेही प्रपंचकी निवृत्ति होगी तो तुम्हारा मुख्य समसत्ता साधक बाधक का सिद्धान्त हुवा तो जहां शुक्तिमें रजतका भ्रम ज्ञान हुवा है उस जगह अनिर्वचनीय अ-अर्थात् प्रतिभासिक रजत उत्पन्न हुई है सो व्यवहारिक शुक्तिके ज्ञानसे प्रतिभासिक रजत की निवृत्ति बने नहीं जो तुम्हरे को तुम व्यवहारिक शुक्तिके ज्ञानसे प्रतिभासिक रजत अनिर्वचनीय की निवृत्ति मानोंगे तो तुम्हारे सिद्धान्तका त्यागभी हो गया इस सिद्धान्तके त्याग होनेसे आशक्त होकर अनिर्वचनीय ख्यातिवादी व्याकुल होकर लज्जासे प्राणत्याग करनेके समान अनिर्वचनीय अर्थात् बोलनेके योग्य न रहा इस जगह अनेक कोटी हैं परन्तु क्लिष्ट अर्थात् कठिन बहुत हे इसलिये नहीं लिखी क्योंकि कठिनतासे जिज्ञासुको मुश्किल पड़ेगा और जिज्ञासु न समझनेसे आलस्य करके ग्रन्थका वांचना छोड़ देगा ॥

अब पंच ख्याति निरूपणके अनन्तर किंचित् सत ख्यातिका वर्णन करते हे–कि श्री वीत-राग सर्वज्ञ देवने इस जगत्का सास्वतः अनादि अनन्तरीतिसे कथन किया इसलिये सत्त ख्याति माननेसे जगत्की निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होगी इसलिये जिस जगह जिस वस्तुका भ्रम होता है उस जगह जो भ्रमवाली वस्तु है जिसका जिसमें भ्रम हुवा है दोनों यह और तीसरा भ्रम चौथा भ्रम करनेवाला यह चारो पदार्थ सत् हैं, इनकी सतताका वर्णन तो हम इन चारों वस्तुओंको प्रति पादन करनेके बाद अच्छीतरह कहेंगे कि यह चारों वस्तु सत् हैं, प्रथम तो हम तुमको यह दिखलाते है कि जिस जगह भ्रम होता है तिस जगह किस २ कारणकी उस भ्रम-स्थलमें आवश्यकता होती है सो उन कारणोंको दिखलाते हैं कि १ प्रथम तो प्रबल यह है कि प्रकाश अन्धकारका अभाव अर्थात् जिस जगह भ्रम होगा उस जगह न तो पूरा २ प्रकाश होगा क्योंकि जो पूरा २ प्रकाश होतो वस्तु भिन्न २ दृष्ट आवे इस लिये पूरे प्रका-शका अभाव है तैसे ही पूरा अन्धकार भी नहीं क्योंकि जो पूरा अन्धकार होता तो वस्तु दृष्टि नहीं आती इसलिये पूरा अन्धकार भी नहीं । २ दूसरे नेत्रोंमें तिमिर आदि दोष । ३ तीसरे जिस वस्तुका यथावत ज्ञानका अनुभव होय । ४ चौथे इष्ट साधन प्रवृत्तिका कारण है और अनिष्ट साधन निवृत्तिका कारण है इतने कारण होनेसे भ्रमस्थलमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती है अब देखो कि जिस समय शुक्तिमें रजतका भान अर्थात् प्रतीति जिस पुरुषको होती है उस समय न तो बहुत प्रकाश है और न बहुत अन्धकार है उस समयमें दोष सहित नेत्रोंसे सादृश्य जो वस्तु इष्ट साधन थी उस पुरुषको जिस जगह पड़ी हुईथी उस जगह ऊपर लिखे दोषोंके बलसे उस पुरुषको ऐसा ज्ञान हुवा कि (इदंरजतं) अ-र्थात् चांदी पड़ी हुई है इस विपरीत ज्ञानमें पंचख्यातिवादका मत दीखाकर अब सिद्धांती

की रीति दिखाते हैं कि रजत् अर्थात् चांदीके अवयव स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावसे अभाव अर्थात् उस शुक्ति अर्थात् सीपमें नास्तिरूप होकर अस्तिरूप सदा शुक्तिके साथ रहते हे तैसेही शुक्तिके अवयव अस्तिरूप करके सत् हैं तैसेही रजत्के अवयव नास्ति रूप हे मिथ्या हे नहीं. दोष सहित नेत्रोंका सम्बन्ध और उस समय न प्रकाश है और न अन्धकार है और इष्ट साधन वस्तुकी प्रबल इच्छा और सादृश्य आदि कारण सामग्रीसे नास्ति रूप रजत अवयवमें सत रजत आविर्भावरूप प्रत्यक्ष दीखे है। अधिष्ठान ज्ञान अर्थात् शुक्ति ज्ञानसे सत् रजतके अवयवधुन्स अर्थात् त्रोभाव होती है अब यहां वेदान्तीकी ओरसे शङ्का अर्थात् तर्क करके दूषण देते हे सो दूषण दिखाते हैं शुक्ति रजत दृष्टान्तसे प्रपंचको मिथ्यात्व की अनुमति होवे है सत् ख्याति वादमें शुक्तिमें रजत सत् है तिसको दृष्टान्त दे कर प्रपंचमें मिथ्यात्व सिद्ध होवे नहीं इसलिये सत् ख्याति मानना ठीक नहीहे क्योंकि देखो शुक्ति ज्ञानमे अनन्तर (कालत्रयेपिशुक्तौ रजतं नास्ति) इस रीतिसे शुक्तिमे त्रैकालक रजताभाव प्रतीति होवे है वेदान्त मतमें तो अनिर्वचनीय रजत तो मध्य कालमें होवे है और व्यवहारिक रजताभाव त्रैकालक है और सत्त ख्याति माननेमें व्यवहारिक रजत होवे तिस कालमें व्यवहारप्रदिक रजताभाव संभव नही इसलिये त्रैकालक रजता भावकी प्रतीतिसे व्यवहारिक रजतका कहना विरुद्ध है और अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्तिमे तो प्रसिद्ध रजतकी सामग्री चाहिये नहीं दोष सहित अविद्यासे ताकी उत्पत्ति संभव है और व्यवहारिक रजतकी उत्पत्ति तो रजतकी प्रसिद्ध सामग्री विना संभव नहीं और शुक्ति देशमें रजतकी प्रसिद्ध सामग्री है नहीं इसलिये सत् रजतकी उत्पत्ति शुक्ति देशमे है नही कदाचित् जो तुम ऐसा कहो कि शुक्ति देशमें अवयव हैं सोही सत् रजतकी सामग्री है तो हम ऐसा पूछेंगे कि रजतावयवका उद्भुतरूप है अथवा अनुद्भुत है जो उद्भुतरूप कहोगे तो रजतावयवकाभी रजतकी उत्पत्तिसे प्रथम प्रत्यक्ष हुवा चाहिये जो कहो कि अनुद्भुत वाला है तो अनद्भुत रूपवाले अवयवसे रजतभी अनुद्भुतरूप वाली होवेगी इसलिये रजतका प्रत्यक्ष होवे नहीं जो कहो उद्भुत रूपवत् त्र्यणुका रंभक द्यणुकमें तो अनुद्भुतरूप है नहीं किन्तु उद्भुतरूप है द्यणुकमें महत्व नही इसलिये उद्भुतरूप हो तो भी द्यणुकका प्रत्यक्ष होवे नही और द्यणुकमेंही उद्भुतरूप नही है किन्तु प्रमाणमेभी नैयायक उद्भुतरूप अंगीकार करे है जो तुम ऐसा मानोहो तो द्यणुक की नाई रजत अवयवी भी उद्भुत रूप वाले हे परन्तु महत्शून्य है इसलिये रजत अवयव का प्रत्यक्ष होवे नहीं ऐसा कहोगे तो हम फिर पूछते है कि नैयायक के मतमें तो महत् परिमाण के चार भेद हैं आकाशादिक में परम महत्परिमाण है परम महत्परिमाण वाले कोही नैयायक विभु कहे है विभु से भिन्न पटादिक में अपकृष्ट महत्परिमाण है और सर्पादिकन में अपकृष्ट तर महत्परिमाण है त्र्यणुक में अपकृष्टतम् महत्परिमाण है जो रजत के अवयव भी महत्परिमाण शून्य है तो द्यणुक से आरब्ध त्र्यणुक की नाई महत्व शून्य अवयव से आरब्ध रजतादिक भी अपकृष्ट तम महत्परिणाम वाले हुवे चाहिये इसलिये रजत अवयव महत्वशून्य है यह कहना तुम्हारा ठीक नहीं कदाचित् रजतावयव में तो महत्व का अभाव कहो तो किसी रीति से बन भी जाय परन्तु जहां वल्मीक मे घट का भ्रम होवे तहां भी घटावयव कपाल मानने होवेंगे और जहां स्थानू (लकड़)

में पुरुष भ्रम होवे तहां स्थानू में पुरुष के अवयव हस्त पादादिक मानने होवेंगे कपाल और हस्त पादादिक तो महत्वशून्य संभव नहीं और रजतत्त्व जाति तो अनुसाधारण है इसलिये सूक्ष्मावयव में भी रजत व्यवहार संभव है और घटत्व कपालत्व हस्त पादत्व पुरुषत्वादिक जाति तो महान् अवयवी मात्र वृत्ति है तिसके सूक्ष्मावयव में कपालत्वादिक जाति संभव नहीं इसलिये भ्रम के अधिष्ठानदेश में आरोपित के व्यवहार अवयव होवें तो तिन की प्रतीति होनी चाहिये इस लिये व्यवहारिक अवयव से रजतादिक की उत्पत्ति कहना असंगत है ऐसी वेदान्ती शंका करता है, तिस का समाधान इस रीति से है-सो दिखलाते हैं शुक्ति रजत द्रष्टान्त से प्रपंच को मियात्व की अनुमति होवे है इस द्रष्टान्त दार्ष्टान्त की विसंमता अर्थात् द्रष्टान्त दार्ष्टान्त बनता नहीं है सो हम पीछे दिखावेंगे परन्तु पहले जो इन वेदान्तियों की बालक की तरह सुष्क तर्क उठती हैं उन का समाधान इस रीति से है शुक्ति ज्ञान से अनन्तर (कालत्रयेपि शुक्तो रजतं नास्ति) इस रीति से शुक्ति में त्रैकालक रजताभाव प्रतीति होवे है तो हम तुम्हारे को यह पूछें हैं कि जिस पुरुष को शुक्ति में त्रिकालक रजताभाव है उस समय में उस पुरुष की (इदं रजतं) इस रजत के ज्ञान से रजत के उठाने की प्रवृत्ति कदाचित् भी न होगी क्योंकि उस जगह रजत है ही नहीं सो प्रवृत्ति क्यों कर बनेगी जो तुम ऐसा कहो कि अनिर्वचनीय रजत तो मध्यकाल में होवे है और व्यवहारिक रजताभाव त्रिकालक है और व्यवहारिक रजत होवे तिस काल में व्यवहार रजताभाव संभव नहीं इस लिये त्रिकालिक रजताभाव की प्रतीति से व्यवहारिक रजत कहना विरुद्ध है तो हम तुम्हारे को पूछें है कि अनिर्वचनीय रजत जो मध्यकाल में प्रतीति होवे है सो व्यवहारादिक रजत से भिन्न हैं वा अभिन्न है जो कहो कि भिन्न है तो उस अनिर्वचनीय रजत को किसी ने देखा सुनाया अनुभव भी किया है वा नहीं तो तुम को यही कहना पड़ेगा कि व्यवहारिक रजत से व्यवहारिक रजत का प्रभाव होय और व्यवहारीक रजत कैसी प्रतीति होय उसीको हम अनिर्वचनीय अर्थात् प्रतीति भापक रजत माने है तो हम तुह्मारे को कहे हैं कि हे भोले भाइयो ! इतनी गहरी कल्पना करने से व्यवहारिक रजत के सादृशी ही मानने लगे तो पेश्तर ही सत् रजत को क्यों नहीं मानकर सत् ख्याति को अंगीकार करो जो कहो कि अभिन्न है तो तुमको हमारा ही शरण लेना हुवा कि सत् रजत भ्रम काल में शुक्ति देश में भावरूप मानने से ही पुरुष की प्रवृत्ति होती है और जो तुम ऐसा कहोगे कि अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति में तो प्रसिद्ध रजत की सामग्री चाहिये नहीं दोष सहित अविद्या से ताकी उत्पत्ति होवे है और व्यवहारिक रजत की उत्पत्ति रजत की प्रसिद्ध सामग्री विना होवे नहीं सो शुक्ति देश में रजत की प्रसिद्ध सामग्री है नहीं इस लिये सत रजत की शुक्ति देश में मानना ठीक नहीं हैं तो हे भोले भाइयो ! आंख मींच कर बुद्धि से हृदय मे विचार करो कि अनिर्वचनीय रजत की उत्पत्ति मे तो प्रसिद्धि रजत की सामग्री चाहिये नहीं इस तुम्हारे वाक्य को सुन कर हम को बड़ा हास्य उत्पन्न होता है कि आत्म अनुभव शून्यबुद्धि की चातुरीय दिखलाते है अजी देखो जिस को सत् रजत का ज्ञान नहीं होगा उस पुरुष की प्रवृत्ति कदापि न होगी क्योंकि जिस पुरुषको रजतका ऐसा ज्ञान है कि रजत अर्थात् चांदीसे कड़े, छड़े,

सांकला कटकंगन, आदि अनेक पदार्थ अर्थात् जेवर वनते है अथवा वस्त्र रसवति अर्थात् भोजनादि नाना प्रकारके कार्य्य सिद्ध होते है जिस पुरुषको ऐसा रजतमें इष्ट साधन ज्ञान होगा उसी पुरुषकी शुक्ति देशमें सादृश्य सपेद चांदी कैसी दमकनेसे यद्यपि चांदी उ' जगह नहीं है तोभी सत् चांदीके ज्ञानसे इष्ट साधन लोभकी प्रबलतासे रजत लेनेको प्रवृत्ति होती है जिस पुरुषको ऊपर लिखी हुई सत् रजतका ज्ञान यथावत् इष्ट साधनता नही है उसकी प्रवृत्ति कदापि न होगी इस लिये तुम्हारा कहना कि प्रसिद्ध रजतकी सामग्री चाहिये नहीं सो ऊपरोक्त लिखी सामग्री प्रसिद्ध रजतकीसेही प्रवृत्ति सिद्ध हो गई और जो तुमने कहा कि व्यवहारिक रजतकी उत्पत्ति तो रजतकी प्रसिद्धि सामग्री विना होवे नहीं और शुक्ति देशमें प्रसिद्ध रजतकी प्रसिद्ध सामग्री है नही इस लिये सत् रजतकी उत्पत्ति शुक्ति देशमें मानना ठीक नहीं तो इस जगहभी तुम कुछ बुद्धिका विचार करो और देखो कि जिस पुरुषको सत् रजतसे इष्ट साधनता अर्थात् ज्ञान है उसी पुरुषकी प्रवृत्ति होती है इस लिये सत रजतकीभी सामग्री वनगई जिस मनुष्यको सत रजतसे इष्ट साधन यथावत् ज्ञान नहीं है उसकी कदापि प्रवृत्ति नही होती क्योंकि प्रवृत्ति निवृत्तिमें इष्ट साधन और अनिष्ट साधन यह दोही निमित्त हेतु है जिसको इष्ट साधन अनिष्ट साधनका यथावत् ज्ञान न होवे तो वे प्रवृत्ति और निवृत्तिमेंभी नहीं समझते हैं क्योंकि उनको प्रवृत्तिकी जगह निवृत्ति और निवृत्तिकी जगह प्रवृत्ति सामानही है क्योंकि देखो जैसे तीन चार महीनाका बालक उसको अपना इष्ट साधन अर्थात् सुखका हेतु अनिष्ट साधन अर्थात् दुःखका हेतु इन दोनों बातोंका ज्ञान यथावत नही होता है तब वह बालक एक जगह चांदीका जेवर पड़ा हुवा है और उसी जगह पासमें सर्पभी बैठा हुवा है रंगविरंगकी क्रीड़ामें वह सर्प मस्त है उस सर्पके पकड़नेको तो वह बालक धावता है अर्थात् अवकाश मिलनेसे उसको पकड़भी ले परंतु रजतकी तरफ उसकी चेष्टा नहीं होती यह प्रत्यक्ष अनुभव सबको हो रहा है तो देखो इस जगह उस बालकके वास्ते सर्प जो है सो तो उसके दुःखका हेतु है परंतु उसको दुःखका हेतु मालूम नहीं होता और रजत सुखका हेतु है यहभी उसको मालूम नहीं है इसलिये जिसको इष्ट साधन सत् रजतसे अनेक कार्य्य सिद्ध होते हैं उसी पुरुषकी शुक्ति देश रजत ज्ञान होनेसे रजत लेनेकी इच्छा होती है तब वह पुरुष उस जगह प्रवृत्त होता है इस लिये सत् रजतकी सामग्री शुक्ति देशमें वन गई और तुमने उद्भुतरूप रजतके अवयव अथवा अनुद्भूतरूप इत्यादिक जो विकल्प उठाये हैं वहांसे लेकर महत्व शून्य है यह कहना संभव नहीं॥ यहां तक जो तुम्हारी शंका नैयायकको मिलाय कर लिखी है सो निष्प्रयोजन जानकर उसको हम ऊपर लिख आये है सो उसकाभी अव तुम्हारी लिखित शंकाके साथही उत्तर एकमें देते हैं सो वेदान्तीकी ओरसे शंकाकी रजत अवयवमें तो महत्का अभाव कहे तो किसी रीतिसे संभवभी; परंतु जहां वल्मीकमें घटका भ्रम होवे तहां घटका अवयव कपाल मानने होंगे और जहां स्थानूमें पुरुष भ्रम होवे तहां पुरुष के अवयव हस्त पादादिक मानने होंगे कपाल और हस्त पादादिक महत्व सून संभव नहीं रजतत्व जातितो अनुसाधारण है इस लिये सूक्ष्म अवयव मे रजत व्यवहार संभव है और घटत्व कपालत्व हस्तपादत्व पुरुषत्वादिक जाति तो महान् अवयवीमात्र वृत्ति हैं तिनके

सूक्ष्म अवयव में कपालत्वादिक जाति संभव नहीं इसलिये भ्रम के अधिष्ठान देशमें व्यवहारिक अवयव होते तिनकी प्रतीति होनी चाहिये सो होवे नहीं इसलिये व्यवहारिक अवयव से रजतादिक की उत्पत्ति मानना असंगत है अब इसका समाधान इसी रीतिसे है कि शुक्ति देशमे रजत के साक्षात् अस्तिरूप तो है नहीं किन्तु शुक्तिदेश में शुक्ति के अवयव अस्तिरूप होकर आविर्भाव होरहे हैं तैसेही शुक्ति देशमें रजत के नास्तिरूप अवयव शुक्ति अवयवों में बनेहुवे हैं अस्तिरूप होकर, क्योंकि अनेक धर्मात्मिक वस्तु अर्थात् वस्तु में अनेक धर्महोते है वह वस्तु में अनेक धर्म नहीं होय तो परस्पर जुदी २ वस्तु ही प्रतीति नहीं होय क्योंकि देखो जिस वस्तु में एक अपेक्षा से तो अस्तिपना है दूसरी अपेक्षा से नास्तिपना तीसरी से नित्यपना, चौथी से अनित्यपना, पांचवी से एकपना, छठी से अनेकपना भिन्न अभिन्नादि अनेक अपेक्षा धर्म वस्तुमें बना हुवाहै क्योंकि देखो जैसे एक पुरुषमें पुरुषत्वपना तो एक है परन्तु अपेक्षा धर्म देखें तो अनेक धर्म प्रतीति मालूम होते हैं जैसे एक पुरुषको कोई तो पुत्र कोई पिता, कोई काका, कोई भतीजा; कोई नाना; कोई द्विहता, कोई मामा; कोई भानजा; कोई साला, कोई बहनोई; कोई ससुरा; कोई जवाई; कोई दादा; कोई पोतादि अनेक सम्बन्ध उस एक पुरुषमे मालूम होते हैं इस रीतिसे सर्व वस्तुमें अनेक धर्म अपेक्षासे कोई धर्म अस्तिरूप होकरके कोई नास्तिरूपादिक करके सदा बने रहते हैं सो जिस समयमें भ्रमज्ञान होता है उस समयमें प्रथमतो प्रकाश अंधकार दोनोंका प्रभाव दूसरा जिस चीजका भ्रमहो उसके सादृश्यवत् होना तीसरा दोष सहित नेत्रोंका सम्बन्ध चौथे इष्ट साधन वस्तुकी प्रबल इच्छा होती है, उस समय शुक्तिमें जो रजतके अवयव नास्तिरूप थे सो ऊपर लिखे दोषोंसे अस्तिरूप रजतके अवयव प्रतीतिहोने लगे तैसेही वल्मीकदेशमें घटके और स्थाणुदेशमें पुरुषके साक्षात् नास्तिरूप अवयव थे सो ऊपर लिखे दोषोंसे झटिति अर्थात् शीघ्रतासेहो सत् रजतादिककी उत्पत्ति होवे है क्योंकि दोषके उद्भुतमहात्मसे नास्तिरूप अवयव अस्तिरूप होकरके प्रतीतिदेते हैं और शुक्ति आदिके जो अस्तिरूप अवयव थे सो नास्तिरूप होकर के प्रतीति देते हैं उसीका नाम विपरीति है अर्थात् भ्रमज्ञान है इस लिये भ्रमके अधिष्ठानमें आरोपके अवयव प्रतीति होवें नहीं और व्यवहारिक सत् रजतादिकनकेहैं अथवा शुक्ति देश में जो शुक्ति के अवयव अस्तिरूप अविर्भाव थे सो ऊपर लिखे दोष भ्रमके बल से अस्तिरूप अवयव थे सो त्रोभाव को प्राप्त हो कर उसी क्षण में सत् रजत के नास्तिरूप अवयव त्रोभाव थे सो दोष बल से आविर्भाव हो कर प्रतीति देने लगे इसी रीति से भ्रम की अधिष्ठान में आरोपितके अवयव हैं तो भी आधिष्ठान के विशेषरूप से प्रतीति की प्रतिबन्धक है इस लिये विद्वान को महत् अवयव का प्रत्यक्ष होवे नहीं और रजत की निवृत्तिमें शुक्ति ज्ञानकी अपेक्षा नहीं किन्तु रजत ज्ञानाभावसे रजतकी निवृत्ति होय है क्योंकि जितने काल रजतका ज्ञान रहे उतने कालही रजत रहैहे कहीं तो शुक्तिका ज्ञान रजत ज्ञानकी निवृति का हेतु है कहीं शुक्ति ज्ञान विना अन्यपदार्थके ज्ञानसे रजत ज्ञानकी निवृत्ति होवे है तो रजत ज्ञानाकीनिवृतिसे उत्तर क्षिणमे रजतकी निवृत्ति होवे है अथवा रजत ज्ञानकी निवृत्ति

होवे तैसेही रजतज्ञानकी निवृत्ति क्षिणमें रजतकी निवृत्ति होवे है सो ज्ञान कालमे रजतकी स्थिति होनेसे यद्यपि प्रतिभासक रजतादिक है तथापि अनिर्वचनीय नहीं किन्तु सत् रजत हैं क्योंकि देखो जैसे तुम्हारे शास्त्रोंमें अर्थात् वेदान्तमें सुखादिक प्रतिभासिक है तो भी स्वप्न सुखादिकसे विलक्षण मानो हो अथवा नैयायक मतवाले भी द्वित्वादिक प्रतिभासिक मानके व्यवहारिकको सत् मानेहै तैसे ही इस जगह भी रजतादिक प्रतिभासक है तो भी व्यवहारिक रजत सत् है इसलिये रजत ज्ञानकी निवृतिसे उस क्षिणमें रजतादिककी निवृत्ति होवे है अथवा रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु जो शुक्तिका ज्ञान अथवा पदार्थतरका ज्ञान तिससे भी रजत ज्ञानकी निवृत्ति क्षिणमें रजतकी निवृत्ति होवे है शुक्ति ज्ञानसे ही रजतकी निवृत्ति होवे है यह नियम नहीं हैं। इस समाधानको सुनकर चोक पड़ा और ऐसी शंका उठाने लगा कि ऐसा कहो तो लोक अनुभवसे विरोध होगा और सकल शास्त्रोंसे भी विरोध होगा सिद्धान्तका त्याग होगा युक्ति विरोधभी होगा क्योंकि शुक्तिज्ञानसे रजतभ्रमकी निवृत्ति होवे है यह सब लोगोंमें प्रसिद्ध है और सकल शास्त्रमेभी प्रसिद्ध है और सत् ख्यातिका यह सिद्धान्त है कि विशेषरूपसे शुक्तिका ज्ञान रजत अवयवके ज्ञानका प्रतिबाधक है इस लिये रजत अवयवके ज्ञानका विरोधी शुक्तिका ज्ञान निरनीति है सो रजतावयवकी प्रतीतिका विरोधी शुक्ति ज्ञानही रजत ज्ञानका विरोधी मानना क्रुप्त कल्पना है निर्णीत कुक्रुप्तकहे है सो शुक्तिज्ञानसे विना अन्यसे रजत ज्ञानकी निवृत्ति मानोंगे तो अक्रुप्त कल्पना हो जावेगी इस लिये क्रुप्त कल्पना योग्य है या युक्तिसे भी विरोध होगा इस लिये शुक्तिज्ञानसे ही रजतकी और ताके ज्ञानकी निवृत्ति माननी ठीक है इस वेदान्तीकी शंका को सुनकर करुणा सहित हास्य उत्पन्न होता है कि यह अज्ञानरूपी भंगके नशे में अपना विरोध दूसरे में लगाते हैं सो इस जगह एक मसल देकर इनकी शंका दूर करते है, सो मसल यह है कि "स्यावाश! वहुतेरे नखरे को पादे आप लगावे लड़के को" अब देखो जो तुमने कहा कि लोक अनुभव से विरुद्ध होगा सो तो तुम अपने हृदयकमल में नेत्र मींचकर बुद्धिसे विचार करो कि सत रजत का भ्रम होना यह सबको अनुभव सिद्ध है क्यों कि सत् रजत सबको देखने में आवती है नतु अनिर्वचनीय रजत किसीने देखी है कि वह अनिर्वचनीय किस रूपरंगवाली है अथवा तुम्हारे को पूछे कि तुमही बतावो कि तुम्हारी अनिर्वचनीय रजत किसरूपरंगकी है सो रूपरंग तो कुछ कह सकोगे नहीं किन्तु उस अनिर्वचनीय रजत के संग तुमको अनिर्वचनीय ही होना पड़ेगा और जो सकल शास्त्रका विरोध होगा यह कहनाभी तुम्हारा असंभव है क्योंकि सकल शास्त्र में तो हमाराभी शास्त्र आगया तो हम हमारे शास्त्र से विरोध कदापि न कहेंगे किन्तु शास्त्र के अनुसारही कहेंगे परन्तु अलवत्ता तुम्हारे शास्त्र मानने से विरोध तुमको तुम्हारी बुद्धिमे मालूम होता है नतु सकल शास्त्र से और जो तुमने कहा कि सिद्धान्तका त्याग होगा यह कहनाभी तुम्हारा ठीक नहीं क्योंकि सिद्धान्त शब्दका अर्थ क्या है! तो देखो कि सिद्धान्त नाम उसका है कि जिसको वादी और प्रतिवादी दोनों अंगीकार करें तो इस जगह तो वाद चलरहा है तो सिद्धान्त का त्याग किस रीतिसे हुवा और तुमने युक्तिसे विरोध वतलाया सो तुम्हारी युक्ति तो यही है कि सत् ख्याति में विशेषरूपसे शुक्तिका ज्ञान रजत अवयवके ज्ञानका प्रति-

बंधक है इसलिये रजत अवयव के ज्ञानका विरोध शुक्तिका ज्ञान निर्णीत है रजतावयवकी प्रतीतिका विरोधी शुक्तिज्ञानही रजत ज्ञानका विरोधी माननाक्लृप्त कल्पना है शुक्ति ज्ञानके विना अन्य से रजतज्ञानकी निवृत्तिमानें तो अक्लृप्त कल्पना होजायगी इसलिये क्लृप्त कल्पना योग्य है यह तुम्हारी युक्ति सुनकर हमको हास्यभी उत्पन्न होता है और तुम्हारे पर करुणाभी आती है कि यह विचारे आत्मानुभव शून्यबुद्धि विचक्षणपणा दिखाते हैं अरे भाइयो ! कुछ बुद्धिका विचार करो कि जैसे सुवर्णकार देखते हुवे सोनेको हरता है अर्थात् चुराता है इसीरीति से तुमभी वाक्यरूप सोनेको देखते हुवेही चुराते हो क्योंकि देखो जब हम कहते हैं कि शुक्तिज्ञान से भी रजत ज्ञानकी निवृत्ति होती है और अन्य पदार्थके ज्ञानसे भी रजतज्ञानकी निवृत्ति होती है सोई अब हम अन्यपदार्थ के ज्ञान से निवृत्तिको दिखाते हैं कि जिस समय जिस पुरुषको शुक्ति में रजत ज्ञानका भ्रमहुवा उसीसमय भ्रमवाले पुरुष को अन्यपुरुषने कहा कि तेरा पुत्र मरगया इस कुवाक्य को सुनतेही उस रजतज्ञान और रजतकी निवृत्ति होकर पुत्रके शोकमें सब भूलगया अथवा जिस पुरुषको शुक्ति में रजतका भ्रम हुवा उसीसमय में अन्यपुरुष को नङ्गी तलवार लिये मारने को आता हुवा देखकर अपनी जान बचाने के वास्ते वहां से भाग उठा और रजतज्ञान और उस रजतकी निवृत्ति होगई यह अनुभव सबको सिद्ध है और तीसरी युक्ति और भी देखो कि जिस पुरुष को शुक्ति देश जिस क्षण में रजत ज्ञान हुवा उसी क्षण में उस शुक्तिदेश और उस पुरुष के वीच में सुवर्णका ठेला अथवा पन्नाकी मणी पड़ीहुई दिखलाई दी उसके लेने में रजतज्ञान और रजतकी निवृत्ति विना भये तो उसका सोना वा पन्नाकी मणी उठाना नहीं बनेगा और वह उठाता है क्योंकि उस रजत से वह सुवर्ण व पन्ना विशेष इष्टसाधन है इसलिये अन्यपदार्थ के ज्ञानसे रजतज्ञान की निवृति होती है और रजत ज्ञानकी निवृत्ति स रजत की निवृत्ति होती हां अलवत्ता उस रजत से विशेष पदार्थ भ्रमक्षणमें प्रतिबंधक न होय तब तो शुक्तिज्ञान सेही रजतज्ञान और रजत की होवेगी क्योंकि अनेक धर्मात्मिकवस्तु ऐसा स्याद्वाद जिनमत का सिद्धान्त है इसलिये अनेक हेतुओं से प्रवृत्ति निवृत्ति होती है नतु एकान्त हेतु से अब फिर भी गूढ़ नास्तिक शुष्कतर्क करता है सो शङ्का फिर दिखलाते हैं जो रजत ज्ञानाभाव से रजत की निवृत्ति मानो और रजत ज्ञानकी निवृत्तिके अनेक साधन मानो तो वक्ष्यमाण दोषोसे सत् ख्यातिका उद्धार होवे नहीं सो दोष यह है जहां शुक्ति में जो क्षणमें रजत भ्रम होवे तिसी क्षणमे शुक्ति अग्निका संयोग होके उत्तर क्षणमें शुक्तिका ध्वंस और भ्रमकी उत्पत्ति होवे तहां रजत ज्ञान की निवृत्तिका साधन कोई हुवा नहीं इस लिये शुक्ति ध्वंश और भस्मकी उत्पत्तिसे प्रथम रजतकी निवृत्ति नहीं होनेसे भस्म देशमें रजतका लाभ होना चाहिये क्योंकि रजत द्रव्य तेजस है ताका गंधकादि संबन्ध विना ध्वंश होवे नहीं इस लिये भ्रमस्थल में व्यवहारिक रजत रूप सत् पदार्थकी ख्याति कहो हो इस लिये सत् ख्याति असंगत है "समाधान" वाहरे बुद्धि विचक्षण ! जिस क्षणमें शुक्ति में रजतका भ्रम हुवा तिस क्षणमें शुक्तिसे अग्नि का संयोग होके उत्तर क्षणमें शुक्तिका ध्वंश और उत्पत्ति हुई तहां रजत ज्ञानकी निवृत्ति का साधन कोई नहीं यह तुम्हारा कहना बाल जीवोंकी तरहका है क्योंकि देखो अग्निका

शुक्तिसे संयोग होते ही अग्निकी झलकको देखकर बुद्धिमान् विचार करेगा कि इस जगह चांदीका भ्रम हुवा किन्तु चांदी नहीं जो चांदी होती तो अग्नि कदापि नहीं लगती क्योंकि चांदी तेजस पदार्थ है सो विना संयोग धातुके जले नहीं सो वह अग्नि ही शुक्ति में संयोग होकर जो शुक्तिका ध्वंश होना सो ही रजत ज्ञान और रजतकी निवृत्तिका हेतु होगया नतु शुक्ति ज्ञानका और जो तुमने कहा कि भ्रमस्थलमें व्यवहारिक रजतरूप सत् पदार्थ की ख्याति है सो सत् रजत शुक्तिके भ्रममे रजतका लाभ होना चाहिये यह कहनाभी तुम्हारा ऐसा है कि जैसे कोई निर्विवेकी पुरुष कुल्हडेमे ऊंटको खोजता हो क्योंकि देखो और बुद्धिका विचार करो कि रजतका लाभ होता तो रजतका भ्रम ज्ञान ही क्यों कथन करते इस लिये उस भ्रमस्थल में रजता भ्रम ज्ञान है इस रजतका लाभ नहीं फिरभी दूसरी शंका करता है सो शंका यह है कि—जहां एक रज्जु अर्थात् जेवरी में अनेक पुरुषोंको भिन्न भिन्न पदार्थका भ्रम होवे किसीको दंडका किसीको मालाका किसीको सर्प का किसीको जल धाराका इत्यादिक एक रज्जु पदार्थ में अनेक पदार्थोंका भ्रम हो वे है उस जगह स्वल्प रज्जु देशमें संभवे नहीं क्योंकि मूर्त्तद्रव्य स्थानका निरोध करे है इस लिये स्वल्प देशमें इतने पदार्थके अवयव संभवे नहीं और भ्रमकाल मे दंडादिक अवयवी सर्वथा संभवे नही। और हमारे सिद्धान्तमें तो अनिर्वचनीय दंडादिक है तो व्यवहारिक देशका निरोध करे नही। और जो सत् ख्याति वादमें तिन दंडादिकनमें स्थान निरोधादिक फल नहीं मानोतो दंडादिकको सत कहना विरोध और निष्फल है। दंडादिककी प्रतीति मात्र होवे है अन्य कार्य तिनसे होवे नहीं ऐसा कहो तो अनिर्वचनीय वाद ही सिद्ध होवे है इसका समाधान यह है कि हे मिथ्या अभिनिवेश भ्रमजालके फसे हुवे! कुछ बुद्धिसे विचार करोकि जहां एक रज्जु में अनेक पुरुषोंको भिन्न २ पदार्थोंका भ्रम होवे उस जगह अनेक पुरुषोंको ऊपर लिखी हुई भ्रमकी सामग्री अर्थात् इष्टपदार्थ की इच्छा और अनिष्ट पदार्थकी अनिच्छा अर्थात् द्वेशके कारणसे जैसा २ जिस पुरुषको सत् वस्तुका उस भ्रमस्थल जो रज्जु देशमे वैसाही सत् वस्तुका भ्रमज्ञान होता है क्योंकि देखो उस रज्जु में रज्जुके द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप सत् अवयव अस्तिरूप हैं और उस रज्जु में दंड माला सर्प जलधारा इत्यादिकों के स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप अवयव नास्तिरूप होकर अस्तिरूप त्रोभाव होकर बने हैं सो जिसकाल में जिस २ पुरुषको जिस जिस सत्य वस्तुका भ्रम होता है उस भ्रम काल मे उसी वस्तुके अवयव नास्तिरूप अस्ति होकर त्रोभाव में थे सो ही अवयव ऊपर लिखी सामग्रीके वलसे नास्ति रूप से अस्ति भाव होकर आविर्भाव होते हुवे। इस लिये उस एक रज्जु देशमें भिन्न २ भ्रम ज्ञान सत् वस्तुका ही सिद्ध हो गया और जो तुमने स्थानू निरोधकी आपत्ति दीनी सोभी नहीं वनती है क्योंकि एक वस्तु मे दूसरी वस्तु मूर्ति द्रव्य होवे तो स्थाणु निरोधकरे परन्तु इस जगह तो एक वस्तु मे मूर्ति द्रव्य पना तो उसी वस्तुका है किन्तु उस वस्तुके धर्म अर्थात् स्वभाव में अनेक वस्तुके नास्तिरूप अर्थात् स्वभावरूप बने रहते है क्योंकि अनेक धर्म आत्मक वस्तु एक वस्तु में स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप करके तो अस्ति पना और परद्रव्य क्षेत्रकाल भाव करके नास्तिपना बना हुवा है जो कदाचित् अस्ति नास्ति वस्तु में स्व-

भाव नहीं मानोंगे तो किसी पदार्थका निर्वाह नहीं होगा इस लिये स्याद्वादसि-द्धान्तकी शरण गहो जिससे तुम्हारा मिथ्या ज्ञान मिटे और आत्मज्ञान होय सो हे भोले भाइयों ! स्थाणु निरोधकी आपत्तिरूप हाथी बनाया था उसका तेज स्याद्वादसिंहके सामने न ठहरा किन्तु भागकर वनकी सैर करता हुवा और जो तुमने कहा कि सत् ख्याति वादी भीति न दंडकादिकन में स्थानू निरोधादिक फल नहीं मानें तो दंडादिकनको सत् कहना विरुद्ध अर्थात् निष्फल है तो अब इस जगह भी नेत्रमींचकर हृदयको देखो कि जिस पुरुषको सत्य वस्तुका यथावत् ज्ञान होगा उसीको उस सत्य वस्तुका भ्रम ज्ञान होगा नतु अज्ञानी अर्थात् अजानको होगा तो सत्य वस्तुके यथावत् ज्ञान बिना भ्रम कालमें किस वस्तुका भ्रम ज्ञान मानोगे क्योंकि उस भ्रम वाले पुरुषको सत्य वस्तुका ज्ञान तो है नहीं जो सत्य वस्तुका ज्ञानही नहीं है तो उस पुरुषको इष्ट अनिष्ट साधनका भी विवेक न होनेसे उस पुरुषकी प्रवृत्ति निवृत्तिही, न बनेगी इसलिये हे भोले भाइयो ! अनिर्वचनीय ख्यातिको छोड़कर सत्य ख्यातिकी शरण गहो अमरपद लहो संसार समुद्रमें क्यों वहो जो तुम आत्मस्वरूप चाहो; तब इस वाक्यको सुनकर वेदान्ती चौंककर बोलता हुवा कि भ्रमस्थलमें सत् पदार्थ की उत्पत्ति मानो हो तो अंगार सहित ऊसर भूमिमें जल भ्रम होवे है तहां जलसे अंगार शांति हुवा चाहिये और 'तुला' अर्थात् रूईके ऊपरी धरे हुवे गुंजा अर्थात् लाल चोंटनीके पुंजसे अग्नि भ्रम होवे है तहां तुलाका दाह होना चाहिये और जो ऐसा कहे कि दोष सहित कारणते उपजे पदार्थकी अन्यको प्रतीत होव नहीं जाके दोषसे उपजे है ताहीको प्रतीति होवे हैं तो दोषके कार्य्य जल अग्निसे आर्द्रीभाव दाह होवे नहीं तो तिनको सतही कहना हास्यका हेतु है क्योंकि अवयव तो स्थाणु निरोधादिक हेतु नहीं है और अवयवीसे कोई कार्य्य होवे नहीं ऐसे पदार्थको सत् कहना बुद्धि मानोंको हास्यका कारण है इसलिये सत्यख्याति असंगतही है अब इनका समाधान सुनो कि जो तुमने कहा कि जहां अंगार सहित ऊसर भूमिमें जल भ्रम होवे तहां जलसे अंगार शीत हुवा चाहिये इस तुम्हारी तर्करूप 'टटुवानी' अर्थात् निर्बल बछेरीको देखकर हास्य सहित करुणा आती है कि यह निर्बल जर्जरीभूत स्याद्वादयुक्ति रूप चाबुक क्योंकर सहेगी सो युक्तिरूप चाबुकका स्वाद तो चक्खो कि जिस पुरुषकों जलभ्रम होता है वह पुरुष जल भ्रम स्थलमें पहुंच कर जल नहीं पानेसे अर्थात् न होनेसे निराश होकर क्या बोलता है सो कहो तो तुमको कहना ही पड़ेगा कि वह पुरुष कहेगा कि जल बिना मिले मेरेको जलका भ्रम हो गया कारण कि इस भूमिमें अंगार की तेजीसे जल कीसी दमक होनेसे मेरेको जलका धोखा होगया ऐसा कहेगा तो फिर तुम अनिर्वचनीय ! अनिर्वचनीय !! अनिर्वचनीय !!! तोतेकी तरह टें टें क्या पुकारते हो और जो तुमने कहा कि रूईके ऊपर धरी हुई लाल चोंटनीसे अग्निभ्रम हो तहां रूईका दाह होना चाहिये सो भी कहना विवेक शून्य मालूम होता है क्योकि देखो जो रूईका दाह हो जाता तो उस जगह अग्निका भ्रम ज्ञान जहां होता किन्तु सत्य अनित्य प्रतीति देती सो उस जगह रूईका दाह तो हुवा नहीं इसलिये उस जगह सत्य अग्निका भ्रम ज्ञान हुवा है इसीलिये उसको भ्रमस्थलमें भ्रम ज्ञान कहते हैं इसलिये तुम्हारी युक्ति ठीक न बनी और जो तुमने कहा कि ऐसे पदार्थोंको सत्य कहना बुद्धि

मानोंको हास्यका हेतु है तो हम तुम्हारेको यह बात पूछे हैं कि सत्य और असत्य इनके सिवाय और कोई तीसरा पदार्थ भी जगत्में कहीं प्रतीति देता होय तो कहो तुमको अनिर्वाच्य होनेके सिवाय कुछ भी न बनेगा क्योंकि देखो बुद्धिमानोंने सत्य पदार्थको सत्य कहा तैसेही आनन्द होगा हां अलबत्त जो आत्मानुभव शून्य निर्विवेक भ्रमजालमें फसे हुवे तुम्हारे जसे हैं। क्लृप्त कल्पनाको छोड़कर अक्लृप्त कल्पनाको ग्रहण करके भांडचेष्टाकी तरह जो अपनेको बुद्धिमान् मानकर मनुष्यकी पूंछकी तरह इस अनिर्वचनीय ख्यातिको पकड़े बैठे है इसलिये उनक पदार्थका बोध न होगा और जो पहले कहा था की द्रष्टान्त दार्ष्टांत विषम है सो इन का खण्डन तो पहले ही वेदान्त मत के निरूपण में अथवा अनिर्वचनीय ख्याति के खण्डन में दिखा चुके है परन्तु किञ्चित् यहां भी प्रसंग दिखाते हैं कि जो तुम कहो कि शुक्ति रजत द्रष्टान्त से प्रपंच को मिथ्यात्व की अनुमति होवे है यह तुम्हारा कहना असंगत है क्योंकि प्रपंच को मिथ्यात्व की अनुमति होवे है सो मिथ्या नाम झूंठका अर्थात् न होना उस को कहते है तो यह प्रपंच अर्थात् जगत् प्रत्यक्ष दीखता है और तुम कहते हो कि जगत् मिथ्या है सो क्या तुम जाग्रत में भी स्वप्न देख कर बरीते हो अजी नेत्र मींच के हृदय में विचार करो कि घट, पट, खाना, पीना, सोना, बैठना, पुरुष, स्त्री, बाल, बूढ़ा, युवा, पशु, पक्षी, जन्म, मरण, हाथी, घोडा, गाय, भैंस, ऊंट, बकरी, राजा, प्रजा, इत्यादिक अनेक जो दीखे हैं उन को तुम प्रपंच कहो हो तो इस जगत् को आबाल कोई भी मिथ्या अर्थात् झूंठ नहीं कहता है परंतु न मालूम कि तुमलोगों का हृदय नेत्र तो फूट गया किन्तु बाह्य नेत्र से भी नहीं दीखता है तो मालूम हुवा कि तुमलोगों के नेत्र का आकार है परन्तु ज्योति शून्य है इस लिये हम तुम को क्यों कर बोध करावें और जो तुम कहो कि प्रपंच को हम व्यवहार सत्तावाला मानते है और परमार्थ सत्ता से प्रपंच को मिथ्या कहते हैं तो अब हम तुमको पूछे हैं कि शुक्ति और रजत यह दोनो व्यवहार सत्तावालो हैं जिस से शुक्ति में रजत का भ्रम होता है क्योंकि सादृश्य और एक सत्ता है तैसे ही परमार्थ सत्ता को छोड़ कर व्यवहारिक सत्ता मानो तो शुक्ति रजत का दृष्टान्त बनजाय अथवा जगत की व्यवहारिक सत्ता छोड़कर परमार्थ की सत्ता मानो तो द्रष्टान्त दार्ष्टान्त बन जाय इस लिये अनेक सत्ता का मानना छोड़कर एक सत्ता को मानो, तजो अभिमानो, समझ गुरु ज्ञानों, होय कल्यानों तो आत्मरूप पहिचानों जिस से कार्य सब सिद्ध हों जो तुम व्यवहारिक और प्रातिभासक और परमार्थ सत्ता जुदी २ मानोगे तो तुम्हारा द्रष्टान्त दार्ष्टान्त इन तीनों सत्ताओं से कदापि सिद्ध नहीं होगा क्योंकि जब भ्रमस्थल में व्यवहारिक शुक्ति में व्यवहारिक रजत का भ्रम ज्ञान होता है और कहते हो कि उस भ्रमस्थल में अनिर्वचनीय अर्थात् प्रातिभासक रजत उत्पन्न होती है और व्यवहारिक रजत है नहीं तो व्यवहारिक शुक्तिका ज्ञान होनेसे प्रातिभासक रजतकी निवृत्ति क्योंकर बनेगी कदाचित् व्यवहारिक शुक्तिके ज्ञानसे प्रातिभासिक रजतकी निवृत्ति मानोगे तो स्व सत्ता साधक बाधक है विषम सत्ता नहीं ऐसा जो तुम्हारा सिद्धान्त है सो इस तुम्हारे सिद्धान्तको जलांजली देकर पीछे व्यवहारिक शुक्तिके ज्ञानसे प्रातिभासक रजतकी निवृत्ति करना इस लिये जो शुक्ति रजतके द्रष्टान्तसे प्रपंचको अनुमति होवे

है सो सिद्ध न हुई इस वाक्यको सुनकर मिथ्यात्वरूपी प्यालेके नशे में चकचूर होकर बोलता हुवा कि अजी तुमने अनिर्वचनीय ख्यातिका तो युक्तिसे खंडन करादिया परन्तु तुम्हारी मानी हुई जो सत्य ख्याति वाद में शुक्तिमें रजत सत्य है सो द्रष्टान्त देकर प्रपंच मे मिथ्यात्व सिद्ध होवे नहीं इस लिये सत्य ख्यातिभी न बनी फिर कौनसी ख्याति माननी चाहिये सो कहो अरे भोले भाइयों! इस तुम्हारे वाक्यको सुनकर बुद्धिमानो को हास्य आता है क्योंकि जैसे बहरेको गीतका सुनना और अंधेके सामने आईना दिखाना तैसे ही हमारी इतनी युक्तियोंका कथन करना हो गया परन्तु खैर अब और भी तुमको द्रष्टान्त दार्ष्टान्त उतार कर दिखाते हैं सो देखो कि इस जगत् में जो जो पदार्थ है सो सो स्व २ सत्ता करके सर्व सत् हैं परन्तु पदार्थ के ज्ञान होनेसे क्या नियम होता है सो हम कहते हैं कि " पदार्थज्ञाने प्रतिपक्षी नियामका " इसको सब कोई मानते हैं क्यों कि प्रतिपक्षी विना पदार्थका ज्ञान नहीं होता है इस लिये यह प्रतिपक्षी पदार्थको दिखाते हैं कि प्रति पक्षी किसको कहते हैं जैसे सत्यासत्य अर्थात् सत्यका प्रतिपक्षी झूंठ और झूंठका प्रतिपक्षी सत्य है तैसे ही खरा, खोटा, और स्त्री, पुरुष, नर, मादी, सुख, दुःख, बुरा, भला, राग, द्वेष. धर्म, अधर्म, तृष्णा, संतोष, मीठा, कड़वा, नरक, स्वर्ग, जन्म, मरण, रात, दिन, राजा, प्रजा, चोर साहूकार, जीव, अजीव, बंध, मोक्ष इत्यादि अनेक वस्तुओं में प्रति पक्षी इसी रीतिसे जान लेना सो यह वस्तु सर्व जगत् अर्थात् संसार में अनादिकाल शास्वत द्रव्य क्षेत्र काल भाव करके स्वसत्तासे सत् सत्तावाली है इस लिये जगत् में जो पदार्थ हैं सो सभी अपनी २ अपेक्षासे सत् हैं परंतु पर अपेक्षासे प्रतिपक्षी पदार्थ मे असत्यता है इसी लिये श्री वीतरागसर्वज्ञकी बाणी स्याद्वादरूप है इस स्याद्वादके विना जाने यथावत् ज्ञान होना कठिन है अब देखो इसी स्याद्वादरीतिको समझो कि द्रष्टान्त तो शुक्ति में रजतका भ्रम ज्ञान होना इस द्रष्टान्तकी पेश्तर व्यवस्था दिखाते हैं कि जिस पुरुषको रजत अर्थात् चांदीका यथावत् ज्ञान इष्टसाधनताका बोध होगा उसही पुरुषको शुक्तिमें रजतका भ्रम ज्ञान होगा नतु अन्य पुरुषको और भी समझो कि शुक्तिके सिवाय और भी जो रजत सादृश्य पदार्थ है उन में भी रजतका भ्रम ज्ञान होता है जैसे सफैद दमकदार कपड़े में कोई वस्तु बँधी होय, अथवा चूनाकी ढेलियॉ सफेद पत्थर में भी रजतका भ्रम ज्ञान होता है क्योंकि रजतके सादृश्य होनेसे; इसी रीतिसे सर्व भ्रमस्थलों में सादृश्य वस्तु में सत्य वस्तुका भ्रमज्ञान होता है और जो जो सादृश्य पदार्थ नहीं है उसमे किसीको भ्रम ज्ञान नहीं होता है कदाचित् असादृश्य पदार्थ में भ्रमज्ञान माने तो हरेक वस्तुमें हरेकका भ्रम ज्ञान हो जायगा इसी लिये सादृश्य पदार्थ मे ही भ्रमज्ञान होता है नतु असादृश्य में और जिस वस्तु में भ्रम होता है सो भी स्वसत्ता करके सत्य है और जिस वस्तुका भ्रम होवे सो भी स्वसत्ता करके सत् है परन्तु पर अपेक्षा से असत्य है जो पर सत्ता से असत् नहीं माने तो भ्रमज्ञान होवे नहीं इस लिये स्वसत्ता करके सत्य और परसत्ता करके असत्य है इस रीति से द्रष्टान्तकी व्यवस्था जानों अब दार्ष्टान्तकी व्यवस्था कहते हैं कि आत्मा सत् चित् आनन्दरूप है सो सत्य नाम जो उत्पाद व्यय ध्रुव करके तीन काल मे रहे उसको सत्य कहते है और चित् नाम ज्ञानका है अथवा चित्

नाम चेतन अर्थात् प्रकाशवाले का है और आनन्द नाम सुख का है इसी रीति से तीन काल रहे और ज्ञान स्वरूप आनन्दमय सो आत्मा है इस जगह शंका होती है कि आत्मा आनन्दमय है तो आत्मा क्या चीज है और किसने देखा है तो हम कहते हैं कि आनन्दभी कुछ वस्तु है परन्तु अनुभव सिद्धि है सो अनुभवको अनुमानसे आनन्दकी सिद्धि दिखाते है क्योंकि देखो जब स्त्री और पुरुष दोनो आपसमे क्रीड़ा आरंभ करते हैं तबसे लेकर वीर्य्य स्खलित अर्थात् निकलनेके अंततक जो सुख (आनंद) आता है तिस आनंदको मनुष्यमात्र अथवा पशु, पक्षी, आदि सर्व जीवोंको अनुभव हो रहा है उसी संसारी आनंदमे फंसे हुवे सर्व जीव जन्म मरण करते है इस लिये आनन्द अनुभव सिद्ध हो चुका तो आनन्द कुछ वस्तु है परंतु इस पुद्गलीक अर्थात् विषय आनन्दके अनुभवसे अनुमान करते है कि आत्मा आनन्दमयी है इस लिये आत्मा सत् चित् आनन्दमयी हो चुका इस रीतिसे दृष्टान्तकी व्यवस्था कही अब दोनोंको द्राष्टान्त उतार कर दिखाते है कि जैसे शुक्तिमें सादृश्य होनेसे सत् रजतका शुक्तिमे भ्रमज्ञान होता है तैसेही प्रपंच अर्थात् जगत्में आवरण दोषसे पुद्गलीक सुखमें आत्मसुखका भ्रमज्ञान होता है तो जैसे शुक्तिके ज्ञानसे अथवा अन्यपदार्थके ज्ञानसे रजत भ्रमज्ञानकी निवृति होती है तैसेही जगत्के यथावत ज्ञान होनेसे अथवा आत्मा स्वरूपके ज्ञान होनेसे जगत्की निवृत्ति होती है और मोक्षकी प्राप्ति होती है इस लिये शुक्ति रजतके दृष्टान्तसे प्रपंच अर्थात् जगत्की निवृत्ति सत् ख्यातिवादसे सिद्ध हुई क्योंकि यह जगत् अनादि अर्थात् शास्वत है और सत् है इस लिये सत्य ख्याति वादके माने विना अन्य पंचख्यातिवादसे जगत्की निवृत्ति होवे नहीं इसी लिये अनेकांत स्याद्वादपरूपक ऐसे श्री वीतराग सर्वज्ञदेवके वचनको हृदयमें धरो संसार समुद्रको तिरो मिथ्यात्वको परिहरो जन्म मरणसे डरो सत्यख्यातिसे कल्याण करो जिससे भवसागरमें न फिरो मुक्तिको जायवरो दिग् इति ॥ अब ख्याति कहनेके अनंतर जगत्की सत्यता ठहरीतो अब जो सर्वज्ञदेवने जो पदार्थ माने है उनको कहते है इस जगत्मे दो पदार्थ हैं १ जीव २ अजीव। और द्रव्य छः है जिसमें एक तो जीव द्रव्य है और पांच अजीव है जिसमें एक आकाशास्तिकाय, दूसरा धर्मास्तिकाय, तीसरा अधर्मास्तिकाय, चौथा पुद्गलास्तिकाय, यह चार द्रव्य तो मुख्य द्रव्य हैं और पांचवा कालद्रव्य उपचारसे है, और तत्व ९ माने है १ जीव. २ अजीव. ३ पुण्य. ४ पाप. ५ आश्रय. ६ संवर. ७ निर्जरा. ८ बंध ९ मोक्ष ये नव तत्व हैं, अब किञ्चित् छः द्रव्यके गुण पर्याय बताते हैं:-जीवके चार गुण यह है:- १ अनन्तज्ञान २ अनन्तदर्शन, ३ अनन्तचारित्र, ४ अनन्तवीर्य । और चार पर्याय यह है:- १ अव्याबाध, २ अनवगाह, ३ अमूर्ति ४ अगुरुलघु । आकाशास्तिकायके चार गुण- १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिया, ४ अगुरु लघु । और पर्याय यह है:- १ खंद, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरु लघु ॥ धर्मास्तिकायके चार गुण यह है:- १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिया, ४ गतसहायगुण । और पर्याय यह है:- १ खंद, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरुलघु ॥ अधर्मास्ति कायके चार गुण यह हैं:- १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ स्थिरसहायगुण । और पर्याय यह हैं:- १ खंद, २ देश ३

प्रदेश, ४ अगुरुलघु ॥ पुद्गलास्तिकायके चार गुण यह हैं:- १ रूपी, २ अचेतन, ३ सक्रिय, ४ मिलन, विछरन पूरण, गलन । और पर्याय यह हैं:- १ वरण, २ गन्ध, ३ रस ४ स्पर्श अगुरुलघु कालके गुण यह है:-१अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय नवा पुराणा वर्तना लक्षणे । और पर्याय यह हैं:- १ अनागत २ अतीत ३ वर्तमान ४ अगुरु लघु ॥ पदार्थ और द्रव्य और तत्वोंका विस्तार तो वहुत ग्रन्थोंमें लिखा है इस वास्ते यहां नहीं लिखते हैं परन्तु किंचित् षट् द्रव्योंमें कितने पक्ष मिलायकर कि जिसमें जिज्ञासुका उस स्वरूपका उपयोग होनेसे कल्याणका हेतु विशेष हो सो लिखते हैं:-उन पक्षोंके नाम तो हम देवके स्वरूपमें लिख आये हैं. १ निश्चयसे जीविका स्वरूप कहते हैं अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य अव्यावाधादि, अनंतगुण जिसमें हैं, वो जीव है चिदानन्दरूप अविनाशी, अलख, अमर, निरंजन, निराकार ज्योतिःस्वरूपी ऐसा जो हो उसीको जीव कहते हैं । २ व्यवहारसे जीवके अनेक भेद है-१ स्थावर,२ त्रस, स्थावरके पांच भेद हैं-१ पृथ्वीकाय, २ अपकाय, ३ तेजकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय, त्रसके वे इन्द्री, तेइन्द्री, चोइन्द्री, तिर्यंच पंचेन्द्री और मनुष्यके यह छः भेद है । त्रसके देवता और नारकी इत्यादि अनेक भेद हैं फिर जीवके चौदः भेदभी हैं और पांचसो त्रेसठ ५६३ भेद भी हैं और एक इसी रीतिसेभी भेद होते हैं कि संसारीजीवके दो भेद हैं, १ अयोगी चौदवें गुण ठाणे वाला, २ संयोगी । संयोगीके २ दो भेद हैं । १ केवली, २ छदमस्त; छदमस्तके दो भेद एक क्षीणमोही वारवें गुण ठाणेमें वर्तता हुवा जिसने मोहनीकर्म खपायाः दूसरा उपशांतमोही; उपशांतमोहीके दो भेद १ अकषाई ११ गुण ठाणेके जीव । दूसरा सकषाई सकषाईके दो भेद-१ सूक्ष्म कषायी दशवां गुण ठाणाके जीव. २ वादर कषाई. वादर कषाईके दो भेद. १ श्रेणीवाले २ श्रेणीरहित । श्रेणी रहितके दो भेद. १ अप्रमाद. २ प्रमादी. प्रमादीके दो भेद. १ सर्वविरति, २ देश विरति. देश विरतिके दो भेद १ विरतिपरिणामी, २ अविरति परिणामी. अविरतिके दो भेद. १ अविरतिसमगति, २ अविरति मिथ्यात्वी. उस मिथ्यात्वीके दो भेद. १ भव्य, २ अभव्य. उस भव्यके दो भेद. १ ग्रंथीभेदी; २ ग्रंथी अभेदी । इस रीतिसे जिसको जैसा देखे वैसा कहे, यह व्यवहारसे जीवका स्वरूप कहा । (३) द्रव्य. (४) भाव करके जीव स्वरूप कहते हैं । द्रव्य करके जीवका स्वरूप जिस समय जिस गतिका आयुकर्म वा प्राणोंको वन्ध करे उस समय वो द्रव्य जीव है । भावजीव उसको कहते है कि जो जिस गतिका आयुकर्म बांधा था उस गतिमें आयकर प्राण वा इन्द्री प्रगटपनेमें भोगने लगा उसको भाव जीव कहते हैं । (५) (६) अव सामान्य और विशेष करके जीवका स्वरूप कहतेहै । कि सामान्य करके तो चेतना लक्षण वोही जीव. सो चेतन दो प्रकारकाहै. १ अव्यक्तचेतन. २ व्यक्तचेतन, अव्यक्त चेतन पृथ्वी आदि पांचस्थवरोंमें है और व्यक्त चेतन वेन्द्रीको आदि लेकर पंचेन्द्री पर्यन्त त्रिसजीवमें हैं । विशेष करके कहते है कि जैसे जीवमें ६ लक्षण होंय सो जीव यादि युक्तं श्री उत्तराध्ययनजीमें "नाणं च दंसणं चके चरितंच जवो जहा ॥ वीरियं उवोच्छो अ, एअंजी अस्सलरकणं ॥" अव यहां कोई ऐसी शङ्काकरे कि स्थावर वनस्पति आदिकोंमें तो यह ६ लक्षण नहीं मालूम पड़ते है तो उनको जीव मानना कैसे वनेगा तो हम कहते है

कि ज्ञान दृष्टिसे विचार करो और विवादको छोड़ कर आत्मार्थीके वास्ते किञ्चित् युक्तिसे छवाँ लक्षण दिखांते हे कि देखो जो वनस्पति हे उसकोभी दुःख सुखका भान है कि दुःख होनेसे कुम्हलाई हुई मालूम होती हे और सुख होनेसे परि फुल्लित मालूम होती हे तो दुःख सुखका जाननेवाला ज्ञान होता हे सो इस रीति अव्यक्तज्ञान उसमे सिद्ध होगया; ऐसेही दर्शनके दो भेद—१ चक्षु दर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ऐसा शास्त्रोंमें माना हे अचक्षुदर्शन सिद्ध होगया तीसरा चारित्र तो चारित्र नाम त्यागका हे त्याग भी दो प्रकारका है—१ जानकर त्यागकरना. २ अनजान तथा अनमिलेका त्याग होना तो देखो कि वनस्पतिको जलादिकके नहीं मिलनेसे उसके भी अव्यक्तका त्याग तथा अनमिलेका त्याग तो इस हेतुसे अकाम निर्ज्जराका हेतु चारित्र भी किञ्चित् ठहरा। अब चौथा तप भी ठहरता हे कि देखो तप नाम शीत उष्ण सहता हुवा सन्तोष पावे उसको तप कहते हे; तो देखो शीत उष्णता सहना तो उसमें भी है इसलिये किञ्चित् तप भी ठहरा. ५ वीर्य नाम पराक्रमका हे उसको बल वा शक्ति भी कहते हैं. तो देखो जो उसमें पराक्रम न होता तो उसका फूलना बढ़ना न बनता इसलिये वीर्य्य भी ठहरा। ६ उपयोग नाम उसका हे जो अपनी इच्छासे अवकाश पाता हुवा जाय जिधर अवकाश न मिले उधरसे फिरकर दूसरी तरफको चला जाय सो उपयोग भी ठहरता हे इस रीतिसे सामान्य और विशेष करके जीवका स्वरूप कहा। (७, ८, ९, १०) अब चार निक्षेपासे जीवका स्वरूप कहते हे। कि नाम जीव उस के दो भेद हे १ अकृत्रिम अनादि, २ कृत्रिम नाम कर्म के उदय से, अकृत्रिम अनादि तो जीव वा आत्मा, यह तो अनादि नामहे अकृत्रिम है; और कृत्रिम, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, देवदत्त आदि अथवा नाम कर्मके उदय से जिस योनिको प्राप्तहोय वैसाही बोलाजाय। स्थापना निक्षेपा कहते हैं— स्थापना जीव उसको कहते हैं कि जिस योनि (जूण) मे जाय उस योनिका जैसा आकार होय उस आकार को प्राप्तहोय अथवा जैसा जीवने उदारिक शरीर वा वैक्रिय शरीर कर्म के उदय से पाया था वैसाही किसी चित्रकारका बनाया चित्राम, वो स्थापना। द्रव्यजीव उसको कहते हे कि जिस को अपनी आत्माका उपयोग नहीं वो द्रव्य जीव है सो एकेन्द्री से पंचेन्द्री पर्य्यन्त जानना, भाव से जीव का स्वरूप कहते हे जिसको अपनी आत्मा का उपयोग हे सो भाव जीव यह चार निक्षेपा से जीवका स्वरूप कहा। अब चार प्रमाण से जीवका स्वरूप कहते हैं प्रत्यक्ष प्रमाणसे जीव चेतना लक्षण हे सो प्रत्यक्ष सर्वजीवों में देखने में आता हे परन्तु इस जगह किञ्चित् चारवाक नास्तिक का मत दिखाते हैं कि चारवाकमतवाला जीवको नहीं मानता है वह ऐसा कहता है कि जीव कुछ नही है चारभूत, पृथ्वी, अप्, तेज और वायु इनके मिलने से एक विलक्षण शक्ति पैदा होती है कि जैसे पानी आकाश मेसे वर्षता है और उसमे बुद् बुदा पैदा होता है ऐसेही चारभूतों के मिलने से एक विलक्षण शक्ति पैदाहोती है उसको मूढलोग जीव मानते हैं और भी देखो कि जैसे बबूल और गुड़ मे नशा नही मालूम होता परन्तु इन दोनों के मिलने से और यंत्र में खिचने से एक मदरूप विलक्षण शक्ति नशारूप पैदा होता है तैसेही चार भूतोंके मिलने से एक विलक्षण शक्ति पैदा होती है परन्तु जीव कुछ पदार्थ नहीं है इत्यादि अनेक उसकी कोटी चलती हे सो उनका खण्डन मंडन श्रीनन्दीजी, श्री

सुगडाङ्गजी वा स्याद्वादरत्नाकर अवतारका आदिक अनेक ग्रन्थों में लिखा है सो ग्रन्थ बढ़जाने के भयसे नहीं लिखा परन्तु इस नास्तिक चार वाक्य वालेका खण्डन किञ्चित् युक्तिसे दिखाते हैं इसको ऐसा पूछना चाहिये कि तू इस जीव को निषेध करता है सो विना देखेहुए को अथवा देखेहुए को निषेध करता है जो तू कहे कि विना देखेको निषेध करता हूं तो यह कहना तेरा तेरेकोही बाधाकारी है क्योंकि विना देखेका निषेधही नहीं बनता जो वह कहे कि देखेहुए जीवका निषेध करता हूं तो यह कहनाभी उसका उन्मत्त के समान है जैसे कोई पुरुष कहे कि " ममसुखे जिह्वानास्ति " मेरे मुख मे जीभ नही है जब तेरे मुख में जीभ नहीं है तो तू कैसे बोलता है तेरे बोलने से ही तेरी जिह्वा की प्रतीति होती है इस रीतिसे देखे हुए जीवको निषेधही करना नहीं बनता है क्योंकि जब तू जीवको देखचुका तो फिर तू देखे हुए जीवको निषेध क्या करता है तो तेरी बराबर उन्मत्त अज्ञानी मूर्ख इस जगत्में कौन होगा कि जो देखी हुई वस्तु को निषेध करे इसी वास्ते तेरे को सर्वलोग नास्तिक कहते हैं तेरा देखा हुवा जीव तेरेही कहनेसे हमारे प्रत्यक्ष प्रमाण में सिद्ध होगया अब अनुमान प्रमाण से जो गणधरोंने जीवका स्वरूप कहा है वो कहते हैं:-बाल, युवा, वृद्धपणे जो प्रवरते जैसे श्री दशवैकालक के चतुर्थ अध्ययन मे "अभिक्कतं पडिक्कतं संकुचियं पसारियं रूपभंत तसियं पलाइयं आगई गई" इत्यादिक त्रसजीवों को जानने के वास्ते अनुमान कहा है उसी तरह से स्थावरका अनुमान भी श्री आचारांगे प्रथम श्रुतस्कंधे शास्त्र परिज्ञा अध्ययन में वनस्पति वृक्षआदिक को जीव मानने के वास्ते अंकुर आदिक को लेना, जो गणधरों ने बतलाया उसको अनुमानप्रमाणसे जीव मानना अब उपमा प्रमाण से जीवका स्वरूप कहते हैं-कि जीव अरूपी आकाशवत् रहा न जाय जीव अनादि अनन्त है जैसे धर्म द्रव्य आदिक शास्वता है तैसेही जीव भी शास्वता है इत्यादिक उपमा करके जीव का दृढ़ता कहना यह उपमा प्रमाण से जीव का स्वरूप कहा ॥ आगम प्रमाण से जीव का स्वरूप कहते हैं- "कम्म कत्ता" इत्यादि कर्म का कर्त्ता, कर्म का भोक्ता, अरूपी, नित्य, अनादि, अगुरु लघु गुण हैं, इस रीति से जीवका लक्षण कहा यह आगम प्रमाण से जीव का स्वरूप जानना । चारों प्रमाणों से जीव का स्वरूप कहा । अब द्रव्यथी, क्षेत्रथी कालथी भावथी, करके जीवका स्वरूप कहते है-द्रव्यथी जीव का स्वरूप यह है कि गुणपर्यायका जो भाजन परिवर्तन उस का नाम द्रव्य है जैसे जीव में जीव के गुण पर्याय अर्थात् ज्ञानादि गुण और अव्याबाधादि पर्याय उन का जो समूह चेतनालक्षण संयुक्त वो द्रव्यथी जीव है ऐसे अनंत जीव है क्षेत्र करके-जो जीव के असंख्याता प्रदेश सो जीव का क्षेत्र है कालथी जीव का स्वरूप, उत्पाद, व्यय, ध्रुव, तीन काल करके जो रहे वो कालथी जीव है । भावथी ज्ञानदर्शन चारित्र करके संयुक्त इन से कदापि व्यतिरिक्त न होगा वह भावथी जीव है अब अनादि अनन्त अनादि सांत, सादि सांत और सादि अनन्त से जीव का स्वरूप कहते हैं । अभव्य आश्रिय तो अनादि अनन्त भांगा है क्योंकि कब जीव उत्पन्न हुवा था ऐसा नहीं कह सकते और उसकी मोक्ष भी कदापि न होगी, और जिस जीव की मोक्ष होगी वो अनादि सांत भांगे से है और गति याने नारकी

तिर्यंच मनुष्य और देव गती इन में उत्पन्न होना फिर वहांसे चव जाना इस आश्रिय सादि सांत भांगा है ओर जो जीव मोक्ष चला गया उस का सादि अनन्त भांगे से स्वरूप जानना अब दूसरी रीतिसे भी इसी चोभंगी को फिर कहते हैं जीव के चार गुण और तीन पर्याय तो अनादि अनन्त हैं और जो कर्म भव्य जीव से अनादि काल के लगे है सो मोक्ष होने से उन कर्मों का अंत हो जायगा यह अनादि सांत भांगा है और जो कर्मों की स्थिति मूजिब कर्म बंधना सो सादि सांत है और जो अगुरुलघु पर्याय का उत्पाद व्यय सो भी सादि सांत है और जो जीव सर्व कर्मों को छोड़ कर मोक्ष दिशा मे प्राप्त हुवा सो अपने स्वरूप का जो संपूर्ण प्रगट होना उस की आदि है परन्तु फिर अपने स्वरूप को कदापि न भूलेगा इस वास्ते सादि अनन्त भांगा गुण प्रगट होने की रीति से हुवा और निरपेक्षा से तो जीव में केवल दो भांगे बनते हैं १ अनादि अनन्त, और २ सादि सांत इस रीति से अनादि अनंतादि चोभंगी कही. अब (८) पक्ष से जीव का स्वरूप कहते है १ नित्य २ अनित्य. ३ एक, ४ अनेक ५ सत् ६ असत् ७ व्यक्तव्य ८ अव्यक्तव्य यह आठ पक्ष हैः—जीव जो है सो चार गुण अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य और तीन पर्याय अव्याबाध अनवगाह अमूर्तिक चेतनादि गुण करके तो नित्य है और अगुरु लघु अर्थात् उत्पदा व्यय करके अनित्य है अथवा निश्चयनयसे जीव जो है कभी विनाशवान् नहीं है और व्यवहार नयसे जीव जन्म मरण करता है इस करके अनित्य है यह नित्य अनित्य पक्ष करके जीवका स्वरूप कहा ॥ अब एक अनेक पक्षसे जीवका स्वरूप कहते हैः—जीव ऐसा नाम करके तो एक है परंतु द्रव्य करके अनन्ता जीव है इसलिये अनेक है अथवा जीव एक जीव करके तो एक है परन्तु गुण पर्याय अनेक हैं अथवा प्रदेश भी असंख्याते है इसरीतिसे अनेक है यह अनेक पक्षमे जीवका स्वरूप कहा । अब सत् असत् पक्षसे जीवका स्वरूप कहते है—जीवका स्वद्रव्य, जीवका स्वक्षेत्र, जीवका स्वकाल, जीवका स्वभाव करके तो जीव सत् है और जीवसे परद्रव्य अजीव, उस अजीवका परद्रव्य अजीव उस अजीवका द्रव्यक्षेत्र काल भव उन करके असत् है जो उस करके जीवमें असततान होय तो वो द्रव्य हो दूसरा न ठहरे इसवास्ते अपनी अपेक्षा से सत् है और परकी अपेक्षा से असत् हैं । यह सत् असत् पक्ष से जीव का स्वरूप कहा अब वक्तव्य अवक्तव्यपक्ष से जीव का स्वरूप कह ते हैः—वक्तव्य क० जो कहने में आवे अर्थात् वचन से कहा जाय जैसे जीव चेतना लक्षण और ज्ञानादि गुण करके संयुक्त है ऐसा कहने में आता है इस से तो वक्तव्य हुवा, परन्तु जो जीवका स्वरूप ज्ञानी ने अपने ज्ञान में देखा है सो ज्ञानी जानता है परंतु वचन से उस का स्वरूप कहने में न आवे इस लिये अवक्तव्य है । यह आठ पक्ष से जीव का स्वरूप कहा ॥ अब भेदस्वभाव, अभेद स्वभाव, भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव, परमस्वभाव, भिन्नस्वभाव, अभिन्न स्वभाव, करके जीवका स्वरूप कहते हैः—भेद स्वभाव से तो एक सिद्धके जीवका स्वभाव, एक संसारी जीवका स्वभाव और संसारी जीव में भी जितनी योनि हैं उतनी योनियो मे परस्पर योनिक भेद होने से योनि में रहने वाले जीवों का भी आपसमें भेद है परन्तु जीव ऐसा नाम अथवा चेतना लक्षण के किसी जीवके भेदनही अथवा असंख्यात प्रदेश सर्व जीवों के बराबर है इस करके भी भेद नहीं अथवा ज्ञानादिगुण करके सर्व जीव

बराबर हैं इस वास्ते अभेद है ॥ यह भेद अभेद स्वभावसे जीवका स्वरूप कहा । अब भव्य अभव्य स्वभावसे जीवका स्वरूप कहतेहैं:—भव्यक० जिसका पलटन स्वभाव हो उसको भव्य स्वभाव कहतेहैं कि जैसे जीवका पलटन स्वभाव न माने तो संसारी जीवकी कदापि मोक्ष नहीं हो इस लिये जीवका भव्य स्वभाव है; अभव्य क० जिसका स्वभाव न पलटे अर्थात् न बदले उसको अभव्य कहतेहैं तो देखो जीव जो है सो चेतना लक्षण स्वभावको कदापि न पलटे और जो कदाचित् चेतना लक्षण पलट जाता तो अजीव हो जाता इसलिये जीवका अभव्य स्वभावभी ठहरा। यह भव्य अभव्य स्वभावसे जीवका स्वरूप कहा ॥अब परम स्वभावसे जीवका स्वरूप कहतेहैं:—परम क०उत्कृष्ट स्वभाव तो जीवमें ज्ञान जो गुणहैं सो उत्कृष्ट स्वभाव है क्योंकि ज्ञानसे ही सर्व वस्तुको जानता है और इसके ही मंद होनेसे सर्व वस्तुका अजानभी होता है परंतु व्यक्त और अव्यक्त करके तो ज्ञान बना ही रहता है। इसलिये जीवका जो ज्ञान है सो ही परम स्वभाव है। यह परम स्वभाव से जीवका स्वरूप कहा ॥ अब भिन्न अभिन्न स्वभावसे जीवका स्वरूप कहते हैं:—भिन्नक० जुदा तो देखो जीव में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य्य यह चारों भिन्न २ स्वभाववाले हैं क्योंकि देखो ज्ञान में तो जानने का स्वभाव है और दर्शन में सामान्य देखने का स्वभाव है। और चारित्र में रमण करने का स्वभाव है और वीर्य में शक्ति अर्थात् पराक्रम देनेका स्वभाव है तो अब चारों में भिन्न २ स्वभाव है. परन्तु जीवके विषय यह चारों गुण एक जगह उपस्थित अर्थात् रहनेवाले हैं इस लिये जीवसे अभिन्न होनेसे इन चारोंकी जो समुदाय उसी का नाम जीवहै, इस रीतिसे जीवका भिन्न अभिन्न स्वभावसे स्वरूप कहा ॥ अब छः कारकसे जीवका स्वरूप कहते हैं— १ कर्त्ता २ कर्म अर्थात् कार्य ३ करण ४ संप्रदान, ५ अपादान, ६ आधार। (१) जीव परिभाव रागादि ज्ञान वर्णादिक द्रव्य कर्म का कर्ता है। (२) जो जीव भावकर्म और द्रव्यकर्मको करे वह कार्य। (३) अशुद्ध व्यवहार प्रणीतिरूप भाव आश्रव और प्रणातिपात आदि द्रव्य आश्रव इन दो कारणोंसे कर्म बंधा है इस लिये यह कर्म नाम तीजा कारक। (४) अशुद्धता और द्रव्य कर्मका जो लाभ सो संप्रदान (५) स्वरूपरोध और क्षयोपसमकी हानि तथा परानुयायतासे अपादान । (६) अनन्ति अशुद्ध विभावता और कर्मको राखने रूप जो शक्ति सो आधार यह छः कारकों से जीवका स्वरूप कहा ॥ अब यह तो संसारी जीवपै उतारे। अब मोक्षकी साधन करनेवाले जो जीव है उनके ऊपर छः कारक घटाते हैं:— (१) कर्त्ता जीव द्रव्य है सो आत्म शुद्धता निपजाने रूप कार्यमें प्रवर्त्त हुवा अपनी आत्माका कर्त्ता है (२) जो जीवकी सिद्धता सर्व गुण पूर्णता सर्वस्वभाव स्वरूपावस्थानता हैं सो कार्यनामा दूसरा कारक अर्थात् कर्म। (३) आत्मा उपादानकारण स्वगुण परिणीति सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रयी की जो परिणीति तत्त्वनिर्धार स्वगुण रमण आदि अहिंसकता बंध हेतु अपरिणामरूप प्रभाव अग्राहकता रूप अथवा उपादान कारण अपनी आत्मा निमित्त कारण अरिहंत अवलंभ आदि यथार्थ आगम प्रमाण आदि उससे अपनी आत्माका स्वरूप विचारण रूप अथवा नीचे का गुण ठाणा छोड़ना और ऊपर का गुण ठाणा ग्रहण करना, आत्मसिद्धिरूप कार्य की उत्कृष्टि आत्मशक्ति स्वरूप अनुयायी शुद्धदेव प्रमुख कारणों से जो

मोक्ष रूप कार्य्य सिद्ध होय यह तीजा कारक कहा (४) सम्प्रदान कारक कहते हैं–कि आत्मा की सम्प्रदा जो ज्ञान पर्याय उसका दान आत्मा का आत्मगुण प्रगट कर वा रूप देना उसी का नाम संप्रदान है। (५) अपादान कारक कहते हैं:–कि आत्मा के समवाय सम्बन्ध से जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र वो आत्मा का स्वधर्म है उससे जो विपरीति मोह आदि कर्म अशुद्ध प्रवृत्ति सो परधर्म है इन दोनों का आपस में विवेचन करके अर्थात् भिन्न करना सो अशुद्धता का उच्छेद अर्थात् त्याग होना और आत्म स्वरूप अर्थात् आत्म गुणका प्रगटहोना अर्थात् अशुद्धता रूप का व्ययहोना और आत्मगुणका प्रगटहोना अर्थात् उत्पाद होना इस करके अपादान कारक कहा (६) आधारकारक कहते हैं:–समस्त आत्मा के जो गुण पर्याय प्रगटहुए जो व्याप्य, व्यापक सम्बन्ध अथवा ग्राह्य, ग्राहक, सम्बन्ध वा आधार आदि सम्बन्ध इन सबोंका क्षेत्र आत्मा है सो इनको धारण करनेवाली जो आत्मा इस लिये आत्मा आधार कारक कहा। यह छः कारकों से मोक्ष के साधन करनेवाले जीव का स्वरूप कहा॥ अब किञ्चित् नयका स्वरूप कहते हैं:–नयके दो भेद हैं–(१) द्रव्यार्थिक, (२) परियार्यायिक सो प्रथम द्रव्यार्थिक वो है जो उत्पाद व्ययपर्याय गौण पणे, और प्रधान पणे द्रव्यके गुण सत्ता को ग्रह सो इसके १० भेद यह हैं:–(१) सर्वद्रव्य नित्य है सो नित्य द्रव्यार्थिक, (२) अगुरु लघु और क्षेत्र की अपेक्षा न करे और मूल गुणको पिण्ड अर्थात् मुख्यपणे ग्रहणकरे वो " एक द्रव्यार्थिक " (३) ज्ञानादिक गुण करके सब जीव एक सरीसा है इसलिये सर्व को एक जीव कहे स्वद्रव्यादिको ग्रहण करेसो "सत्यद्रव्यार्थिक" जैसे सत्यलक्षणं द्रव्यं, (४) द्रव्य में कहने योग गुण अंगीकार करे सो " व्यक्तव्य "द्रव्यार्थिक, (५) आत्मा को अज्ञानी कहना वो " अशुद्ध " द्रव्यार्थिक, (६) सर्व द्रव्यगुण पर्याय सहित है ऐसा कहना सो " अनवय " द्रव्यार्थिक. (७) सर्व जीव द्रव्यकी मूलसत्तो एकसत्ता है सो " परम " द्रव्यार्थिक नय है (८) सर्वजीवके आठ प्रदेश निर्मल है जिन आठों के कर्म नहीं लगे क्योंकि जो लगभी जाय तो अचेतन होजाय इसी वास्ते उनको आठ रुचक प्रदेश कहते हैं सो " शुद्ध " द्रव्यार्थिक नय है (९) सर्व जीवों के असंख्यात प्रदेश एकसरीसे है सो " सत्ता " द्रव्यार्थिकनय. (१०) गुण गुणीद्रव्य सो एक है जैसे मिश्री और मीठापन तो मिश्री मीठापनसे जुदा नहीं. सो " परमभाव ग्राहक " द्रव्यार्थिक नय॥ अब पर्याय पार्थिक नय कहते है जो पर्याय को ग्रहण करे सो पर्यायपार्थिकनय है उस के छःभेदहैं सो यह हैं– (१) " द्रव्य पर्याय" सो जीवका भव्यपणा और सिद्धपना को कहते है। (२) " द्रव्य व्यंजन पर्याय" सो द्रव्यके प्रदेशमान। (३) " गुण पर्याय" जो एक गुणसे अनेकता हो जैसे धर्मादिक द्रव्य अपने चलण सहकारादि गुण से अनेक जीव और पुद्गल को सहाय करे। (४) " गुण व्यंजन पर्याय " जो एक गुणके अनेक भेद हों। (५) " स्वभावपर्याय " सो अगुरू लघुपर्याय से जानना यह पांच पर्याय सब द्रव्यों में हैं (६) छठाविभाव पर्याय सो जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यो मे ही है जहां जीव सो चार गतिके नवे २ भवकरे वो जीव में विभाव पर्याय तथा उस पुद्गल में खंधपणा सो विभाव पर्याय जानणा. यह नयके भेद कहे। अब नयके लक्षण तथा अर्थ कहते है–(१) "अनेक गमाः संकल्पारोपाशांश्रयाद्या यत्रशनैगमः "। अनेक नामादि ग्रहणकरे तथा सं-

कल्पे आरोपे और अंश करके वस्तुको माने उसे नयगमनय कहते हैं । (२) " संगृह्णाति वस्तु सत्तात्मकं सामानां स संग्रहः " ॥ जो सर्वको संग्रह सर्व को ग्रहण करे वस्तु का छत्तापणा सामान्य पणे से ग्रहण करे उसको संग्रह नय जानना. (३) " संग्रह ग्रहितं अर्थ विषेशेण विभजतीति व्यवहारः " संग्रह नय करके ग्रहण करे जो सामान्य तिसको अंश २ भेद करके जुदे २ विवेचन करे उसको व्यवहार नय कहते हे (४) " ऋजु अतीतानागत वक्रत्व परिहारेण ऋजु सरलं वर्तमानं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः " जो ऋजु सरल वर्तमान अवस्थाको ग्रहण करे अतीति अनागतकी व्यक्तव्यताको लेखे नहीं उसको ऋजु सूत्रनय कहते हैं । (५) "शब्दार्थरूपं तत्तद्धर्मरूप परिणति इति शब्दः" । प्रकृति प्रत्ययादिक व्याकरण व्युत्पत्ति करके जो उत्पन्न हुवा शब्द तिसमें जो पर्यायार्थ बोला जाय अर्थात् परणमें उस करके जो वस्तु माने सो शब्दनय । (६) " सम्यक् प्रकारेणार्थपर्याय वचना पर्यायता सकल भिन्न वचन भिन्न भिन्नार्थत्वेन तत् समुदाय युक्ते ग्राहक इति समभिरूढनयः" जो वस्तु कि विद्यमान पर्याय तथा जो नाम यावत् वचन पर्याय है वो सर्व शब्दके भिन्न हैं जैसे घटकुंभ इत्यादि जो शब्द करके भिन्न है उसका अर्थ परमतदभावरूपपणे भिन्न वह सर्व वचन पर्यायरूप परिणमती वस्तुको वस्तुपणे ग्रहण करे उसको समभिरूढनय कहते हे । (७) "सर्व अर्थ पर्यायें स्वक्रिया कार्य पर्णत्वेन एवं यथार्थतया भृतः एवंभूतः" ॥ सर्व अर्थ पर्याय अनंत संपूर्ण अपनी क्रिया कार्य पूर्ण जो वस्तुका धर्म सम्पूर्ण हो गया हो उसको माने उसका नाम एवंभूतनय है यहां श्रीभद्र गणिक्षमा श्रवणमे १ नयगमनय, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजु सूत्र । इन चार नयको द्रव्यार्थिक पणामें द्रव्य निक्षेपा माना है और शब्दादिक ३ नयको पर्यायार्थिक पणेमें भाव निक्षेपा माना है तथा श्री सिद्ध सेन दिवाकरने आदिके ३ नयको द्रव्यार्थिक पणे कहा है और ऋजु सूत्र आदिक चार नयको भाव पणे कहा है जिसका आशय ऐसा हैं कि वस्तुकी अवस्था तीन है । १–प्रवर्त्ती, २ सकल्प, ३ परिणती यह तीन भेद हे इनमें जो योग व्यापार संकल्प सो चेतनाके योग सहित मनके विकल्प इसको श्री जिन भद्र गणिक्षमा श्रवण प्रवृत्ति धर्म कहते हें तथा संकल्प धर्मको उंदेक मिश्रपणा कर के द्रव्यनिक्षेपा कहते हे और मात्र एक परिणीत धर्मको भाव निक्षेपा कहा है और श्री सिद्धसैनादिवाकरने विकल्प जो चेतना हे उसको भावनय गवेष्या अर्थात् जाना है और प्रवृत्तिकी हद व्यवहार नय है और संकल्प सो ऋजु सूत्रनय है तथा एक वचन पर्याय रूप परिणती सो शब्दनय है और संकल्प वचन पर्यायरूप प्रणती सो समभिरूढनय है और वचन पर्याय अर्थ पर्याय रूप संपूर्ण सो एवं भूतनय हैं इसलिये शब्दादिक ३ नय सो विशुद्ध नय हे और भाव धर्ममें मुख्य भावतामे उत्तर उत्तर सूक्ष्मताका ग्राहक हैं ॥ अब सात नय करके जीवका स्वरूप कहते हैं नैगमनयसे गुण पर्यायवंत शरीर सहित सो जीव इस कहनेसे इसमे पुद्गल और धर्मास्तिकायादिकके सर्व जीवमें गीण लिये जब संग्रह नय वाला कहने लगा कि जो असंख्यात प्रदेशी है सो जीव है तो इसने एक आकाश प्रदेश को छोड़कर बाकी सबको लिया जब व्यवहार नयवाला बोला कि जो विषय आदिक अथवा सुखादिककी इच्छा करे काम आदिकको चितारे सो जीव

इसने धर्मास्तिकायादि और शरीरसे अलग जो पुद्गल है उनको तो छोड़ा परंतु पांच इन्द्री और मन तथा लेस्या यह भी पुद्गल हैं इनको इसने जीवमे गिना क्योंकि विषयादिक तो इन्द्री लेती है जीव तो अपने ज्ञानादिक गुणका भोक्ता है और पुद्गलसे न्यारा है परंतु व्यवहार नय वालेने तो इतना पुद्गल इसके साथमें लिया तब ऋजु सूत्रवाला बोला कि जो उपयोगवंत हो सो जीव है. इस नय वालेने इंद्रियादिक सब पुद्गलको छोड़ा परंतु अज्ञान तथा ज्ञानका भेद नहीं किया तब शब्द नय वाला बोला कि नाम जीव, स्थापना जीव, द्रव्य जीव और भाव जीव, तो इस जगह गुणी निगुर्णीका भेद न हुवा उस समय सम्भिरूढ नय वाला बोला कि जो ज्ञानादिक गुणवन्त सो जीव तो इस जगह मति ज्ञान, श्रुति ज्ञानादिक साधक अवस्थाका गुण सो सर्व जीव स्वरूपमें लिया एवं भूतनय बोला कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य शुद्धसत्तावाला सो जीव इसने एक सिद्ध अवस्थामें जो गुण हों उसी गुणको अंगीकार किया यह सात नयसे जीवका स्वरूप कहा । अब नयगमके तीन भेद । १ आरोप, २ संकल्प, ३ अंश, अथवा १ अतीत, २ अनागत, ३ वर्तमान इन तीन भेदोंको द्रव्यार्थिके दस भेदसे गुणा करे तब ३० भेद हो जाते है. संग्रह नयके दो भेद है– १ सामान्य २ विशेष, इनके भी दश द्रव्यार्थिकसे गुणा करनेसे २० भेद होते हैं। व्यवहारनयके भी दो भेद हैं १ सामान्य, २ विशेष अथवा १ शुद्धव्यवहार २ अशुद्धव्यवहार. इन दो भेदों को दश द्रव्यार्थिक नयसे गुणा करनेसे २० भेद होते है इन तीनों नयको मिलानेसे ७० भेद हुवे अब ऋजुसूत्रनयके दो भेद हैं– १ सूक्ष्म २ वादर इनको पर्यायार्थिक के छः भेदसे गुणा करनेसे १२ होते हैं। शब्द सम्भिरूढ और एवं भूतनयके भेद नहीं हैं इन को पर्यायार्थिकके ६ भेदोसे गुणा करें तो १८ भेद हो जाते हैं यह सर्व मिलकर सातों नयके सौभेद हुवे इन (१००) भेदों में अस्ति नास्ति रूप सप्त भंगीके उतारने से ७०० भेद नयके हो जाते है परन्तु इस जगह ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसेनहीं लिखे किञ्चित् १०० के नाम मात्र दिखाया है कि इस तरहसे १००. भेद होते है अब सप्त भंगी जीव ये उतारते है। (१) स्यात अस्ति जीव तो जीव स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव करके अस्ति है परन्तु परद्रव्य अजीवादिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव करके जीव में स्यात नास्ति पना है यह दूसरा भांगा हुवा ३ अब जिस समय में जीव में जीवपन तो अस्ति है उसी समय अजीवका अजीवपन उस में नास्ति है इस रीति से अस्ति नास्ति भांगा हुवा। (४) स्यात अवक्तव्यजीव तो जो जीवको अस्ति कहते है तो उस समय नास्ति मृषावाद लगता है और जो नास्ति कहै तो अस्तिका मृषावाद आवे इस लिये स्यात अवक्तव्य भांगा है (५) अब स्यात अस्ति अवक्तव्य जीव और (६) स्यात नास्ति [illegible]व्य जीव यह दो भांगे कहते हैं कि जीव में अस्ति रूप ऐसे कई गुण है कि [illegible] वनसे कहे न जांय ऐसे ही जीव में नास्ति रूप कई गुण है कि जो वचन से कहे [illegible] जायें इस रीतिसे स्यात अस्ति अवक्तव्य जीव और स्यात नास्ति अवक्तव्य जीव इस रीतिसे जीव का स्वरूप कहा। अब (७) स्यात अस्ति नास्ति युगपद अवक्तव्य जीव, तो इस जगह भी एक समय में अनेक गुण अस्ति अनेक गुण नास्ति हैं परन्तु वचन-

से न कहे जांय इस रीतिसे स्यात अस्ति नास्ति युग पद अवक्तव्य जीवका स्वरूप कहा । इस जगह यह ५७ बोलसे सामान्य करके जीवका स्वरूप कहा और विशेष करके तो देवके ऊपर जो ५७ बोल उतारे थे उन में युक्ति हेतु दृष्टान्त करके कह आये हैं सो समझना । जिस रीतिसे हमने जीवका या देवका स्वरूप उतारा है इसी रीति पांच द्रव्य अथवा ९ तत्व अथवा कारण कार्य्य सब में उतारकर भव्य जीव अपनी आत्मा में विचार करे और ज्ञेय अर्थात् इस स्याद्वादसेलीको जानकर हेय अर्थात् छोडनेके योग्य हो उसे छोडे और उपादेय अर्थात् ग्रहण करने के योग्य हो उसको ग्रहण करे इसी रीति से सर्वज्ञ श्री वीतराग का स्याद्वाद उपदेश किञ्चित् मात्र मैंने कहा अब कारण, कार्य, साध्य, साधन संक्षेपसे कहते है सो कारणके दो भेद हैं एक तो उपादानकारण दूसरा निमित्तकारण उपादान कारण उस को कहते हैं जो कारण कार्य को उत्पन्न करे और अपने स्वरूपसे बना रहे और कारण के नष्ट होनेसे व कार्य्य नष्ट हो जाय और निमित्त कारण उस को कहते हैं कि जो कारण कार्य्यसे भिन्न हो और कार्य को पैदा करे और कारण के नष्ट होनेसे कार्य नष्ट न हो उसका नाम निमित्त कारण है और शास्त्रों में कारण के चार भेद भी किये हैं–१ समवाय, २ असमवाय, ३ निमित्त, ४ अपेक्षा अब साध्य नाम तो कार्य का है और साधन नाम जिन २ कारणोंसे हो अब यहां भव्य जीवको मोक्ष रूपी कार्य्य अर्थात् जन्म मरणका मिटना यह तो साध्य है तथा कार्य है समगत आदि देव गुरू शुद्ध परुपक अथवा द्रव्य भाव रूपक्रिया यह सब साधन है अब जो भव्य जीव समगत द्रष्टी वा देश वृत्ति के जो साधन हैं सो कहते हैं:– जिसके अनन्तानुबन्धी क्रोधादि क्षय होनेसे अथवा उपसम होनेसे समगत की प्राप्ति होती है उसको समगत दृष्टि कहते है और आठ प्रकृति (चार तो अनन्तानुबन्धी और चार अप्रत्याख्यानी) का क्षय वा उपसम होनेसे देश वृत्ति की प्राप्ति होती है सो देश वृत्ति का किञ्चित् स्वरूपआगे लिखेंगे और बारह प्रकृतिका क्षयहोना अथवा उपसम होना एकतो अनन्तानु बन्धी चौकड़ी दूसरी अप्रत्याख्यातिकी चौकड़ी तीसरी प्रत्याख्यातिकी चौकड़ी । यह बारह प्रकृतिका जिसके क्षय वा उपसम है उसको सर्व विवृतिकी प्राप्ति होती है इसकाभी स्वरूप किञ्चित् आगे कहेंगे अब इन तीन भेदोंके जो भव्यजीव हैं उनको जो दिन भरमें कृत करनेका भगवत्‌ने स्वरूप कहा है सो कहते हैं परंतु इस जगह प्रथम समगत दृष्टिकी विधि कहनेके अनुक्रमण होनेसे नैमोंकाचितारना प्रतिक्रमण पच्चखानादि करनेकी रीति देसविरति श्रावकके वर्णनमें कहेंगे परन्तु इस जगह प्रथम समगत दृष्टीकी अपेक्षासे प्रथम देवकी भक्ति वा मन्दिरकी विधि क्रिया अनुष्ठानको कहते हैं कि श्रावकके मन्दिरमें किस विधिसे जाना और क्या क्या कृत करना सो कहते हैं:–कि जिस समय श्रावक प्रातःकालमे ऐसी इच्छाकरे कि श्रीवीतराग देवका दर्शन करूं अथवा मन्दिरमे चलके पूजनादि करूं उस समय जब ऐसा विचार होय तब कोई आचार्य्य कहते है कि उस समय "निस्सही" करके घरसे चले और कोई आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि मन्दिरके पगोतियेपर पहुँचे उस समय "निस्सही" कहे क्योंकि गृहस्थी घरपर जो 'निस्सही' कहेगा तो रस्तेमें कोई उसका ज़रूरी काम आलगा तो उसकाममें चले जानेसे 'निस्सही' भंग होगी अथवा 'निस्सही' के डरसे जो मन्दिरमें

जायगा तो अच्छी तरहासे विधिपूर्वक दर्शन कर सकेगा क्योंकि उस जरूरी कामके वास्ते चित्तकी चंचलतारहेगी इस वास्ते मन्दरके पगोतीया पर निस्सही कहना चाहिये; अब जो कोई शङ्काकरे कि कितनी "निस्सही" कहनी चाहिये, तो हम कहते है कि एक निस्सही कहनी चाहिये जो कोई कहे कि शास्त्रमें तो तीन निस्सही कही है तो हम कहते हैं कि तीन निस्सही कही है परन्तु उन तीन निस्सहीका जुदा २ प्रयोजन है सो दिखाते है कि देखो जो पूजन आदिक न करे केवल चैत्यवन्दनही करताहै सो पहले उसके वास्ते तीन निस्सही कहने की विधि कहते है कि प्रथम निस्सही मन्दिरजीके पगोतीयापर कहनी चाहिये उस निस्सहीके कहनेसे अपना जो संसारी कृत कि जिसमें कर्मबंधका हेतु है और सावद्य व्योपार संसार बंधनेका हेतु उस सर्वका निषेध किया परन्तु मन्दिरजी संबन्धी जो कार्य है सो सर्व कहना बाकी रहगया इस लिये यह प्रथम निस्सहीका प्रयोजन हुवा; अब श्रावक जो है सो मन्दरके भीतर जायकर सर्व मन्दर की निगाहकरे और टूटा फूटा इत्यादिक देखे और जो आदमीको कहके करानाहो सो तो उस आदमीसे करावे अथवा जिसके सुपुर्द वह मन्दिरजीहो उससे कहे कि इस चीजकी संभाल करो नहीं तो असातना होती है, यहां जो कोई ऐसी शंका करे कि दर्शन करनेको तो हरेक कोई जाता है क्या सब ऐसाकाम करें? तो हम कहते हैं कि सर्व भव्य जीवोंको करना चाहिये क्यों कि मन्दिरजीकी असातना होनेसे श्रीसंघमें हानि होती है इस वास्ते सर्व भव्य जीवोंको मन्दिर जीकी सार समार अर्थात् जिससे असातना होय उस असातना टालनेके वास्ते मन, वचन काय करके भव्य जीवोंको करनी चाहिये इत्यादि काम करके बाद फिर तीन प्रदक्षिणा देकर और भगवत्के सन्मुख होके दूसरी निस्सही कहे, इस दूसरी निस्सही से जो मन्दिरजीके काम मध्ये कहना सोभी निषेध होचुका फिर वह श्रावक चावलहाथमें लेकर मंत्रसहित चावलोंको भगवतके आगे चढ़ावे सो मंत्रतो हम पूजाकी विधिमें कहेंगे अब जो चावल आदि चढ़ानेकी विधिकहते हैं कि पेस्तर तो ज्ञान, दर्शन चरित्र की तीन ढिगली करे और मनमे ऐसाविचारे कि मेरेज्ञान, दर्शन चरित्र प्रगटे फेर चावलोंसे सातियाका आकार बनावे उस समय मनमें यह विचारना चाहिये कि चार गती जो हैं उन से मैं निकलूं फिर सिद्ध सलाका आकार बनावे उस समयमें ऐसा विचार करे कि मेरेको सिद्धसलाका प्राप्तहोय, फिर फलादि चढ़ाना होयतो मंत्रबोलकर चढ़ावे सो मंत्र पूजाकी विधिमे लिखेंगे इस रीतिसे करके फिर तीसरी निस्सही कहे उससे फलादि सचित चीजो का निषेध करके भगवत् का चैत्य वन्दन आदिक करे उस चैत्य वन्दन करती दफे अपने चित्त में भगवत्के गुण आदिक विचारे अथवा उन भगवत्के गुणों को अपने गुणों मे एकता करे यह चैत्य वन्दन की विधि कही अब आचार दिनकर ग्रंथ अनुसारे विधि लिखते हैं:-प्रथम कही निस्सही उस रीतिसे सर्व काम देखकर और स्नान आदि करे उसकी विधि प्रथमहीसे कहते हैं:- श्रावक स्नानका वस्त्र पहन कर उष्ण पानीसे स्नान करे सो स्नान करने की विधिका श्लोक कहते हैं:- "स्नानं पूर्व मुखी भूयः प्रतीच्यां दंत धावनं। उदीच्यां श्वेत वस्त्राणि, पूजा पूर्वोत्तरा मुखी"॥ १॥ अर्थ-पूर्व मुख करके स्नान करना चाहिये और पश्चिम दिशा मुख करके दंत धावन करना चाहिये और उत्तर दिशि सन्मुख होकरके नवीन वस्त्र पहिने और श्रीभगवत्

की पूजा पूर्व और उत्तर मुख करके करे और उत्तर मुख हो करके " एक पट्टा" यानी एक पाटका वस्त्र उसका उत्तरासण करके और उसी वस्त्र के आठतह करके मुख कोष ऐसा बांधे कि नाकका श्वास भी जिन प्रतिमापर न पड़े अब प्रथम पूजा करनेवाला सात चीजो की शुद्धि करे ॥ श्लोक ॥ मनोवाक् कायवस्त्रोर्व्वी पूजो पकरणस्थितौ । शुद्धिःसप्तविधाकार्य्या श्रीजिनेन्द्रार्च्चनक्षणे २ ॥ अर्थ–प्रथम मनशुद्धि सो घरका वा दुकानादि व्योपार अथवा धन स्त्री आदिक का चिंतवन रूप न करना उसका नाम मनशुद्धि है, दूसरा सावद्य वचन न बोले उसका नाम वचन शुद्धि है, तीसरी शरीर से सावद्य योग्य व्योपार न करे तथा हस्तदृष्टि भ्रूसंज्ञा इन से भी सावद्य व्योपारका इशारा न करे और पूर्व उक्तविधिसे स्नानकरे इसका नाम काय शुद्धि है अब चौथी वस्त्र शुद्धि दो श्लोकों से कहते हैः– ॥ श्लोक ॥ " कटिस्पृष्टंतुयद्वस्त्रं पुरीषंयेनकारितं । मूत्रंचमैथुनंचापि तद्वस्त्रंपरिवर्ज्जयेत् ॥१॥ खंडितेसंधितेछिन्ने रक्तेरौद्रेचवाससी । दानपूजादिकंकर्म कृतंतन्निष्फलंभवेत् ॥ २ ॥ अर्थ–कटाहुवा, मल, मूत्र, मैथुन इत्यादिक जिसवस्त्रसे किया हो उस वस्त्रको छोड़ देना चाहिये और खंडित, फटा हुवा, साँदा हुवा छेद वाला लाल हरा, पीला, काला, वस्त्र इन वस्त्रों करके दान पूजा आदिक शुभ कर्म करनेसे निष्फल होते हैं इस वास्ते नवीन स्वेत वस्त्र पहिनना चाहिये यह वस्त्र शुद्धि हुई पांचमी सलेस्म आदि अशुचि पुद्गल रहित भूमि करनी उसका नाम भूमि शुद्धि है ॥ पुजाना ॥ उपकरण लोटा कलस थाल प्रमुख घरके कार्यमें नहीं लाना और उनको मांज धोयकर साफ करना यह छठी पूजा उपकरण शुद्धि हुई ॥ सातवीं अस्थि आदिक उस जगह न रहनी चाहिये यह सात प्रकारकी शुद्धि हुई ॥ अब पूर्व उक्त विधि स्नान करके चोटी बांध उत्तरासन कर मुखको बांधकर भगवत्‌की पूजन करे तहां प्रथम जल, फल, फूल आदिक अष्ट द्रव्योंको निष्पाप करे सो इनके निष्पाप करनेका प्रथमजलका मंत्र कहते हैः–मंत्र ॥ ॐ आपो उपकाया एकेन्द्रीया जीवा निरवद्या ॥ अर्हत्पूजायां निर्व्यथा संतुनिष्पापाः संतुसद्गतयः संतु, नमोस्तुसंघट्टनहिंसापापमर्हदर्च्चने ॥ इस मंत्रसे पाणी मंत्र कर निष्पाप करना चाहिये, अब पुष्प, फल पत्र मंत्रः–"ॐ वनस्पतयो वनस्पतिकाया एकेन्द्रीयाजीवा निरवद्या अर्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतुर्निष्पापाः संतु, सद्गतयः संतु, नमोस्तु संघटनहिंसा पाप मर्हदर्च्चन" ॥ इस मंत्रसे पुष्प, फल, पत्र मंत्रके निष्पापकीजे । अथ धूप, चन्दन, अग्नि, मंत्रः–ॐ अग्रयो अग्निकाया एकेंद्रीया जीवा निरवद्या । अर्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निष्पापाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु । संघट्टनहिंसा पापमर्हदर्च्चने । इति अग्नि मंत्रः ॥ इस मंत्र करे अग्नि निष्पाप कीजे जो मंत्र हम लिख आये हैं उनको तीन २ वार पढ़कर वासक्षेप करे सबचीजको निष्पाप करनेके बाद चंदन हाथमें लेकर दूसरे हाथमें पुष्प और अक्षत लेकर इस मंत्रको पढ़े सो लिखतेहैंः–"ॐ त्रसरुपोहं संसारीजीवः सुवासनः । सुमेध एक चितो निर्वद्यार्हदर्च्चने निर्व्य थो भूयासं निरुपद्रवो भूयासं ॥ मत्संश्रिता, अन्येप संसारी जीवा निरवद्यार्हदर्च्चने निर्व्यथा भूयासुः निष्पापाः भूयासुः निरुपद्रवा भूयसुः" ॥ इस मंत्र को तीन वार गुण कर पुष्प को अपने मस्तक पर नाख कर तिलक कीजे । अब कुल सामग्री जो शुद्ध की हुई है उस को लेकर मन्दिर में घुसे यहां दूसरी निस्सही कहे अब भगवत् के पूजन के सिवाय सर्व काम का निषेध किया और फिर गन्ध

अक्षत और पुष्प हाथ में लेकर इस मंत्र को पढ़े सो मंत्र लिखते हैं:—" ॐ पृथिव्यवतेजो वायु वनस्पाति त्रस काया एक द्वित्रि चतुः पंचेन्द्रीयास्तिर्यङ् मनुष्य नारक देव गति गता श्चतुर्दशरज्वात्मक लोकाकाश निवासन इह जिनार्च्चे ने कृतानुमोदनाः संतुनिष्पापा संतु निरपायाः संतु सुखिनः संतु प्राप्तकामा संतु मुक्ताः संतु बोधमाप्नुवंतु " ॥ इस मंत्र को ३ वार पढ़कर चारों दिशा मे पुष्प गंध अक्षतादि उछा ले फिर दो श्लोक पढ़े:— शिव मस्तु सर्व जगतः परिहित निरता भवंतु भूत गणाः दोषा प्रायांतु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥ सर्वोपि संतु सुखिनः सर्व्वे संतु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत् ॥ २ ॥ यह दो श्लोक कह कर हाथ में जल ले और फिर यह मंत्र पढ़ना:—अथ मंत्र—" ॐ भूत धात्रि पवित्रास्तु अधिवासितास्तु । सु प्रोषितास्तु " ॥ इस मंत्र से पानी मंत्र कर भूमि को छांटना पीछे पूजा का पट बाजोट धोइकरके साथियों करे, मंत्र से बाजोट मंत्री जे । मंत्र—" ॐ स्थिराय शास्वताय निश्चलाय पीठाय नमः " । इस मंत्र से बास क्षेप मंत्र बाजोट पर रक्खना, और बाजोट पाणी से छांटि हुई जगह पर रक्खी जे, और उस बाजोट पर परवाल का थाल रक्खी जे । जो कदाचित् देहरादिक के विषय स्थिर प्रतिमा हुवे, और हट नहीं सके तो उस जगह पानी से छांटना, क्षेप मंत्र कर प्रतिमा के सामने अर्थात् मुँह आगे रखना, बाजोट थाल का कुछ काम नहीं यदि स्थिर प्रातिमा हो तो पूर्वोक्त रीति से बाजोट, थाल, रक्ख करके प्रतिमाजी लेकर थाल में रक्खी जे.पीछे अंजली में जल पुष्प लेकर मंत्र गुणी जेः ॥ अथ मंत्र ॥ " ॐ नमोऽर्हभ्यः सिद्धेभ्य, स्तीर्णेभ्य, स्तारकेभ्यो, बुद्धेभ्यो, बोधकेभ्यः, सर्व जंतु हितेभ्यः ॥ इह कल्पना बिंबे भगवतोऽर्हतः, सुप्रतिष्ठिताः संतु "॥ इस मंत्र को मौनपणे कहे भगवत् के चरण कमल ऊपर पुष्प रक्खी जे । फिर हाथ में जल पुष्प लेकर इस मंत्र को गुणी जे, यह पूजा पूर्वक मंत्र करी जे ॥ अथमंत्र " ॐ स्वागता मस्तु स्वस्थिर तिरस्तु, सु प्रतिष्ठास्तु " ॥ इस मंत्रको गुणी जे, फिर जल पुष्प ले प्रभु के चरणों मे रखी जे । फिर पुष्प और पानी हाथ में ले इस मंत्रको पढ़े—अथ मंत्रः— " ॐ अर्घ मस्तु सर्वोप चारैः पूजास्तु " ॥ इस मंत्र को पढ़कर कुसुमांजली प्रतिमा ऊपर ढोली जे, इस तरह पूजा की पीठिका हुई । अब अष्ट प्रकारी पूजा की विधि लिखते हे प्रथम जल पूजा ॥ तहां कुसुमांजली ढोल्यां पीछे निः पाप पाणी का कलस हाथ में ले यह मंत्र पढीजे । अथ मंत्र— " ॐऽर्हतं जीवनं, तर्प्पणं हृद्यं । प्राणदं मल नाशनं जलं जिनार्च्चने त्रैव जायते सुख हेतवे ॥ १ ॥ इस मंत्र को गुण कर प्रतिमाजी को पखाल करावे पीछे अंगलूहणे से लूह करके चन्दन, केसर, कर्पूर, कस्तूरी प्रमुखथकी कटोरी हाथ में लेकर यह मंत्र कही जे ॥ मंत्र—ॐ अर्हं लं इदं गन्धं महा मोहबृंहणं प्रीणनं सदा जिनार्च्चनेच । सत्कर्म्म संसिध्यै जायते मम " ॥ १ ॥ इस मंत्र को कह प्रतिमा जी के नव अंग पर टीकी लगावे और चन्दन केसरादिक से विलेपन करे, वो नव अंग कहे ॥ श्लोक ॥ " अंहि १ जानु २ करां ३ शेषु ४ मूर्ध्नि ५ पूजा यथाक्रमं । भालेर्द्ध कंठे ७ हृदं भोजे ८ उदरे ९ तिलक धारणं " ॥ अर्थ—प्रथम पग पर १ पीछे गोडे पर २ हाथपर ३ स्कंधेपर ४ मस्तकपर ५ इस अनुक्रम से पूजा कीजे । लिलाट ६ गले ७ हृदये ८ उदरे ९ तिलक कीजे ॥ इस अनुक्रम से नवांग पूजा

कीजे यह दूसरी चंदन पूजा कही फिर पुष्प पत्रादिक हाथमें ले कर यह मंत्र कहकर फूल चढ़ावे इस पुष्प पूजा करने के वाद फिर अक्षत हाथमें ले यह मंत्रकहे ॥ मंत्र–ॐ अर्हतं प्रीणनं निर्म्मलं वल्यं, मांगल्य सर्व सिद्धिदं । जीवनं कार्य संसिद्धौ भूयान्मे जिन पूजने ॥ १ ॥ यहमंत्र गुणकर अक्षत जिन प्रतिमा आगे चढ़ाइये यह चौथी अक्षत पूजा कही ॥ ४ ॥ इसके वाद नैवेद्य भोजन थालमें रखकर यह मंत्रकहे ॥ मंत्र–"ॐअर्हतं नानाद्धरस संपूर्ण नैवेद्यं सर्वमुत्तमं जिनाग्रेढौकितं सर्वसंपदा मम जायतां ॥ १ ॥ यह मंत्र कह कर नैवेद्य थाल जिन प्रतिमा आगे रक्खे यह पंचमी नैवेद्य पूजा कही ॥ ५ ॥ इसके पीछे सुपारी जायफलादि वर्तमान कालकी ऋतुके फल आम नीबू आदिक हाथमें लेकर यह मंत्र कहे । (मंत्र) ॐ अर्ह इं जन्मफलं स्वर्गफलं पुण्यफलं मोक्षफलं ॥ दद्याज्जिनार्च्चने चैव जिनवदाग्रहसंस्थितं ॥ १ ॥ यह मंत्र पढकर जिन प्रतिमा आगे फल रक्खे यह छट्ठी फल पूजा कही ॥ ६ ॥ इस पीछे धूप हाथमें लेकर यह मंत्र कहे ॥ मंत्र । ॐ ह्रीं रं श्रीखंडागरु कस्तूरीद्रुमनिर्यासंभवः प्रीणनः सर्वदेवानां धूपोस्तु जिनपूजने ॥ १ ॥ यह मंत्र कह धूप अग्नि पर रक्ख कर जिन । प्रतिमा आगे धूंप रक्खे यह सातवीं धूप पूजाकही ॥ ७ ॥ तिसकेवाद दीवा जोकर हाथ में पूजा लेकर यह मंत्र कहे । (मंत्र) ॐ अर्ह रं पंचज्ञानमहाजोतिर्म्मयायध्वान्तघातिने ॥ द्योतनाय प्रदीप्तायदीपो भूयात्सदार्हते ॥ १ ॥ यह मंत्र कहे कूल मंत्रकर दीवेमें डालकर प्रतिमाके जीमणे हाथकी तरफ रक्खे यह आठमीं दीप पूजा कही ॥ ८ ॥ इसके बाद कुसमांजली लेकर यह मंत्र गुणेः–ॐ अर्ह भगवद्भ्यो अर्हद्भ्यो जल गंध पुष्पाक्षत फल धूप दीपैः संप्रदान मस्तु ॐ पुन्याहं पुन्याहं प्रियंतां प्रियन्तां भगवंतो अर्हतस्त्रिलोकस्थिताः नामाकृति द्रव्य भाव युत स्वाहा ॥ यह मंत्र गुणकर कुसुमांजली प्रतिमाके चरणमें डाले. उसकी पीछे बास क्षेप लेकर यह मंत्र पढ़े ॥ मंत्र ॥ ॐ सूर्य्यसोमांगारक बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्वर, राहु, केतु मुखा, ग्रहाः ॥ इह जिनपदाग्रह समायांतु पूजां प्रतीछंतु" ॥ इस मंत्रसे वास क्षेप मंत्र कर जिन प्रतिमा आगे नवग्रहका पाटा होवे तो उसपर वास क्षेपकीजे जो नवग्रहका पाटा न हो तो जिस वाजोट पर भगवत्को स्नान कराया है उस वाजोट पर वास क्षेपकीजे फिर उस पर जल चढ़ाइये और अष्ट द्रव्यसे पूजन करिये. ऐसा बोलता जावे कि 'गन्धं अस्तु' 'अस्तु' शब्द सर्व द्रव्योंके पीछे लगाना चाहिये इस रीतिसे अष्ट द्रव्यसे पूजनेकिये के बाद कुसुमांजली हाथमें लेकर इसमंत्र को गुणैः–ॐ सूर्य सोमांगारक बुध, गुरू शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु मुखाग्रहाः सुपूजिता संतुः सानुग्रहाः संतुतुष्टिदाः संतुपुष्टिदाः संतुमांगल्यदाः संतुमहोत्सवदाः संतु ॥ यह मंत्र कह कर ग्रह पट्टा पर कुसुमांजली छोड़े पीछे वास क्षेप हाथ में ले कर इस मंत्र को पढ़ेः– ॐ इन्द्राग्नि यम नैर्ऋत्य वरुण वायु, कुवेर ईशान, नाग ब्रह्मणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः ईहे जिन पादाग्रे समागच्छंतु पूजां प्रति च्छंतु ॥ इस मंत्रसे वास क्षेप मंत्र स्नान पाटा पर वास क्षेप कीजे पीछे उस पर जलकी धार दीजे ' आचमनमस्तु ' ऐसा सर्व द्रव्यों में ' मस्तु ' शब्द लगाना और अष्ट द्रव्यसे पूजन करना फिर हाथ में कुसुमांजलि लेकर इस मंत्र को गुणेः–ॐ इन्द्राग्नि यमनैर्ऋति वरुण वायु कुवेर ईशान नाग ब्रह्मणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥ इस

मंत्रको कहकर पाटा ऊपर कुसुमांजली छोडे फिर कुसुमांजली हाथमें लेकर इस मंत्रको कहे मंत्र–ॐ अस्मत्पूर्वजागोत्रसंभवाः देवगतिगताः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाःसंतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु इस मंत्रको कहकर जिन प्रतिमाके आगे कुसुमांजली डाले फिर कुसुमांजली हाथमें लेकर इस मंत्रको कहेः–ॐ अर्हं अर्हद्भक्त्याष्टनवत्युत्तरशतदेवजातयः सदेव्यः पूजां प्रतीच्छंतु सुपूजिताः संतु ॥ इस मंत्रको कहकर जिन प्रतिमाके आगे कुसुमांजली छोडे फिर पुष्प थाली हाथमें लेकर मौन पणे मंत्रका स्मरण करे मंत्र ॐअर्हनमो अरिहंताणं ॐ अर्हनमो सयं संबुद्धाणं ॐ अर्हनमो पारगयाणं ॥ इस मंत्रको १०८ एकसौ आठ वार अथवा ५४ वार अथवा २७ वार २१ वार मनमें जप कर जिन प्रतिमा के चरण में फूल चढावे इस मंत्रकी महिमा ॥ शास्त्रों में है इस लिये यहां नहीं लिखते। जिनेश्वरकी अष्ट प्रकारी पूजाकरे बाद जो किसी को स्थिरता नहीं हो तो यह लोक पालादिककी पूजा न करे और भगवत् की अष्ट द्रव्यकी पूजन किये बाद तीसरी 'निस्सही' कहकर चैत्य वन्दन करके चला जाय फिर जो समस्त लोकपाल आदिक की पूजा करे वो नैवेद्यका थाल वहां चढाय कर जललेकर इस मंत्रको बोले।(मंत्र)ॐ सर्वे गणेश क्षेत्रपालाद्याः सर्वे ग्रहाः सदिक्पालाः सर्वे अस्मत्पूर्वजोद्भवादेवाः सर्वे अष्टनवत्युत्तरशतदेव जातयःसदेव्योऽर्हद्भक्ता अनेन नैवेद्येन संतर्पितास्संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाःसंतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु। यह मंत्र कहकर जल थालपर डाले इस जगह जिन अर्चन विधिहुई फिर मंगलके अर्थ कुसुमांजली हाथमें लेकर यह काव्य कहेः–यो जन्मकाले पुरुषोत्तमस्य सुमेरुशृंगे कृतमज्जनश्च ॥ देवैः प्रदत्तः कुसुमांजलिस्सददातु सर्वाणि समीहितानि ॥१॥ यह काव्य कहकर कुसुमांजलि डालेफिर कुसुमांजलि हाथमें लेकर यह काव्य कहे। राज्याभिषेकसमये त्रिदशाधिपेन छत्रध्वजांकयुतयोः पदयोर्जिनस्य। क्षिप्तोतिभक्तिभरतः कुसुमांजलिर्यः सप्रीणयत्वनुदिनं सुधियां मनांसि ॥२॥ यह काव्य कही तीजी कुसुमांजली हाथमे लेकर यह काव्य कहेः–देवेन्द्रैः कृतकेवले जिनपतौ सानंदभक्त्यागतैः संदेहव्यवरोपणक्षमशुभव्याख्यानबुद्ध्याशयैः। आमोदान्वितपरिजातकुसुमैर्यः स्वामिपादाग्रतो मुक्तः सम्प्रतनोतु चिन्मयहृदां भद्राणि पुष्पांजलिः ॥ ३ ॥ यह काव्य कहकर तीजी कुसुमांजली छोडे जिसके बाद लूण की पोटली हाथमें ले और यह दो (२) श्लोक कहता दोय वार लूण उतारे ॥ काव्य। लावण्यपुण्यांगभृतोर्हतोयस्तद्दृष्टिभावं महसैवधत्ते ॥ सविश्वभर्तुर्लुवणावतारो गर्भावतारं सुधियां विहंतु ॥ १ ॥ लावण्यैकनिधेर्विश्वभर्तुस्तद्वृद्धिहेतुकृत् लवणस्तारणः कुर्यात् भवसागरतारणं ॥ २ ॥ यह दो काव्य कहकर लूण उतारे उसके बाद लूण मिश्रित पाणि करी यह वृत कहेता मंगलीक भ्रण पाणी उतारे ॥ श्लोक सक्षारतां सदासक्तां निहंतुमिव सोद्यतः। लवणाद्भिर्लवणांबुमिषात्से सेवते पदौ ॥ १ ॥ यह श्लोक कहकर लूण पाणी उतारे पीछे एकलो पाणी कलस हाथमे लेकर यह काव्य कहे ॥ भुवनजनपवित्रताप्रमोदप्रणयनजीवनकारणं गरीयः। जलं विकलमस्तु तीर्थनाथक्रमसंस्पर्शि सुखावहं जनानां ॥ १ ॥ यह काव्य कहकर पाणी उतार चार दिशीढोलिये जिसके पीछे सात वत्ती दीपेकी आरती उजवाले यह दोय वृत्त कहते हुवे सात वार आरती उतारे। (श्लोक) सप्तभीतिविघाताहं सप्तव्यसननाशकृत ॥ यत्सप्त

नरकद्वारं संसारिरतुलांगतं ॥ १ ॥ काव्यं । सप्तांगराज्यफलदानकृत् प्रमोदं सत्सप्त सत्त्वविदनंतकृतं प्रबोधं । सच्छक्रहस्तधृतसंगतसप्तद्वीपमारात्रिकं भवतु सप्तमसद्गुणाय ॥ २ ॥ यह दो काव्य कह कर आरती उतार कर मंगल प्रदीप नीचे रखकर चार वृत्ति कहे ॥ श्लोक ॥ विश्वत्रयभवैर्जीवैः सदेवासुरमानवैः ॥ चिन्मंगलं श्रीजिनेंद्रात्प्रार्थनीयं दिनेदिने ॥१॥काव्यं॥ यन्मंगलं भगवतः प्रथमार्हतः श्रीसंयोजनैः प्रतिवभूव विवाहकाले ॥ सर्वसुरासुर वधूमुखगीयमानं सर्वर्षिभिश्च सुमनोभिरुदीर्यमाणं ॥ २ ॥ दास्यं गतेषु सकलेषु सुरासुरेषु राज्ये ऽर्हतः प्रथमसृष्टिकृतो यदासीत् । संमंगलं मिथुनपाणिगतीर्थवारिपादाभिषेकविधिनात्युपचीयमानं ॥ ३ ॥ यद्विश्वाधिपतिः समस्ततनुभृत्संसारनिस्तारणे तीर्थे पुष्टिमुपेयुषि प्रतिदिनं वृद्धिंगते मंगलम् ॥ तत्संप्रत्युपनीतपूजनविधौ विश्वात्मना भर्हतां भूयान्मंगलमक्षयंच जगति स्वस्त्यस्तु संघायच ॥ ४ ॥ यहचार वृत्ति कहकर आरती को मंगल प्रदीप उल्लासकरे। इस जगह अब तीसरी निस्सही कहे फिर चैत्यवंदन करे॥ यो हम अगाडी अल्प पाप और बहु निर्ज्जरा पर कह आयेथे सोअब इस जगह उसका निर्णय करते हैं:– कितनेक भोलेजीव वाह्यक्रिया में जो जल पुष्प अग्निका किञ्चित् आरंभ देखकर अन्तरंग उपयोग शून्य गुरु कुल वासके अभावसे स्याद्वादसेलीके अजान जल पुष्पादिक जीवोंकी हिंसा समझकर अल्प पाप और बहुनिर्ज्जरा कहते हैं उनके अज्ञानको दूर करनेके वास्ते शास्त्रके प्रमाण और युक्तिसे एकान्तिक निर्जरा होती है श्री जिन राजकी द्रव्य पूजनेमें पाप शब्द कहने वालोंका वचन अयुक्त है इसीवास्ते श्री आवश्यक जी वृहद्वृत्तिके द्वितियखण्ड का पाठ बताते हैं सो पाठ यह है:–जहा नव नगरादि संनिवेसे केविय भूत जलाभावतोत् तएहाए परिगताततदपनोदणकूवं खणंतिते संचजइवित एहाइआवाड्वांति मट्टि अकद्दमादी द्दियमई लिझ्झंति तहावितदुब्भवेणं चेवपाण एणंते सिंतेत एहादि आसो यमलो पुव्वगोय फिट्टति सेसकालंच तेतदन्नेय लोग्य सहभागिणो भवंति एवंदयत्थ वेजइविअसंजमो तहावित्त ओचेतसा परिणामशुद्धीभवइ जातं असंजमो वझिझ्झीअं अन्नंच निरवसेसंखवे इति तम्हाविरया विरएहिंएस दयत्थवो काययव्वो सुहाणुवंधीय भूततरनिझ्झराफलोपत्तिकाऊणमिति ॥ जिसतरह नवानगर प्रमुखग्राम में बहुत जलके अभाव से कोईलोग प्यासे मरते थके उस प्यासके दूर करनेके वास्ते कूवांखोदे उनलोगों को यहीप्यास प्रमुख कुवांखुदतीसमय बढ़ती है और मट्टी कीचड़ प्रमुखकरके मलीनहोते है तथापि उस कुवेंके खोदे बाद जो पाणी पैदाहुवा उसकरके उनलोगोंकी वो प्यास प्रमुख और वह पिछलामैल मट्टी कीचड़से जो लगाथा सो सर्व दूरहोजाता है तिसपीछे हमेशा के लिये वह खोदनेवाले पुरुष वा और लोगभी उसपानी से सुखभोगते है इसीतरह द्रव्यपूजा में यद्यपि जीव विराधना होतीहै तथापि उसी पूजासे ऐसी प्रणाम शुद्धिहोती है कि जिससे वह असंजमोत्पन्न वा अन्यभी ताप क्षयहोजाते है इसवास्ते देशवर्ती श्रावकों को यह द्रव्यपूजा करनी उचित हैं ऐसाफल समझकर कि यहपूजा शुभानुबंधी अत्यन्त निर्ज्जरा फलकी देने हारी है ॥ अब ठाराणोजी सूत्रवृत्तिका जो अल्प पापमें प्रमाणदेते हैं सो वो प्रमाण साधुके प्रकरण का है इसवास्ते जिनेश्वरकी पूजामें नहीं लगसकता परन्तु तोभी इसपाठका प्रकरण दिखाते हैं सो पाठ यह है:– 'समणो वासगंस्सणं भंततहारूवं समणं वा माहणं वा अफासु अणे सणिज्जेणं

असनं पाण खाइम साइमेणं पडिलाभे माणस्सकिं कज्जईगो यमाबहुत्तरिआ से निज्जराकज्जई अप्पंतरे से पावे कम्मे कज्जई, इति भगवती वचन श्रवणादि वसीयते नैवेयं क्षुल्लक भवक ग्रहण रूपा अल्पायुष्ता अग्रेतदेव पूर्वोक्तम्" ॥ इसका आशय यह है कि अप्रासुक अनेषणीय आहार अयोग अर्थात् अविधिगर्भित् आहार साधुको देताहुवा श्रावक क्या उपार्जन करे ? इस प्रश्नका भगवान्‌ने उत्तर दिया कि हे गौतम ! अल्पपाप बहुत निर्ज्जराकरे यह भगवती सूत्र के वचन से स्थानांग वृत्तिकारक अभयदेव सूरिजी जाणते है. कि प्रणितपात करके वा मृषावात बोलकर अप्रासुक अर्थात् अशुद्ध आहार साधुको बहराय करके जो अल्प आयुष्य जीव करता है, सो खुल्लक भव ग्रहणरूप नहीं है. इसपर वह पूर्वोक्त रूप वचन हेतु रूपकरके लिखा है अब इसपर विचारकरना चाहिये कि यदि जिनपूजा "पूजनाद्यनुष्ठानस्यापि तथा प्रसंगात्" इसवचन से सामान्य करके सर्व जिनपूजाको जो अल्पपाप बहुत निर्ज्जरारूप स्वीकार करे, वा व्यवहार मार्ग में जिन पूजाकाफल पूरु न करे तबतो बहुत सिद्धान्तों से विरोधहोता है सोही दिखाते है:—कि श्री हरिभद्र सूरिजी कृत श्री आवश्यक वृत्ति में प्रत्यक्ष पूजाका फल शुभानुबन्धी प्रभूत तर निर्ज्जरा फल टीकाकारने लिखा है उसका अर्थ यह है कि शुभानुबन्धी कहतां पुण्यका अनुबन्ध करनेवाली और बहुत निर्ज्जरा फल के देनेवाली है इसी तरह चौदह पूर्वधारी श्री भद्रबाहु स्वामिने प्रणीत आवश्यक निर्युक्ति में लिखा है तथाच तत्पाठ ॥ "अकसिण यवित्त याणं विरया विरयाणं एसखलु जुत्तो संसार पयंणु करणे दघत्थ व कूवादिथं तो" ॥ देशवर्ती श्रावकको यह द्रव्यपूजा अवश्य करनी युक्त है यह द्रव्यपूजा कैसी है कि संसार पतन कारण कहता संसार के क्षयकरने वाली है इसीतरह से जो स्थानावृत्तिका प्रमाण दियाहै जिन पूजाद्यानुष्ठान स्यापितथा प्रसंगात् इसवचनके आगे जिनपूजाका फल बताने में श्री अभयदेव सूरिजीने दोगाथा लिखींहैं सो गाथा लिखते है:—भई जिन पूआये काय वहो होइजइविहु कहेंचितहु वितइपरि सुद्धी गिहीण कवा हरण यंगा ॥ १ ॥ असयारंभयवन्नाजं चणिहीतेसातेसिविन्नेयातनिधिति फलंच्चिय एसा परिभावणीयमीणं ॥ २ ॥ अर्थ—यद्यपि जिन पूजामें कोई प्रकारसे कायवहस रूप हिंसा दीखती है, तथापि उस पूजा करनेसे गृहस्थको शुद्धि होती है कूपके दृष्टान्त से सो दृष्टान्त आवश्यककी वृत्तिमें लिख आये हैं इस तरहसे पूजाके व्यापार करने में काय वध स्वरूप हिंसा कही जाती है तो भी गृहस्थियोंके परिणाम निर्मलतासे निर्वृत्तिफल अर्थात् जिन पूजा मुक्तिकी देनेवाली है इसी तरहसे श्रीरायप्रसेनीजी सूत्र मे भी समगति सूर्यभ देवता पूजाका फल सुन विचार करके पूजाके कार्य मे प्रवृत्त हुवा सो यह पाठ तो राय प्रसेनी सूत्रसे जान लेना इस सूत्रमें पूजाका फल हित सुख कल्याणादि यावत् मोक्ष पर्यंत वर्णन किया है और इसी रीतिसे जीवाभिगमजी सूत्रमें विजय देवताके अधिकार मे कहा है और श्री ज्ञाताजी मे दादुर देवताके अधिकार मे कहा है और श्री भगवतीजी में सौधर्मादि इन्द्रोंके अधिकार में तथा और समगत देवतावोंके अधिकार सर्वत्र सूर्याभ देवताकी तरह पूजाका फल वर्णन किया है ऐसाही समाधी पईन्ना में भी पूजाका फल कहा है ऐसे ही और भी सिद्धान्तो मे कहा है अब जो अप्राशुक अर्थात् अनेषणीय साधुको आहार देनेकी मनाई है अर्थात् अशुद्ध आहार साधुको नहीं देणा और

जो देने की विधि कही है उससे विशुद्ध दूषण सहित सचित दान साधुको देनेसे अल्प पाप बहुनिर्जरा निबंध अनुष्ठान तो पक्ष है उसको क्षुल्लक भव ग्रहण निमित्तता अभाव साधन करते हैं उसमें जिन पूजाद्यनुष्ठानके विषय में अतिव्याप्ति रूप हेतु दिया है यह हेतु यदि विशेषण रहित सामान्य करके सर्व जिन पूजनादि अनुष्ठान विषय करेंगे तब तो पूर्वोक्त अनेक सिद्धान्तोंके प्रमाणसे विरुद्धता इस हेतुको होजायगा तब असद हेतु हुवा इस लिये हेत्वाभास हो गया. तब अपने साध्यको भी नहीं सिद्ध कर सकेगा तब तो बड़ा भारी दूषण हो जायगा इस वास्ते पूर्व प्रकरणके संयोगसे हेतु में भी अविधि सेवत जिन पूजाद्यानुष्ठान अल्प पाप बहु निर्जरा का कारण जानना चाहिये अन्यत्रके पाठसे विरोध देख कर अनुक्त भी विशेषण अवश्य ही लगाना पड़ता है अविधिसे अल्प पाप और बहु निर्जरा अंगीकार करो सो अविधिका करना तो जो हम पूर्वविधि पूजन की लिख आये हैं उस में अविधिका तो कुछ काम ही नहीं और इस जगह तो हमारा प्रकरण जो जिन मतके अजान अपने को पंडित अभिमानी मान कर द्रव्य पूजा में जीव हिंसासे अल्प पाप मानते हैं उनके लिये हमारा यह कहना है कि द्रव्य पूजा में जीव हिंसासे अल्प पाप नहीं है क्योंकि पापादिक का कोई हेतु नहीं है देखो श्री ठाणांग सूत्र में पंचम स्थान के दूसरे उद्देश मे पांच द्वार परुवन किये हैं सो पाठ यह हैः—पंच आसवदारायन्न तातं। जहामिथ्यत्तं १ अविरई २ पमीओ ३ कषाया ४ जोग ५ अर्थ— कर्म बन्ध करनेके कारण पांच हैं मिथ्यात्व १ अविरति २ प्रमाद ३ कषाय ४ योग ५ इनके सिवाय अन्य कोई कारण कर्म बंध का सिद्धान्त में कहा नहीं अब विचार करना चाहिये कि यहां जिन पूजामें पाप बंध किस कारणसे उत्पन्न हुवा भाव सहित विधिसे जो पूजा करता उसको उस समय उस करनी में मिथ्यात्व अविरिति प्रमाद कषाय निमित्तक तो कर्म बंध कह सकते नहीं किन्तु केवल योग निमित्तक बंधका सम्बन्ध है तिस में फेर विचार करो कि योग २ प्रकारके श्री भगवती में कहे हैं प्रथम तो शुभ योग द्वितीय अशुभ योग २ तिस में शुभ योग पुण्य बंधका कारण और अशुभ योग पाप बन्धका कारण है सो यहां जिन पूजा में अशुभ योग तो कह सकते नहीं केवल शुभ योग रहा वह पुण्य बन्धका कारण है फिर कारण विना पाप रूप कार्यकी उत्पत्ति किस तरह हो सकती है. अब जो कहो कि उस जगह शुभ जोग परणामकी धारा नहीं रहे उस जगह अशुभ जोग आजायतो फिर अल्प पाप और बहुत निर्जरा हो सकती है तो हम कहते हैं कि हे भोले भाइयो! तुमको जिन आगमका रहस्य न मालूम होनेसे ऐसा विकल्प उठता है अब देखो एक दृष्टान्त देते हैं कि—जैसे किसी पुरुषने चम्बेलीका फुलेल बनानेके वास्ते तिलोंको चम्बेलीके फूलोंमें रक्खा परन्तु वहां किसी कारणसे चम्बेलीके फूलोंमें सुगन्ध जाती रही और वे फूल कुम्हलायकर कँद गये अर्थात् विगड़ गये फिर उस आदमीने उन तिलोंको इकट्ठा करके उनमेंसे तेल निकाला सो उस तेलमें तो कमतीपन न हुवा परन्तु खुशबू न न आई जितना तेल था उतनाही तेल निकला उन फूलोंके कँद जाने अर्थात् विगड़ जानेसे तेलमें कमतीपन न हुवा. इस दृष्टान्तसे दार्ष्टन्तको उतारते हैं—कि देखो कि श्री जिनराजकी पूजन जिस मनुष्यने किया उस समय किञ्चित् परणामकी धारा अशुभ प्रवृत्तीमें हुई अर्थात् जैसे पुष्पोंकी सुगन्ध जाती

रही तैसेही उस जीवका पूजन करती दफे परणाम बिगड़नेसे थो बहुत निर्जरारूप जो सुशव्रूथी सो न हूई परंतु जैसे तिलोंश तेल कमती न हुवा तैसेही शुभानुवन्धी फल उसका न गया अर्थात् पुण्य वन्धन उसका न गया क्योंकि देखो सूत्रोंमें शुभानुवन्धी, बहुतर निर्जरा, इस वास्तेही दो पद जुदे मालूम होते है कि जहां शुभ परणाम सहित जो भगवत्का पूजन है वहां तो पुण्यबन्धन निर्जरा दोनोंकी प्राप्ती है और जिस जगह शुभ योग नहीं है उस जगह पुण्य बन्धनका हेतु तो है और निर्जराकी भजना है इस लिये जो अल्प पाप द्रव्य पूजामें मानते है उनका मानना ठीक नहीं और इस वचनसे जिन आगमके रहस्यसे वे लोग अजान हैं क्योंकि देखो इस जगह चौभंगी कहते हैं कि १ सावद्य व्योपार सावद्य परणाम. २ सावद्य व्योपार निर्वद्य परिणाम. ३ निर्वद्य व्योपार सावद्य परिणाम ४ निर्वद्य व्योपार निर्वद्य परिणाम ॥ इस चौभंगीमें प्रथम भांगा तो अन्यमत आश्रय है और द्वितीय भांगा समकित दृष्टि देशवर्त्ती आश्रय है, देखो कि जिन पूजा तीर्थयात्रा आदिकमें देखनेमें सा विद्य व्योपार मालूम होता है परन्तु समकित दृष्टि देशवर्त्तिके जीव हिंसाका परिणाम नही इस लिये वह जीवोंकी हिंसा देखने मात्र स्वरूप हिंसा है वो स्वरूप हिंसाका पाप वंझाके पुत्रके समान है इस लिये जो वंझाके पुत्र होय तो उस स्वरूप हिंसाका फल होय औरभी इसका हेतु इस चौभंगीके वाद लिखेगे और तीसरा भांगा जो है सो प्रश्न चन्द्र राजऋषिके दृष्टान्त आश्रय जान लेना और चौथा भांगा जो है सो साधु मुनिराज आश्रय है इस चौभंगीसेभी अल्प पाप कहनेवालेका निराकरण होता है औरभी देखो हम एक दृष्टान्तभी देते हैं कि देखो जैसे कोई डाक्टर वीमारको दुःखी देखकर उस वीमारके शरीरका रोग दूर करनेके वास्ते उसे अनेक प्रकारकी कड़वी दवाइयां देताहै अथवा उस रोगीके शरीरको चीरफाड़ नश्तर आदिकोंसे करता है उन कड़वी दवाइयोंका वा चीरफाडसे उस रोगीको नाना प्रकारके दुःख वेदना आदि होती है उस वेदना दुःख आदिसे वह रोगी पीड़ित हुवा थकाभी डाक्टरको बुरा नहीं कहता और लोगभी उस डाक्टरको रोगीकी चीर फाड़ करते हुयेको देखकर बुरा वा निर्दयी नहीं कहते इस दृष्टांतसे देखो समकित दृष्टि वा देशवर्ती इन जीवोंकी अनुकम्पा करके इनके मिथ्यात्वरूप रोगको दूर करनेके वास्ते भगवत् सेवामें उनको पहूँचाते हे अब देखो इस दृष्टान्तसेभी जिनराजकी पूजा निर्वध्य ठहरती है इसी वास्ते जो हम पूजा आगे लिख आये है कि जल. अग्नि, वनस्पति आदिकोंको निःपापकरे उन मंत्रोंके अर्थसेभी जिनराज की पूजा निर्वध्य प्रत्यक्ष दीखतीहै सो उस एक मंत्रको लिखकर उसका अर्थ दिखाते है—

"ॐ आपोल्पकाया एकेन्द्रिया जीवानिर्वद्या ॥ अर्ह पूजायां निर्व्यथा संतुनिष्पापाः संतुसद्गतयः संतुनमोस्तू संघट्टन हिंसापापमर्हदर्चने ॥ अर्थ ॥ आपा क० एकेन्द्री जलके जीव• अर्हतपूजायां क० जिनराजकी पूजामें, निर्व्यथा संतु क० तुम व्याधि करके रहित हो अर्थात् मिथ्यात्व रोग तुम्हारा दूरहोय, निष्पाप सन्तु क० निष्पापहो, सद्गताय संतु क० तुम्हारी सद्गतिहो इस लिये तुम्हारा जो संघट्टन हिंसा पाप जो है सो अर्हतकी अर्चन क० पूजनमें नमेस्तु क० मेरेको मतहो। अब इस रीतिसे जो मने डाक्टरका दृष्टान्त लिखाहै उसकी विधि और इस मन्त्रकी विधि देखनेसे जिनराजकी पूजनमें पुण्य बंधन, और बहुत

निर्ज्जराही मानना आत्माके कल्याण हेतु है इस वास्ते भव्य जीवोंको जिनराजकी कही हुई स्याद्वादरूपी अमृत रसकी शुद्धश्रद्धा सहित पान करना चाहिये जिससे परम पद अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिहोय इस रीतिसे मन्दिरकी विधि कही। अब देशवर्त्ती श्रावकके वास्ते सं-क्षेपसे लिखते हैं—कि श्रावक तीन प्रकारके होतेहैं,—१ जघन्न, २ मध्यम, ३ उत्कृष्ट; जघन्न तो उसे कहतेहै कि जो नोकारसी आदिक पत्र खाण करे, और मध्यम इससे ऊपर जो कि १०, ११ वृत आदिक उच्चारण करे-और उत्कृष्ट संपूर्ण १२ व्रत धारण करे और शास्त्रमें ११पडिमा भी श्रावकको कही हैं परंतु इस कालमें "पडिमा" धारी श्रावकतो नहीं इस वास्ते १२ वृत धारी श्रावक उत्कृष्ट है सो जो श्रावक सोतेसे उठे उसको ऐसा करना चाहिये कि प्रथम तो ५, व ७ नौकार गुणे और चौवीस तीर्थंकरोंके नामले फिर जो कोई लघुशं-का व दीर्घ शंकाकी हाजत तो उसको मिटाय करके इरियावही आदिक करे फेर कुस्वप्न वा दुस्स्वप्नका काउसग करे और जो सामायक, प्रतिक्रमण आदिक करता हो तो सामायक प्रतिक्रमण करे कदाचित् उसके इस बातका नियम नहीं हो वा करनेकी स्थिरता नहीं होय तो चौदह नेम अवश्य मेव चितारे और चितार करके उसका पचखाण भांगेसे करे क्योंकि देखो जब नेम चितारनेको बैठे तव नेम द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, और भावसे करे। द्रव्य करके तो नेम उसे कहतेहैं कि जो वस्तु रखनेकी आवश्यक है कि जैसे खाना, पीना, वस्त्र आदिक जो वस्तु रखनी हो सो रक्खे उपरान्तका त्यागकरे; क्षेत्रसे नेम उसे कहतेहैं कि भरत क्षेत्र आर्य्य देश अथवा कोई देश वा नगरका नाम अथवा जिस मकानमें चितारे उस मकानमें चितारना सो क्षेत्र कालकरके सम्वत्, महीना, पक्ष, अथवा तिथिवार, प्रातःकाल सायंकाल यह कालसे हुवा; भावकरके करणा और जोग जिस करण, जिस जोग, जिस भांगेसे पच्चाण धारे उसी रीतिसे करे और उसी रीतिसे पाले क्योंकि देखो भगवतीजीके आठवे शतक और पाचवें उद्देशमें श्रावकके ४९ भांगे विस्तारसे कहे हैं कि श्री महावीर स्वामी कहते हुए कि हे गौतम "समणो पासक" क० श्रावक जो है सो इस ४९ भांगेमेंसे जिसको जैसी रुचि होय उसी भांगेसे पच्चखाण करे श्रावक होय सोही करे परन्तु आ जीविका उपासक नहीं करे इस वास्ते भाव करके ४९ भांगे माहिला जैसी जिसकी इच्छा होवे तैसा करे इस जगह भांगोंका स्वरूप लिखते हैं:—प्रथम एक करण एक जोग अङ्क ११ का भांगा उठे ९

अं० ११ क० १ जो० १ भां० ९	करू नही मनसा, करू नहीं वायसा, करू नही कायसा कराऊ नही मनसा, कराऊ ननी वायसा, कराऊ नही कायसा अनमोदू नही मनसा, अनमोदू नही वायसा, अनमोदू नही कायसा	वृत्ति १ खुले ४८

अब यहां कोई शंकाकरे कि ९ भॉगे क्यों कहे १ करण १ जोग क्यों नहीं रहने दिया क्योंकि पच्चखाणतो १ करण १ जोगसे ही करना है तो फिर ९ भॉगे कहने का प्रयोजन क्या था इस शंका का समाधान देते हैं कि— 'वीतराग' सर्वज्ञ देवका जो उपदेश है सो सर्व जीव आश्रय है जो १ करण १ जोग कहके भांगे न उठाते तो १ करण १ जोगसे १ के आश्रय हो जाता परंतु सर्वज्ञ देवने तो सर्व जीवोंके भावसे सर्व जीव् आ-श्रय कहे कि इन ९ भांगों में जैसा जिस भव्य जीवसे बने उसी रीतिसे वो भव्य जीव करे और पाले इन ९ भांगोंमेंसे जिस भांगेसे पच्चखाण करेगा वो तो उसी जीवको १ भांगा

बंधमें रहेगा बाकी ४८ खुले रहेंगे इसी रीतिसे सर्व भांगोंमें समझ लेना अब १ करण २ जोग आंक १२ का भांगा उठे ९

अं१२ क०१ जो०२ भां०९ { करू नहीं मानसा वायसा, करू नही मनसा कायसा, करू नही वयसा कायसा
कराऊ नही मनसा वायसा, कराऊ नहीं मनसा कायसा, कराऊ नही वायस कायसा
अनमोदू नहीं मनसा वायसा, अनमोदू नही मनसा कायसा, मनमोदू नही वायसा कायसा } वृत्ति ३ खुले ४६

इस १२ बारहके आंकमें तीन भांगे वृत्तमें रहते है तिसमे १ भांगा तो १२ वें आंकका और दो भांगे ११ के आंकके बाकी ४९ माहिले ४६ अवृत्ति नाम खुले रहे ॥

अं० १३ क० १ जो० ३ भां० ३ { करूं नही मनसा वायसा कायसा कराऊ नही मनसा वायसा कायसा, अन मोदू नहीं मनसा वायसा कायसा } वृ० ७ खु० ४२

अब इस तेरहके आंकमे ४९ माहिले ७ तो वृत्तमें रहे १ भांगा तो १३ के आंकका और ३ भांगे १३ के और ३ ११ के आंकके सर्व मिल ७ भांगे वृत्तमें रहे शेष ४२ खुले रहे ॥

अं० २१ क० २ जो० १ भांगा ९ { करूं नही कराऊं नही मनसा, करूं नही कराऊं नहीं वायसा, करू नहीं काराऊ नही कायसा करू नहीं अनमोदू नही मनसा, करू नही अनमोदू नही वायसा, करूं नही अनमोदू नहीं कायसा कराऊ नहीं अनमोदू नही मनसा, कराऊ नहीं अनमोदू नहीं वायसा, कराऊं नही अनमोदू नहीं कायसा } वृ० ३ अवृ० ४६

इस २१ वें आंकके जो ३ भांगे वृत्तमें है तिससे १ तो २१ वें आंकका वृत्तमें रहा और २ भांगे ११ के आंकके वृत्तमें रहे शेष ४६ अवृत्त अर्थात् खुले रहे ॥

अं० २२ क० २ जो० २ भांगा ९ { करू नहीं कराऊं नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं कराऊं नही मनसा कायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं वायसा कायसा करू नही अनमोदू नहीं मनसा वायसा, करू नही अनमोदू नही मनसा कायसा, करू नही अनमोदू नही वायसा कायसा कराऊं नही अनमोदू नही मनसा वायसा, कराऊ नही अनमोदू नही मनसा कायसा, कराऊ नही अनमोदू नही वायसा कायसा } वृ०९ अवृ४०

इस २२ के आंकसे जो पच्च खाण करे उसमें ९ भांगे तो वृत्तमे रहते है और ४० खुले रहते है तिस ९ भांगेमें १ तो २२ आंकका दो २१ के आंकके और २ भांगे १२ के आंकके और चार ११ के आंकके ये सब मिलकर ९ भांगे वृत्त अर्थात् बन्ध रहे शेष ४० खुले अर्थात् अवृत्तमें रहे ॥

अं० २३ क० २ जो० ३ भा० ३ { करूं नहीं कराऊं नही मनसा, वायसा कायसा
करूं नहीं अनमोदू नही मनसा, वायसा कायसा
करू नहीं कराऊ नही मनसा, वायसा कायसा } वृ० २१ अवृ० २८

इस २३ के अंकसे जो पच्च खाण करे तो २१ भांगे वृत्तमें और २८ अवृत्तमें, तिस २१ भांगेमें १ तो २३ का तीन २२ के और ३ भांगे २१ के आंकके और २ भांगे १३ के आंकके और छः १२ के आंक और छः ११ के आंकके यह सब २१ भांगे वृत्त अर्थात् बंध रहे और शेष २८ अवृत्त अर्थात् खुले रहे ॥

अ० ३१ क० ३ जो० १ भा० ३ { करूं नही कराऊं नहीं अनमोदू नही मनसा
करूं नहीं कराऊ नही अनमोदू नही वायसा
करूं नही कराऊं नही अनमोदू नही कायसा } वृ० ७ अवृ० ४२

इस ३१ के आंकले जो कोई पच्च खाण करे तो ७ भांगे वृत्तमें और ४२ अवृत्तमें रहते हैं उन ७ भागोंमें १ भांगातो प्रथम ३१ के आंकका और तीन २१ के और तीन ११ के आंकके इस रीतिसे ७ भांगे तो वृत्तमें रहे और शेष खुले रहे ॥

अं० ३२ क० ३ जो० २ भा० ३	करूंनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं मनसा वायसा करूंनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं मनसा कायसा करूंनहीं कराऊं नहीं अनमोदूं नहीं वायसा कायसा	वृ २१ अवृ० २८

इस ३२ के आंक से पच्चखाण करने वाले के २१ तो वृत्त में और २८ भांगे अवृत्त में रहते हैं उन २१ भांगे में १ तो ३२ के आंकका और दो ३१ के, और तीन २२ के और छः २१ के आंक के और तीन १२ के और छः ११ के आंकके यह सर्व भांगे मिलकर २१ भांगे तो वृत्तमें और २८ खुले अर्थात् अवृत्त में रहे ॥

अं० ३३ क० ३ जो० ३ भा० १ (करू नहीं कराऊं नहीं, अनमोदु नहीं मनसा, वायसा कायसा) वृ० ४९

इस ३३ के आंकसे पच्चखाण करने वाले के ४९ भांगे बंध अर्थात् वृत में होगये और खुला अर्थात् अवृत्तमें कुछ न रहा अब इन ४९ में भी १ तो ३३ का और तीन ३२ के और तीन ३१के और तीनही २३के और नौ २२ के नौ भांगे२१के आंकके तीनभांगे १३ के आंक के और ९ भांगे १२ के आंकके और ९ भांगे ११ आंकके यह सर्व मिलकर ४९ भांगेवृत्त मे हैं और अवृत्त में कुछ बाकी न रहा ॥

अब इसजगह कई भोले जीव जिन आगम के अजान ऐसा कहते हैं (शंका) कि ३ कारण और ३ जोगसे तो साधुका पच्चखाण है श्रावक के ३ कारण और ३ जोगका पच्चखाण नहीं इसका समाधान देते हैं (समाधान) हे भोले भाई ! जो ३ करण और ३ जोग से श्रावकका पच्चखाण नहीं होता तो भगवती जीमें श्रावकका नाम लेकर ४९ भागे श्री सर्वज्ञ देवनहीं कहता ४८ भांगेकाही वर्णन करता अब कोई जिनआगम के तो अजान है परन्तु वे अपने दिलमें ऐसाकहते हैं हम जिनआगमके जान हैं इसलिये वे लोग ऐसा कहते हैं कि ३ करण और ३ जोगसे उत्कृष्टा श्रावक पच्चखाण करे सो उनका भी यह कहना ठीक नहीं क्योंकि देखो कि श्री हरिभद्र सूरिजी महाराज "आवश्यक" सूत्रकी २२० टीका में लिखते हैं कि " स्वायंभू " रमण समुद्र अर्थात् छेडलासमुद्रके मच्छ का त्याग । ३ करण और ३ जोगसे होता है इसके सिवाय ३ करण ३ जोगसे और कोई पच्चखाण श्रावकके नहीं हो सकता इस वास्ते इस मत्स्यका त्याग तो हरेक कोई श्रावक त्याग कर सकता है इस लिये यह नियम न ठहरा कि उत्कृष्टा श्रावक ही करे इस वास्ते यह पच्चखाण हर एक श्रावक कर सकता है ॥ कोई अजान पुरुष ऐसी भी शंका करते हैं कि अबारके समय मे जो भांगेसे पच्चखाण करे तो वह उस मूजिवचल नहीं सकता तो हम कहते हैं कि यह कहना बहुत वे समझ और अज्ञान काहै क्यों कि जैन मत में और अन्य मत में कोई तरहका भी फरक नहीं मालूम होगा क्योंकि त्याग पच्चखाण व्रत उपवास आदिक अन्यमतवाले भी करते हैं परंतु उन लोगोंसे इतनाही फर्क है कि जैनी लोग जाणकर- करते हैं क्योंकि देखो यह वचन भी प्रसिद्ध है कि समगतकी नौकारसी और मिथ्यात्वीका एक मासका उपवास परंतु जितना फल नौकारसी का है उतना एक

मासका उपवासका नहीं तो इस कहनेसे यह निश्चय करके प्रतीत होताहै कि जैनी जो होगा सो जानकर करेगा तबही उसको जिनमत प्राप्त होनेका फल मिलेगा अब जो कोई ऐसी शंकाकरे कि प्रवृत्तिमार्गमें क्यों नहीं कराते है तो हम कहते हैं कि करानेका हेतु हम तीसरे उत्तरमें कदाग्रहका लिख आये है इस जगह तो एक दृष्टान्तमात्र देते हैं कि देखो जब दो मनुष्य आपसमें लड़तेहैं उस समयमें वे दोनों मनुष्य अपने २ दिलमें ऐसा विचारते है कि इसने मेरे थप्पड़ मारा तो मे इसके घूंसा मारूं वह देखता है कि इसने मेरे घूंसा मारा तो मैं इसके लात मारूं इस रीतिका विचार उन दोनोंके चित्तमें रहता है परन्तु कंठी मुरकी पाग पगरखी रूमाल आदि कहीं गिरो और कोई ले जाओ तो उसका ख्याल नहीं है परन्तु केवल इसने मेरे मारा मैं इसके मारूं इस बातका ख्याल है इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्त कहते है कि हुंडा सर्पनी काल पंचम आरेमें दुःखगर्भित और मोह गर्भित वैराग्यकी महिमासे प्रत्यक्ष दीखरहा है कि वह उसकी खोटी कह रहा है वो उसकी खोटी कहता है अर्थात् एक दूसरे की न्यूनता दिखाने को नानाप्रकारके प्रपंचसे अपनी अधिकता दिखाते है इस कारणसे न तो वह काम हो जिस में अपनी आत्माका अर्थ हो और न दूसरे गृहस्थियो की आत्माका अर्थ होनेदेते है खाली प्रपंच करके आप लड़ते हैं और ग्रहस्थियोंको लड़ाते है और जिनधर्मकी हीलना कराते हैं और किंचित् कोई काल मूजिब ज्ञानवैराग्यसे जिनमतको अंगीकार करके जो भेषादिक ले तो कैसाही वह मनुष्य बच कर चले तो भी अपने प्रपंच में मिला कर उसका भी सत्यानाश करते है परंतु जिसका प्रबल पुण्य शुभ कर्मका उदय होगा वोही इस प्रपंच मे न पड़ कर अपनी आत्माका अर्थ करेगा क्योंकि पूर्व आचार्य्योंके वचनोसे मालूम होता है कि जैसे श्री यशविजयजी उपाध्याय कृत साढ़ेतीनसौ गाथाकी स्तुति वा सवासौ गाथाकी स्तुति अथवा और भी बहुत ग्रन्थों मे भी जगह २ खुलासा कहते हैं कि 'वीतराग' का मार्ग यह है ऐसा ही श्री आनन्दघनजी महाराज चौबीसी बहत्तरी आदिक खुलासा वर्णन करते है अथवा श्री देवचन्दनजी आगमसरादि ग्रन्थों मे व श्री कर्पूरचन्दजी अर्थात् चिदानन्दजी अनेक स्तुतिआदि में कहते हैं अथवा श्री बूंटेरायजी मुंहपतीकी चर्चा में खुलासा कहते हैं सो हम तीसरे प्रश्नके उत्तरमे लिख आये है यहां तो उनका नाम मात्र लिखा है और वह ग्रन्थादिक चौपड़ी सब जगह प्रसिद्ध है उनको बांच कर देखो और अपनी आत्माका अर्थ करो इस वास्ते भी देवानुप्रिया ऊपर लिखे कारणोसे प्रवृत्तिकी न्यूनता मालूम होती है जो बिलकुल इस बातके जाननेवाले न होते तो पच्चखाणके इन गुण पचास भांगेके जंत्रादि अनेक रीतिसे पूर्व जानीकार आचार्य्य व साधुवोंने बनाये हैं वन होते और उनको सिखाते भी हैं और जो अच्छे जिनमठके जानीकार है वे १ करण १ जोगसे बारह व्रतादिक उच्चारण कराते हैं सो इसकी विधी पच्चखाण भाष्यमे भांगे समेत लिखी है और इस रीतीसे प्रवचन सारोद्धार आदि ग्रंथो में विस्तार सहित पच्चखाणकी विधिपूर्वक लिखी है सो जिसकी खुशी होय सो देखे और अपने सन्देह को दूर करो और दूसरे एक श्री कुंवरविजयजी कृत नवतत्त्व प्रश्नोतरकी पुस्तक जो कि छापे में छपी है उस पुस्तक मे पच्चखाणके चार भांगे लिखे है सो चार भांगे यह हैः—

(१) पच्चखाणके गुरु करानेवाला जान हो और करनेवाला शिष्य जान हों यह प्रथम भांगा अत्यन्त शुद्ध उत्तम जानना (२) पच्चखाण करानेवाला गुरु जान और करनेवाला शिष्य अजान होय तब जानीकार गुरु पच्चखाण करनेवालेको कहे कि हे फलाने ! तुझको फलाना पच्च खाण कराया है इसी रीतिसे पालना वैसे शिष्यपण पाले तो शुद्ध भांगा जानना और न पूछे न पाले तो अशुद्ध भांगा जानना (३) पच्च खाण करनेवाला जान हो सो जानता हुवा गीतार्थ गुरुके अभाव में पर्याय करके मोटा ऐसा महात्माके समीपमें अथवा पित्रादिकको गुरु स्थानक में मानकर तिसकी साख करके पच्चखाण करे तो शुद्ध जानना परन्तु जो गीतार्थ हो और अपनी खुशी (इच्छा) से अजाण गुरुके पास पच्चखाण करे तो अशुद्ध भांगे जानना (४) पच्चखाण करानेवाला गुरु और पच्चखाण करनेवाला शिष्य ये दोनों अजाण हो तो वह भांगा अत्यन्त अशुद्ध श्री वीतराग देवने कहा है । इस वास्ते भव्यजीवोंको आत्मा अर्थकी इच्छा होय तो कदाग्रहको छोड़ कर वीतरागकी आज्ञानुसार अपनी शक्ति मूजिब चलना चाहिये जिस जगह अपनी शक्ति न चले उस जगह वीतरागके मार्गकी अनुमोदना और प्रवृत्तिकी श्रद्धा रक्खे और अपनी शक्ति न होनेकी समझकर पश्चात्ताप करे यह ही जिन धर्मका रहस्य है और चौदह नियम चितारनेकी विधि वा प्रतिक्रमण आदिककी विधि बहुत पुस्तकों में लिखी हुई प्रसिद्ध हैं और जो सामायकादिकका उसग करनेकी गुह्यविधि है सो तो हमने तुम लोगोंको उपदेश दिया ही है उससे तुमलोग जानेत ही हो क्योंकि वह रीति तो पुस्तकों में लिखने की नहीं वह तो जो गुरु कुलवासके योग्य पुरुष होगा उसी को प्राप्ति होगी न तो अयोग्यको इन वचनों पर प्रतीति किसको होगी कि जिसके अनंतानुबंधी चौकड़ी और अप्रत्याख्यानी चौकड़ी क्षय हुई है उसी भव्यजीवकी श्रद्धा और प्रवृत्ति इस मार्गमें होगी सो पांचमें गुणठाणेका धणी है क्योंकि गुणठाणा तो प्रकृति क्षय वा उपसम होनेसे होता है कुछ प्रवृतिसे नहीं इसके मध्ये मिथ्यात्वी निरूपण कियेके बाद हम लिखेंगे अब किंचित् मिथ्यात्वका स्वरूप लिखते है कि भव्य जीवोंको मिथ्यात्व छोड़ना चाहिये जो इस चतुर्थ प्रश्नके उत्तरमे देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप लिखा है उसके ऊपर जो श्रद्धा अर्थात् विश्वास और जो अनन्तानुबन्धी प्रकृतियोंका क्षय होता है उसको समगति कहते हैं और इनसे विपरीति अर्थात् देव, गुरु, धर्मपर अविश्वास वा प्रकृतियों क्षय न होना और कुदेव कुगुरु कुधर्म पर विश्वास उसीका नाम मिथ्यात्व है उस मिथ्यात्वके चार भेद हैं प्रथम तो परुपना मिथ्यात्व जो श्री सर्वज्ञसे विपरीति कहे अथवा कारण कार्य्य द्रव्य भाव निश्चय व्यवहार उत्सर्ग अपवाद नयनिक्षेपा जाने विदून अपनी आत्मामें पंडित अभिमानीपणा मान करके ग्रन्थकारका आशय जाने विना जो परुपना करना वह सब परुपना मिथ्यात्व हैं प्रवर्तन मिथ्यात्व जो कि मिथ्यात्वपनेकी करणी करे और उसीको अच्छा जाने तीसरा परिणाम मिथ्यात्व जो कि परिणाम अर्थात् मनमें विपरीति कदाग्रह बना रहे और शुद्ध अर्थको नहीं श्रद्धे अर्थात् न अंगीकार करे चौथा प्रदेश मिथ्यात्व जो कि सत्तागत मोहनी कर्मका दलिया प्रदेशो पर लगा है उसके प्रदेश मिथ्यात्व कहते है इस मिथ्यात्वके कर्मदल विपाक अर्थात् उदयमें आवें उस समय परिणाम

मिथ्यात्व होता है और जो वह दलीया सत्तामेंही पड़ा रहे तो उपसम समकित क्षय उपसम समकित प्राप्त हो परन्तु परिणाम मिथ्यात्व हो उस समय समकितकी प्राप्ती नहीं होती इन चार मूल भेदके उत्तर भेद अनेक होते हे परन्तु उत्तर भेद २१ यहां लिखते हैः-(१) प्रथम तो जिन प्रणीत जो शुद्ध निर्वद्य धर्म तिसको अधर्म कहे (२) दूसरे हिंसा प्रवृत्ति आदिक आश्रवमयी अशुद्ध अधर्म उसको धर्म कहे. (३) संभव भाव सेवनरूप जो मार्ग उसको उनमार्ग कहे (४) चौथे विषय आदिक सेवन जो उन मार्ग उसको मार्ग कहे (५) सत्ताईस २७ गुण करके जो विराजमान, काष्टना नाव समान तरण तारण समर्थ ऐसा जो साधु तिसको असाधु कहे. (६) छठा आरंभ परिग्रह विषय कषावसे भरा हुवा, लोभ मग्न, कुवासनादायी पाषाणकी नाव समान ऐसा जो अन्य लिंगी तथा कुलिंगी असाधु होय उसको साधु कहे परंतु ऐसा न विचारे कि जो खुदही दोषसे भरा हुवा है वह दूसरेको कैसे तार सके जैसे आप तो दरिद्री दूसरेको धनवान कैसे करे (७) सातवें एकेन्द्रिया दिक जो जीव है उसे अजीव करके माने. (८) काष्ठ सुवर्णादिक अजीव पदार्थने जीव करके माने. (९) मूर्तिवंत रूपी जो पदार्थ है उसे अरूपी कहे जैसे स्पर्शवान् वायुको अरूपी कहे परंतु ऐसा न विचारे कि जो अरूपी है उसमे स्पर्श कैसे हो (१०) दशवां अरूपी पदार्थको रूपी कहे जैसे मुक्तिमें तेजका गोळा माने पण ऐसा न विचारे कि जो अरूपी चीज है उसका तेज कैसे नजर आवे यह दश प्रकारका मिथ्यात्व हुवा दूसरे पांच मिथ्यात्व हैं इनकोभी मूल भेदमें लिखते हैः- (१) जो अपनी मनेमां आया वह सांचा, दूसरा सर्व झूठा पण परिक्षा करवानी इच्छा राखे नहीं शुद्धाशुद्धनी खोल या विवेचन करे नही वह प्रथम अभिग्रहिक नामे मिथ्यात्व जाणना ॥ (२) अब सर्व धर्म समान है सर्व साधु लोग सरीखा है सर्व साधुओंको वन्दना नमस्कार करना सर्व देवतोंको मानना किसीकी निन्दा न करना क्योंकि सर्व जगत्में इकसार है अपनी २ सब कोई कह रहा है इस वास्ते किसीको बुरा भला न कहना ऐसा जिसका परिणाम है उस पुरुषको अमृत और विषय इन दोनों पदार्थोंकी खबर नहीं दोनोको एक समझ लिया इस वास्ते इसको अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व जानना. (३) अभिनिवेष मिथ्यात्व कहते हैं कि जो पुरुष जान करके झूंठ बोले अपने अज्ञानपनेसे अथवा भूल करके परुपना करे और पीछे फेर कोई शुद्धमार्ग अनुसारी जीव अथवा कोई गीतार्थ उस पुरुषसे कहे कि यह तुम्हारा कहना सिद्धान्तोंसे विरुद्ध है यह तुम्हारा बोलना ठीक नहीं सर्वज्ञोंके वचनसे वि-विपरीति कहना संसार बंधनेका हेतु है ऐसावचन दूसरेका सुनकर वह जीव पहिले की हुई परुपना को अपने वचन सिद्धिके वास्ते कदाग्रह सहित अनेक कुयुक्ति करके अपने वचन सिद्धि करनेकी अपेक्षा करे और दूसरेको झूठाकरे और अपनी झूंठको अपने वचनको जा-नता हुवा भी झूंठ न माने क्योंकि अपनी आत्मामे पण्डित अभिमानीपना मानकरके क्या विचारे कि जो मेरा वचन निकलगया और मैं अब इसको झूंठ मानलूंगा तो लोगों मे मेरी पण्डिताई चलीजायगी परन्तु लोगो में पण्डिताई जानेका तो उसको ख्याल है और सर्वज्ञों के वचन का विराधक होऊंगा और मेरेको बहुत भव भ्रमणकरना पड़ेगा ऐसा वह ख्याल न करे उस जीवको अभिनिवेष मिथ्यात्व जानना. (४) संशयकमिथ्यात्व कहते है कि जो सर्वज्ञकी

वाणी में शंसय उपजे क्योंकि देखो सर्वज्ञ के वचन अनेकान्त स्याद्वाद निश्चय व्यवहार द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिक नयनिपेक्षा करके जो प्रभूकी वाणी है उसके सूक्ष्म अर्थ में अपनी बुद्धि न पूगे अर्थात् सूक्ष्म अर्थ की खबर न पड़े उस संशयसे डिगमिगाता रहे अर्थात् निश्चय नहो क्या जाने यह बात कैसे है ऐसा जिस पुरुषको संशय है उस पुरुषका संशय मिथ्यात्व जानना (५) अनाभोगिक मिथ्यात्व कहते हे कि अजान पनेसे कोईतरहकी खबर नहीं और मिथ्यात्व में पड़ाहुवा जीव मिथ्यात्व को भोग रहा है यह मिथ्यात्व एकेन्द्री आदिक जीवों में अनादि कालसे लगरहा है यह अनाभोगिक मिथ्यात्व जानना। अब तीसरे छःभेद लौकिक और लोकोत्तर मिथ्यात्वके भेद कहते हैं:-सो १ तो लौकिक देव. २ लौकिक गुरु. ३ लौकिक पर्व्व ४ लोकोत्तर देव. ५ लोकोत्तर गुरु. ६ लोकोत्तर पर्व्व अब इनके जुदे २ भेद कहते हैं:-(१) लौकिकदेवके भेद कहते हैं कि जो रागद्वेष करके संयुक्त शास्त्र, स्त्री आदिक करके भी सहित अथवा ज्ञान, काम इत्यादिक चेष्टा में मग्न रहते हैं और किसी को वर देते है और किसीको शापदेते हैं और साविद्यभोग पञ्चइन्द्रियों के लैलीन और जो इन्द्री का विषय नही है उसकी चाहना करना ऐसे को जो देवबुद्धि करके माने, पूजे, और ऐसा अपने जीमें जाने कि यह मोक्षके दाता है और उनके कहेहुवे मार्ग में प्रवृत्तिहोना और हिंसामयी धर्मको करे और ऐसाकहे कि यह सर्वज्ञदेव है यहीमेरे को मोक्ष देगा ऐसा जो माननेवाला है उसको प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जानना ॥ इस मिथ्यात्व के अनेक भेद हैं सो अन्य ग्रन्थों से जानलेना (४) लौकिक गुरु मिथ्यात्व कहते हैं:-कि जो नवविधि परिग्रहधारी गृहस्थाश्रमी १८ पापस्थानक के सेवनेवाले अथवा कुलिङ्गी उनको गुरु बुद्धिमानना अथवा दूसरे जोकि जैनमतमें जो लिङ्ग कहा है उस लिङ्ग से विपरीति लिङ्ग जो नवे २ प्रकार के भेष बनायकर आडम्बरके सहित बाह्यपरिग्रहका त्यागकिया है परन्तु अभ्यन्तर ग्रन्थी छूटी है नहीं अनादि कालकी भूल मिटी नहीं स्याद्वाद को लखा नहीं और शुद्ध साधनकी इच्छा नही ऐसे भेषधारी ऊपर लिखेहुये को गुरुमाने और उनका बहुमान करे और ऐसाजाने कि यह मेरे को तारेंगे और उनको परमपात्र जान करके जो दान आदिकदेना वो लौकिक गुरुत्व मिथ्यात्व जानना ॥ अब देखो पात्र चार प्रकार का होता है:-१ अपात्र कुत्ता, बिल्ली, चील आदिक को देना सो अपात्र है। २ कुपात्र उसे कहते है कि खोटापात्र जो ऊपर लिखेहुये लौकिक गुरुके है सो सर्व कुपात्र जानलेना, पात्र उसको कहते हैं कि जिसकी सरीसी कृपा और श्रद्धा अर्थात् साधर्मीपना उसको जो मानना वा देना लेना वो पात्र है। सुपात्र उसको कहते हैं कि जो साधु मुनिराजकी वृत्ति शास्त्र में कही है उसको शुद्ध मन, वच. काय करके दानदेना वोही सुपात्र है ॥ तीसरे लौकिक पर्व कहते हैं कि इसलोक में पुद्गलिक सुखकी इच्छा से अनेक मिथ्यात्व कल्पित लौकिक पर्वदिवस, रक्षाबन्धन, गणेशचौथ, नागपंचमी, सोमप्रदोष, सोमवती, बुद्धाष्टमी, होली, दशहरा, वच्छद्वादश, निर्जला एकादशी, इत्यादिकों को सत पर्व मोक्षदायक श्रद्धाकरके आराधे उस में द्रव्य खर्चकरे उसको तीसरा लौकिकपर्व मिथ्यात्व जानना ॥ (४) लोकोत्तर देव मिथ्यात्व कहते हैं:-देव श्री अरिहंत धर्म का आगर, विश्वोपकार सागर परमेश्वर, परमपूज्य सकलदोषरहित शुद्ध निरंजन उसकी स्थापना

जो मूर्तिप्रतिमा उसको इस लौकिक पुद्गलिक सुखकी इच्छा धारण करके माने कि मेरा कार्य्य होगा तो मै बड़ी मोटी पूजा धूमधामसे करांऊगा हे प्रभू ! मेरा यह लड़का जो जीवेगा तो यह पांच वर्षका होगा तब उतनी तौल केसर चढ़ाऊंगा अथवा मेरा फलाना काम होगा तो मै आपकी यात्रा करके घी खाऊंगा और जब तक आपकी यात्रा न करूं घी न खाऊं और प्रभू फलाना काम होजायगा तो छत्र चढ़ाऊंगा अथवा अखंड दीपक एक महीना तक रक्खुंगा अथवा जागरण आदि कराऊंगा अथवा हे प्रभु! मेरा यह काम हो जाय तो मै आपका नवीन मन्दिर बनाऊंगा इत्यादिक अनेक रीतिसे वीतराग श्री अरिहंत देवकी मानता ऐसा जो करनेवाला पुरुष वो श्री अरिहंत देव वीतराग चिंतामणि रत्न निमित्त कारण मोक्ष दाता उससे जो जीव अज्ञानमे भरा हुवा कांचके समान संसाररूप भोगको कौड़ी समान प्रभुके पाससे मागता हुवा ऐसा जो वीतराग प्रभुसे मांगना सो लोक उत्तर मिथ्यात्व है क्योंकि कर्मोदयकी खबर जिस पुरुषको नहीं है अर्थात् जिसको प्रतीत नहीं है वह पुरुष वृथा भूला फिरे है क्योंकि विना पुन्य उदय कोई वस्तु प्राप्ति होय नहीं फिर पुद्गलकी इच्छा वा सुखकी वांछा करके श्री वीतराग अरिहंत देव निरंजन निर्विकारी उनसे जो पुद्गलिक सुखकी इच्छा करनी उसीका नाम लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व जानना । अब पांचमा लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व लिखते हैं जो साधु भेषधारी निर्गुणी अथवा कुलिंगी जो कि जिन शास्त्रोंमे वीतरागने जिस लिंगकी आज्ञा करी है उस लिंगसे विपरीति भेष धारण किया और जिनशासनमे साधु पन्थ अपनेमें सिद्ध करते हैं अथवा हीनाचारी प्रवचन उथापक मत कल्पना करके देशना पूरुपक सूत्र अर्थ यथावत् न कहने वाले जो वचन अपना निकला है उसी वचनको थापते हुवे परभवसे न डरते हुवे ऐसे जो लिंगधारी है उनको गुरु बुद्धि जानकर उनका बहुमान करे और उनके सिवाय जो कि शुद्ध साधु सद्गुणी तपस्वी शुद्ध चारी द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षाको देख करके क्रिया करनेवाले लोगोंको रंजन न कर सकें अथवा मंत्र यंत्र तंत्रादि न करें न बतावे ऐसे महत् पुरुषोंको हीनाचारियोंके बहकानेसे अगले लिखे हुवे साधुओंको न माने अथवा उन मुनिराज महात्मा पुरुषोंको इस लोकके सुखकी चाहना करके उनका बहुमान करे और ऐसा चित्तमें विचारे कि इन सत्पुरुषोंकी जो हम अत्यंत सेवा करेंगे तो सेवा करनेसे यह प्रसन्न होकर हमारे पर कृपा करेंगे तो इनकी कृपा होनेसे हमारे धन सन्तानादि बहुत होंगे ऐसी इन्द्रिय सुखकी इच्छा करके जो कि शास्त्रोक्त द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार चलने वाले मुनिराजोंको जो कोई इस रीतिसे माने पूजे उसको लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व जानना. अब छः लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व कहते है जो कि कल्याणकादिक पर्व्व दिवसमें पुत्रादिककी अथवा धनादिककी इच्छा करके जो श्री अरिहंत देवको आराधन अर्थात् उनके कल्याणक का गुनन करे वो लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व जानना ॥ यह सर्व मिथ्यात्व मिलकर २१ भेद हुवे जिसमें पहले १५ मिथ्यात्व तो निश्चयमें है और छः मिथ्यात्व व्यवहारमें हैं इन सर्वको समर करके कर्म बंध हेतु जान करके भव्यजीव छोड़े यहही परमेश्वरकी आज्ञा है अब और भी देखो कि जिनमन्दिर बनाना वा स्वामी वत्सल करना यह नाम कर्मके वास्ते जो मनुष्य करेंगे उनको तो जिनोक्त वचन मुवाफ़िक फल

नहीं किंतु चिंतामणि रत्नको कागलाके पीछे फेंकना है. क्योंकि देखो शास्त्रोंमें जिनमन्दिर बनानेका फल बारहवां देवलोक कहाहै और शास्त्र उक्त विधिसे अपने नाम कर्मकी इच्छा विना और जो उस जगह जिनमन्दिर है उनकी असातना निवारण करे क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि जो जिनमन्दिर प्राचीनोंका जीरण उद्धार करावे उस पुरुषको नवीन मन्दिरसे अठगुना फल होता है और धन आदिकसे वा पुरुषार्थ अथवा कोई तरहका उद्यम करके जिनमन्दिरकी असातना टालना वो श्री संघकी वृद्धिका कारक है इसवास्ते प्राचीन जिनमन्दिरों की असातना को टालकर नवीन जिनमन्दिर बनाना वही भव्यजीवों को श्रेयकारी अर्थात् कल्याणकारी होगा ॥ अब स्वामिवत्सल कहते हैः-कि स्वामि (वत्सला) क्या वस्तु है ॥ स्वामीवत्सल नाम जोकि साधर्मी अर्थात् जिसकी सरीसी क्रिया वा श्रद्धा मिले उसी का नाम साधर्मी है उसीको जो वत्सलता नाम सहायदेना, किस बात में कि जिसमें उसका सुख करके अर्थात् निर्विघ्नपने धर्म ध्यान निभे उसीका नाम स्वामीवत्सल है । अब इस का विशेष अर्थ खोलते हैं कि जैसे कोई दीनमनुष्य है और अशुभ कर्म के उदय से वह बहुपरिवारी है अर्थात् परिवार उसके बहुत और आजीविका थोडी है उसको अपना साधर्मी जानकर रोजगार अथवा जीविका से लगना अथवा धन आदि से उसे सहायदेना अथवा कोई अशुभ कर्म के उदय से किसी का कर्जा आदिक देना है वा कोई राजा आदिक की विपत्ति में फँसा हुवा है उन कठिनाइयों से उसको छुटाना और सहाय देकर उससे धर्मध्यान कराना उसीका नाम स्वामी वत्सल है केवल अपनी कीर्तिके वास्ते जो भोजन आदिकका खिलाना वा वर्तमानकी विवस्था जो स्वामी वत्सलकी हो रही है उसके मध्ये तो आत्मारामजीने "जैनधर्मविषयक प्रश्नोत्तर" में गधा खुरकनी करके लिखा है सो वहांसे देख लो, अब जो कि १२ प्रकृतिका क्षय होनेसे साधु मुनिराजकी पदवीको प्राप्त होते है सो उन साधु मुनिराजका वर्णन तो गुरुके स्वरूपमे लिख आये हैं परन्तु अब जिनकी अनन्तानुवन्धी अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी दूर हुई है ऐसे जो मुनिराज है उनका दिनभरका कृतशास्त्रके अनुसार किञ्चित् लिखते हैः-कि जिस वक्त एक पहर रात रहे उस वक्त में साधु निद्रा दूर करे और २४ तीर्थंकरों का नाम ले ९ तथा ७ नोकारगुणें जो लघु नीत बड़ नीत की बाधा होवे तो उसको मिटावे और मिटाय कर इरियापथकी पडिक्कमे और (तस उत्तरी) (अनथ्थ उसीसिया) कहइ का उसग्गा करे उसका उसग्गा की रीति गुरु कुलवास विना प्राप्ति होय नहीं किञ्चित स्वासोस्वाससे शास्त्रमें कहा है परन्तु असल रीति तो विना सच्चे गुरुके मिले नहीं किन्तु प्रसिद्ध में तो चार नोकार वा एक लोगस्सका उसग्गा करना है सो उस जगह करे फिर प्रगट लोगस्सक है फिर कुस्वप्न दुस्वप्न राई प्रायछित विसोदवा निमित्त करे मिका उसग्गा कहकेका उसग्गा करे फिर का उसग्गा पाठ करके प्रगट लोगस्स करे फिर श्री जिनराजका चैत्यवन्दन करे अब इस जगह चैत्यवन्दनके मध्ये कोई आचार्य्य तो कहते हैं कि कुस्वप्न दुस्वप्नका उसग्गा चैत्यवन्दनके पीछे करे कोई कहते हैं कि पहले करे फिर चैत्यवन्दन करके पश्चात् सिझाय करे अर्थात् सूत्रकी सिझाय करे सो जबतक प्रतिक्रमण करनेका समय

न होवे तबतक तो सिझ्झाय करे फिर जब प्रतिक्रमण करने का समय होवे तब प्रतिक्रमण करे सो प्रतिक्रमणादिककी तो विधि तो अनेक सूत्रोंमें है अब प्रतिक्रमण करनेके पश्चात् साधु पडिलेहणा करे सो पडिलेहणा की विधि तो गुरुके प्रकरणमें कह आये हैं अथवा और ग्रन्थोंमें पडिलेहणाकी विधि है सो प्रसिद्ध है पडिलेहणा करके बाद बाधा आदिक होय तो बाधाको मिटाय जिन मन्दिर जाय और भगवद्दर्शन करे फिर उपासरेमे आयइरिया वही करके फेर सिझ्झाय करे जब तक छः घड़ी दिन न आजावे, छः घड़ी दिन चढ़े के बाद उघाड़ पोरसी मूहपति पडिले है और पातरांकी पड़िलेहणा करे सो साधुओंमें प्रसिद्ध है फेर सो ध्यान में बैठे सो एकपहर अर्थात् १२ बजे तक ध्यानकरे उस ध्यान में यातो सिझ्झाय अर्थात् सूत्रोंका अर्थ विचारे अथवा धर्म ध्यान आदिक, अथवा पदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ आदि विचारे इन ध्यानों का वर्णन तो पांचवें प्रश्न के उत्तर में कियाजायगा फेर गोचरी लावे अथवा जिस क्षेत्र में जिस वक्त मे गृहस्थियों के घर मे रसोई होवे उस वक्त साधु गोचरी लेआवे सो इसकी विधी और ४२ दूषणों का टालना तो हम गुरुके स्वरूप मे लिख आये है परन्तु इतनी बात इस मे और है कि एकतो पच्चखाण पाड़ती दफै चैत्यवन्दन करे और एकआहार करके बाद चैत्यवन्दन करे, फेर जो कुछ ठल्ले आदि व बाह्य क्रिया करनी हो सो करे फिर तीसरे पहरकी मुहपत्ती पडिलेह और फिर वस्त्र आदिकों की पडिलेहणा करे और उपासरे का काजा निकालकर इरिया वही करे और जो नित्य भोजी अर्थात् रोजीना भोजन करनेवाला है कि जिससे एकान्तरा, बेला, तेला इत्यादि तपस्या नहीं होती है वह एक दफै आहार करे क्योंकि श्रीकल्पसूत्र आदिको मे नित्य भोजीकी दूसरी दफे आहार करना मने है इस वास्ते एक दफेके आहार करनेवाला साधु जबतक प्रतिक्रमणका वक्त न होय तब तक सिझ्झाय करे और जिस साधुको तपस्या आदिक वा कोई कारण से आहार की इच्छा होय तो आहार लाके करे, आहार करे के बाद सिझ्झाय करे जब प्रतिक्रमणका वक्त होय तब सूत्रके पाठको समाप्त करके प्रतिक्रमण करे प्रतिक्रमण करेके बाद फेर सूत्रोंकी सिझ्झाय करे जब छःघड़ी रातजाय अर्थात् प्रथम पोरसी रात्रि में इरिया पथ्य की करके चैत्यवन्दन आदिक करे और फिर राई संथारा करे सो जब इस कृतको करचुके तब संथारा बिछाय कर उसके ऊपर आसन दृढ़करके ध्यान करे आसनकी विधिभी पांचमें प्रश्न में कहेंगे वो ध्यान एक पहर करे अर्थात् १२ बजे राततक करे फिर ध्यान से उठकर एक पहर भरकी निद्रा काढ़े फिर उसीवक्त निद्राको दूरकर उठजाय यह साधुकी दिनभर की कृत कही जो स्वरूप आगे कहआये हैं और इस कृत के सहित जो मुनिराज करने वाले है उनहीं को भगवतने छठे गुणठाणे में कहा है सो अब हम किञ्चित् गुणठाणे का विशेष विचार है सो लिखते हैं और जो प्रकृतियों का बंध और उदय और क्षयहोना इन बातों को हम नहीं लिखेंगे क्योंकि यह गुणठाणो की प्रकृतियोका विचार तो बहुत जनोंने अपनी कृत पुस्तकों में लिखा है इसवास्ते उनपुस्तकों से जानलेना मैंतो किञ्चित् विशेष बातको लिखता हूं शास्त्रो में १४ गुणठाणे कहे हैं प्रथम गुणठाणा क्या चीज है? तो कहते है कि गुणों का स्थान नाम जगह उसका नाम गुणस्थान है अब यहां कोईकहे कि पहिले मिथ्यात्व गुण ठाणे को गुणठाणा नहीं बनता क्योंकि मिथ्यात्व कुछ गुण नहीं इसलिये पहलाही गुण

ठाणा नहीं बना तो फिर आगे गिनती कैसे चलेगी तो हम इसका समाधान देते हैं कि भोलेभाई; नेत्रमींचकर कुछ विचार करो कि जो पेश्तर मिथ्यात्व को गुणस्थान न कहते तो जिज्ञासुकी ऊपरले गुणस्थानों में प्रतीति न होती क्योंकि पदार्थ के ज्ञान होनेकेवास्ते उसके प्रतिपक्षी पदार्थ की अपेक्षा अवश्यमेव रहती हैं इसलिये पेश्तर मिथ्यात्व को गुणस्थान कहा और दूसरा एक समाधान यह है कि मिथ्यात्व भी एकतरह का गुण है इसलिये इसको गुणस्थान कहा तीसरा समाधान यह है कि जब वह सूक्ष्म निगोद राशीमेंसे निकलकर बादर एकेन्द्री आदिक में भ्रमण करता हुवा द्वै इन्द्री त्रै इन्द्री चतुर्थे वा पंचेन्द्री तिर्यंच मनुष्य आदि में भ्रमण करता हुवा मिथ्याधर्म आदि सेवन करके वा व्यवहार राशी निगोद वा और कोई द्वैइन्द्री त्रै इन्द्री आदि में भ्रमण करे ये सब जन्म मरण होने से जीव को शुद्ध धर्म की प्राप्ति न होवे इस से भी उसको मिथ्यात्व की प्रबलता होने सेही जन्म मरण नाना प्रकारके हुवे इस लिये उसको जगह जगह विपरीत धर्मके सेवनसे उसको मिथ्यात्व गुण स्थान कहा इस लिये गुणका जो स्थान उसीका नाम गुण स्थान यह सिद्ध हुवा तो अब तीन गुणस्थान जो हैं पहला, दूसरा, तीसरा इन गुण ठाणोंमें तो आत्म धर्म है नहीं क्योंकि प्रथम गुण ठाणा तो मिथ्यात्व है इस लिये इसमें नहीं. दूसरा गुणठाणा जो है उसका नाम सास्वादन है सास्वादनका अर्थ यह है कि वस्तु तो न रहे और वस्तुका स्वाद मात्र प्रतीति रह जाय जैसे कि किसी पुरुषने घी, खांड, क्षीर मिलायकर खाया और खायकर उसी समय वमन (कै) कर दिया तो उसके घी खांड क्षीर कुछ पेटमें रही नहीं परन्तु किञ्चित् थोडी देरके वास्ते स्वादमात्रका खयाल रहा इसी रीतिसे जो जीव समगतसे पड़ता हुवा जब उसने समगत वमन किया उसका किंचित् खयाल रहजाता है इस लिये इसका नाम सास्वादन गुणठाणा है तीसरा जो मिश्र गुणठाणा है उसमें जिन वचनके ऊपर न राग है और न द्वेष है जैसे नारियलद्वीपमें जो मनुष्य होते है वह लोग नारियल खाकर अपनी गुजरान करते हैं परंतु जो उनको अन्नादिक मिले तो उस अन्नपर न उनका राग है न द्वेष है क्योंकि राग होता तो उस अन्नको प्यारा जानकर खाते और नारियलको न खाते और उस अन्नपर द्वेष होता तो उसको दृष्टिसे देखतेभी नहीं इसी रीतिसे वीतरागके वचनको न तो वे शख्स ग्रहण करते हैं और न उसको बुरा कहते है वे तीसरे गुणठाणेवाले है इस लिये इसका नाम मिश्र है अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि यह तो मिश्र गुणठाणा बहुत उत्तम है क्योंकि इस गुणठाणेवालेको न राग है न द्वेष है; समाधानः—हे भोले भाइयो ! इस वचनको सुनतेही उत्तम जान लिया परन्तु इसके रहस्यको न जाना क्योंकि देखो जो वे नारियलद्वीपवाले अन्नके स्वादको और पराक्रमको जान लेते वो कदापि इस अन्नसे विरक्त भाव न करते इसी हेतुसे जो पुरुष वीतरागके धर्मका स्वाद और पराक्रम जन्ममरण मिटनेका हेतु नहीं जाननेसे उन मनुष्योंको राग नहीं होता कि जैसे अन्धपुरुष रूपको चक्षुसे न देखनेसे भला बुरा न कह सके इसी रीतिसे मिश्र गुणठाणेकोभी जानना (न तु आत्मस्वरूप जानकर वीतरागपना) अवशेष ११ गुणठाणे बाकी रहे। (प्रश्न) इनमें ज्ञान गुण ठाणे कितने हैं और दर्शन गुण

ठाणे कितने है, और चारित्र गुणठाणे कितने है ? और गुण ठाणा क्रिया करनेसे आता है वा गुणठाणे आनेके बाद क्रिया करता है? जो कहोगे कि क्रिया करनेसे आता है तब तो जैन मतके अलावा और लोगभी नानाप्रकारकी क्रिया कर रहे हैं तब तो एक मतकाही नियम न रहा कि पांचवां गुणठाणा श्रावकका और छठा गुणठाणा साधुका है जो क्रिया करनेसे आता है तो जो क्रिया करनेवाले है उनको सर्वको कहना चाहिये और जो कहो कि गुण ठाणा प्राप्ति होनेके बाद क्रिया करते है तो जिस चीजकी इच्छा थी उसी चीजकी प्राप्ति हो गई तो फिर उसकी क्रिया करनाही वृथा है क्योंकि देखो जिस मनुष्यको भूख लगी है जब तक उसका पेट न भरे तब तक तो वो रोटी आदिकका यत्न करता है पेट भरेके बाद फिर वो यत्न नही करता इस वास्ते गुण ठाणोंकी कल्पना निष्प्रयोजन है? (उत्तर) अब हम इस जगह किञ्चित् अपनी बुद्ध्यनुसार द्रव्यानुयोग अर्थात् द्रव्यार्थिक और परियार्थिक नयकी विवक्षासे कुछ भावार्थ कहते है देखो कि ज्ञान नाम किसका है कि जानना (ज्ञ) अवबोधनेका ज्ञान बनता है और दर्शन नाम सामान्य उपयोगका है अथवा दर्शन नाम देखनेकाभी है क्योंकि दृश प्रेक्षने धातुसे दर्शन बनता है तो प्रेक्षा शब्दका अर्थ शास्त्रोंमें ऐसा कहा है कि सत् असत् विचारशीला इति प्रेक्षाः । इस अर्थके होनेसे इस शब्दको समगत अर्थात् श्रद्धामेंभी अंगीकार करते है इस वास्ते दर्शन नाम मानना अर्थात् विश्वासका है । अब चारित्र यह शब्द चरगति भक्षणयो धातुसे बनता है तो इससे क्या आया कि कर्मोंको भक्षण अर्थात् दूर करे उसका नाम चारित्र है अर्थात् यह तो इन शब्दोंका अर्थ हुवा तो ज्ञान गुण ठाणे तीन है चौथा आठवां और बारवां क्योंकि देखो चौथे गुण ठाणेमें जिस वक्त समगतकी प्राप्ति होती है उस वक्त निमित्त चित्तवृत्ति होकर शांतिरूप आत्मस्वरूपको जानता है इसी वास्ते समगतिको आत्मा प्रत्यक्ष है समगतिको आत्मा प्रत्यक्षमें कितने शख्स जिनधर्मके रहस्यके अजान समगतिको आत्मा प्रत्यक्ष नहीं मानते है तो अब हम कहते है कि जब समगतिको आत्माका प्रत्यक्ष नहीं तो समगत और मिथ्यात्वमें फरक क्या हुवा इस वास्ते इस विषयमे प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणको दिखाते है कि देखो बुद्धि पूर्वक अपने परिणाममें शुभ अशुभ कर्मरूप राग द्वेष धरता हुवा अर्थात् परिणाम जीव द्रव्यसे उठे है इस वास्ते जीव परिणामी द्रव्य है इस लिये बुद्धिपूर्वक अपने परिणामको देखे हैं इस अनुमानसे आत्माका देखना सिद्ध हुवा क्योंकि देखो जैसे बद्दल मेघकी घटाकरके घनघोर है परंतु अन्धकारमें कुछ मालूम नहीं होता किन्तु जब सूर्य्य उदय होता है उस समय वह मेघकी घटा काली बहुत छारही है तो भी प्रकाश हो जाता है तो देखो सूर्य प्रत्यक्ष न हुवा परंतु अनुमानसे मालूम होता है कि सूर्य्य उदय होगया इसी रीतिसे जब समगतकी प्राप्ति जिस जीवको हुई उस समय उस जीवके ५ भूषण प्रगट होते हैं १ सम २ समवेग, ३ निर्विद्य, ४ अनुकंपा और ५ आस्ता । इन पांचों भूषणोंसे तो अन्यको प्रतीति होती है और उस समगतवाले जीवको नैगमनय अपेक्षा लेकर अंशरूप अनुभव प्रत्यक्ष हो रहा है इस वास्ते जिन वचनपर प्रतीत रखकर स्याद्वादशैलीरूप समगतको आत्मा प्रत्यक्षही माननी ठीक क्योंकि देखो श्रीआनन्दघन जी महाराज १५ श्री धर्मनाथजीके स्तवनमें तीसरी गाथा कहते है कि "प्रवचन अंजन जो

सद्गुरु करे, देखे परमनिधान, और श्री यशविजयजी सवासौ गाथाके स्तवनकी वीसवीं गाथामें कह गये है, तो किञ्चित् चौथे समगत दृष्टी गुण ठाणेमें आत्मस्वरूप धर्मका बोध हुवा इस लिये ज्ञानगुणठाणा है बाकी पांचवां सो श्रद्धा लिये हुवे किंचित् दर्शन संयुक्त चारित्र गुण ठाणा है और छठा और सातवाभी चारित्र गुणठाणा है क्योंकि इसमें कर्मोंकी निर्जरा है और परवस्तु जानकर भव्य जीव त्याग करता है। अब (८) आठवें गुण ठाणेमे जो शुक्ल ध्यानका प्रथम पाया निरालंब आत्मरूपको जो विचारना और आत्म धर्मको मुख जानकर आत्मज्ञानमें आत्माकी प्रतीतिका जो ज्ञान इसी वास्ते इसको ज्ञानगुण ठाणा कहते है क्योंकि इसमे द्रव्य पर्यायरूप जो संक्रमण सविकल्परूप इस अपेक्षासें इसको ज्ञान गुणठाणा कहा (९) नवां (१०) दशवांभी चारित्र गुण ठाणा है क्योंकि इसमें प्रकृतिका क्षय हुवा चला जाता है अब (११) ग्यारवां गुणठाणा पडवाई भाव होनेसे इसको किसीमें न गिना क्योंकि ग्यारवें गुणठाणेवाला नियम करके पडे और ऊपरको न चढे इस लिये इसको किसीमें न गिना अब (१२) बारवें गुण ठाणेमें शुक्ल ध्यानका दूसरा पाया निर्विकल्प विचारता हुवा केवल ज्ञानके बल दर्शन सम्पूर्ण व्यक्तिभाव प्रगट होनेसे इसको ज्ञान गुण ठाणेमें अंगीकार किया फिर (१३) तेरवें गुण ठाणेमें कुछज्ञान प्राप्ती होनेका कारण बाकी न रहा क्योंकि केवल ज्ञान १२ के अंतमें सम्पूर्ण व्यक्ति भाव हो गया इस लिये यह तीन ज्ञान गुण ठाणे कहे और बाकी शेष रहे जो दर्शन और चारित्र गुण ठाणेमें जान लेना अब इस तेरमें गुणठाणे वाला वीतराग सर्वज्ञ श्री अरिहंत देव होतेहैं इनके चार कर्म शेष बाकी रहते है अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि वे चार कर्म क्यों बाकी रहते हैं और वे कर्म कैसे बाकी रहते हैं समाधान तो हम कहते हैं कि चार कर्म बाकी रहनेसे साम्भिरूढ़ नयवाला सिद्ध मानता है और जो तुमने कहा कि वे कैसे कर्म बाकी रहते हैं तो हम कहते हैं कि शास्त्रों में दो रीतिसे कहे हैं श्री हरिभद्रसूरिजी आवश्यककी २२ हजारी टीकामें चार कर्मजली जेवडीके समान कहते है और श्री सीलांग आचार्य्य महाराज सुगंडांगजी की टीका में जीरण वस्त्रोंके समान कहते है यह दो रीतिसे चार कर्मोंकी स्थिति सिद्धान्तों में कही है (शंका) जली जेवड़ी और जीर्ण वस्त्र इस में तो बड़ा भारी फरक हो गया तो किसका वचन प्रमाण माने और जली जेवड़ीसे दिगम्बर आमना भी पुष्ट होती है क्योंकि वे भी जली जेवड़ीके समान मानते है तो इस में तो सुननेवालेको बड़े भारी सन्देह उत्पन्न हो गये और सन्देह दूर होना मुशकिल हो गया और सन्देह रहनेसे कषाय मोहिनी कर्म बन्धता है (समाधान) मेरी बुद्धिके अनुसार इन दोनों ग्रन्थकारोंका आपस में जो विरोध उसके दूर करनेके वास्ते अथवा जिज्ञासुका सन्देह निवृत्ति होनेके वास्ते मैं किञ्चित् अनुभव कहता हूँ कि देखो श्री हरिभद्र सूरिजी महाराजका जो जली जेवड़ीके समान कहना है सो जो कि केवली समुद्घात न करे उसकी अपेक्षा तथा अन्तगढकेवलीकी अपेक्षासे है परन्तु मुख्यता में तो जो केवली समुद्घात नही करनेवाला है उसीकी अपेक्षा है इस स्याद्वाद वीतराग मतके आचारियोंकी सेलीसे अज्ञात हुवे पुरुष एकान्त पक्षको खैंच कर अपने वचनको सिद्ध करते हैं सो जिन आगमके अजान है अब श्री सीलांगजी अचार्य्य महाराजका अभिप्राय कहते हैं

कि जो जिन आगमके रहस्यके अजान एक जली जेवड़ीको ही अंगीकार कर बैठे हैं उनकी शिक्षाके वास्ते कहते हैं कि ४ कर्म जीर्ण वस्त्र तुल्य रहते हैं क्योंकि देखो जब जली जेवड़ी होती तो केवली समुद्‌घात न करता इस लिये जब केवलीके आयु कर्म थोड़ा रहता है और तीन कर्म विशेष रहते हैं जब उन तीनो कर्मोंको आयुकी बराबर करनेके वास्ते केवली समुद्‌घात करता है जो एकान्त जली जेवड़ी समान कर्म रह जाते तो समुद्‌घात करनेका कुछ काम नहीं था इस वास्ते सुगडांगजी सूत्रकी टीकाकारका अभिप्राय जीर्ण वस्त्रवत् कर्मोंको कहना सो केवली समुद्‌घात की अपेक्षा करके है और जो तुमने कहा कि दिगम्बरका मत पुष्ट हुवा तो हम तीसरे प्रश्नके उत्तर मे खण्डन आदि कर चुके हैं परन्तु किंचित् यहां भी कहते है कि जब दिगम्बर जली जेवड़ी समान कर्म मानेगा तो जो उनके आचार्योंके बनाये हुवे शास्त्रों मे लिखा है कि केवली समुद्‌घात करे तो देखो कि जब वे एकान्त जली जेवड़ी माने तो उनके शास्त्रों में जो केवली को समुद्‌घात करना कहा है सो उनके शास्त्रोंके वचन मिथ्या हो जायेंगे क्योंकि जेवड़ी जली हुई पड़ी है उस में वल अर्थात् ऐंठा मात्रही दीखता है परन्तु हाथ लगानेसे वो कुछ उठने लायक नहीं होती इस वास्ते उनको भी जीर्ण वस्त्रवत् मानना चाहिये इस रीतिसे अपनी बुद्धचनुसार इन दोनों आचार्य महाराजोंका का अभिप्राय कहा इन दोनों आचार्य महाराजके अभिप्राय में न्यून अधिक हुवा तो मैं मिथ्या दुक्कड़त देता हूँ और जो बहुश्रुत गीतार्थ कहे सो मुझे प्रमाण है अब जो गुण ठाणोंकी प्राप्तिके मध्ये शंका की थी उसका समाधान देते हैं कि जैसे चक्रवर्ती राजा के पहले चक्र पैदा होता है पीछे उस चक्रसे देशादिक साधता है पहले देश आदिक साधे तो कदापि सिद्ध न हो इस रीति से गुण ठाणेको समझ लेना अथवा लक्ष मुद्रा किसीको पैदा करना है तो जो लाख रुपये पैदा करने के पीछे जो नौकर चाकर वैभव फैलाना सो उस लाख रुपये की रखवाली उसकी रक्षा करनेके वास्ते है कदाचित् जिस मनुष्यके पास लाख रुपये न हों और वह लखपतीका सा नौकर चाकर वैभव फैलावे उस वैभव को देख कर लोग हँसी करते और कहते हैं कि इसने किसीके द्रव्य छीनने के वास्ते ऐसा जाल फैला रक्खा है इसी रीतिसे अब गुण ठाणेको उतार कर दिखाते है गुणठाणा नाम गुण-का स्थानक सो तो हम पेस्तर लिख आये हैं परंतु गुण समूह होना सो तो प्रणामकी धारा से है सो गुण ठाणा तो परिणामकी धारासे हुवा उस क्रियाका जो करना सो उस गुणकी रक्षाके वास्ते क्रियाका करना है जैसे वो लक्ष रुपयेकी रक्षाके वास्ते नौकर चाकर वैभव करता है तैसेही गुणकी रक्षाके वास्ते क्रियाका करना है औ जिनको गुण ठाणेकी अर्थात् गुण स्थानकी प्राप्ति तो हुई नहीं और जो क्रियाकलापकारते हैं सोही उनका जाल है क्यो-कि विना गुणके आये विदून उस गुणके मुवाफ़िक़ क्रिया यथावत् कदापि नही होती इसी लिये उनके परदे खुल जाते हैं क्योंकि विना रुचिके यथावत् क्रिया नहीं होती इसी लिये श्री आनन्दघनजी महाराज श्री संभव जिनके स्तवनमें कहते हैं 'अभय, अद्वेष, अखेद" सो ये बाते कब होंगी कि जब गुण ठाणेंकी प्राप्ति होगी जब ही उस गुण ठाणेकी क्रिया निर्भय और निर्दोष होकर खेद रहित क्रियामे प्रवृत्ति होगी जैसे वह लखपती लाख रुपया-

के जोरसे उस लाख रुपयेके काम लायक किसीसे भय नहीं करता है और जिसके पासमें लाख रुपया नहीं है खाली आडंबर करता है उसको अपने दिलमें भय बना रहे कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी कलई खुल जाय इसी रीतिसे जिनको गुण ठाणा नहीं वो सिर्फ क्रिया करनेमें भय रखते हैं और द्वेष भी रखते हैं और क्रिया करनेमें खेदभी मालूम पड़ता है अब तेरवें गुण ठाणेका वर्णन कर चुके अब चतुर दशवां गुण ठाणेसे रहता हुवा अरहंत देव शुक्ल ध्यानके दो पाये ध्याते हुवे सेलेसी करण करके मोक्षमें प्राप्त होते हैं इस करके किञ्चित् गुण ठाणेका स्वरूप कहा अब भो देवानुप्रिय ! और जो तुमने चौथे प्रश्नमें श्री वीतराग की स्याद्वादवाणी रूप मार्ग मोक्ष साधन समगतकी प्राप्तिका पूछा सो मेरी बुद्धि अनुसार किञ्चित् मैंने कहा इस स्याद्वादमार्गको इन्द्रादि असंख्य देवताभी मिलकर कहैं तो भी इस स्याद्वाद मतको पूरा वर्णन न कर सके सो इस वास्ते तुम लोगोंको अवारके काल मूजिब किञ्चित् श्री वीतरागके धर्मकी जो प्राप्ति हुई है इससेही और भी अपनी बुद्धि अनुसार स्याद्वाद वीतरागके मार्गकी खबर करते हुये अर्थात् चाहना रखते हुये अपनी आत्माका कल्याण करो ॥

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्यमुनिचिदानंदस्वामि विरचिते स्याद्वादानुभव रत्नाकरे चतुर्थप्रश्नोत्तरं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पञ्चमप्रकरण-हठयोगवर्णन ॥

अब तुम्हारे पांचवें प्रश्नका उत्तर लिखते हैः-कि तुमने पूछा कि हठयोग क्या है तो अब इस योगशब्दका अर्थ करते हैं-योग नाम मन, वचन, काय यह तीनो योग है अथवा अष्ट योग हैं उनका वर्णन हम आगे करेगे अथवा ज्ञान दर्शनादि यहभी योग हैं अथवा करना कराना अनुमोदना यहभी योग हैं अथवा जिस २ वस्तुका मिलाना उसको भी योग कहते है १ अथवा इच्छायोग, २ शास्त्रयोग, ३ सामर्थ्य प्रतिज्ञा योग, इत्यादि अनेक नानाप्रकारके योग हैं परन्तु इस जगह तो हठ शब्द योग के संग मिलने से हठयोगका वर्णन किया जाता है इसवास्ते हठनाम जोरावरी अर्थात् जिद्दसे करना उसका नाम "हठ" है उसमें जो योगोंको मिलाना उसका नाम हठयोग है सो इस हठयोग में भी नानाप्रकार हठनाम जिद्द करके जो तप अथवा अवग्रह आदिलेना उसका नाम भी हठयोग है परन्तु इस जगह तो हठयोग अर्थात् आसन प्राणायाम आदिकों का करना उसीका वर्णन करते है सो इस जगह प्रथम आसनों का वर्णन करते है कि आसन किसको कहते है और क्या चीज है और आसन के करने से क्या फल होता है सो प्रथम आसन लिखते है सो आसन तो चौरासी लक्ष हैं जिनमें से भी चौरासी आसन मुख्य कहते है सो इस जगह हम आसनोंका वर्णन करते हैं क्योंकि जो विशेष करके शरीर आदिकों के रोग दूरकरें और चित्तकी सुस्ती दूरकरें और जो ध्यानादिक में सहायता देनेवाले

है उन्हींका वर्णन करते है पेश्तर (१) स्वस्तिक आसन कहते हैं क्योंकि यह सब में सुगम है जंघों के मध्य में दोनों पगोंके तलुवों को करके सरलदेह करके बैठ जाना उसका नाम स्वस्तिकासन है अब दूसरा (२) गोमुखासन कहते है बांईओर अर्थात् डाई ओर कटी के नीचे दक्षिण पगकी गुल्फ अर्थात् एडी धरके और जीवणी कटीकी तरफ बांई अर्थात् डाबे पगकी एडी को धरके बैठजाय अर्थात् दोनों घोटूं तराऊपर होजायँ जैसे गऊका मुख अर्थात् गऊके माफक जैसे गऊके दोनों होठतरा ऊपर होवें तैसे करबैठ जाय अब वीर आसन कहते है:-वीरता नाम जैसे युद्धमें मनुष्य बाणको खेंचते हैं उस आसनका नाम वीर आसन है सो कई तरहसे होता है इस लिये नाममात्र लिखा है क्योंकि आसनोंकी प्रक्रिया तो गुरुके पास अपनी दृष्टिसे देखे और गुरु करके बतावे जबही यथावत् मालूम होती है ॥ अब कुरुड आसन कहते है:-दोनों पगोंकी एडी गुदाको रोक करके सावधान स्थित होय उसका नाम कुरुड आसन है । अब कुक्कुट आसन कहते है:-कि डाबे पगके तलवेको जीवणी जंगाके ऊपर रक्खे और जीमणे पगके तलवेको डाबी जंघाके ऊपर रक्खे अर्थात् पद्म आसन लगायकर फेर दोनो हाथोंको ऊरू अर्थात् जंघाके बीचमें हाथ घुसेड़कर जमीन पर टेके, फेर हाथोंपर बल देकर और आसन लगा हुवा ऊपरको उठे और जमीनसे अधर हाथोंके ऊपर खड़ा रहे उसका नाम कुक्कुट आसन है।अब धनुष आसन कहते है:-दोनों पगके अंगूठाको दोनों हाथोंसे ग्रहण करके एकको कान पर्यन्त लावे धनुष कैसी तरह आकर्षण करे अथवा ऐसाभी कहते है कि एक पगको फैलाय करके एकसे अंगूठाको ग्रहण करे और एक हाथ कान पर्यन्त करे इसकाभी नाम धनुष आसन है । अब पश्चमतान आसन कहते है:-दोनो हस्त पृथ्वीमें दंडकी तरह लम्बे करे और दोनों पांवभी लम्बे करे और दोनो हाथोसे दोनों पैरके अंगूठेको जोरसे खेचे और फिर जघांके ऊपर माथा लगाकर स्थिर हो जाय अथवा दोनो पगोंको मिलाकर दोनो हाथोंको मिलाकर पकड़े रहे और फिर मस्तकको जंघोंपर स्थित रक्खे अब इस आसनका फल कहते है:-यह आसन पहले कहे हुए आसनोमे मुख्य है सो सुखम्णा मार्ग करके चल रहा जो प्राण तिसको अति सूक्ष्म करे पेटकी अग्निको तीव्र करे है और पेटके मध्य देशमें कृस्ता करे है और रोग आदिकको दूर करे है और कब्जी आदिकको दूर करे है अर्थात् दस्तको खुलासा करता है और कई तरहके रोगादिकको अच्छा करता है । अब मयूर आसन कहते है:- दोनों हाथ जमीनपर रक्खकर दोनों कोहनी मिलायकर नाभी और कलेजाके बीचमे रक्खकर उनकोन्हियोंके ऊपर सर्व शरीरका जोर देकर ऊंचेको होय और दोनो पगोंको सीधे खड़ेकरे जमीनसे अधर रहे अथवा जैसे मयूर नाचता है ऐसे जो पग ऊंचे करे उसकोभी मयूर आसन कहते है, अब इसके करनेसे क्या गुण प्राप्त होते है सो कहते है कि इस आसनके करनेसे पेटका जलंधर रोग जाता रहता है और पेटकी ताप तिल्लीभी जाती रहती है और वात, पित्त, कफ इन तीनोंकोभी हरता है और कुत्सित अन्न आदिक जो भक्षण करे उसकोभी भस्म कर देता है अर्थात् पेटका कोईभी रोग नहीं रहता है । अब शिवासन कहते है:-कि जमीनसे पीठ लगायकर शयन करे और हाथ पग सीधेकर दे अर्थात्

जैसे मुर्दा होता है उसकी तरह सरल हो करके सोय जाय, इस आसनसे शरीरका परिश्रम दूर होता है इस लिये परिश्रम दूर करनेके वास्ते यह आसन श्रेय है। अब सिद्ध आसन कहते हैं–कि डावे पगकी एडीको योनिके मध्य में लगावे (योनि नाम लिंग और गुदाके बीच मे है उस जगह का नाम योनि है) और जीमने पगको उठाय कर लिङ्गकी जड़मे एडी को लगावे इस रीति से बैठ कर ठोडी जो है सो हृदयसे चार अंगुल फरकसे रक्खे और नेत्रोंकी अचल रूप दृष्टिसे भ्रुकुटि के मध्य में देखे इसका नाम सिद्ध आसन इसका फल बहुत शास्त्रों में लिखा है। अब पद्म आसन कहते हैः– बांई जांघ तिसके ऊपर जीमणा पग स्थापन करके बांये पैरको जीमणी जांघ पर स्थापन करके जीमणे हाथ को पीठ पीछे फेरके बाई जांघ पर स्थित पगके अंगूठेको पकड़े और ऐसे ही बांये हाथको पीठ पीछे लेजा करके जीमणी जांघपर स्थित जो बांया पैर उसके अंगूठेको ग्रहण करे और हृदयके समीप ठोडीधरके नासिकाकी डंडीको देखे अथवा वो हाथ पीछे की ओर न ले जाय किंतु हाथोंको दोनों एडियोंके बीच मे ऊपरतली रक्खे अर्थात् डांयानीचे और जीमणा ऊपर रक्खे अर्थात् जैसे वीतरागकी प्रतिमा मन्दिर में स्थापितकी हुई होती है उस तरह जान लेना यह दोनों रीति पद्मासनकी कही इत्यादिक आसनों की विधि श्री हेमाचार्य कृत योगशास्त्रमें लिखी है सो उस योग शास्त्रसे जिस की इच्छा हो सो जान लेना । अब इन चीजोंका साधनेवाला कैसा हो कि अव्वल तो ब्रह्मचारी हो दूसरा उसमें क्षुद्रपना नही हो अर्थात् गंभीर आशय वाला हो परीसाको जीतने वाला हो आलसी न हो क्रोधी न हो कपटाई न करे निरहंकारी हो लोभी न हो जितेन्द्रिय हो अर्थात् इन्द्रियोंको वश-में करनेवाला हो गुरुका आज्ञाकारी हो आत्मार्थी हो मोक्ष अभिलाषी हो परिश्रममें थक-ने वाला न हो इत्यादि जिसमें गुण होंगे वोही इस हठ योगके लायक होगा अब जो हठ योगका करने वाला है उसके वास्ते आहारकी विधि लिखते हैं प्रथम तो जितनी उसकी क्षुधाहो उस क्षुधाके चार भाग करे उसमेंसे दो भाग तो अन्नसे उदरमें भरे और एक भाग ज-लसे भरे उदरका एक भाग खाली रक्खे क्योंकि एक भाग खाली रखनेसे श्वास उश्वास, वायुके आने जानेका प्रचार ठीक २ होगा क्योंकि जो वो अन्न और जलसे संपूर्ण पेट भर लेगा तो उस वायूका आना जाना ठीक नही होगा अब कहते है कि आहारका करने वाला किस आहारको अंगीकार न करे सो आहार कहते है प्रथम कटुक कहता कडुवा नीमके पत्ता, अमल, चिरायता, वगैरः अंगीकार न करे दूसरे अमल कहतां खटाई सो इमली कैरी, जा-मन, जमेरी नीबू आदिक जो नाना प्रकारकी खटाई हैं उनको न अंगीकार करे और तीसरा लाल, मर्चभी बहुत न अंगीकार करे लवणभी बहुत न खाय ४ अति उष्ण आहार न करे गुड़ तेलादिभी नहीखाय और हरित पत्र साग न खाय और तिल सरसों (शहत) मधु और मदिरा और मांस ये सब इस कामके करनेवाले के हक़ में बुरेहै दही छांछ कुलथा बेर तिल पापड़ी लहस्सन, प्याज, गाजर, मूली, बासीअन्न रंधाहुवा (फिर सेंकके) अतिरूखा आ-हारनाम घृत करके रहित कांजी इत्यादि इस कामके करने वाले को आहार न करना, क्योंकि इस आहार के करने वालेको कदापि हठयोगकी प्राप्ति न होगी फिर इस कामका करनेवाला बहुत ऊंचा नीचा गमन करना भागना अग्निका सेवन करना स्नान करना

इत्यादिक बातेंभी न करे और तपस्या आदिकभी बहुत न करे बहुत जनो से परिचय न रक्खे बहुत बोले नही बहुत भार आदिक न उठावे और एकान्त स्थानहो उसमे रहै और जिस जगह स्त्री आदिक का अथवा बहुत जनोंका आवागमन न हो अब जो इसके खाने को योग्य आहार है सो कहते हैः—गेहूं, चावल, जव, बाजरी, साठी के चावल, मूंगकी दाल, तूरकी दाल, उड़दकीदाल, दूध, घृतआदि भी प्रमाण से खाय सोंठ, पीपल, काली मिर्च, जाविन्री आदिक को कामपडें तो अंगीकार करे अर्थात् ऐसा आहार करे जो जल्दी पचजाय और गृष्ट न करे ऐसा जो करने वाला हो वह इस हठयोगका अधिकारी है रसना इन्द्री को त्यागेगा सोही करेगा नतु इन्द्रियों का रसीया ॥ अब जो कोई हठ योगको सिद्ध करना चाहे सो प्रथम सरोधा अर्थात् स्वरका अभ्यास करे जब तक पूरा २ उसको स्वर में तत्वोंका ज्ञान नहींहोगा तब तक योगकी सिद्धि कदापि न मिलेगी क्योंकि स्वरके ज्ञान विदून जोकोई प्राणायाम मुद्रा में परिश्रम करे है उनका परिश्रम व्यर्थ होता है इसवास्ते जो इस हठ योगकी इच्छा करनेवाले जिज्ञासु है उनको मुनासिब है कि सद्गुरुके पास से विनय आदिक सुश्रूषा करके इसकी कुंची सीखे और सरोधा तो बहुत जनोंका कियाहुवा है पुस्तकों में वर्त्तमान काल मे प्रसिद्ध है सो इसवास्ते उस बमूजिब तो लिखते हैं नही किन्तु जो स्वर और तत्वहै उनके नाम आकार आदि और साधन के भेद किंचित् लिखतेहै— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, औ आकाश यह पंच तत्व जो है सो चन्द्र और सूर्य दोनों नाड़ियों में चलते है सो स्वर प्रथम कहांसे उठता है वहीं से वर्णन करते हैं भ्रकुटी का जो चक्र है वहां से स्वर जो कहिये स्वास सो उठता है सो वहां से उठकर अगमचक्र के पास होताहुवा बंकनालके पास २ चलता हुवा नाभी मे आयकरके निवास करता है उसके आने की परीक्षा ये कहते है कि जैसे घड़ी मे चक्र के चलने से खट खट होती है तैसे उसका खटका प्रतीत देता है उसी रीति से नाभी मेभी बार बार होता है सो जबतक गुरुकृपा न हो तब तक उस खटकाके देखनेकी रीति मिलना मुश्किल है जो गुरु उस खटके को देखने की रीति बतावे तो खटकाभी दीखे और भी अनेक तरहके लाभहों कदाचित् कोई बुद्धिमान् एकाग्रचित्त करके उस खटकाकी प्रतीति करे तो करसके परन्तु इसका जो रहस्य है सो गुरुके विदून नही मिले क्योंकि श्री पंच परमेष्ठी मंत्र का स्तोत्र बनाया हुवा श्री मानतुंग आचार्य जीकृत जो है उसमें ऐसा लिखा है "गुरुकृपा विना कि पुस्तक भरिणः" इस वास्तेही गुरुकी मुख्यता है फिर उस नाभी से खटका के लगने से हृदयचक्र और कण्ठचक्र मे होकर गलेमें जो छिद्र है उनमें सो वायु निकलकर नासिकामे होकर चलती है और उन छिद्रोंमें भी इतना भेद है कि जो डावे छिद्रमे घुसती है सो तो जीमणें नकुवाकी नालमें होकर निकलती है और जो जीमणे छिद्रमें होकर घुसती है सो डावे नकुवाकी नालमे होकर जाती है फिर पीछेभी लौटकर इसी रीतिसे आती है अब इन स्वरोमें जो ऊपर लिखे हुये जो तत्व उनका किंचित वरण आधार है सो लिखते हैः—प्रथम पृथ्वी पीली १२ अंगुल चलती है सन्मुख अर्थात् सीधी मीठा स्वाद और सम चतुरंश आकार अर्थात् चौकोर ५० पल चलती है अथवा २० मिनिट, जंघामें स्थान है, (जलतत्व) सफेद रंग. १६ अंगुल

नीचेकी तरफ़ कषायला स्वाद वर्तुल आकार ४० पल अर्थात् १६ मिनिट पगतलीमें स्थान. (अग्नि तत्त्व) लाल रंग ४ अंगुल ऊंची तीखा अर्थात् मिर्चकासा स्वाद त्रिकोण आकार ३० पल अर्थात् १२ मिनिट स्थान कन्धा. (वायु रंग) हरा वा काला रंग तिर्छा. ८ अंगुल. खट्टा स्वाद. ध्वजारूप आकार नाभी २० पल वा ८ मिनिट० (आकाश तत्त्व) काला अथवा नाना प्रकारका रंग भीतरही चलता है सुन्न आकार कडुवा स्वाद १० पल अथवा ४ मिनिट, मस्तक स्थान अथवा सर्वव्यापी ॥ इन तत्त्वोंके वर्ण आकार आदिक कहे । अब इनके देखने की रीति कहते हैं—कि प्रथम तो जो हम लिख आये हैं सो उन पांचरंगोंकी पांच गोलियां और १ गोली विचित्र रंगकी, इन छवों गोलियोको पासमें रक्खे और जब तत्त्व बुद्धिमें विचारे उसी वक्त उन छवों गोलियोंमेसे १ गोली आंख मीचकर निकाले जो वह बुद्धिमे विचारा हुवा और गोलीका रंग एक मिल जाय तब तो जाने कि यह तत्त्व मिलने लगा अथवा दूसरे पुरुषसे कहे कि तुम रंग चिंतो जब वो पुरुष अपने मनमें रंग चिन्तले उस वक्त अपने नाकके स्वरमे तत्त्वको देखे और अपने तत्त्वको विचार कर उस पुरुषके रंगको कहे कि तुमने फलाना रंग चिन्ताथा जो उस पुरुषका रंग मिल जाय तो जाने कि मेरा तत्त्व मिलने लगा अथवा कांच अर्थात् दर्पण अपने मुख अर्थात् होठोंके पासमें लगाकर नाकका श्वास उसके ऊपर छोड़े उस कांचमें जैसे आकारका चिह्न होय उस आकारको ऊपर लिखे आकारमें मिलावे जिस आकारसे मिल जाय वही तत्त्व जान लेना अथवा अंगूठेसे दोनों कानोंको बन्द करे और दोनों तर्जनियोंसे दोनों आंखोंको बन्द करे और दोनों मध्यमा अंगुलियोंसे नासिकाके दोनों छिद्र बन्द करे और अनामिका, और कनिष्टिका इन चारों अंगुलियोंसे होठोंको ऊपर नीचे दाबे इस रीतिसे करके एकाग्र चित्तसे गुरुकी बताई हुई रीतिसे मनको भ्रकुटीमें लेजाय उस जगह जैसा तिलुला अर्थात् बिन्द जिस रंगका होय वोही तत्त्व जान लेना इन रीतियोंसे तत्त्वोंका साधन करे जिस पुरुषको तत्त्वोंकी खबर पड़ने लगेगी वह पुरुष कार्य अकार्य शुभ, अशुभ, गमना, गमन, लोक और परलोकके होने वाले वा न होने वाले तत्त्वोंके आश्रयसे कार्यको विचार लेता है और जो उन तत्त्वोंसे संसार कृत होते है सो तो स्वरोधोंकी पुस्तकोंमें लिखे हैं सो पुस्तके प्रसिद्ध हैं इस वास्ते हमको कहनेकी कुछ जरूरत नही हमको तो इस जगह हठयोगका वर्णन करनेके वास्ते प्रथम हठ योगकी भूमिका लिखनेके अर्थ किञ्चित् स्वरका भेद लिखा है क्योंकि जब तक स्वरकी सिद्धी न होगी तबतक हठयोग सिद्ध न होगा इसलिये जो कोई हठयोगकी इच्छा करे वह पुरुष पेश्तर इसको सिद्धकरले ॥ अब जो तत्त्व ऊपर कहआये हैं वो तत्त्व दोनों स्वर में चलते हैं उनदोनों स्वरों में तीन नाड़ी वहती हैं सो नाड़ी तो शरीर में ७२ है उन में २४ नाड़ी प्रधान हैं, और उन २४ में भी १० प्रधान है, उन १० मे भी ३ नाड़ी मुख्य है १ तो इंगला, २ पिंगला, ३ सुखम्णा, इनहीं तीनों को गंगा, यमुना, और सरस्वती कहते है और कोई इंगला, पिंगलाको सूर्य, चन्द्रमा, कहते है और दोनों के मिलापको सुखम्णा कहते हैं और कोई इनको दिन और रातभी कहते हैं इन दोनों के मिलाप को सायंकाल कहते हैं, कोई, डावी जिमनी भी कहते हैं इसीरीति से वस्तु एक है परन्तु अनेक नाम से बोलते है कृष्ण पक्ष अर्थात् बदी को सूर्य्य कहते है एकमके दिन

सूर्य चले तो अच्छा और शुक्लपक्ष अर्थात् सुदीपक्ष एकमके दिन चन्द्रमा चले तो अच्छा कहते हैं इसीरीति से शनिश्चर, रवि, मंगल यह तीनवार तो सूर्य के हैं और सोम, बुध, शुक्र, यह तीन चन्द्रमा के हैं बृहस्पति दोनों का है इसी रीति से किञ्चित् करके हमने कहा॥ अब हम प्राणायाम का भेद कहते हैं परन्तु प्राणायाम का प्रयोजन क्या है? तो मुख्य प्रयोजन तो प्राणायाम का मलशुद्धी अर्थात शरीर की शुद्धी होना है कि जिससे शरीर में कोई तरहका मल न विगड़े क्योंकि जो मल विगड़ाहुवा होगा तो प्राणायाम मुद्रा आदिक न हो सकेगा अथवा जिस पुरुष के मलादिक विशेष हो अथवा कफ आदिक हो वह षट्कर्म करे पहले उनका नाम लिखते हैं:—(१) नेती (२) धोती (३) ब्रह्म दातन (४) गजकर्म (५) नोली (६) वस्ती (७) गणेशकर्म (८) वागीकर्म (९) शंखपखाली (१०) आदिक; इन दशों वातों में से कई वाते तो अन्य मतके लोग कोई २ पुरुष करतेभी हे और उन लोगोंमेंसे इस वातकी प्रसिद्धिभी है और जिनमतमें इन चीजोंके करनेवाले वर्तमान कालमें नहीं हे और यह लिखी हुई सब वातें जलके आरंभ होनेसे उपयोगीभी नहीं हे परन्तु जिनवातोंमे जल आदिकका वहुत आरम्भ नहीं है और अवश्य उपयोगी है उन वातोंको किञ्चित् वर्णन करके नीचे खोल देंगे कि इन वातोमे आरम्भ नहीं और धर्म साधनमें उपयोगी है: अव हम (नेती) करनेकी रीति कहते हैं:—कि कच्चा सूत, मुलायम १। तथा १॥ हाथलम्वा ५१ तारका वा ७१ तार इकट्ठे मिलावे उस लम्वे १॥ हाथमेंसे ऐंठके ८ अंगुल तो वटले और शेष खुला रक्खे परंतु वह दोनो छोड़की तरफ़से खुले हुये रक्खे और वीचमेंसे वटे फिर उसके ऊपर किञ्चित् मोम लगावे जिससे वो कड़ा सतर रहे और मुलायमभी रहे जव प्रातःकाल उसको करे तव उष्णपानीमे भिगोवे और वह फिर अपनी नाकमें गेर जव वह गलेके छिद्रमे पुग जाय उस वक्त मुँहमें हाथ गेरके उस डोराको आहिस्ते २ खेचकर मुँहके वाहिर निकालले और वह वटा हुवा तो एक हाथमें और खुला हुवा छोड़ दूसरे हाथमे दोनों हाथोंसे आहिस्ते २ ऐसे खेचे कि जैसे छाछ (मट्ठा) विलोते हैं इस रीतिसे दोनो नासिकाके छिद्रोंमे करे उसीका नाम नेती है॥ (२) (धोती) की विधि कहते हैं कि अच्छी मलमल जिसके सूतमें गाठें आदिक न हों अथवा और कोई कपड़ा हो परन्तु वारीक हो सो कपड़ा ४ अंगुल तो चौड़ा हो और १६ हाथ लम्वा हो उस कपड़ेको उष्ण पानीमे भिजोकर निचोड़ डाले फेर उसको झड़काय कर एक छोड़ मुँहमें देकर उसको कवा अथवा ग्रास निगलते है वैसे निगले सर्व कपड़ा निगल जाय और शेष ४ अंगुल वाकी रहे जव कुछ पेट को हलावे और फिर आहिस्ते २ खेचकर सम्पूर्ण वाहिर निकालले फिर उसको साफकर धोकर सुखादे इस धोतीके करने से कफ आदिक न रहे इसको धोती कहते हैं. (३) ब्रह्मदातन की विधि कहते हैं:—कि जैसे सूतका डोरा अच्छी तरहसे वटकर कच्चे सूतके ऊपर उसको लपेटे सो ऐसा कड़ा लपेटे कि तिरपनीका डोरा अथवा जैसे रामसनेही कमर मे कंदोला लगाते हैं इसमाफक कड़ाहो और फिर उसके ऊपर मोम लगावे जिससे वो सचिक्कण होजाय परन्तु उसमें एक अंगुल सूतपर न तो डोरा लपेटे न मोम लगावे वो सूत मानिन्द कूंची के करले और वह वँधाहुवा सूतका डोरा सवाहाथ लम्बाहो उसको प्रातःकाल

उष्णपानी से भिगोकर अर्थात् गीलाकर मुख में गेरे जब वह कागल्या के पास में जाय अर्थात् आगे को जाय उसवक्त थोड़ासा हाथ के सहारे से नीचे को दावे जब वो गलेके नीचे जाने से आपही चलीजाती है और उसको यहांतक लेजाय कि चार अंगुल बाकी रहे तब उस चारअंगुल को हाथकी अंगुलियों से ऐसा आहिस्ते २ घुमावे कि जैसे कान मे रूई फेरते हे और फिर उसको निकालले और साफ करके रखदे इसको ब्रह्मदातन कहते हैं। (४) गजकर्म कहते हैं:–त्रिफला अथवा कोरा उष्ण पानी नाकसे पीना शुरूकरे और जितना पेट में मावे उतना पेटभर पीले और फिर पेटको खूब हलावे हलायकर जो उसको नीचे से वायू खेंचना मालूमहो तब तो वायू खेंचकर के और मुँहकी राह उस सर्वपानी को बाहिर निकालदे पेटमें किञ्चित् भी न रहे अथवा नीचेसे वायू खेंचकर निकालने की रीति न मालूमहो तो उकडू बैठकर जीमने हाथकी कोनी घोटूंपर जमायकर अंगूठे को मुंह में गेरकर कागल्याके उरली तरफही ऊपर तालवे को अंगूठे से मालिश करे अर्थात् सहरावे उस जगह एकनस अर्थात् नाड़ी है उसपर अंगूठा लगने से पानी बाहिर निकलआता है जो गुरूबतावे तो परिश्रम न पड़े और विना गुरूके जो अभ्यास करे तो २ तथा ३ दिन में मिलजाय क्योंकि अभ्यास भी बड़ी चीज़ है ; इसको गजकर्म कहते हैं क्योंकि जैसे हाथी सूंड़ से पानी पीकर मुँह से निकालता है इसवास्ते इसका नाम गजकर्म है। (५) अब नोली कहते हैं:–कि जिस समय ऊकडू बैठे अथवा खड़ाहोकर के दोनोंहाथ घुटनूपर रक्खे अथवा नीचे से पींडी को पकडे इनतीनों रीतियों में से किसी रीतिसे करे फिर पेटको पीठकी तरफ खेंचे जब वह पेट कमर में जायलगे उसवक्त गुरूकी बताई हुई जो रीति उससे वायु अर्थात् श्वाससे उन दोनों नलोंको उठावे कि जैसे दोनों हाथों को चौड़े करके अलग से मिलाते हैं और पस्स अर्थात् अंजली से पानी उलीचते हैं इस रीति से कुल पेटका भाग तो पीठ में लगारहा और जो नलोंका भाग था सो उठआया तो बीच में तो वह नल जेवड़ी के मुवाफिक खड़े हुए हैं और इधर उधर जो चारों ओरका जो पेटका भाग सो पीठसे लगाहुवा रहै जब ऐसा पुरुष के नल खड़ाहोजाय फिर वह प्राण और अपानवायु उन दोनों को ऐसा घुमावे कि जैसे कुम्हारका चाक, यह नाली कर्म कहा । (६) अब वस्तीकर्म कहते है:–कि कूंडे में त्रिफले का पानी या ऊनापानी भरे और छः अंगुलकी जस्त वा नरसल की नलको गुदा में चढ़ावे कि चार अंगुल तो चढ़ावे और दो अंगुल बाकी रक्खे फिर उस कूंडे के ऊपर बैठे और जो पेश्तर नोलीकर्म कहआये हैं उस रीति से नलों को उठावे और फिर अपानवायुकी कुम्भक करने से पानी ऊपर को चढ़ जाय जितनी देर नल खड़े रहेंगे और अपानवायु खिचेगी उतनीही देर तक हौले २ पानी चढ़ेगा फिर जब पानी चढ़ चुके तब नलीको निकाल दे नोलीचक्रको फिरावे और फिर ५ तथा ७ मिनट बाद रेचन करके बाहिर निकाले कदाचित् थोड़ा बहुत जल रह जाय तो मयूर आसन करनेसे मिकल जाता है, यह वस्तीकर्म हुवा (७) गणेश क्रिया कहते हैं:–कि जिस वक्त ठल्ले अर्थात् दिशा जाय जब मल अच्छी तरहसे निकलजाय तब मध्यमा अथवा अनामिका इन दोनों अंगुलियोंमेंसे एक पर वस्त्रका कटका रखकर उस अंगुलीको गुदामें गेरे और चारों तरफ़ फेरे इस रीतिसे दो तीन दफ़े करनेसे वह चक्र

साफ़ हो जाता है और कुछ मैल नहीं रहता है इसको गणेश कर्म कहते हैं (८) अब वागी कर्म कहते हैं:-कि जिस वक्त मनुष्य आहार करले उसके एक घंटा वा दो घंटाके बाद ऐसा जाने कि आहारका रस तो मेरे शरीरमें प्रणमन होगया और वकस बाकी रह गया उस वक्त जो कही हुई रीति गजक्रियामे है कि नीचे वायु खैंच करके या मुँहमें उसी तरह अंगूठा गेर करके उसको मुहकी राह होकर निकाल फेंक दे ऐसा जो करे उसका नाम वागीकर्म. (९) शंखपखाली कहते है शंखपखाली नाम उसका है कि शंखमें ऊपरसे पानी डाले और नीचेसे निकलता चला जाता है इसी तरहसे मुँहसे पानी पीता जाय और गुदासे निकालता जाय सो यह काम वही शख्स करेगा जिसको नोलीचक्र अच्छी तरहसे आता होगा क्योंकि जिस समय उसको मुहसे पानी पीना पड़ता है उसी वक्त नोलीचक्र फिरानेसे उस वायूके जोरसे गुदाकी राह निकलता हुवा चला जाता है इसको शंख पखाली कहते हैं। (१०) अब त्राटक कहते है कि दोनों नेत्रोंको याती किसी सूक्ष्म वस्तु पर स्थापन करे और पलक न मारे टक टकी लगाकर देखे उससे दूसरी जगह दृष्टी न फेरे अथवा पुतलीको घुमायकर दोनों भंवरेके जो केश है उनके ऊपर दृष्टिको ठहरावे. इसको त्राटक कहते है ॥ यह जो हमने दश बातोंकी रीतियें कही हैं सो ये शरीर अर्थात् मल शुद्धिके वास्ते है जिसका मल शुद्ध होय उसको यह बाते करना कुछ जरूर नही इनमेंही नोली और गणेशक्रिया और त्राटक और वागी इन चारों क्रियामे बहुत जलका आरंभ आदिक नहीं है और प्राणायाम आदि जो कुंभक मुद्रा है उनमें बहुत उपयोगी है इस वास्ते इनको अवश्यमेव करे यह सब कर्म हठयोगके पहले करनेके हैं और इनमेंभी त्राटक और वागी दो कर्म तो चाहे जिस वक्त करे परंतु शेपके जो आठ कर्म सो प्रातःकाल करनेके हैं आहारसे पहले करे. जो कोई पुरुष खाके पीछे करेगा तो नाना प्रकारके रोगादिकोंकी उत्पत्ति होगी इससे उनपर लिखी बातोंसे क्या प्रयोजन है और क्या फल है सो कहो? तो हम कहते हैं कि एक तो ध्यानादिक करनेमे यह चीजें सहकारी हैं क्योंकि शरीरका निरोग रहना यहही इसका फल है सोही दिखाते है कि ऊपर लिखी जो नेति आदि क्रिया जो करना है सो इस क्रियाके करनेसे रोग दूर होता है कि जिस समय जोगीके रोगसे ध्यानमे विघ्न पड़े जब जोगी जिस २ क्रियासे जो २ रोग जाते हैं उसी २ क्रियाको करके रोग दूर कर देते हैं और विना रोगके नित्य करनेसे काल निष्फल जाता है इस लिये नित्य करनेका नियम नहीं है परन्तु गुरूके पास सीखनेके अनंतर कुछ दिन तक निरंतर अभ्यास करे क्योंकि अच्छी तरह अभ्यास की हुई क्रिया समय पर जल्दी काम देती है और जो क्रिया या आसन ध्यानादिकमें उपयोगी हों सो सदा करने चाहिये परन्तु इन क्रियावो मे कोई सिद्ध व निर्जरा नही है और जो कोई इन क्रियावो मे धर्म मानते हैं व ठहराते हैं सो ठग हैं और जिनधर्मके अजान और जो इनको निषेध करते हैं वे भी जिनधर्मके अजान गुरु कुलवासके विना इन्द्रियोंके भोग और शरीरसे परिश्रम उठानेके डरसे और रसना इन्द्रीके लौल्यसे क्योंकि इन क्रियावोंमें खाने पीनेका यत्न करना पड़ता है कि खट्टा मीठा चरफरा अनेक वस्तुवोंका त्याग करना पड़ता सो उनकी जिह्वा न रुकनेसे अपनी धूर्तता लगाते हैं कि जिन

धर्ममें यह क्रिया नहीं है यह क्रिया अन्यमतकी है इस लिये उनकाभी कहना ठीक नहीं है ॥ अब प्राणायामके अव्वल तीन भेद कहते हैं १ पूरक २ कुम्भक ३ रेचक पूरक इसको कहते हैं कि वायु ऊपरको चढ़ाना अर्थात् पेटमे लेजाना उसको पूरक कहते हैं । और कुम्भक उसको कहते हैं:—कि जितनी देर श्वासको बंध रक्खे अर्थात् न तो खैंचे और न बाहिर निकले उसको कुम्भक कहते हैं ॥ रेचक नाम उसका है कि जो वायु रोकी हुई है उसको बाहिर निकालना उसको रेचक कहते हैं ॥ अव इन तीनोंकी रीति कहते हैं:—कि प्रथम पद्म आसन लगावे फिर इड़ा नाम चन्द्रनाड़ीसे अर्थात् डावी ओरके नासिकाके छिद्रसे वायुको खैंचे फिर अंगूठा और अनामिका इन दोनों अङ्गुलियोंसे दोनों नासिकाके छिद्रोंको बन्ध करे जितनी देर तक उसकी शक्ति हो उतनी देर तक कुम्भक करे मूलवन्ध; जलन्धर-बन्ध और उड्यानबन्ध इन तीनोंको करे; पिङ्गला नाड़ी अर्थात् जीमणे (दहिने) स्वरसे वायु को धीरे २ रेचन करे परन्तु इस रीतिसे धीरे रेचन करे कि जिसमें कोई तरहका शरीरको जोर न पड़े फिर पिंगला नाड़ीसे धीरे २ पूरक करे अर्थात् प्राणवायू खैंचता रहे फिर दोनों नासिकाके छिद्रोंको बन्ध करके कुम्भक करे यथाशक्ति कुम्भक करके पश्चात् वा चन्द्र नाड़ीसे बन्धपूर्वक हौले रेचन करे फिर जिस नाड़ीसे रेचन करे उसी नाड़ीसे पूरक करे यथाशक्ति कुम्भक करेके बाद बन्धपूर्वक दूसरी नाड़ीसे रेचन करे जब तक पसीना और कांपना होय तब तक करे जाय फिर जिस करके पूरक करे उसी नाड़ीसे रेचन न करे अर्थात् दूसरी नाड़ीसे रेचन करे, परन्तु जिस नाड़ीसे रेचन करे, पूरक उसी नाड़ीसे करे और रेचन दूसरी नाड़ीसे करे, सो रेचन जल्दी २ न करे अर्थात् एक संग न छोड़े क्योंकि जोरसे रेचन करे तो बलकी हानि होती है; इस रीतिसे जो अभ्यास करते हैं उनकी ३ महीने व ५ महीने में नाड़ी शुद्ध हो जाती है अब इनका काल और नियम कहते हैं कि प्रातःकाल सूर्य्य उदय होनेके समय में (लाली बद्दलों में मालूम पड़ने लगे) उसी वक्तसे आरम्भ करे और ३ घड़ी तक करे ऐसे ही मध्याह्न में ३ घड़ी तक करे; इसी रीतिसे सायंकालको भी ३ घड़ी तक करे इन तीनों कालमें ८० अस्सी २ दफे कुम्भक रेचन पूरक करे यह तीनों कालके २४० प्राणायाम हुए जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टा इसका भेद कहते हे:—जघन्य प्राणायाम में पसीना होते हैं और मध्यम प्राणायाम में कम्प होती है और उत्कृष्टा प्राणायाम ब्रह्मरन्ध्र होता है ४२ विपलसे कुछ कम कुम्भक करे तो जघन्य प्राणायाम होता है और ८४ विपलसे कुछ अधिक कुम्भक रहे सो मध्यम प्राणायाम होता है और (बन्धपूर्वक) १२५ विपल कुम्भक रहे उसको उत्कृष्टा प्राणायाम काल कहते हैं । जब प्राणायाम स्थिर होय तब प्राण ब्रह्मरन्ध्रको प्राप्त होय और ब्रह्मरन्ध्र में गया हुवा प्राण जब २५ पल तक स्थिर रहे उसको प्रत्याहार कहते हे उसीका नाम धारना भी कहते हैं और जब ६ घडी तक स्थिर रहे तब ध्यान होता है और १२ दिन तक स्थिर रहे तब समाधि होती है । प्राणायामके अभ्याससे जो पसीना हुवे उससे शरीर को तेलकी तरह मालिश करे उस मालिशसे शरीरको दृढ़ता और लघुता नाम जड़ तिस का अभाव होवे है । जालंधर आदिक बन्धयुक्त प्राणायाम न करे तो कई रोग आदिककी उत्पत्ति होती है । वायुको रेचनकाल में शनैः २ रेचन करे जल्दी करे नहीं,

और पूरक अल्प भी नहीं करे और अधिक भी नहीं करे योग्य योग्य करे और जालन्धर बन्ध आदिक युक्त योग्य ही कुम्भक करे इस प्रकारसे हठसिद्धि प्राप्त होती है ॥ अब बन्धोंकी रीति कहते हैं:- मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, उड्डियानबन्ध, और जिह्वाबन्ध; अब मूलबन्धकी रीति कहते हैं-कि एडीसे योनीस्थानको दाबकर गुदाको संकोच करे फिर अपानवायु जो नीचेके जानेवाली उस वायु को ऊपर को चढावे इसका नाम मूलबन्ध है, अथवा एडी को गुदाके नीचे रक्खे व एक गेंद बनाय कर गुदाके नीचे रक्खे और अपना वायुको ऊर्ध्व गमन अर्थात् सुखमनामें प्राप्त करे इसीको मूलबन्ध कहते हैं अब इस मूलबन्धके गुण कहते हैं:- अपानवायु अधोगति अर्थात् नीचेको जानेवाली इसको तो ऊपर को करे और दूसरी जो प्राणवायु जो ऊर्द्धगमनी अर्थात् ऊंची जानेवाली है उसको नीचे को करे । इन दोनों वायुकी एकता करे उस एकताके होनेसे सुखमणा मे प्रवेश करे उस वक्त मे जो करने वाला पुरुष है इसको नादकी प्राप्ति होती है सो इस नादका वर्णन तो हम आगे करेंगे परंतु इस जगह तो बन्धोंका वर्णन करना है इस वास्ते जालन्धरबन्ध कहते हैं कि कंठनीचे को नवाय कर हृदयसे चार अंगुल अलग ठोडीको यत्नसे दृढ़ स्थापना करे इसका नाम जालंधरबन्ध है । अब जालंधर पदका अर्थ कहते हैं कि नाड़ियोका जाल अर्थात् समूह बांधे और नीचे को गमन करे ऐसा जो कपालका कुहर जो छिद्र तिसको बांधे जालंधरबंधके करनेसे कंठके जो रोग आदि हैं वह नाश हो जाते है फिर कंठके संकोचन करनेसे दोनो नाड़ी इडा और पिंगलाको स्तम्भन करे । अब उड्डियानबंधक कहते है उड्डियान शब्दका अर्थ करते है कि जिस हेतुसे वा जिस बन्धन करके रोकी हुई जो वायु सुखमणा मध्य नाड़ी में उड़जाय अर्थात् प्रवेशकर जाय सुखमणाके जोरसे आकाशमार्ग में गमन करे है इस वास्ते इसका नाम उड्डियान है महान् जो खग अर्थात् आकाश को निकलमाण जिस में बन्ध करें और श्रम जिस में न हो सुखमणा पक्षीकी तरह गति करे उसका नाम उड्डियानबन्ध है अब इसकी रीति कहते हैं कि नाभीके ऊपरका भाग और नीचेका भाग इसको उदर अर्थात् पीठमें लगजाय ऐसा पीछेको खेंचे इसका नाम उड्डियानबंध है नाभीके ऊपर नीचेके भागके जितना पीठमें लगावे अर्थात् पीठकी तरफ उन दोनों भागोंको यत्नसे पीछेकी तरफ़ खेंचे इसको रोटी खाये के पेस्तर वारंवार अभ्यास करे तो छःमहीनेमें इसके गुण आपसे आप प्रगट हो जाते है अब हम जिह्वाबन्ध कहते हैं कोई ऐसे कहते हैं कि जालंधरबन्ध अर्थात् कंठको नवायकर ठोडीको हृदयमे स्थापन न करे किन्तु क्याकरे कि राजदन्त मुँह के सामनेके ऊपरके जो दांत इनको राजदांत कहते हैं उन दोनो दातोंको जिह्वासे ढके अर्थात् दांतों पर जिह्वा लगावे उसीका नाम जिह्वाबन्ध है इस जिह्वाबन्धसे एक सुखमणा नाडी रहित जो संपूर्ण ७२ नाड़ी तिनके ऊपर वायुकी गतिको जानेसे रोके है इस लिये इसको कोई जालंधरबन्धभी कहते हैं जाल नाम नसोंका है उनका जो बांधना उसीका नाम जालंधरबन्ध है ये ऊपर लिखी जो बंधोंकी रीति इनके संयुक्त जो पुरुष प्राणायाम करनेवाला उसीको हठयोगकी प्राप्ती होगी और हठयोगसेही राजयोगकी प्राप्ति होती

है इस वास्ते आत्मार्थीयोंको इसमेंभी परिश्रम करना चाहिये अब इस जगह जो कोई ऐसी शंका करे कि जिनमतमें तो यह बातें नहीं हैं और मतमें हठयोगके शास्त्र वा रीति है इस रीतिको जान लेनाही ठीक है तो हम इसका समाधान देते हैं कि जो लोग ऐसा कहते हैं कि इसको जान लेनाही ठीक है और करना ठीक नहीं है वे लोग जिनमतके रहस्यके अजान दुःख वा मोहगर्भित वैराग्यवाले गुरु कुलवास रहित स्वमति कल्पनावाले मालूम होते हैं क्योंकि देखो! प्रथम तो इस कामके करनेमें रसना इन्द्रियोंको जीतना पडता है क्योंकि विना रसना इन्द्रियके जीते विद्न इस मार्गकी प्राप्तिही नही हो सकेगी दूसरा जनोंका अर्थात् गृहस्थियोका संगभी छोड़ना पड़ेगा और एकान्त जगहमें रहनेका अभ्यास करना पड़ेगा इत्यादिक अनेक बातें ज्ञान व वैराग्य आत्मार्थीके विना कोई नहीं कर सकता है क्योंकि देखो जो इस हठ प्राणायाम आदिकोंमें गुण न होता तो श्रीभद्रबाहु स्वामी चौदह पूर्वधारी नेपालके पहाड़में जायकर कदापि न करते और जो इसमे गुण न देखते तो वे श्री संघके बुलानेसे चले आते परन्तु श्रीसंघके आग्रहसे श्री स्थूलभद्रजीको आदि लेकर पांच सौ साधु श्रीभद्रबाहु स्वामीके पास पधारे अर्थात् गये और उसी जगह उन्होंने उनको विद्या आदिकभी कराया और वे अपना प्राणायामभी साधते रहे जब उनका यहां प्राणायाम सिद्ध हुवा तब वहांसे विहार किया यह श्रीभद्रबाहु स्वामीका वर्णन श्रीकल्प सूत्रमें है सो सालकी साल बचता है प्रसिद्ध बात है औरभी देखो कि योगशास्त्रमें श्री हेमाचार्य महाराज आसनोंसे आदिलेके वायुके संचार आदि न रोध करना अर्थात् प्राणायाम और जो चक्रोंके ध्यानकी विधि कही है सो चक्रोंकी विधि तो हम कुम्भक और मुद्रा कहके बाद कहेंगे परंतु ये विधी पांचवा और छठा परिच्छेदमें उन्होने कहीहै इसी लिये उसका नाम योगशास्त्र रक्खा गया है और कुमारपालको उपदेशभी इसमें किया है सो योगशास्त्र प्रसिद्ध है ऐसेही श्री हरिभद्र सूरिजी महाराज के किये हुवे भी योग दृष्टि समुच्चय अनेक ग्रन्थ इसयोग के किये हुवे हैं परन्तु शिष्यादिक के यथावत् न होने से इस मार्ग की प्रवृत्ति छिपती हुई चली गई क्योंकि देखो श्री स्थूलभद्र जी महाराज कि जिनका चौरासी चौवीसी नाम चलेगा उनको भी यथावत् योग्य न जानने से दश पूर्वकी विद्या तो अर्थ सहित पढाई और चार पूर्व श्री संघ के आग्रह से मूल तो पढाया परन्तु अर्थ न बताया तो अब देखो विचारकरो कि ऐसे महत् पुरुषों को जो श्री भद्रबाहु स्वामीने यथावत् न जाने तो उनके बाद तो दिन बदिन पड़ताही काल चलाआया इस वास्ते इसकी प्रवृत्ति मंद होते २ लुप्तहोती चलीगई (शंका) आपने ऊपर लिखा कि आत्मार्थियों के सिवाय यह हठयोग कौन साधसके क्योंकि इस में इन्द्रियों के विषयको जीतना पड़ता है तो अबार अन्यमतियों में कोई २ मनुष्य करते हैं तो वे तमाम जो यह काम करते है सो सब आत्मार्थीही होनेचाहिये, (समाधान) हे भोले भाइयो ! जो अन्य मतमें कोई २ करते हैं तो देखो भगवान्‌ने इसीवास्ते १५ भेद सिद्ध भी कहे हैं और दूसरा और भी सुनो कि जो अन्य मतवालो में लोग करते हैं वे यथावत् रीतिको नही जानते हां किञ्चित जानते हैं और परिश्रम प्रवृत्ति भी करते हैं परन्तु यथावत् के न होने से किसी को इन बातों का पूरा २ फल नहीं प्राप्त होता मैंने भी दश बीस पचास अन्य मतके लोगों

को देखा है परन्तु उन लोगों का कहने में और कर्त्तव्य में बहुत फर्क है और मैने भी जिस महात्मा से किञ्चित् प्राप्ति की उस महात्मा की ज़बानी भी इस स्वधर्म के सिवाय दूसरे के शोभा नहीं सुनी और उसीसे किञ्चित् कूँची मुझको प्राप्तहोनेसे जिन आगमकी मुझको यथावत् प्रतीति होती है कि जो श्री जिनराजके धर्ममें बातें कहीं है सो अन्यमत में किसी जगह देखी और सुनी नही परन्तु इस हुंडासर्पणी काल पञ्चम आरे में दुःख मोहगर्भित वैराग्यवालों ने आपस मे ईर्षा और द्वेष बढ़ायकर रहस्य को लुप्त कर दिया और कलह और कदाग्रह को प्रगट किया इसवास्ते इस जैनमत में प्रवृत्ति भी उटगई प्रसंगवश इतनी बात कहनी पड़ी अब हम कुम्भक और मुद्रा कहते हें पेस्तर तो कुम्भक के नाम कहते हे १ सूर्यभेदन २ उज्जाई ३ सत्कारी ४ सीतली. ५ भ्रस्त्रिका अर्थात् धौंकनी. ६ भ्रामरी. ७ मूर्छा ८ प्लावनी यह आठ कुम्भको के नाम हे प्रथम मूलबन्ध करके पूरकके अन्त मे शीघ्रही जालंधरबन्ध लगावे कुम्भक के अन्त में और रेचककी आदि में उड्डियानबन्ध लगावे इसीरीति से प्राणायाम करे इन बन्धानों के संयुक्त प्राणायाम सिद्ध होता है वायू प्रकोप नही करे। अब कहते है कि ज़ियादह कुम्भकादि करें तो रुकाहुवा जो वायु रोमों द्वारा निकलकर कुष्ठआदि रोगों की उत्पत्ति करे है इस लिये इसको होल २ नाम यत्नपूर्वक रेचन करे पूरक तो होले २ करे वा शीघ्रभी करे कुछ हर्ज नहीं और रेचकतो धीरे २ ही करे यह सूर्य्यभेदन इसका नाम इसलिये है कि सूर्य्य से पूरक करे और चन्द्रसे रेचक करे इस कुम्भक के करनेवाले पुरुष के माथे की शुद्धि होती है और उदरकी शुद्धि वात रोगादिककी उत्पत्ति नही होती अर्थात् चौरासी प्रकार की वायु उससे जो रोगादिक होते हे उनकी निवृत्ति करती है। अब (२) उज्जाई कुम्भक कहते हैः—मुख मूद करके पवनको कण्ठ से लेकर हृदयपर्यन्त शब्द सहित इडा और पिङ्गला नाड़ी करके शनैः २ खेचकर पूरक करे फिर केश और नख पर्यन्त कुम्भक करे पीछे इडा जो डावी नासिका उस करके रेचन करे कुम्भक कण्ठमें कफ़ादिकके रोगको दूर करती है और जठराग्नीको दीपन करे है नाड़ीमें जलकी व्यथादिकको दूर करे धातु आदिक पुष्ट करे। अब (३) तीसरी शीतकारी कुम्भक कहते हें मुखके होठोंके बीच मे जिह्वा लगाय कर सीत करके पवनको मुख करके पूरक करे फिर दोनों नासिकासे शनैः २ रेचक करे परन्तु मुख करके वायुको न निकलनेदे अभ्यास कियेके बादभी मुखसे वायुको कदापि न निकाले क्योंकि मुखके निकालनेसे बलकी हानि होती है इसमें कुम्भक नहीं कहा तो भी कुम्भक करे इसके करनेवाले पुरुषको रूपलावण्य शरीरकी पुष्टि होती है क्षुधा तृषा आदिकभी कम लगती है और निद्रा आलस्य भी नही लगता। अब (४) सीतली मुद्रा कहते हैं पक्षीकी नीचेकी चोंचके समान अपनी जिह्वा होठोंके बाहिर निकाल वायुको खेंचकर पूरक करे और फिर मूँह मूदकर कुम्भक करे फिर शनैः २ नासिकाके छिद्रोंसे वायुको रेचक करे इसका करनेवाला जो हो उसके लिये गुल्म और प्लीह अर्थात् तापतिल्ली और पित्तके ज्वरादि रोगोंको दूर करनेवाले है और भोजन और जलकी इच्छा करनेवाली है और सर्प काटे विपको वा अन्य और के विषको अर्थात् जहरको दूर करनेवाली है। (५) भ्रस्त्रिका

अर्थात् धौंकनी कुम्भक कहते हैं कि पद्म आसन लगाय करके सतर बैठा हुवा की घरहीसे मु-
निहो मुखके बन्द करके यत्नसे एक नासिकाके छिद्रसे वायुको रेचक करे परन्तु शब्द सहित
हृदय कंठ सहित हृदय कमल पर्य्यन्त वायुको पूरक करे फिर पहलेकीसी नाई रेचक करे
और पूरक करे वारम्वार ऐसा करे जैसे लुहारकी धौंकनी वेग अर्थात् जल्दी २ चलती है
तैसेही वेग करके पूरक और रेचक वारम्वार करे जब तक शरीरमें श्रम न होय तव तक
शीघ्रही रेचक और पूरक करता जाय जब श्रम होने पर आवे तव वायु करके शीघ्रही सूर्य्य
नाड़ीसे पूरक करे और जल्दीसे जीवने अंगूठासे तो जीवनी नासापुटको रोके और अना-
मिका कनिष्ठकासे डावी नासकाको रोके बन्ध पूर्वक कुम्भक करे फिर चन्द्रनासिकासे
वायुको रेचक करे फिर इसी रीतिसे फिरभी रेचक पूरक करे फिर श्रमहो जाय तव वाई नासिका
करके तो पूरक करे और यथा शक्ति कुम्भक करके पिङ्गला जो सूर्य्यनाड़ी तिस करके
रेचन करे इस रीतिसे वह धौकनी कुम्भक होती है; अव इसके गुण कहते है वात पित्त और
कफ इन तीनोके रोग को दूर करे और तीनोंको समान रक्खे और जठराग्निको दीपन करे
और कुंडली नाड़ी सुती हुईको शीघ्रही जगाय देती है जो पुरुष इसको वारम्वार करेगा उसको
नानाप्रकारकी सिद्धि और शीघ्रतासे प्राणायामकी सिद्धि होगी प्राणायाम नाम प्राणोंका जो
कि शरीरमें प्राण अपानादि वायु हैं उनको वाहिरको फेंकना उसका नाम रेचक भीतरको
ले जाना उसका नाम पूरक है और यथाशक्ति जो प्राणोंको रोकना उसका नाम कुम्भकहै इन
कुम्भकोंके करनेसे कुण्डली जो आधारशक्ति उसको वोध करानेके वास्ते कुम्भक करते हैं
और जो तीन कुम्भकोंका प्रकार हमने नहीं लिखा सो कारण यह है—कि एक तो ग्रन्थके वढ़
जानेका भय दूसरा जो इन पांच कुम्भकोंको अच्छी तरहसे अभ्यास करेगा तो कार्य्यकी
सिद्धि होनेसे आपसे आप माल्हूम हो जांयगी इस वास्ते नहीं कही। अव हम कुंडली जागनेका
किञ्चित् फल कहते हैं कि सूतीहुई कुंडली गुरुकी क्रियासे और परिश्रम करनेसे जाग
उठे तव संपूर्ण चक्रोंके भेदको प्राप्त हो जाते है और सुखमणा नाड़ी वायुको राज मार्गकी
तरह आचरण करती है और चित्तकी निर्वशयता हो जाती है क्योंकि देखो इसी
वास्ते श्री आनन्दघनजी महाराज वहत्तरीमें कहते हैं कि " इंगला, पिंगला घर तजजागी
सुखमणा घर आसी ब्रह्मन्द्र मध्यासन पूरो हो ववु आ। अनहद नाद वजासी" ॥ ऐसा
जो उन्होंने कहा है सो इसका आनन्द उन्होनेही लिया है इससे यह काम करना श्रेष्ठ है।
अव हम मुद्राके भेद कहते है सो मुद्रा तो वहुत हैं परन्तु हम थोडीसी मुद्राके भेद कहते
है—प्रथम महामुद्रा कहते हैं कि वाम पांवकी ऐडी योनीस्थानमें लगाय करके जीवने
पगको फैलायकर लंवा करे एडी ज़मीन पर लगावे और उंगलीयोंको डंडकीसी नाई ऊंचेको
करे और जीमने हाथके अंगूठा और तर्जनीसे जीमने पगके अंगूठाको पकड़े और वन्ध पूर्वक
वायुको सुखमणामें धारण करे और मूलवन्धभी वन्ध करके संयुक्त होय योनी स्थानको
पीड़न करके जिह्वावन्ध लगावे उस वक्त जैसे सर्पके अहारसे टेढ़े दण्डके प्रकारको त्याग
करके सरल हो जाय है तैसेही कुंडली जो आधारशक्ति सो शीघ्रही सरल होय और कुंड-
लीके वोधसे सुखमणामें प्राणका प्रवेश होवे है तव इडा और पिंगला इनका जो सहाय देने
वाला प्राण इस कारणसे इडा और पिंगला मरणको प्राप्त होती है सो इसके आनन्दको तो

करने वाले जन जानते हैं न तु बांचनेवाला! या लिखने वाले, इस आनन्दको प्राप्त होंगे जो इनका अभ्यास करेंगे उन्हीका राग द्वेष मोह आदिक मिटेगा। अब इसके अभ्यासकी रीति कहते है—प्रथम चन्द्र अङ्ग अर्थात् बॉवां अङ्गसे अभ्यास करे फिर सूर्य्यअङ्ग जो दक्षिण अङ्ग तिसमें से अभ्यास करे और अङ्ग अभ्यास करेके पश्चात् सूर्य्य अङ्ग अभ्यास दोनों अङ्गोंका समान करे फिर इसको विसर्जन करे जब डावे अङ्गसे अभ्यास करे तव तो जीवणे पगको फैलावे रीति ऊपर लिखी जैसे पकड़े और जब जीवणे अङ्गसे अभ्यास करे तब डाबे पगको फैलावे इस रीतिसे दोनों अंगोंसे समान अभ्यास करे इसके गुण कहते हैं कि इसके अभ्यास करनेवाले पुरुषको पथ्य अपथ्यकाभी कुछ विचार नहीक्योंकि सम्पूर्ण कटुक कड़वा वा अमल खटाई आदिक जो भोजन करेगा सोही पचजायगा और कठोर पदार्थ कैसाही हो सो भी सब उसको पच जायगा ऐसी कोई चीज़ नहीं कि उसको न पचे इसके वास्ते यह मुद्रा श्रेष्ठ है। अब विपरीति करिणी मुद्रा कहते हैः—कि ज़मीन पर माथा टेककर हाथोंसे शिरको थामकर और मयूर आसनकी तरह पैर ऊंचे करके आसमानकी तरफ़ सतर करे, इस रीतिसे शिरके बल अधर खड़ा होना उसीका नाम विपरीति करणी है। अधोभागमें अमृतरूपी चन्द्रमा होवे है यह विपरीति करणी है, ऊपर चन्द्रमा नीचे सूर्य्य जिसके। ऊपर सूर्य्य और नीचे चन्द्रमा करे यह गुरुके वाक्यसे प्राप्त होय है॥ अब खेचरी मुद्रा कहते हैं कि पहले खेचरीका साधन इस रीतिसे करे कि जिह्वाको छेदनेके पहले दोनों हाथोंके अंगूठे और तर्जनीसे होले २ जिह्वाको बाहरकी तरफ़ खेंचे जैसे गऊके थनोंसे दूध निकालते हैं इस रीतिसे अभ्यास करे और जिह्वाको बढ़ाते २ इतनी बढ़ावे कि नाक में होकर भ्रुकुटी के मध्य में जा लगे जब इसरीति से अभ्यास होजाय फिर उसका साधन करे जैसे थूवरके पत्रकी अणी तीक्ष्ण होती है इसीतरह का सचिक्कण और निर्मल तीक्ष्ण अणीवाला शस्त्र लेकर जिह्वा के नीचेकी जो नस उसके रोममात्र छेदन करे छेदनकरे के बाद सेंधालौण और छोटी हरड़े इन दोनों को पीसकर उस छेदीहुई जगह मले अर्थात् चिपकादे सायङ्काल, प्रातःकाल इस क्रियाको करनेवाले को लौणका निषेध है तो भी हरड़े और लवण दोनो को पीसकर उसवक्त में उन दोनों को लगावे फिर सातदिनके बाद आठवें दिन फिर कुछ अधिक छेदे इसीरीति से छःमहीने पर्य्यन्त युक्ति से करे तो जिह्वाकी मूल में जो नाडी कपाल के छिद्र मे जाने के लायक होजाय इसीरीति से पेश्तर साधन करे यह रीति तो ग्रन्थों में लिखी है और जो इसकी असल रीति जिसमे शस्त्रादिक से छेदनेका कुछ प्रयोजन न पड़े वह रीति तो गुरुकी कृपासेही मिलती है परन्तु शास्त्रद्वारा लिखी नही जाती क्योंकि गुरु आदिक योग्य अयोग्य देखकरके युक्तीक्रम बताते है अब हम इस खेचरीमुद्राका प्रयोजन और गुण कहते है कि इसके करने का प्रयोजन क्या है सो देखो कि जब जिह्वा नससे अलग होजाय तब जिह्वा को तिरछीकरे अर्थात् गले में लेजाय तीनों नाड़ियोका जो मार्ग अर्थात् कपालों का छिद्र जिसमे इंगला, पिंगला, सुखमणा नासिका में मालूमहोता है उस छिद्र मे जो जनकरे अर्थात् उस में लगावे अर्थात् उस छिद्र को बंध करदे कि इंगला, पिगला, सुखमणा नासिका में से न निकले इसे खेचरीमुद्रा कहतेहै और इसीको व्योमचक्रभी कहते है अब इसका गुण कहते है —कि तालुवे के ऊपर

छिद्रमें लगी हुई जो जिह्वा एक घड़ीमात्रभी जो स्थित रहे तो सर्प विच्छू इनको आदि लेकर जो जन्तु तिनका जो विष उनको दूर करने की शक्ति उसकी होजाती है अर्थात् उसको किसी जानवर का जहर (विष) नहीं चढ़ता और इस मुद्राके करनेवाले पुरुष आलस्य, निद्रा, क्षुधा, तृषा, मूर्च्छा आदिक विशेष करके नहीं होती है और तालवे के ऊपर छिद्रके सन्मुख जिह्वा लगाय स्थिरहो उस तालुवेपर छिद्रमें से पड़ता हुवा जो चन्द्र अमृत उसका पान करे है इसीसे सर्व कार्य्यकी सिद्धि होती है परन्तु यह रीति सब, गुरुके विदून नहीं होती है केवल पुस्तक के देखने से जो होती तो जगत्में प्रसिद्ध है इसलिये गुरुका विनय प्रतिपत्ती सुश्रूषा आदि करे जिससे गुरुअनुग्रह करके युक्तिको बताय देवे और बज्रोली, अम्रोली से जोली आदिक मुद्रा हैं सो हठयोगप्रदीपादि ग्रन्थोंमें उनके साधन और रीति लिखी है परन्तु वह रीति मेरे अनुभव से अर्थात् जिस गुरुने मुझको इन बातों से किञ्चित् वाक़िफ़ किया है उनबातो से ग्रन्थकी रीति विलक्षण मालूमहोने से नहीं लिखा और जिसको इन बातों की चाहनाहो तो मेरेको सिद्ध तो नहीं है परन्तु गुरुकी बताई हुई युक्तियों से मेरी बुद्धचनुसार योग जिज्ञासुको कराय सक्ता हूं नतु ग्रन्थकी देखा देखी लिखताहूं क्योंकि बहुत लोग जो अवर ग्रन्थ बनाते है सो ग्रन्थ वांचकर आत्म अनुभव गुरु उपदेश विना अक्षरो का अर्थ युक्तिसे मिलायकर लिखते है सो उस रीति का मेरा अभिप्राय नहीं है जिसकी खुशीहो सो इस बातकी आज़माइश करे परन्तु सर्व बातें तो योग्यता होनेही से प्राप्त होती हैं और उन मुनी आदिक मुद्राभी कई तरहकी कही है और नादकुण्डली आदिक के कईभेद कहे हैं सो हम चक्रों के भेद कहे बाद कहेंगे. और देखो आनन्दघनजी महाराज इक्कीसवें श्री नमीनाथजीके स्तवन में लिखते है (९ गाथा) मुद्रा बीज धारण अक्षर ॥ न्यास अर्थ विनयोगरे ॥ जे ध्यावे ते नवी वांचीजे ॥ क्रिया अवंधक भोगरे ॥ ९ ॥ इस तुक का अर्थ तो हम चक्रोंका भेद कहके कहेगे इस जगह तुकके कहने का मतलब यह था कि जो कोईलोग ऐसा समझते हैं कि जिनमत में हठयोग नहीं था या नहीं है; सो आगे था और अब भी है परन्तु प्रसिद्ध में दुःख गर्भित और मोहगर्भित वैराग्यवालों के कारण से जाननेवाले हरएकको योगके अभाव होने से नहीं कहते परन्तु त्रोधान से जो विधि जैन में है सो हरएक मे नहीं ॥ प्रथम गुदा से दोअंगुल ऊपर मूलाधार नाम चक्र जिसको गणेशचक्रभी कहते है उसकी चार पांखड़ी है और उसका लालरंग है जैसे सूर्य्योदय वा अस्त समय में लाल हो जाता है इस तरहका उसका रंग है उन चारों पांखडियों पर चार अक्षर हैं वो यहहैः—वं, शं, षं, सं । ये चार अक्षर चारों पंखडियों में हे इसीके पास में कंद है वह कंद चार अंगुल विस्तारकाहै सो गुदासे दो अंगुल ऊंचा और लिङ्गसे एक अंगुल नीचा चार अंगुलका विस्तार अण्डेके मुवाफ़िक़ है और इसी गुदाके ऊपर मेंडेके वीच में योनि है त्रिकोण आकार है वो पश्चिममुखी है अर्थात् पीछेको मुख है बंकनाल अथवा उर्द्धगमन मार्ग उसी में हो कर है उसी स्थान में सर्वदा कुंडलीनी की स्थिति है यह कुंडलीनी सकल नाड़ियो को घेर कर साढे तीन फेर कुटिल आकृतिसे अपने मुख में पूंछको लगाके सुखमणा विवर में स्थित है और कुण्डली नाड़ी सर्पके सादृश्य ऐसी

सूक्ष्म है कि जो बालक हवे का जो केस उससे भी सूक्ष्म और तप्त किया हुवा सुवर्णके मुवाफिक उसका तेज प्रकाश है और लाल लाल वर्णका कामवीज उसके शिर पर भ्रमता है जिस स्थान में कुंडली नाड़ी स्थित है उसी स्थान मे कामवीजके साथ सुषुमणा स्थित है और यह कुंडली नाड़ी महा तेजमान् सर्व शक्तिसे युक्त होके शरीर मे भ्रमण करती है कभी तो ऊर्द्धगामी कभी अधोगति कभी जलमे प्रवेश इसके जगाने की रीति तो हम आगे कहेंगे ये देदीप्यमान कामवीज सहित इस मूलाधार चक्रका ध्यान करनेवाले पुरुषको बारह महीनाके भीतर जो शास्त्र कभी श्रवण नहीं किये उन शास्त्रोंके रहस्य सहित शक्ति उत्पन्न हो जाती है और जो कुछ दिन पर्य्यंत निरन्तर जो इसका ध्यान करे तो उसके सामने सरस्वती नृत्य करती है । अब दूसरा चक्र कहते हैं– स्वाधिष्ठान नाम अर्थात् लिंग मूलमें उस चक्रकी छः पांखुड़ी है उनके ऊपर छः अक्षर है वे छः अक्षर यह है. बं. भं. मं यं. रं. लं. । यह छः अक्षर है इन्ही छः अक्षरोसे पांखड़ी शोभायमान हैं और इसका रक्त वर्ण है कुछ एक पीलास झलकता है शरद् पूनमके चन्द्रमाकी तरह सर्व कला पूर्ण करके सफेद रंगका चमकीली (वं) वीज सहित जो कोई इस चक्रका ध्यान करे उसको कविता करनेकी शक्ति होगी और सुखुमना नाड़ीके चलनेकी किश्चित् अनहद नादका श्रवण करके आनन्दको प्राप्त होगा । अब तीसरे (३) मनी पूरक चक्रका वर्णन करते हैं। वह तीसरा पद्म जो नाभीकी जड़में सुवर्णके समान १० पांखड़ी उन १० पांखड़ियोंके १० अक्षर है सो वे अक्षर यह है–डं. ढं णं तं. थं दं. धं नं. पं फं. यह अक्षर इस पर है इसमें सूर्यके समान वह्नि वीजके बाहिर एक सोरितक है यह अग्निवीज सूर्यके समान प्रकाशक है और इस मनीपूरक चक्रका बीज सहित जो कोई ध्यान करनेवाला पुरुष है उसको सुवर्ण आदिक सिद्धि करनेकी और देवताओंका दर्शन होना सुलभ है । अब (४) हृदयमे जो अनहद नाम जो चक्र है उसका वर्णन करते है– कि वह १२ पांखड़ीका कमल है और १२ अक्षर करके संयुक्त है सो १२ अक्षर यह हैं –कं. खं. गं. घं. ङं चं. छं जं. झं.ञं टं. ठं इस पद्मका लालरंग है और इसका वायुवीज है इन क्रियाओ के बीच मे बिजली के समान चमकती त्रिकोनी एकशक्ति उसके बीच मे सुवर्ण के समान एक कल्याणरूप लिंग अर्थात् मूर्त्ति है उसके शिरपर छिद्रीहुई मणी चमकती है उस बीज समेत जो कोई इस पद्मका ध्यान करता है उसको साक्षात् उस कल्याणरूप मूर्त्तिका दर्शन होता है और नानाप्रकारकी सिद्धि और ज्ञान उत्पन्न होते है क्योंकि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज जो बहत्तरी में कहगये है सो उनके पदोका जो कोई भावार्थ समझे तो यह चिह्न स्पष्ट मिलते हैं बहत्तरी के पदके पदकी तुकः–"अवधू क्या सोवे तन मठमें" जाग विलोक तन घट में ॥ अवधू ॥ आशा मारी आसनधर घट में, अजपा जाप जपावे । आनन्दघनचेतनमय मूर्त्ति, नाथ निरंजन पावे ॥ इस चौथी तुकमे आनन्द घनजी महाराज कहते हैं. और एकपद मे ऐसाभी कहा है " हृदयकमल किरण के भीतर आतमरूप प्रकाश । वाको छांड़ दूरतर खोजे अन्धा जगत खुलावे ॥ इसवास्ते जो कोई आत्मार्थी होगा सो इन बातों को जानेगा और करेगा ॥ अब पांचवां विशुद्धचक्र कहतेहैं कि कंठस्थानमें १६ पांखड़ीका पद्म है सो १६ अक्षर १६ स्वर करके संयुक्त है सो १६ स्वर

यहहै:-अं. आं, इं. ईं. उं. ऊं. ऋं. ॠं. ऌं. ॡं एं. ऐं. ओं. औं. अं. अः, ॥ सो ये अक्षर तो स्वर्णके समान चमकते हुये हैं और कमलका रंग धुयेके समान है इसका आकाश वीज है जो कोई पुरुष इस वीज सहित विशुद्ध पद्मका ध्यान करेगा वो पुरुष पंडित और योगियोमें शिरोमणि और सब शास्त्रोंके रहस्यके जानने वाला और अनेक तरहकी शक्ति लब्धि प्रगट हो जायगी और मनकी चंचलता भी मिटजायगी. अब (६) आज्ञाचक्र कहते हैं:-इस आज्ञा चक्रके २ पांखड़िये और चन्द्रमाके नाई उज्ज्वल शोभायमान उनदोनों पांखड़ियों पर २ अक्षर है वो २ अक्षर यह है:-हं, क्षं, ॥ इस चक्रका सफेद वर्ण है और शरद चन्द्रके समान देदीप्यमान परमतेज चन्द्रवीज अर्थात् ठं, विराजमान है इस वीजका पद्म सहित जो कोई पुरुष ध्यान करे उसको जो इच्छा करे सो प्राप्ति होय और जो कोई इस चक्रका निरन्तर ध्यान करे उस पुरुषको पेश्तर तो दीपकका धूंधलासा प्रकाश मालूम होता है फिर चमकता हुवा दीपककासा प्रकाश मालूम होता है और फिर सूर्य्यका सा प्रकाश हो जाता है और परमानन्द मयी होकर मनकी चञ्चलता मिटाय कर आत्म समाधिमें प्राप्त होता है यह चक्रोंका स्वरूप कहा इन चक्रोंके ध्यान करणेका वर्णन श्री हेमाचार्य जी योग शास्त्रमें ऐसा लिखते हैं कि गुरुकी बताई हुई युक्तिसे नाभी हृदय और कण्ठ इन तीनों पद्मोंमें जो कोई वर्ण और वीज सहित १२ वर्ष तक ध्यान करे तो गण धरोंकी तरह द्वादशांगी रचे इस रीतिसे योगशास्त्रमें वर्णन कियाहै यह सर्व चक्रोंका जो ध्यान कहा सो राजयोगके अन्तर्गतहै । प्रश्न । सुखुमणा नाड़ीमेरुडंड द्वारा जहां ब्रह्म इंद्र है उस स्थानमें गई है और इडा नाड़ी सुखुमणाके अपर आवृति आज्ञाचक्रके दक्षिण भाग होके वामनासा पुटमें गई है इसीको गंगा कहते हैं सो भेद हम अगाड़ी कह आये हैं ब्रह्मेन्द्रमें जो सहस्रदल कमल है उस पद्मके कंदमे योनिहै उस योनिमें विराजमान चन्द्र उससे अमृत सर्वदा ईडा नाड़ीद्वारा सम्भावसे निरन्तर धारारूप गमन करता है इसी हेतुसे इसके जानीकार पुरुष अर्थात् जोगीलोग इस ईडाको उदकवादनीभी कहते हे और पिङ्गला नाड़ीभी कहते है और पिंगला नाड़ीभी उस आज्ञा कमलके वामभागसे दक्षिण नासा पुटको गई है इसीको जमुना भी कहते हैं और कोई असीली भी कहते हैं और मूलाधार पद्म चार पांखड़ीसे युक्त है उस कमलके कंद में जो योनी है उस योनी में सूर्य्य स्थित है उस सूर्य्यमण्डल से विष सदा पिंगलाद्वारा गमन करता है और इसी आज्ञा कमल में नाद और बिन्दू शक्ति यह तीनों इस चक्र में विराजमान हैं जो इस चक्रका ध्यान करे उस पुरुषको पहिले कहे हुवे चक्रोंका जो फल पेश्तर कह आये हैं वह फलभी इसके साधनसे सब प्राप्त हो जाते हे और इसका अभ्यास करते २ वासनारूपी माहबन्धनोका निरादर करके आनन्द लाभकी प्राप्ति करना है धन्य है वह पुरुष जो इसका ध्यान करता है. जो इस कमलका ध्यान करेगा वोही राज्यजोगका करणेवाला होगा इस आज्ञा पद्मके ऊपर तालूमूलमें सहस्त्रदलकमल शोभायमान है अर्थात् उसकी हजार पांखडियें है ऐसे कमल शोभायमान है उसी स्थानके ब्रह्मइन्द्र में ले जायकर स्थित करना वह सुखुमणा मुख तालू मूल अर्थात् कपाल मस्तकका जो ब्रह्म इन्द्र और नीचेकी जो वर्तमान मूलाधारसे योनिपर्यन्त जो सकल नाड़ी है । वह सर्वतत्त्व ज्ञान वीजस्वरूप ब्रह्म

मार्गकी अर्थात् आत्मस्वरूपकी दिखाने वाली जो सुखुमणा नाड़ी उसीके अवलम्बसे स्थित रहती है पहले मूभाधार मे जो पद्म है उसके कन्द में एक योनि पश्चम मुखी अर्थात् पीछे को उसका मुख है उसी मार्ग हो करके जो सहस्त्रदल कमल मस्तक मे विराजमान है उसके जानेका मार्ग यह है और यह सुखुमणा नाड़ीके रिन्द्र में कुंडलीनी सर्वदा विराजमान है इसके अन्तर्गत चित्रनाडी आदिके भी कई भेद है परंतु प्राणवायुके निरोध करनेसे सर्व नाडियोमेसे पूरण हो जायगा तब कुंडलीनी अपने बंधको त्यागकर ब्रह्मरन्ध्रके मुखको त्याग देगी तब प्राण वायुके प्रभावसे सुखुमणामें होकर उस सहस्त्रदल कमलके ब्रह्मरन्ध्रमे स्थित हो जायगी जो पुरुष इन रीतियोंको यथावत् गुरुके उपदेशसे प्राप्ती करके जो इन चीजोका अभ्यास करेगा वो पुरुष जन्म मरणरूपी बंधनोंसे छूटकर परम आनन्दको प्राप्त होगा परंतु इसके जानते वा इसकी कथा करनेसे कुछ न होगा इसलिये भव्यजीवोंको इसके अभ्यासमें परिश्रम करना चाहिये नतु जाननेमात्रसे सिद्धी अब जो असल राजयोगकी जो रीत उपसम श्रेणी और क्षप श्रेणी सो तो इस कालमें विच्छेद है परंतु उसके ध्यान करनेकी जो रीति शुद्ध ध्यानादि जो चार पायेहे सो बहोतसे शास्त्रो में लिखे है और प्रसिद्ध हैं और नाममात्र देके स्वरुपमे जो हेय ज्ञेय उपादेय आदि उतारे है उनमें किंचित् वर्णन कर चुके है अब हम जो आनन्दघनजीके इक्कीसवें स्तवनकी गाथा जो हम पेशतर लिख आये है उसका अर्थ किंचित् लिखते है मुद्रा कहतां उन मुनी आदि मुद्रोमे मुद्रा इनको जान-(बीज) कहता जो हमने चक्रोंपर वायुओंके बीज कहे है उनको जाने (धारणा कहतां) अक्षर समेत धारण करे किसीकी जो कमलोपर हमने अक्षर कहे है; (न्यास कहतां) नाड़ियोंके अर्थको गुरुमुखसे जानकर विनयपूर्वक अर्थात् जिस गुरुने इनके गुह्य अर्थ बताये है उनके चरणकमलको स्मर्ण करता हुवा (योग कहता हुवा) उसमें योजना करे अर्थात् मनकी और पवनकी मुद्रा और बीज अक्षर आदिकोंकी एकता करके जो (ध्यावेकहतां) जो इसकी साधना करे (ते नववांची जे कहतां) उस पुरुषको कोई न ठग सके अर्थात् क्रोधमान माया, ईर्षा, लोभ, मोह राग द्वेषादि अथवा अष्ट सिद्धि आदिकोंसे जो उत्पन्न हो दर्प आदि उसमे जो अहंकार मद आदि वो उस पुरुषको नहीं ठग सकेत इस लिये जो पुरुष इस ध्यानका करने वाला है वह पुरुष (क्रियावंचक भोगीर कहतां) शुद्ध सुभाव स्वरूप भोगी होय नाम अपने स्वभावकी क्रिया करे नतु पुद्गलीक क्रिया अर्थात पुण्यादिककी इच्छासे क्रिया न करे इस पदका अर्थ जैसे मेरी बुद्धिमें भ्यासा तैसा मैने कहा परंतु कर्त्ताका अभिप्राय तो कर्त्ता जाने कि उनके अभिप्रायको ज्ञानी जाने किंतु मैने तो मुद्रा बीज इन अक्षरोको देखकर अर्थ लिखा है इस करके भो देवानोप्रियो ! मेरी बुद्धिके अनुसार जो तुम लोगोंने पांच प्रश्न कियेथे उनका उतर उपदेश द्वारा दिया (प्रश्न)-इन ऊपरके चार प्रश्नोंके उत्तरके वाक्योसे यह प्रसिद्ध मालूम होता है कि आपका अनुभवसिद्धि है और आपकी अमृतरूपी वाणीसेभी व्याख्यानमें पक्षपात रहित वाक्य निकलते हैं क्योंकि वर्तमान कालमें ऐसा होना बहुत कठिन है परन्तु इस हठयोग और राज्ययोगके अन्तर चक्रोंकी महिमा सुनकर हमको आश्चर्य उत्पन्न होता है किन्तु कह

नहीं सकते इसका सन्देह कृपा पूर्वक निवारण कीजिये ॥ (उत्तर) भोदेवानुप्रियों ! तुम्हारे प्रश्नोका तात्पर्य यह है कि मेरी वर्त्तमान कालकी व्यवस्था देखकर तुम लोगोंको ऊपरका वर्णन सुननेसे मेरी वृत्ति देखकर सन्देह हुवा क्योंकि "किन्तु हम कह नहीं सकते" इस वाक्यसे सो तुम्हारा मेरी वृत्ति अनुसार सन्देह करना ठीकही है क्योंकि मैंने जो चक्रोंके गुणकी महिमा और फल लिखाया है सो मेरेमे गुण दो चार आनाभरभी नहीं है इस वास्ते तुम्हारेको सन्देह होता है इस लिये तुमने मेरेको ऐसा प्रश्न किया है सो इस प्रश्नको सुनकर मेरेको हर्ष उत्पन्न होता है किन्तु खेद नहीं है क्योंकि मैने तुम्हारेको किञ्चित् जो श्री जिनधर्म स्याद्वादमार्ग मेरी बुद्धि अनुसार बताया है उसमें तुम्हारेको इस स्याद्वादमार्गका किञ्चित् बोध होनेका अनुमान तुम्हारे प्रश्न से सिद्धिहोता है क्योंकि तुमने मेरे से दृष्टिराग न किया स्याद्वाद सेली जिनमार्ग के रहस्यकी ओर आत्मार्थ की इच्छा है कदाचित् जिनमार्ग स्याद्वादकी इच्छा न होती तो "किन्तु हम कह नहीं सके इस वाक्यका आक्षेप मेरे ऊपर न करते और दृष्टि रागमें बँधे हुये मेरी शोभाही करते इस प्रश्न करने से मेरे को मालूम होताहै कि जो मैंने तुमको त्याग कराया है कि "जो कोई मेरा भेषधारी शत्रुहोय और बुराई करताहो और मेरी बहुत निन्दा करताहो उससे तुमलोग द्वेष मत करो और जैसा मेरेको मानो वैसा उसको 'मानो" और दूसरा त्याग यह है " जबतक मैं इस वृत्तिमें हूं तब तक तो मेरे को मानना कदाचित् मेरी वृत्ति न्यूनहोकर धनादिक स्त्री आदिक का संग अथवा ऐसा कोई आचरण जिससे अन्यमति भी जिनधर्मकी हीलनाकरे ऐसो जो मेरे में देखो तो मेरेको वन्दना आदिक न करना व आहार आदिक मेरेको न देना और सर्व को मानना परन्तु मेरा तिरस्कार करके अपमान करदेना" ऐसे जो त्याग करायेहैं सो यथावत् पालोगे ऐसे प्रश्न के करने से निःसन्देह होगया अब मै तुम्हारे सन्देह दूरकरने के वास्ते कहताहूं कि मे ३५ की सालमें पावापुरीको छोड़कर इस देश में आयाहूं और जो इस ३५ की सालसे पहिले पावापुरी आदिक मगधदेश में ऊपर लिखे चक्रोंका किंचित् अनुभव जो मैने कियाथा उस अनुभव से जो मेरे चित्तकी शांति और मेरागुण मेरेको मालूमहोता था सो अब वर्तमान काल में जैसे मोहर मेसे घटते २ एक पैसामात्र रहजाता है इससे भी न्यून मेरेको मेरागुण मालूम होता है सो उसका कारण मै तुमको कहताहूं सो सुनो कि जब मै उस देशसे इस देशकी शोभा सुनकर आया तब मुझको इतना शास्त्र बांचने पढ़ने का भी बोध नथा परन्तु किंचित् ध्यानादि गुणके होनेसे जो मै शास्त्रादि श्रवणकरता तो सुनतेही उनका रहस्य किंचित् प्राप्तहोजाता और फिर मैं जिनके पास आयाथा उनकी प्रकृति न मिलने से जो २ मुझपर उपद्रव हुवेहै सो यातो ज्ञानी जानता है या मेरी आत्मा जानती है और जो उन भेषधारियो के दृष्टिराग श्रावकोंने जो २ मेरे चारित्र भृष्टकरने के वास्ते उपद्रव कियेहैं सो ज्ञानी जानता है परन्तु लिख नहीं सकता और मैनेभी अपने चित्त में विचारा कि श्री संघ मोटाहै और जो मैंने अपने भावसे निष्कपट पनेसे इस कामको किया है तो जिनधर्म मेरी रुचि मुवाफिक मुझको फलदेगा सो इनके उपद्रवोंका वर्णन कहांतक करूं परन्तु एक दृष्टान्त देकर समझाताहूं कि–देखो एक किसी मकान में शीतलगिरिजी करके एक संन्यासी

रहताथा उसके पास मे दो चार मनुष्य बैठे थे उस समय कोई एक रास्ता चलता हुवा चला आताथा रास्तागीरने पूछा कि भाई ! यह मकान किसका है और इस में कौन रहता है जब किसीने कहा कि भाई इस मकान मे एक शीतलगिरि जी साधु रहता है तब उस वक्त उस पूछनेवाले शख्श ने विचारा, चलो इसकी परीक्षा करूं और इसको लोगो में बुरादिखाऊं ऐसा विचारकर भीतर मकान मे पहुंचा और उस शीतलगिरिजी संन्यासीको नमस्कार किया और बैठकर पूछनेलगा कि महाराज आपका नाम क्या है तब वह संन्यासी बोला भाई मेरा नाम शीतलगिरि है इतना सुनकर वह चुपहोरहा और बाते करनेलगा फिर पूछनेलगा कि महाराज आपका नाम क्या है मै भूलगया तब उसने कहा कि मेरा नाम शीतलगिरिहै तब वह फिर चुप होरहा और दूसरी बाते करनेलगा फिर थोड़ी देरके पीछे पूछनेलगा महाराज आपका नाम क्या है मै भूलगया इसरीतिसे दश बारह वार पूछा और वह विचार करता रहा कि मेरानाम शीतलगिरि है फिर थोड़ीसी देरकेबाद पूछनेलगा तब फिर उसने कुछ जोरसे कहा कि भाई मेरा नाम शितलगिरिहै फिरभी थोड़ीदेर के बाद पूछनेलगा कि आपका नाम क्याहै ? तब वह लाचार होकरके कहनेलगा कि भाई मैनेतुझ को इतनीदफा बताया और तू भूलगया मेरा नाम शीतलगिरि ! शीतलगिरि !! शीतलगिरि !!! है ऐसा उसने दो चार दफे नामको दोहराया तब वह शख्श पूछने वाला कहनेलगा कि तुझको शीतलगिरि कौन कहता है तूतो अग्निगिरि है ऐसा उस विचारे को लोगो में बुरा बनाय कर आप चल दिया । इसी दृष्टान्त को बुद्धिमान लोग अपनी बुद्धि से विचार करे कि वह अग्निगिरि था कि शीतलगिरि था इसी रीति से मुझ को भी छेड़ २ कर लोगोंने बदनाम अर्थात् क्रोधी बनाया कि चाहे जैसे अंड बंड बोलता है और चाहे जैसे बकता है सो ऐसा भी बदनाम स्वमत मे भेषधारियो के दृष्टिरागी लोग कहते है परन्तु परमत वाले जितने मनुष्य मेरे पास आतेहै वो लोग मुझको जैसा भला और बुरा कहतेहैं सो भी जिस जगह मे विचरताहूं वहाके लोग जानते है सो इन उपद्रवोंसे मेरा पिछला ध्यानादि तो कमहोता गया और आर्त्त ध्यानादि अधिक होता रहा और उस आर्त्त ध्यानके होनेसे मेरी ध्यान आदिककी पूंजी भी कम होती गई उससे भी मेरा चित्त बिगड़ता गया क्योंकि देखो जो जन धन पैदा करता है और उसका धन जब छीज जाता है तब उसको अनेक तरहके विकल्प उठते है इसी रीतिसे मेरे चितमे भी अष्ट प्रहर इन बातोका विचार रहा कि तैने जिस कामके लिये घर छोड़ा सो तो काम भी नही हो ता किंतु आर्त्तध्यानसे दुर्गतिका बंधु हेतु दीखता है क्योंकि मै अपने चित्तमे ऐसा विचार करताहूं कि मेरी जातिमे आज तक किसीने शिर मुडायकर साधूपना न अंगीकार किया और मैने यह काम किया तो लौकिक अज्ञान दिशामें तो लोगोंमें ऐसा जाहिरात हुवा कि फलानेका बेटा फलानेको रुजगार हाल न करना आया और बहन बेटियोंके लेने देनेके डरसे सिर मुडाकर साधु हो गया यह लोगोंका कहना मेरे आत्म गुण प्रगट न होनेसे ठीकही दीखता है क्योकि देखो किसीने एक 'शेर' कहा है–"आहके करनेसे होल दिल पैदा हुवा, एक तो इज्जत गई दूजे न सौदा हुवा । दूसरा ऐसा भी कहतेहे–"दोनों खोईरे जोगना मुद्रा और आदेश"

इस रीतिके अनेक ख़याल मेरे दिलमे पैदा होतेहै और वर्तमान कालमें सिवाय उपद्रवके सहाय देनेवाला नहीं मिलता क्योंकि दुःख गर्भित मोह गर्भित वैराग्यवालोंने जो व्यवस्था कर रक्खी सो किंचित् तुमको सुनाता हूं सो सुनो और इसी वास्ते मे कहता हूं कि मेरेमें साधुपना नही है अजी महाराज साहव ! इस वातको हमने लिख तो दिया परन्तु अव हमारा हाथ आगेको नहीं चलता और हमारे दिलमें ताज्जुव होताहै और आपसे अर्ज करते हैं सो आप सुनकर पीछे फरमावोगे सो लिखेंगे सो हमारी अर्ज यह है कि आपकी वृत्ति लोगोंमें प्रसिद्ध है और हम प्रत्यक्ष्य आंखोंसे देखते हैं कि आप एक दफा गृहस्थके घरमें आहार लेनेको जाते हो और पानीभी उसी समय आहारके साथ लाते हो और एक पात्र रखते हो उसीमें रोटी, दाल, खीच, साग पात अर्थात् आहारादिककी सर्व चीज साथ लेते हो और एक दफ़ै ही आहार अर्थात् भोजन करते हो और सियालेमें ऊनकी एक लूघड़ीसेही शीतकाल काटते हो क्योंकि वनात, कम्बल, अरण्डी लोकारादिका आपके त्याग है और पोथी पन्नाकाभी आपके संग्रह नही है अर्थात् वांचनेके सिवाय अपनी मेश्रामें नहीं रखते हो और अक्सर करके आप वस्तीके वाहर अर्थात् जंगलमें भी रहते हो और हर सालमें महीने वा दो महीने अथवा चार महीने जिस शहरमें रहो उस शहरके तोल (वज़न) का १ एक सेर दुग्धके सिवाय और कुछ आहारादि नहीं लेते हो और जिन दिनोमें दूध पीते हो उन दिनोंमें सात दिनमें एक दिन वोलना और वाकी मौन रखना ऐसा भी महीना दो महीना चार महीना रखते हो और मौनमें ध्यानभी करते हो इत्यादि प्रत्यक्ष वृत्ति देखते है और प्रायः करके और साधुवोंमें नहीं देखते हैं फिर आप कहते हो कि मेरेमें साधुपना नही है इसमें हमको वहुत ताज्जुव होताहै ? (उत्तर) भो देवानुप्रियो ! यह जो तुम मेरी वृत्ति देखते हो सो ठीक है परंतु मै मेरी शक्तिमुवाफ़िक़ जितना वनताहै उतना करता हूं परंतु वीतरागका मार्ग वहुत कठिन है कि देखो श्री आनन्दघनजी महाराज १४ वें स्तवनमें ऐसा कहते हैं कि—"धार तर्वारनी सोहली दोहली चौदमें जिनतणी चरणसेवा। धार पर नाचता देख वाजीगरा सेवना धार पर रहे न देवा" ऐसे सत्पुरुषोंके वचनको विचारताहूं तो मेरी आत्मामे न देखनेसे और ऊपर लिखे कारणोंसे और नीचे भी तुमको लिखता हूं उन वातोसे मै अपनेको यथावत् साधु नही मानताहूं क्योंकि साधुका मार्ग वहुत कठिन है क्योंकि देखो प्रथम तो साधुको अकेला विचरना मना है क्योकि श्री उत्तराध्ययनजीमें अकेले विचरनेवालेको पाप श्रवण कहा है सो मै अकेला फिरताहूं। दूसरे शास्त्रोंमें आदमी संग रखनेकी मनाई है सोभी प्रथम तो मैंने इस देशसे असैंधा होनेसे आदमी रक्खाथा परंतु अवभी कभी २ आदमी साथ रखना पड़ता है। और तीसरे यह है कि गर्म पानी अक्सर करके साधुवोके निमित्तही होता है। सो मुझकोभी वही पानी पीना पड़ता है। और चौथा कारण यह है कि मै सदासे अपना धारणा मूजिव वृत्त रखता आया हूं और जव मारवाड़में मैने जावो जीवका समायक उच्चारणकी उस समयमें इन्द्रियोंके विषय भोगनेका त्याग किया परंतु कारणसे किसी गृहस्तीको अपना कारण वता देना और जव मै किसी जगह मौकाके पड़े अथवा ध्यानादिक करूं तो मै एक जगहसेही लायकर दूध पान करूं और अन्नादिक न खाऊं क्योकि पहले मुझको ध्यानका परिचय था। और पांचवा अन्य मतोंके ब्राह्मण लोगोंसे विद्या पढ़ते है तो उनको गृहस्त-

से धन दिवाना यह कोई व्रत में वाकी नहीं रखते हैं और करते है परंतु मुझसे जहां तक बना अन्य मतके साधुवोंसे पढ़ता रहा कि जिसमें धन न दिवाना पड़े लेकिन अजमेर आनेसे किंचित् धन पढ़ानेके लिये दिवाना पड़ा यह पांचवां कारण है । इत्यादि अनेक तरहके कारण मुझको दीखते है इसी वास्ते मैं कहताहूं क्योंकि जिन आज्ञा अपनेसे न पले तो जो 'वीतराग' ने मार्ग परुपा है उसको सत्य २ कहना और उसकी श्रद्धा यथावत् रखना जो ऐसाभी इस कालमें वन जाय और पूरा साधूपन न पले तोभी शुद्ध श्रद्धा होनेसे आगेको जिनधर्म प्राप्त होना सुगम हो जायगा इस लिये मेरा अभिप्रायथा सो कहा क्योंकि मैं साधु बनूं तो नहीं तिरूंगा किंतु साधूपना पालूंगा तो तिरूंगा और जो शख्स जिन मार्गमें कपट वा दम्भसे अपनेमें साधुपना ठहराते है और वाह्य क्रिया वालजीवोंको दिखायकर अपने दृष्टिराग बांधकर उनलोगों में अपना साधुपना ठहराते है वेलोग अपने संसारको वधाते है और वर्त्तमानकाल में अपनी २ जुदी २ परुपना करते है उस जुदी २ परुपना होने से लोगों का विश्वास धर्मपर नहीं रहता है और कई लोग जो पेश्तर जैनी थे सो वल्लभकुली रामसनेही, दयानन्दी, अर्थात् आर्य्यसमाज में होते चलेजाते है सो इसका कारण वर्त्तमान काल में दुःखगर्भित, मोहगर्भित, वैराग्यका होना है, वे लोग उत्कृष्टे वनते हैं और उनकी जीभका लौल्यपना नहींगया क्योंकि कितने एकसाधु जगत् मे उत्कृष्टे कहलाते है और उनके वाक्य ऐसे हैं कि जिससे वे लोग जीभ के लोलुपी मालूम होते है क्योंकि देखो वे लोग ऐसा कहते है कि साधु गोचरी को जाय उस वक्त में जो साधु के आहार होगया हो और किञ्चित् न्यूनहो फिर वो किसी भाविक गृहस्थ के घर में पहुँचे और वह गृहस्थीभाव से साचिक्कण सरस आहार ज्यादा वहरावे तो लेलें और अपने मकानपर आयकर पेश्तर आहार करे तो वह सरस आहार खाय कदाचित् निरस आहार वच रहे तो उसे परटदे और जो वो निरस आहार पहिलेही खाय और पेटभर जाय तो सरस आहार परटनेसे जीवादिककी उत्पत्ति हो इस लिये सरस आहार पहिले करना ठीक है ऐसा जो कहनेवाले हैं सो जिनधर्मके रहस्यके अजान जिह्वाके लोलुपी मालूम होते हैं क्योंकि देखो शास्त्रो में ऐसा कहते है कि साधु गोचरी को गया उस गोचरी में किसी गृहस्थने अनुपयोगसे सचित कच्चा पानी वहराया दिया और साधुको भी उस समय में उपयोग न रहा फिर वह उपासरे मे आया और उस पानी में उपयोग देकर देखा तो साधुके योग्य न जाना तब उस जलको ले जाय कर साधु उस गृहस्थके घर जायकर कहे कि भाई यह जल जो तुमने वहराय दिया सो हमारे योग्य नहीं है सो तुम लो जो ग्रहस्थ जानीकार समझवारहो तो उस जलको लेलें कदाचित्त वह ग्रहस्थी ऐसा कहे कि मैं तो आपको वहराचुका अब तो मैं नही लेता तब साधु उस गृहस्थी को पूछे कि यह तालावका है या कुवे का है किस जगह का है जो गृहस्थी जगह बतादे तो उस जगह विधिपूर्वक परट आवे कदाचित् गृहस्थी कहे कि महाराज मुझको तो खबर नहीं तब तो साधु प्रासुक भूमि देख कर उसको परट आवे परंतु अंगीकार न करे और दूसरा जो गृहस्थी अनउपयोगसे करके अर्थात् शक्करके वदले लोण पिसा हुवा लायकर साधुके पात्रा में वहरायदे और साधुको भी उपयोग न रहे तो साधु

उस लोणको आप खाय पानी घोल कर पीजाय अथवा बहुत हो तो समुदायके साधुवोंको खवावे अथवा पिलावे परंतु उसको परटे नहीं कदाचित् लोण न खपे तो शास्त्रकी विधि पूर्वक उसको परटे तो देखो इस जगह जिन वचनका विचार करना चाहिये कि भगवान् ने कच्चे सचित जलको तो परटना कहा और सचित लोणको खाना वा पानी में घोलकर पीना कहा तो देखो सचित तो दोनों वस्तु हैं तो एक का अंगीकार और एक नहीं इसका कारण यह है कि जो वो सचित कच्चा पानी न परटे तो उसका फिर उपयोग न रक्खेगा और हर दफा ऐसाही पानी लाकर पीलेगा और जीभके लोलुप पनेके होनेसे चारित्रसे भ्रष्ट हो जायगा इस वास्ते भगवत्‌ने परटनेकी आज्ञा दी और लोण सचित खाने की आज्ञा दी इसका कारण यह है कि प्रथम तो लोणसी चीज़ खाने में ही कठिन पड़ती है दूसरे उसके खानेसे प्यास बहुत लगती है और शरीर में बहुत तकलीफ़ होती है इससे फिर बहलाने में बहुत उपयोग रक्खेगा इस रीतिसे भगवान् की यह आज्ञा है। अब देखो कि जब वह सरस आहार पेश्तर खायगा और निरस आहारको परटेगा तो उस सरस आहार खानेसे जीभका लोलुपी हो जायगा और सदा जहां सरस आहार मिलेगा वहां विशेष जायगा और ग्रहण करेगा क्योंकि वह तो जानता है कि सरस आहार में खालूंगा और निरस आहार में परट दूंगा ऐसा उसके चित में बना रहेगा और जो वह सरस आहारको परटे और निरस आहाको खाय तो फिर कदापि सरस आहार लेने में उपयोग शून्य न होगा क्योंकि वह जानता है कि सरस आहार विशेष ले जाऊंगा तो मुझको परटना ही पड़ेगा इस लिये उपयोग रक्खेगा और न लेगा; अब जो कोई ऐसा कहते हैं कि सचिक्कण आहार परटनेसे जीवादिक की उत्पत्ति होनेसे भगवत्‌की आज्ञाभंगका दूषण लगेगा तो हम कहते हैं कि हे भोले भाई! तुझको अभी जिनआगमके रहस्यकी खबर नहीं है और तुमने गुरु कुलवास भी नहीं सेवा इस लिये तुमको ऐसी खसखसी उत्पन्न हो गई इस लिये हम तुमको रहस्यरूप घूंटी देते हैं इसको पान करो कि देखो जिस रीतिसे भगवान्‌ने परटनेकी आज्ञादी है उस रीतिसे परटने में कदापि जीव उत्पत्ति और दूषण न होगा और जो ऐसा ही होता तो भगवान् परटने की विधि क्यों कहते इस लिये देखो साधु नदी उतरता है तो जो भगवान्‌ने विधि कही है उस विधिसे उतरे तो भगवान् की आज्ञाका विरोधक नहीं किन्तु आराधक है सो देखो जो एक दफा सरस आहार विधि सहित परटेगा तो उसको आहार लेने में हमेशा उपयोग रहेगा और पेटकी पूर्त्ति मुवाफ़िक़ आहार लेगा और जो वो निरस आहारको परटेगा तो जब उसको सरस आहार योग्य मिलेगा तब ही ले आवेगा और निरस को परट देगा इस वास्ते सरस को परटना और निरस को खा जाना यही ठीक है अब देखो ऐसी २ बातें भोले जीवोंको समझाय कर वे लोग उत्कृष्टे बनते हैं और दृष्टान्त क्या देते है कि भाई इस पंचम कालमें ऐसा हो रहा कि लोग गहला अर्थात् पागल हो रहे है जो उनके संगमें ऐसा न करें तो हमको लोग इस भेष में न रहने दें और अनेक तरह की लड़ाई, दंगा, फिसाद करें सो वह दृष्टान्त यह है- "कि राजाके यहां एक पंडित आया उस समय राजा और दीवानके

सामने वह पंडित अपनी ज्योतिष देख कर कहने लगा कि हे राजन्! थोडेसे दिनके बाद ऐसा पानी पडेगा कि जो शख्स उस पानीको पीवेगा वह गैला हो जायगा इस वास्ते पानीका पहले बंदोबस्त करना चाहिये कुछ दिनके बाद फिर दूसरा पानी बरसेगा तो उस पानीके पीनेसे लोग फिर अच्छे हो जांयगे और गैलपन मिट जायगा सो हे राजन्! इस वास्ते पानीका बंदोबस्त अवश्यमेव करो यह मेरा जो ज्योतिषका वाक्य है सो झूंठ कदापि न होगा ऐसा कह कर ज्योतिषी तो चला गया राजा और दीवान ने सल्लाह करके सब रैयतको हुक्मदिया की पानीका संग्रह करो और राजा और दीवानने भी पानीका संग्रह बहुत किया और रैयत से भी बहुत संग्रह कराया और सब से कहदिया कि यह पानी जो अबके बरसेगा उसको कोई मत पीना जो पीवेगा सोही गैला होजावेगा, फिर कुछदिनके बाद पानी तो बरसाही सो कितने ही दिनतक प्रजाने उस बरसे हुये पानी को न पिया परन्तु अन्तको जो प्रजाने पानी संग्रह किया था सो सब खर्च होगया आखिर को वह बरसातका पानी लोगों को पीनाही पड़ा उस पानी के पीतेही लोग गन्डे होने लगे यानी गैले होगये जब राजसभा में वे लोग नाचने लगे धूल फेंकने लगे तब राजा और दीवान लोगों से ऐसा कहने लगे कि तुम गैलेपनेकी बातें क्यों करते हो उस वक्त लोग कहनेलगे राजा और दीवान दोनों गैले है इस राजा और दीवानको उतारो और दूसरा राजा और दीवान बिठलावो और इन दोनोको मारो उस समयमें राजाको दीवान कहने लगा कि महाराज कोई उपाय करो नहीं तो जान जायगी उस वक्त राजा उस दीवानसे बोला कि भाई क्या उपाय करें तब वह दीवान बोला कि महाराज आपने भी ऐसेही बनो तब तो जान बचजायगी तो राजा और दीवान दोनों ने विचार कर अपनी जान बचानेके वास्ते कपड़े फेंक दिये, नंगे हो गये, ताली बजाने लगे, तो वे दोनों शख्स राजा और दीवान जान कर गैले हुये। इस दृष्टान्तको वर्तमान कालमें सब कोई ढूंढे हैं अर्थात् अपनेको तो राजा और दीवानकी बतौर जान गैला बतातेहै और दूसरोंको अनजान गैला बनाते है और लोगोंसे कहतेहै भाई ये लोग बहुत हैं ऐसा न करें तो हमारा बिलकुल चारित्र न पले इस रीतिसे भोले जीवोंको दृष्टिरागमें फँसाय कर आप मौज करते है जब उन भोले जीव गृहस्थियोंसे जियादा दृष्टिराग फँसजाय तब उन लोगोंके हृदयमें अनेक अनर्थोंका हेतुरूप सल गेरदे कि जिससे वो सत् पुरुष आत्मार्थी हो उसके पास न जासकें कदाचित् वो उस आत्मार्थीके पासभी जाय तो वो धोकेरूपी जो सल बैठा हुवा है उस सलसे सत्तरूप 'स्याद्वादवीतराग' के मार्गकी रुचि उस पुरुषको न होसके सो दृष्टान्तसे दिखाते है–जो 'महानसीत' के चौथे अध्ययनमे है (नागील सोमटका अधिकार है वहांसे जान लेना) क्योंकि सुगुरुका मिलना बहुत कठिण है कदापि सुगुरु मिले तो भी उसकी संगती होना बहुत दुर्लभ है सो दृष्टान्त यह है:–कि एक राजा भद्रक स्वभावका था परंतु वह पढ़ा लिखा तो था नहीं किन्तु भद्रकपनेसे सबकी खातिर करता था जो कोई पंडित विद्वान् आता उसकोही अपने घरमे बुलाता और अनेक रीतिसे उसका सत्कार करता दो चार महीना रखकर फिर वह विद्वान् कहीं जानेकी इच्छा करता तो उसको दो चार पांच हजारका धन देकर विदा करता इस रीतिसे सैकड़ो विद्वानोकी

उसने खातिर तवाजो किया और देशोंमें उसका नाम हुवा अर्थात् कीर्ति फैली फिर उसके यहां एक पंडित आया उसने उस राजाका भोलापन देखकर हजारों लाखों रुपयोंका धन ठगा और राजाको अपने वशमें कर रक्खा कई वर्ष होगये राजाको छोड़ कर कहीं जाय नहीं एक दिन अपने मनमें विचार करने लगा कि इतने दिन हो गये घरको जाऊं तो ठीक है कदाचित् मैं गया तो कोई पंडित इस राजाको वशमें करलेगा और इस भोले राजाका धन ठगेगा इस लिये ऐसा कोई उपाय करो कि जिससे राजा मेरे ही वश रहे और किसी को धन न दे ऐसा अपने चित्त में विचार कर राजा से कहनेलगा हे राजन् ! अब हम अपने घर जायेंगे परन्तु तेराप्रेम देखकर हमको तरस आता है किन्तु परमभक्त और गुणग्राही इसलिये तुझको इस भागवत का अपूर्व अर्थ बतानेकी इच्छा है सो उस अर्थ को कोई नहीं जानता है हम पण्डित लोगही उस अर्थको जानते हैं सो वह पण्डित लोग किसी को बताते नहीं है और सभामें भी नहीं कहते है और सिवाय पण्डितों के हरएकको नहीं बताते हैं सो भी पण्डितों में भी कोई २ बडे २ पण्डित है वही जानते हैं सो वह अर्थ हम किसी को नहीं कहते परन्तु और कई तरहके अर्थ तो हम बतादें परन्तु असल जो अर्थ है सो नहीं कहते जब तो राजा उस पण्डितको बहुत पीछेपड़ा कि महाराज मुझपर कृपाकरो और वह असल अर्थ बतावो जब दो चार दफा तो राजाकी नाईं करदीनी कोई दिन कुछहाल कहै कभी कुछ कहदे जब राजा अत्यंत होकर पीछेलगा तब एकदिन उसको अर्थ बतानेलगा कईतरहके अर्थ उस देवीभागवत के बताये और फिर असल अर्थ को छिपानेलगा जब राजा फिर पीछेपड़ा कि महाराज कैसेही कृपाकरके मुझे वह अर्थ बतावो जब वो पण्डित कहनेलगा कि हे राजन् ! तेरा भोला भद्रक प्रणाम है तो तू किसी पण्डित के सामने अर्थ कहदेगा तो ठीक नहीं होगा जब राजा कहनेलगा महाराज मैं इतना राजपाट करताहूं इतनी बातें मेरेपेट में बनीरहती है सो क्या आपका बताया हुवा अर्थ नहीं रहसकेगा, मैं किसी से नहीं कहूंगा । जब राजाको बन्दोबस्त में करलिया तब राजाको कहनेलगा कि देख राजन् मैं तुझे अर्थ कहताहूं किसी को मत कहियो यह अर्थ हम पण्डित लोगही जानते है और तेरीभक्ति देखकर मै तुझे कहताहूं "कोने बैठीदेवी चनाचावे" यह असल अर्थ है यह सिवाय हमारे पंडित लोगोके और कोई नहीजानते परन्तु देख किसी को कहना मत इस अर्थ को सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न और खुशीहुवा और खूब धनदिया और विदाकिया और कहनेलगा आप फिरभी पधारना आपने मुझपर बड़ीकृपा की आप फिर जल्दी पधारियो अब पंडित अपने देशको चलागया परन्तु राजाके सल गेर गया अब जो कोई पंडित विद्वज्जन आवे उसी से पूछे कि महाराज देवीभागवत का अर्थ क्या है तो पंडितलोग अनेक तरहका अर्थ करें परन्तु राजा के जो अर्थ बैठाहुवा है उस अर्थ के सिवाय दूसरा अर्थ न माने तब राजा पंडितोंका तिरस्कार करके निकालदे ऐसा उस राजा का हल्ला उड़ा कि किसीने उसको ऐसा बहकाया है कि किसी पंडितका सत्कार नहीं करता ऐसा जब हल्ला देशों में हुवा तब काश्मीर में एकपंडित था कि जिसके सरस्वती सिद्धथी उसने अपने दिल में विचारा कि यहांसे चलके उस राजाको प्रतिबोधदूं सो वह वहांसे चला और उस राजाके नगर में आया और रातको सोतीसमय सरस्वती ने उसके स्वप्न में आ-

यकर कहा कि राजाको फलाने पंडित ने ऐसा सलगेर दिया है कि तू ऐसा अर्थ कहना तव पंडित कहनेलगा कि यही अर्थ है अथवा और कुछ वात है तव सरस्वतीने कहा यह ही वात है और कोई दूसरी नही इतना कहकर वो देवी तो चली गई और राजाने उस पंडित को वड़ेआडम्बर के साथ बुलाया और खूव सत्कारकिया और अर्थ पूछने लगा तव उस पंडित ने कई अर्थ वताये फिरभी राजाने पूछा कि और भी अर्थ है तव पंडित कहनेलगा कि अरे भाई! इसका औरभी अर्थ है सो वह अर्थ हम पंडित लोग जानते है परन्तु किसी को कहते नहीं तव तो राजा उसके वहुत पीछेपड़ा और कहनेलगा कि उस अर्थ को एकान्त मे चल. कर वतावो तव वो पंडित उस राजाको एकान्त में लेगया और जिसरीति से पहले उस पं- डितने सलगेरती दफै जो २ रीति कहीथी सो यहभी पंडित उसको कहनेलगा तव तो राजा को वहुत विश्वास उत्पन्न होतागया और उस पंडितके पीछे पड़नेलगा तव उस पंडित ने वहुत वन्दोवस्त करके और उस राजा को यह अर्थ वताया कि " कोने वैठी देवी चना चावे" इस अर्थ को सुनतेही वह राजा वहुत प्रफुल्लित हुवा और क- हनेलगा कि महाराज सिर्फ आपने इस का अर्थ वताया है या एक पण्डित ने पहले वताया था सो आप कृपा करके यहां ठहरिये तव उस पण्डित ने विचारा कि इस राजाको कुछ वोध कराना चाहिये तव उस राजाको थोड़ेसे दिनोंमें व्याकरण, काव्य, कोष करा दिया और अच्छी तरहसे उस राजाको काव्य लगाना और अर्थ करना आगया तव उसी काव्यका अर्थ कराया तव तो राजा उसका ठीक २ अर्थ करने लगा तव वह पंडित कहने लगा कि हे राजन् ! इसका अर्थ कुछ वाकी तो न रहा तव राजा कहने लगा कि धातु प्रत्ययान्तसे तो इसका अर्थ हो गया तव वह पंडित कहने लगा कि "कोने वैठी देवी चना चावे" वह तो अर्थ इसमें नही निकला तव वह राजा उसको कहने लगा कि हे महाराज ! आपने मेरी मूर्खता दूर करदी और मेरा 'सल' निका- ला नहीं तो मेरी मूँर्खता आपके कृपा विना नहीं जाती इस दृष्टांतका दार्ष्टान्त यह है कि इसी रीतिसे वर्तमान कालमें जो दुःख गर्भित, मोहगर्भित, वैराग्यवाले है वो इन भोले जीवोको ऐसे २ अर्थ वतायकर अर्थात् नाना प्रकारकी उन भोलेजीवोंमें 'सल' गेरकर आप अपनी मौजमें मौज करना सावु (सावुन) से कपड़े धोना चौमासेमें डेढ़ २ सेर एक २ ठाणेके अन्दाजका सावुन लाना और उससे हमेशा आठमें रोज़ कपड़े धोना और जिस गृहस्थीके घर कभी सावुन नहीं आवेथा उसके घरमें साधुवोंके वास्ते सावु आने लगा सो हम इसका मतलव तो श्री जसविजयजीकी साक्षी देकर तीसरे प्रश्नके उत्तरमें लिख आये हे। औरभी देखो कि उन लोगोको दृष्टिरागमे फँसायकर ऐसी सोगन्ध दिलाते हैं कि हमारे सिवाय किसीसे वन्दना न करना और जो तुम दूसरेके पास जावोगे तो समग- तसे भ्रष्ट हो जावोगे क्योंकि तुम भोले आदमी हो सो तुमको इतना वोध नही है और भेषधारी अनेक तरहसे अपनी वात जमा देते है इस लिये उनका संघ मतकरो, सो वे श्रावक लोग ऐसे पुख्ता हो जाते है कि सिवाय दृष्टिरागी साधुके और किसीके पास नहीं जाते कदाचित् लौकिक व्यवहारसे जांयभी तो आत्मा अर्थकी वात छोड़कर कदाग्रहकी वात करते है इत्यादिक अनेक तरहके कारणोंसे जैनधर्मकी जो व्यवस्था हो रही है सो ज्ञानी जानता है मैं लिख नही सकता सो भी देवानुप्रिया हो! जो तुमको आत्माकी

इच्छा है तो इन सब बखेड़ोंको छोकडर शुद्धमार्ग वीतरागको अंगीकार करके अपनी आत्माका अर्थ करो और ऊपर लिखे कारणोंसे मै अपनेमे यथावत् साधुपणा नहीं मानताहूं क्योंकि श्री यशविजयजी महाराज अध्यात्मसारमें लिखते है कि जो लिंगके रागसे लिंगको न छोड़ सके वो समवेगपक्षमें रहे निष्कपट होकर जो कोई शुद्ध चारित्रका पालनेवाला गीतार्थ आत्मार्थी निष्कपट क्रिया करता हो उसकी विनय वियावच भक्ति करे सो मेरेभी चितमें यही अभिलाषा रहती है कि जो कोई ऐसा मुनिराज मिले तो मैं उसकी सेवा टहल बंदगी करूं नतु! दंभी कपटियोंके साथ रहनेकी इच्छा है और जो श्री जिनराजकी आज्ञा संयुक्त साधु, साधवी, श्रावक, श्राविका उस चतुर विधिसंघका दासहूं और जिनधर्मके लिंगसे मेरा राग होनेसे में अपनी दृढ़ाई करके भांडचेष्टासे कूतराकी तरह पेट भरताहूं और मैं मेरे में साधुपना नहीं मानताहूं क्योंकि वीतराग का मार्ग कठिन है सो मेरे में नही है और में ऐसा भी नहीं कहताहूं कि वर्तमानकालमें कोई साधु साधवी नही है क्योकि श्रीवीर भगवान्का शासन छेडले आरे तक चतुरविध संघ रहेगा और जो साधु साधवी भगवत्की आज्ञामें चलनेवाले हैं उनका मै बारम्बार त्रिकाल नमस्कार करताहूं परंतु मे जिनमार्गकी घोलना करने और शुद्ध शुद्ध जिनमार्गमें प्रवृत्ति होनेकी इच्छा करताहूं सो भो देवानुप्रिय वो ! जो तुमने संदेह किया सो मैने हाल कहा और तुमभी अपने चितमें विचार करो कि जो मैंने तुम्हारेको समायक चैत्यवन्दन वा काउस्सगकी रीति बताई है उस रीतिसे जो तुम्हारा दिल अर्थात् मनका ठहरना होता होगा सो तुमको मालूम है में तुमसे क्या कहूं और नौकारका गुनना मैने जो रीतिसे बताया है उसमें जो तुम्हारा मन ठहरता है सो तुम्हारी आत्मा जानती होगी या ज्ञानी जानता होगा सो तुम अपने दिलमे आपही विचार करलो औरभी देखो जो मैने तुमको हठयोगमें नोली वस्तीकर्म आदि कराये हैं सो उसका अनुभव तुम्हारी आत्मामें होगा परंतु मेरेमें चक्रोंके वर्णन मूजिब तुम्हारेको न दीखा सो उसका कारण मै ऊपर तुमको लिखाय चुकाहूं और अब जिस किसीको इस लिखानेमे संदेह उत्पन्न होवे वह शख्स इस चतुरविध संघके दास कुतरेके पास आवे और कुछ दिन स्थित करके आजमाइश करे जैसा कुछ हाल होगा तैसा उसको मालूम हो जायगा परंतु योग्यता देखनेसे जो ऊपर लिखी बाते हैं उनको बता सकताहूं मैं नम्रतापूर्वक सज्जनपुरुषोंको अर्ज करताहूं कि जिसकी खुशी हो वह मेरे पास आवे जो गृहस्थी होगा उसको दश बातोंका त्याग करायकर जोग्य देखकर बताऊंगा और जो जिनमतका लिग धारण किया हुवा पुरुष होगा उसको निष्कपट गच्छादिकके भी मतसे रहित देखूंगा तो बताऊंगा यह मेरा कहना नम्रता पूर्वक है नतु अभिमानसे ! (प्रश्न) आपने जो अपने मध्ये कारण लिखाये सो तो ठीक हैं परंतु अब हम एक प्रश्न आपसे और पूछते हे सो यह है कि जब हम किसी साधुसे कहते हैं कि महाराज साहब अपनेमें यथावत् साधुपना नहीं बतलाते हैं उस वक्त वह साधु लोग कहते हैं कि स्वांगभरकर बहुरूपियापनेसे क्यों डोलते है क्या इस स्वांगके विदून पेट न भरेगा । इस बातको सुनकर हम लोग चुप हो जाते हैं इसका उत्तर आप लिखाइये । (उत्तर) इस प्रश्नका उत्तर ऐसा है कि भाई स्वांग तो मैने भर लिया परंतु बहुरूपियापन मुझसे न दरसाया गया इस जगह दृष्टान्त देकर

दार्ष्टान्त समझाते हैं सो दृष्टान्त यह है-कि राजाके यहां एक बहुरूपिया स्वांग भरनेवाला आया उसने कहा कि मैं बहुरूपिया हूं और स्वांग भरताहूं सो मुझे इनाम देना चाहिये उस समय वह राजा कहने लगा कि जब तू स्वांग भरकर आवेगा और तेरे स्वांगको मैं पहचान लूंगा कि तू फलानेका स्वांग करके आया है तो मैं तेरेको इनाम नहीं दूंगा परंतु जब तू स्वांग करके आवे और मैं तुझे न पहचानूं कि तू बहुरूपिया है और तू उस स्वांगको हूबहू अर्थात् ज्यों का त्यों चिह्न और लक्षणोंसे दिखाय कर मेरेको भुलाय देगा उस वक्त मैं तेरेको इनाम दूंगा और उसी वक्त मैं जानूंगा कि तू सच्चा स्वांग भरके रूपको दरसाता है उस वक्त तेरेको इनाम दूंगा नहीं तो भांड चेष्टा करके जो रूप दिखावेगा तो इनाम नहीं दूंगा ऐसा जब उस राजाने कहा उस रोजसे लेकर उस शख्सने कई महीना तक अनोखे २ कई स्वांग किये परंतु जब राजाके यहां जाता तो राजा कह देता कि तू फलाणेके स्वांग करके आया है तब वह लाचार होके अपने मकानपर चला जाता एक दिन उसने साधुका स्वांग करा और उसी रूपसे हूबहू वह चलता हुवा उस राजाके दरबारके सामने हो कर निकला और राजाने उसको दूरसे देखकर उसमें साधुपनेका चाल चलन देखतेही मोहित हो गया और उसके सामने आया और नमस्कारादि करके बड़े आदर सत्कारसे अपने मकान पर ले गया और ऊंचे आसनपर बैठाकर और विनती करने लगा कि महाराज कुछ दिवस आप यहां ठहरो और मेरेकूं उपदेश आदि देकरके कृतार्थ करो अर्थात् मेरा जन्म मरण मिटावो ऐसा राजाकी चेष्टा देखकर के पासके बैठनेवालोंने राजासे इशारा किया कि हे राजन्! इस साधुके सामने धन आदिक रक्खके इसकी परीक्षा करो जो यह धन आदिको ग्रहण करेगा तो असल साधु नहीं और जो इन्होंने धन आदि लेनेकी चेष्टा न करी तो ऐसे महात्माकी सेवामें रहना बहुत अच्छी बात है उस वक्त राजाने लाख दो लाख रुपयेकी जवाहरात वगैरे भेंटके उनके सामने रक्खी और कहा कि महाराज आप इस भेटको अङ्गीकार करो और मेरा जन्म सफल करो उस समय उस धन आदिको देखकर और उस राजाकी बात सुनकर उस बहुरूपिया स्वांग भरनेवालेने साधूपना यथावत् दरसानेके वास्ते वहांसे उठ खड़ा हुवा और उस भेटको तिरस्कार करके चल दिया उस वक्त रास्ता देखताही रह गया फिर वह शख्स थोडीसी दूर जायकर और अपने साधुपनेका स्वांग उतार कर राजाके पास आके मुजरा किया और कहा कि मुझे इनाम मिले उस वक्तमे राजा कहने लगा कि भाई किस बात-का इनाम मांगता है जब वह शख्स बोला कि हे राजन्! थोड़ी देर पहले मैं साधुका स्वांग करके आया था और आपने मेरेको नही पहचाना इस लिये मेरेको इनाम देना चाहिये उस वक्त राजाने इनाम दिया और कहने लगा कि जिस वक्त हम तेरेको इतना धन देतेथे क्यों नहीं लेके चला गया क्योंकि उस वक्त तो धन बहुत था इस वक्त तो तेरेको उस धनसे बहुत कम इनाम मिला है सो इस इनामसे राजी हो गया तब वह शख्स बोला कि हे राजन्! मैने उस वक्त में किसका स्वांगभरके रूप दरसाया था तब राजा कहने लगा कि तैने साधुका स्वांग भराथा तब वह शख्स बोला कि हे राजन्! जब मैने साधुका स्वांग भरा था तो उस वक्त यथावत् साधुका रूप न दरसाता किन्तु भांडका

रूप हो जाता क्योंकि साधु अकिञ्चन अर्थात् परिग्रहके त्यागी हैं धन आदि को हाथ से भी न छूनेवाले हैं इस लिये उस वक्तका धन उस साधुपनेके स्वांग मे लेना ठीक नहीं था इस वक्त जो आपने मेरे को इनाम दिया है सोही लेना मेरे को ठीक है यह दृष्टान्त हुवा। अब इसका दार्ष्टान्त तो खुलासा है सो सब कोई विचार सक्ता है परन्तु तो भी किञ्चित् भावार्थ दिखाते हैं कि इस संसार में जीवने अनादिकालसे स्वांग भर रक्खा है उस स्वांगके दो भेद है एक तो संसारी दूसरा पारमार्थिक सो जिस में संसारी स्वांग तो जीव जिस जोनि जिस गति में स्वांग लेकर जाता है उस गति उस जोनिका यथावत् रूपको दरसाता है परन्तु जिसने पारमार्थिक स्वांग भर कर यथावत् स्वरूप दरसाया उनका ही कार्य्य सिद्धि हुवा अर्थात् मोक्ष हो गई परन्तु जिन्होंने स्वांग भरा और यथावत् रूप न दरसाया उनका पारमार्थिक कार्य्य अर्थात् मोक्ष न हुई इसी लिये शास्त्रों में कहा है कि ओघा मुंह पत्ती लेकर मेरुके बराबर ढिगला किया परंतु मोक्ष न हुई इसका यही कारण है कि स्वांग भर कर यथावत रूप न दरसाया गया सो मैंने भी स्वांग तो भरा परंतु मुझसे यथावत् रूप न दरसाया गया इसवास्ते मैं यथावत साधु भी न बना जैसा कुछ मेरे में गुण अवगुण था सो जाहिर किया क्योंकि अपने मुखसे आपही साधु बननेसे कुछ कार्य्य की सिद्धि नही होगी किंतु निष्कपट होकर भगवत् आज्ञासे जो साधुपना पालेगा वह साधुही है और उसीका कार्य्य सिद्धिहोगा और मुझको यथावत कहनेका कारण यही है किजिस पुरुषको जिस वस्तु में गिलानी बैठती है और गिलानी बैठनेसे जिसकी उस चीजसे निवृत्ति होती है फिर उस पुरुषकी उस वस्तु में प्रवृत्ति नहीं होती सो मैंने भी अनादिकालसे झूंठ, कपट, दंभ, धूर्तता जो जो की होगी सो तो ज्ञानी जाने परंतु इस जन्म में जो मैंने धूर्तता, दंभ, कपट, छल आदि किये हैं सो मेरी आत्मा जाने या ज्ञानी जाने क्योंकि जो सात विषन सेनेवाले हैं उनसे कोई दंभ, कपट, धूर्तता बाकी नहीं रहती सो मै अपने कर्मोंको कहां तक लिखूं परंतु कुल धूर्तता दंभ और कपट मुझ में था सो जब मेरे शुभ कर्मका उदय आया तब इन चीजों में गिलानी बैठनेसे इनको छोड़ कर इस काम को किया अर्थात् भेष लेकर धीरे २ त्याग पच्चक्खानको बढाता हुवा निष्कपट होकर करता चलता हूँ नतु ! किसीके उपदेश या संग सोहबतसे मैंने भेष अंगीकार किया और मेरी बुद्धि और अनुभव मे यही बैठा हुवा है कि जो काम करना सो निष्कपट होकर करना देखो श्री आनन्दघन जी महाराज श्री ऋषभ देव स्वामीके स्तवन में कहते हैं— " कपट रहित थई आतम आपनो " इति वचनात् । और जो कहा कि स्वांगके विदून पेट नहीं भरता है; सो ऐसे उनके कहने में मैं अपना बहुत उपकार समझता हूं और उनकी यह शिक्षा मेरे हक़ में बहुत अच्छी है परंतु मैं लाचार हूं और निर्लज्ज हो कर पेट भरता हूं और जब यह मसल " दोनों दीनसे गये पांडे हलवा भये न मांडे " याद आती है तो बहुत पछताता हूं और अपने मूर्ख मनसे कहता हूं कि रे दुष्ट ! दुर्गतिके जानेवाले न तो तू गृहस्थीपनेका रहा और न यथावत् साधू ही बना क्योंकि कहा करते हैं " गृहस्थके टूकके बड़े २ दांत । भजन करे तो उबरे

नहीं तो फाड़ें आंत ” ॥ और जैन मत में भी अध्यात्म कल्पद्रुम मे लिखा है कि जो गृहस्थके माल खाते हे और भगवत् आज्ञा नहीं पालते और अपने में साधुपना ठहराते हैं वह अगले जन्म में जाकर उन गृहस्थियोंके गाय, भैस, ऊंट, घोडा बन कर बदला देंगे सो मैं जानता हूं कि मुझको भी बदला देना पडेगा सो इससे भी लाचार हूं दूसरा मेरा गृहस्थीपन भी न रहा सो मैं आप ही पछताता हूं परंतु क्या करूं जो मै इस भेषको छोडूं तो मेरे को गृहस्थी अर्थात् जाति मे तो कोई बैठने दे नहीं तो अब गृहस्थीपने का तो रहा नही एक तो यह दूसरा यह है कि मैं इस भेष को छोड कर पेट भर सकता हूं परंतु मुझको कोई नही जानता कि कौन जाति; कौन देश; किसका बेटा और कौनथा किंतु मेरेको इस स्वांगके भरनेसे अर्थात् जैनका लिंग लेनेसे जैनी समझतेहै और स्वमतमें तो मेरी प्रसिद्ध कम है परंतु परमतमे संन्यासी, बैरागी, कनफड़ा, दादूपन्थी कबीरपन्थी निर्गले, उदासी जो कि उन मतोके अच्छे २ महात्मा और विद्वान् बाजते हैं उन लोगोंसे मेरी मुलाक़ात अर्थात् वार्तालाभ हुई है और मैने उन्हींके घराकों प्रमाण देकर उनके घरकी न्यूनता दिखायकर और जैनी उन लोगोमें प्रसिद्ध हो रहा हूं दूसरे हठयोग वालोंमेंभी मेरी प्रसिद्धि है इस वास्ते जो मै इस स्वांगको छोडूं तो मेरी तो कुछ हँसी नहीं है क्योंकि मुझको कोई नही जानता है किंतु इस जिन धर्मके प्रभावसे मै जैनी २ करके प्रसिद्ध हूं इस लिये मै इस लिङ्गको छोड़ नही सकता क्योंकि वो लोग जब मुझसे बात करतेथे उस समयमें वे कहते कि तुम जैनी क्यो हो गये तुम तो हमारे मतमें होते तो बहुत अच्छा होता उस वक्तमें मै उनको जवाब देता कि इस वीतराग सर्वज्ञका मार्ग स्याद्वाद चिंतामणि रत्नको छोड़कर तुम्हारे कांचरूपी मतको कदापि अंगीकार न करूं ऐसा उनसे कहता था इस लिये अब इस धर्मके लिङ्गको छोड़नेमें वे लोग हँसीकरे; उस धर्मकी हँसी से लाचार होकर नही छोड़सकता और जो वेलोग मेरे मध्ये ऐसा कहते हैं तो मैं अपना उपकार मानताहूं क्योंकि वे लोग ऐसाही हरेक श्रावक तथा हर जगह ऐसाही कहते रहेंगे तो गृहस्थियों की आमदरफ्त मेरेपास कमरहेगी और ग्रहस्थियों की आमदरफ्त कमहोने से मुझे उपाधि कमहोगी क्योकि गृहस्थियों को जियादा आने से अनेक तरहकी उपाधि पैदाहोती है इसलिये जो वे ऐसा हमेशा कहते रहेंगे तो मै बहुत राजी रहूंगा और जो तुमने कहा कि हम सुनकर चुपहोजाते हैं सो तुम्हारा चुपहोना बहुत अच्छा है क्योंकि जैसा मैं कहताहूं उसीमाफिक वे लोग कहते है कदाचित् जो तुम मुझसे दृष्टिराग रखकर प्रवृत्ति मार्ग देखकर उनको किसीतरह का उत्तरदेवे तो ठीकनहीं हैं क्योंकि मेरा तुम्हारा धर्म संवन्ध है नतु ! दृष्टिराग जो मैने तुमको वीतराग के धर्म का उपदेश दिया है उससे यथाशक्ति आत्म विचार करके मिथ्यात्वरूपी अपने घरका काज निकालो नतु वाद विवाद से सिद्धि होगी कदाचित् जो तुमको इस वर्त्तमान कालकी यथावत् बात सुनने की इच्छाहो तो मैने मेरी बुद्धि में जिन आज्ञा मोक्ष प्रकाशमान ग्रन्थ रचा है जो तुम्हारे को फ़ुरसतहो तो मैं तुम्हारे को लिखादूंगा उस ग्रन्थसे तुम्हारे को अच्छीतरह से बोध होजायगा और भी भव्यजीवों

को उपकार होगा जो तुम्हारी इच्छा है तो लिखलेना इसलिये ऐसे प्रश्नो के झगडे छोडकर किञ्चित् अब अध्यात्म सुनाताहूं सो सुनोः—

झूलना ॥

चिदानन्द तो साध अब वरे बैठा, अंधिकोठड़ी कहो किम जाऊंगाजी ॥
लहूं नाम उसका धरूं ध्यान दीपक घट वीच में खोजने जाऊंगाजी ॥ १ ॥
श्रद्धा सरायके बीच वैठूं पिछला भोग सारा भुगताऊंगा जी ॥
मारूं चार दुश्मन पर हाल करके समभाव को खैंचकर लाऊंगाजी ॥ २ ॥
मिलीथी नार मुझको जिन दुःख दीना उसे दूरकर दूसरी व्याहूंगा जी ॥
मिला अव आनके भ्रात मेरा लीना आलंब अर्हत गुण गाऊंगा जी ॥ ३ ॥
मिलेगी काल लब्धी जब आन मुझको अपने चितको आप समझाऊंगा जी ॥
देखूं रूप अपना सब भ्रम जावे चिदानन्द आनन्द जब पाऊंगा जी ॥ ४ ॥

कुंडली—गुरुकी कृपासे मन ठहरनेकाभेदः—

करसे जपे सो चूतिया मुखसे जपे सो कूर ॥
अजपा जाप जपावतां वही संत भरपूर ॥
वही संत भरपूर समझ गुरु बानी लीजो ॥
आतम मिलना चाहे दूर आशा तज दीजो ॥
सब मतका यह भेद गुरु जिन पूरा कीजो ॥
ज्ञान सुधा रस देख चिदानन्द मतको लीजो ॥ १ ॥
'अरहं' अक्षर अन्तका 'सोहं' अक्षर आदि ॥
ऊंकार ध्वनि जोड़कर संतो करो विचार ॥
संतो करो विचार शब्द और ध्वनि मिलावे ॥
करे पवन मन संध इसी में प्रेम लगावे ॥
खोल दिया सब भेद इसे अब जो कोई धावे ॥
चिदानन्द यह भेद अनुपम मुक्ति पदको पावे ॥ २ ॥

काफी ।

टेक—आज आनन्द वधाई सखी तू अति सुखदाई ॥
पर घर रमवा चाल पियाकी खेलत उमर गमाई ॥

आज उलट घर आवत पीतम ॥
सुनत खबर हिये अति हुलसाई मोतियन चौक पुराई ॥१॥ सखी०॥
इंगला पिंगला घर तज भागी ॥
सुखमण श्रुत लगाई तिखेनी तीरथ कर प्यारी अजपा जपत सवाई ॥
हृदय मेरे अति हुलसाई ॥ २ ॥ सखी० ॥
नागन मुख मार्गको अचरजमो मुख वर्णि न जाई ॥
चिदानन्द संग खेलत मेरे जन्म सफल भयो माई ॥
जगत विच कीर्ति छाई ॥ ३ ॥ सखी० ॥

राग कल्याण।

टेक—हो अवधू क्यों तू भरम भुलाना ॥
चेतन नाम अनादि तेरा जड़ संगत सुध विसराना ॥ हो०
वहरात्म तज अंतर आतम सो परमातम पहचाना ॥ हो० ॥
सुख स्वासा संधि कर प्यारे जोखै कर्म करे सोई दाता ॥ हो० ॥
जन्म मरण नहीं काऊ काल में इन्द्रि विच्छेद दुःख कर माना॥ हो०॥
चिदानन्द देखे जब मूर्ति अजपा जाप जपाना ॥ हो० ॥

राग वसंत ॥

टेक—आज ऋतु आई है वसंत। पारस दरस देख चित संत ॥
आवत जात गुलाल उडावत सुरत पिचकरा दंग ॥
मन अवीर ऊपर सूंदेकर अक्षर खेल अनंग ॥ आ० ॥
हृदय कमल विच प्राण पियारा मलो उसीका अंग ॥
अजपा धार जमुनकी छोडो ऊपर छोडो गंग ॥ आ० ॥
वहां सूं चलत गली में खोजत नाभी पास भुजंग ॥
उसके मुख मार्ग में होकर अधर्म रूपी भंग ॥ आ० ॥
ब्रह्मेन्द्र आपुका पाला आसन धर सखियोंके संग ॥
चिदानन्द समुता संग खेलत खेलत खेल अवंग ॥ आ० ॥

होरी खम्मांच।

टेक—समझ खेलो ऐसी होरी। मिटे जामें आवागवनकी डोरी ॥

इंगला पिंगला तज पिचकारी सुखमण काठी गहोरी ॥
तिखैनी भूमिके ऊपर अनुभव रंग भरोरी ॥ १ ॥ हो अ० ॥
ज्ञान गुलाल उडत जहाँ प्यारी दर्शन चरण खरोरी ॥
नाभि पास कुंडली नाड़ी अजपा माजूम चखोरी ॥ हो० ॥
ब्रह्मरन्द्र मद्य प्याला पीके आनन्द अमल चढोरी ॥
चिदानन्द ले शुद्ध चेतना मुक्ति पद जाय वरोरी ॥ २ ॥ स० ॥

विहाग ।

टेक–चिदानन्द विन तरस रही अँखियां, दरशन करन चलो सखियां ॥
पीतम पद पंकज में जाऊं जैसे गुड़ बैठे मखियां ॥
भ्रमत फिरो पिया परनारी सूं जाकारण वो अति दुखियां ॥ १ ॥
भटकत देख तरस मोहे आयो करत जतन में नहीं रखियां ॥
घूंघट पट करूं नैन निजारा आवे घर समगत पखियां॥२॥चिदा०॥
लट पट लिपट कर ध्यान शुकलका ऐसा रस कस नवी चखियां ॥
अनुपम रूप दरश छवि निरखी चिदानन्द आपालखियां ॥ ३ चि० ॥

रागपावस ।

टेक–अनुभवकी बदरिया वरसे, आनंद मगन चित घनसे ॥
आवत जात पवन पुरवैया, सुरत गगन जहां गरजे ॥
मन मयूर जब कूकन लागे अजपा विजली तरजे ॥ १ ॥
हृदय सरोवर कमल खिलो जहां चन्द्र सूर्य्य गये डरसे ॥
अनहद शब्द पपीहा बोलत सुखमन रहत घुमरसे ॥ २ ॥ अ० ॥
नाभि पास झाड शक्तका चिह्न कहे सब तनसे ॥
चिदानन्द लिये शुद्धचेतना सैर करत वा बनसे ॥ ३ ॥ अ० ॥

कालंगड़ा ।

टेक–इस पदका करो कोई लेखा हो अवधू अजब खेल हम देखा ॥
एक नदिया बहु पक्षी निकले संग गुरू चेला मिल भेला ॥
जो चेला गुरु शिक्षा माने जग चुन रहे अकेला ॥ हो० ॥ १ ॥

मात पिता विन जन्म मरण एक त्रिया गगन विच ठाढ़ी ॥
विरले कामी जा भोग करे और काम भोग संसारी ॥ अ० ॥ २ ॥
गगन मंडल विच गऊ व्यानी धार गगन ठहराई कोई ॥
एक विरला माखन खाया छाछ जगत् विच छाई ॥ ३ ॥ अ० ॥
गगन मंडल विच अद्भुत कूवा, चार खड़े रखवारे ॥
पकड़ २ दै गोता सबको सूर देख चुप हो विचारे ॥ ४ ॥ अ० ॥
गगन मंडल विच नैयातैरे जल अमृतसे जारी ॥
कोई एक सुगरा भर२पीवे नुगरा प्यासा फिरे गिरे मझ धारी ५ अ०६
बीज विना किम् बेल बेल बिनतोंबा विन जाणे गुण गाया ॥
गानेवालेका रूप न देखा सतगुरु सोही बताया ॥ ६ ॥ अ० ॥
आतम ज्ञान वितान जणावे अजपा सोहं संग श्वासके लावे ॥
उलट देख घट अन्तर अपने जद चीने जद चिदानन्द पद पावे७अ०

राग आसावरी–उलटी वाणीका पद।

टेक–है सीधी कहनेमें उलटी कोई ज्ञानी अर्थ लगावेरे।
जो इस पदको समझे बूझे फिर जगत् नहीं आवेरे ॥

धरती बरसत देखी मैंने धार गगन ठहरावे ओलाती ॥
उलट बही जाती मगरेसे जाय गिरावेरे ॥ १ ॥ हैसी० ॥
तरगागर ऊपर पनिहारी जल भर घरको जावेरे ॥
धुवां वरत धुंधाती अग्नि पौने हारीको रोटी खावेरे ॥ २ ॥ हैसी० ॥
नाव बीच नदिया जहां वहती यह अचरजमो आवेरे ॥
लोहा तिरत रुई जहां डूबत चूहा बिल्लीको मारेरे ॥ ३ ॥
बकरी जाय सिंह धमकावत पंगु मेरु चढ जावेरे ॥
चिदानन्द अचरजकी वतियां गुरु बिन कौन लखावेरे ॥४॥ हैसी० ॥

वर्तमान कालकी व्यवस्थाका पद, राग भैरवी इकताला ॥

टेक–अजित जिन तेरी गती क्या कोई विचारे।
ज्ञानविन चरण सेव कैसे कोइ धारे॥

पूरनता द्रव्य रुचि जीवतो नवीन तैसे उपदेश कहें ॥
भाव रुची कहो कैसे कर संभारे ॥ १ ॥ अ० ॥
गच्छोंके भेद कहत, कर्म मिथ्याके लपेट बहुत ॥
स्याद्वाद नेम कहो कैसे कर पारे ॥ २ ॥ अ० ॥
दृष्टिका राग करत तहां समगत विचार कहत ॥
आना बिन करत काज आतमको विसारे ॥ ३ ॥ अ० ॥
श्रद्धा बिन चरण ज्ञान क्रिया सब करत अजान ॥
जैन नामको धराय कहो कैसे करतारे ॥ ४ ॥ अ० ॥
तत्व आगमको छन्द करत मिथ्या प्रपंच ॥
बहुजन सम्मातिको दिखाय अनेक भेद डाले ॥ ५ ॥ अ० ॥
अध्यातम सार देख वाचक जस विजय वचन ॥
ज्ञान वैराग्य बिन करे पन्थ न्यारे ॥ ६ ॥ अ० ॥
गुरु शिष्य कथन भिन्न जैन धर्म छिन्न २ गाडर ॥
प्रभाव लोग आतमको न सारे ॥ ७ ॥ अ० ॥
तथा विधि शुद्ध गुरु बिना उपदेश होत ॥
मानव पिण आपना आप जन्म हारे ॥ ८ ॥ अ० ॥
श्रद्धा बिन जैन धर्म जिम धारपर लेप होत ॥
किञ्चितना विचार संसार बहुतलारे ॥ ९ ॥ अ० ॥
चिदानन्द उत्तम पद जान उपदेश देख ॥
अनुभवकी बात करे मोह फंदसे किनारे ॥ १० ॥ अ० ॥

अर्जी—राग देशी ।

टेक--सुनो नाथ श्री मन्दिर स्वामी यही अर्ज हमारी ।
भरत क्षेत्र जिन लिंगी साधु आज्ञा न माने हो तुम्हारी ॥
भई व्यवस्था नाथ सुनो तुम ज्ञान भई घट २ की लेवो विचारी ॥
व्यवहार करत निश्चय बन जावे सो आतम हितकारी ॥ १ ॥
कपट क्रिया व्यवहार करे जो ऐसी करनी करे नहीं वो तारी ॥
अंगारख मुनिराज क्रिया सब करतो श्रद्धा बिन आचारज दियो हो उतारी२सु.

आरज देश नाम इम करनी मम आतम तुम चरण कमल आधारी ॥
लब्ध नहीं वैक्रे की क्रिया नहीं कोई देवत आज्ञाकारी ॥३ सु० ॥

शहर देख उत्कृष्टे वनकर लेत आहार दोष सव टारी॥संग आदमी
रहे अदत्ता तीन लेत वे देव गुरु और जीव अदत्ता सारी ॥ ४ ॥सु०॥

घर छोड़ा रंगरेज वने अव उदर भरण हितकारी ॥
पीलेमेपासते वहु अव उदकृष्टे रंग कौन निकारी ॥ ५ ॥ सु० ॥

नसीत आगमकी देख चूरिणीरंग पात्र वस्त्र कारण अनुस्वारी ॥
लोद धूल रंग तेल सात कहे त्रिस जीवकी हिंसा देखानेरी॥६॥सु०॥

जिस साधुके जुआं पड़े वहु जिस कारण हो रंगे सोई ये धारी ॥
कत्था चूना केसर रंग कर किस आगम हो साख तुम्हारी॥७॥सु०॥

वचन उथापन करे प्रभूको वहुल होत संसारी ॥
पक्षपात तज समगत धारो चलो सर्वज्ञ वचन अनुसारी ॥८॥सु०॥

गच्छ नाम समुदाय कह्यो छै समाचारीथी एक करो अवन्यारी ॥
सूत्र सरीखो धर्म नहीं कोइ उत सूत्र नरक ले डारी ॥ ९ ॥ सु० ॥

कमलप्रभा आचरज केरो सत वचन कहे एकही भव अवतारी ॥
मिश्र वचन कह नरक गयो वो थापो हो अव झूंठ गति क्या होय तुम्हारी१०॥

धावे न रंग न मने जिनकीयो आगम अचारंग लेओ विचारी ॥
वस्त्र धोय साधू जो पहरे होय विराधक वह साधू व्यभिचारी ॥११॥ सु० ॥
आगम सुगडंग वचन इम भाषो जो धोवो सो साधु पद नहीं धारी॥पग धोवत
स्नान कह्यो किम आगम रंजन कर क्यों कपट क्रिया करो भारी १२ सु०॥

त्रिविधि २ कियो त्याग साधुने मंदिर आप वनाय त्याग किम पारी ॥
श्रावक उपदेश दियो जिन वरजी मंदिर निरजरा हेतु सुखकारी॥१३॥सु०॥
गृहस्थ कृत साधु जव कीनो इन्द्रीको कर भोग द्रव्य लियो धारी ॥
चंद्र सरीखो धर्म तुम्हारो सो चलनी कर डारी ॥ १४ ॥ सु० ॥

परम परादई लोप अनादि करत विवाद अर्थकरे न्यारी ॥
समेगी जती ढुंढ सव मिल कर गच्छ वांध टोला कर राह विगारी॥१५॥सु०॥

तुम विननाथ दुःख कौन खोवे यह विनती तुम सुनो आप उपकारी ॥ कर्म कटाक्ष निर्बल मोयकीनो यह अर्जी तुम चरण कमल विच डारी ॥१६॥सु०॥ अज्ञान तिमर गति कर्म न जानू हा ! हा !! करत हो नाथ पुकारी ॥ चिदानन्द विनती प्रभू धारो भेष लेन रख लीजो हो लाज हमारी॥१७॥सु०॥

अब इसजगह अन्तमङ्गल समाप्त होचुका शासनपति श्री वर्द्धमान स्वामी की परम्परा में सुधर्मा स्वामी से आदिलेकर बराबर चलते हुये कोटी गच्छ वज्र शाखा चन्द्रकुल खरतर विरुद्ध के धारण करनेवाले पाटानुपाट चले आये सो वर्त्तमान काल में भट्टारखों में दो गद्दी मौजूद हैं एक में तो श्री जिनभुक्तिसूरिजी वर्त्तमान में विचरते हैं और दूसरी गद्दी में श्री जिनचन्द्रसूरिजी विचरते हैं इन दोनों गद्दियों के अनुमान चारपांच पीढ़ी के पहले श्री क्षीमाकल्याणक जी उपाध्याय के गुरुमहाराजने कृपा उद्धार करके पीतवस्त्र धारण किये उन श्री क्षीमाकल्याणक जी उपाध्यायजीकी परम्परा में त्यागी वैरागी श्री सुखसागरजी महाराज को बड़ी दिक्षा अर्थात् छेदो उपस्थापनी का गुरु मानता हुवा यथा नाम तथा गुण विक्तिभाव अर्थात् अविर्भाव करके रहित कोटीगच्छ वज्र शाखा चन्द्रकुल खरतर विरुद्ध में चिदानन्दनामसे विचरता हूं । जो तुमने मुझ से प्रश्न इस विषय में कियेथे उनप्रश्नों का उत्तर मेरी बुद्धि अनुसार सम्वत् १९५० मिती कार्तिक शुक्ल ५ सोमवार के दिन अजमेर नगर में दिया अब जो इस में कुछ वीतराग की आज्ञासे ओछा अधिका मेरी तुच्छबुद्धि से निकलाहो तो श्री संघ अर्थात् साधु साधवी श्रावक श्राविका अथवा अर्हत सिद्ध साधू देव गुरु अपनी आत्माकी साख करके जो कोई भूलसे वचन निकला हो उसका मिच्छामि दुक्कडं देताहूं ॥ इति ॥

इति श्रीमज्जैनधर्माचार्यमुनिचिदानन्द स्वामिविरचिते स्याद्वादानुभवरत्नाकरे पञ्चम प्रश्नोत्तरं समाप्तम् ॥

शुद्धाशुद्धपत्र.

पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध
२	७	द्वेष	दोष
२	१०	लिवाते हे	लिखाते हैं
२	१४	हम इस साधू	हम कहते
५	३१	बस्ती	वसतिसे
„	„	आरा	और
८	२१	रस	रसो
„	३४	जाव	जानो
„	„	कराता	करता
९	७	वहा	विद्या
„	११	कराने	करने
१०	२५	प्रमाणु	प्रमाण
„	२६	„	„
„	३२	प्रमाका	प्रमाणका
११	२	वस्तु जुदी	०
„	३	तो हम	„
„	४	से जुदी	„
„	५	जुदापदार्थकोईनही	„
„	१२	तो तुमको	„
„	१६	विपय	विशेष
१२	३	रीति	रिति
„	६	तो हम	०
„	१०	तो तुमही कहो	„
१३	१८	और परमाणु	„
१४	२	मत	मते
„	२३	कुछ ज्यादा परमाण	०
१६	२०	पनघट	पयाघट
„	२५	कपालो	कापलों
१७	३१	से	सो
१८	२	स्वरूपसे	०
„	५	प्रमाणु	प्रमाण

पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध.
„	२१	पूछेगे तो	०
१८	३२	मानो	सानो
२०	५	मानना	मानाना
२१	८	व्यर्थ	अर्थ
„	१६	वायत्त	०
„	२८	लोकों	लोलों
२२	२	तैत्तिरी	लैत्तिरी
२३	२०	सिद्ध	निद्ध
२५	३५	किन्तु	कितु
२६	३३	स्वभाव	भाव
२७	२६	धारण	धारय
२८	२०	जल	यल
„	२१	„	„
३०	१६	अनादि	अना
३५	२६	निरनिमित्त	निमित्त
३७	२	चेतनाश्रत	चेतनात्
„	९	वाध	वोध
४१	२०	वहाम्यहम्	वहाम्यम्
४३	३४	भय	भये
४८	३३	विशेषरूप	शेषरूप
५०	१५	आत्मा	अत्मा
५१	१२	यतिव्रत	पतिव्रत
„	१३	„	„
„	१९	यति	पति
५२	१२	जीव	जावि
५६	३४	मात्र	मान
६८	३३	ग्यारहवे	गेरह
८४	१२	वनादे	वनोद
८९	२६	पादे	किया
९७	१	होय	है

पृ०	प०	शुद्ध	अशुद्ध.
९९	३४	१०८	१०५
१०१	३	नो	तो
१०१	२४	नैगमनय	वैगमनय
"	२८	अरे	और
१०२	१	दूसरा सर्व	०
"	१४	लब्धिवान	लक्ष्मीवान
१०४	४	वेदनी	वदनी
"	३१	सर्वज्ञ नहीं	सर्वज्ञही
१०५	७	चढ़े	चटे
१०६	१५	भाष	माया
"	१६	टालने	डालने
"	"	लेते	लेतो
"	१७	आर्द्ध्यान	आर्द्ध्यन
"	२९	जिन	जिस
१०९	२८	अध्यवसाय	अवसाय
११०	५	का	कन
११२	६	काम	काय
"	२०	ह्येय	है
११४	२७	पर्याय	यथार्थ
११५	१७	नग्न	नाम
११६	३३	तान	तात
११७	७	२१०००	२१००
"	३०	"	३१०००
"	८	तो नन्दी सूत्रमें कहें हैं कि ७२ आगम हैं तो तुम्हारे ३२ मानने कैसे बनेंगे और जो	
११८	२	३१	६१
"	२४	कहीं	कहा
"	३१	भनियो	भरगीओ
"	३३	पंचंगी सिद्ध हुई	

और पंक्ति ३४ पृष्ठा ११८में सूत्रमें कहा है कि ७२ आगम है तो तुम्हारे ३२ माने कैसे बनेंगे और जो नन्दीजीकी पंचंगी सिद्ध हुई यह पाठ छापखानेकी भूलसे लिखा गया

पृ०	प०	शुद्ध.	अशुद्ध.
"	२६	आज्ञा विरोध,	अज्ञान विरोध
१२०	२४	योग	भोगों
१२१	१९	छन्द	वन्द
१२२	७	महापुन्नो	पुंन्ने
"	१३	गाजे वाजे	वाजे वाजे
"	१५	गामान्तर	गडमान्तर
"	१९	में	ने
"	२१	कुछ	कब
१२३	१७	ईसान	ईमान्
"	२०	तयेणं	तरुणं
"	२२	विहाए	विहारा
"	२२	अज्झथ्थिये	अज्झथिरा
"	२३	पत्ताए	यत्ताए
"	२४	इमेया रूवं	इमे रूवं
"	२७	सूहमाएणं	सूहमाराणं
१२५	११	इसी वास्ते	इस वर
"	"	पशु	पूशपं
"	२४	अन्न	अतन्न
१२६	२	नोखलु	ठोखलु
१२७	७	अमूजे हुए	अपूजे हुए
"	९	इरिया वही	ईर्षा वही
"	२९	जिणेहिं	जिणेसि
"	३१	सावध्य नहीं	सावध्यनन सही
"	३३	परमाद	परमार्थी
१२८	४	गोयमा	गोपमा
१२९	३५	जल	जूल
१३३	२९	कराना	०
१३४	१४	सिज्झाय	शिषाय
"	२८	क्रिया	क्रिया कृपा
१३५	१३	करेमि भंते	केरामी भंते
१३५	१४	पच्चखामि	पच्छवात्रि

पृ०	प०	शुद्ध.	अशुद्ध.	पृ०	प०	शुद्ध.	अशुद्ध
१३५	२२	नव तत्व	भवतत्व	१८२	४	ऐसा	ऐनसा
,,	३५	ऐसाही	इसाहा	,,	२४	त्रोधान	क्रोधान
१३६	२६	वोसरामी	वोसरापी	१८३	१४	ठहरा दूसरा	दूसरा ठहरा
,,	३२	काउसग्ग	काउ सगटा	,,	२८	२	२०
१३७	१२	वामपासे	वामगणे	१८४	१	रमणता	इणमता
१३८	२	नायक	नामक	१८६	६	संमूढ़ नय	रूढसविनय
१३९	३	आषाढ़	असड	,,	१८	वो	को
१४२	५	१२८५	११८५	१९०	८	पाप	पके
,,	३४	उसी	उखी	१९२	२	कोला	कोमिला
१४३	६	सुविहित	सुविदित	,,	५	सिज्झाय	सिद्याय
१४४	९	मतियों	प्रतियों	१९७	८	भंवर	मगर
१४६	१३	ढूंढ	बूढ़	,,	२६	ख्यातिको	ख्याति
१५०	२७	४२	४	१९९	११	वाचस्पति	स्यस्थकारि
१६०	६	साधवी	सारवी	२०३	३०	व्याकुल	व्यकुल
,,	१९	उन्होंने व्याख्यान	०	२१०	१०	तर्क	तर्के
,,	२६	साधू	सूधू	२१३	७	पदार्थान्तर	पदार्थतर
,,	२७	०	१३१	२१७	६	उनको	उनक
१६१	११	जती	वती	,,	१६	अवाल गोपाल	०
१६२	३०	क्रिया	कृपा	,,	२९	और तुम	०
१६३	११	,,	,,	२१८	६	सुनाना	सुनना
१६४	२२	३८	३१	२२०	३३	तवो तहा	जवो जहा
,,	३०	माल	माला	,,	,,	उवयगो अ ए अं जीवस लच्छणं अस्स लरकणं उवोच्छो अ ए अंजी	
,,	३१	भव मीठा	०	२२५	२६	पर्यार्थक	पर्याय पार्थिक
१६६	८	ह्येय	है	२२८	१८	वा सर्व वृत्तिके	०
१६७	१७	त्रिजंच	०	,,	२९	श्रावकको	श्रावकके
,,	३४	अंगीकार	अंकीकार	२२९	१	दर्शनन	दर्शन
१६८	२३	दश	दशा	,,	३	निस्सई वहां	०
१७१	१७	करता	करना	२३१	१४	वासक्षेप	क्षेप
,,	२२	चिन्तामणि	चिन्तमणी	,,	१६	अस्थिर	स्थिर
१७२	३४	बैठगया	बैठगगा	२३२	१५	फूल	कूल
१७३	४	कि भी	०	,,	१८	ममकृति	नाम कृति
१७४	१४	मरकटस्थ	मरकहास्थ	२३३	२९	लूण	भूण
१७८	३४	बोल	वाले				
१८०	१	अर्हन्त	अर्हंत				

पृ०	प०	शुद्ध.	अशुद्ध
२३४	१३	अग्नि	अत्रि
२३५	११	प्रूपना	पूत्र
२३५	१८	प्रतन	पतन
"	२१	भन्नई	भई
"	"	वितइयरि	बितइपरि
"	२२	कुवा	कवा
"	२७	मुक्तिका फल	मुक्तिकी
२३६	२	होती है इस	अधिकारमें
अल्प पाप बहु निर्जरा			
२३८	५	पच्चखान	पत्रखाता
"	१०	हाजत होती	हाजत ती
"	२०	पच्चखान	पच्चूखाण
"	२५	सो इस	इस
२४०	२५	२२०००	२२०
२४१	३०	जिनमत	जिनमठ
२४४	१०	शस्त्र	शास्त्र
"	१७	२	४
"	२७	क्रिया	कृपा
२४६	३१	कहके काउ सग्ग ये पुस्त-	
कर्में वैसी लिखा है			
२४७	५	भगवत्	भगव्
२४९	१९	निर्मल	निमित्त
२५६	२९	७२०००	७२
२६१	३२	७२०००	७२

पृ०	प०	शुद्ध.	अशुद्ध
२६३	१५	होले २	होल २
२६४	२१	कृपा	क्रिया
२६६	१४	अवार	अवर
२६७	१	हुए	हव
"	३०	तजि	भारी
२६९	१२	राजजोग	राजयोग
२७४	१६	आहार	आहा
२८१	३४	विधि	मोक्ष
अब पदादिकोंकी शुद्धि लिखते हैं			
२८२	१	वैर	वरे
२८३	१३	दाना	दाता
"	२३	अचरज	अधर्म
"	२४	आफू	आपू
"	२६	अभंग	अवंग
२८४	१२	धर	घर
२८५	११	विनान	वितान
"	१६	ठहरावेरे	ठहरावे
२८६	१	पूरनना	पूरनता
"	१७	क्षारपर	धार पर
२८७	१	नाथ	नाम
"	८	देखनिवारी	देखानेरी
"	१७	धोवन	धावे
२८८	१०	क्रिया	कृपा

इति सम्पूर्णम् ।

श्रीः ।

लावनी ।
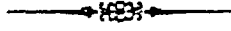
श्री चिदानंद निर्पक्ष गुरु यह भेद बताया ॥
धन्यघड़ी धन्यभाग आजहम उत्तर पाया ॥ टेक ॥
प्रथम प्रश्न उत्तरमें स्वचरित्र सवरा कीना ॥
प्रश्न दूसरे उत्तरमें नय्यायिक वेदान्त दयानन्द लीना ॥
मुसलमान ईसाई मतके भ्रम खोल दीना ॥
दे प्रमाण उन्हीके घरका सच्चामार्ग चीना ॥
प्रश्न तीसरे उत्तर सुनके दिलमें छाया ॥ श्रीचि० ॥
किया दिगंबर बोल पांचका निर्णय है भारी ॥
थानक पंथ मूर्त्ति पूजन आगम युक्ति है न्यारी ॥
गच्छादिकके भेद खोल कर जिन आज्ञाधारी ॥
प्रश्न चतुर्थ उत्तर देनेमें जिनवानी सारी ॥
संबंध चतुष्टय सुनकर मनमें भाया ॥ श्रीचि० ॥
शुद्ध देव गुरु ख्याति कथनी द्रव्य स्वरूपले भाई ॥
अल्पपाप मिथ्यात्वी कहते शुद्ध निर्जरा ठहराई ॥
गुणठाणोंका कथन सुनीने हृदय आनंद सुहाई ॥
हठयोग बताया जिनमत कृपा सब दिखलाई ॥
आसन कहकर षट्कर्म स्वरोदयभी जतलाया ॥ श्रीचि० ॥
कुंभक प्राणायाम भेदके उत्तम है विस्तारे ॥
मुद्रा देख अनुपम बंध भेद करदीने हैं न्यारे ॥
अक्षर चक्र ध्यान गति खोली योगशास्त्रमें है प्यार ॥
भेद समाधि विधि सुनीने खुश होगये सारे ॥
स्याद्वाद अनुभव रत्नाकर किंचित गुण मैंने गाया ॥ श्रीचि० ॥

स्तवन-लावनी॥

स०तगुरुसे ज्ञानपाया मिथ्या भरम गमायारे॥ स० ॥ (ध्रु०)
नाम धाम कारन वैराग्यको करिके कृपा बनाया॥
वर्तमान मारग सब कहके, सत्यासत्य जतायारे॥ स० ॥ १ ॥
वीतरागकी आज्ञा लक्षण, सतगुरुहीके जनायारे ॥ स० ॥ २ ॥
और प्रश्न जो जो कियेथे, दियो उत्तर चित्तचाया॥
याते हर्षयुक्त होय कहते, धन्य धन्य गुरुरायारे॥ स० ॥ ३ ॥

स्तवन-ललित ॥

प्रथम गुरुहीको वन्दना करों॥ सकल पापको शीघ्र ही हरो॥ १ ॥
सूक्ष्मदृष्टिसे सोचिये सदा ॥ कौन सतगुरुज्ञान हो तदा ॥ २ ॥
अन्तरिक व्यथा हरणको करे॥ किस प्रसादसे कार्यनीसरे ॥ ३ ॥
रागद्वेषको लेशहै नहीं॥ सकल जीवसे प्रेमहै सही॥ ४ ॥
कामक्रोधको किन्हे है परे॥ वेही सद्गुरु कष्टको हरे॥ ५ ॥
तुरग लोभके जो नहीं चढ़े॥ मोह जालमें क्यों गुरु पड़े॥ ६ ॥
सत्यप्रेम ये नित्यकर्म है॥ सत्यशीलही मुख्य धर्म है॥ ७ ॥
तत्त्ववस्तुको खोजही करे॥ सत्यधर्मको चित्तमें धरे ॥ ८ ॥
अभयदानसे होतनापरे ॥ सदुपदेशही नित्य जो करे ॥ ९ ॥
कथित गुननसे जो सुशोभित॥तिन्हे ही शिर न मा हो अनन्दित१०॥

मंगलाचरण अन्तका

कवित्त ।

धन्य मुनिराज भवसागर जहाजहोय॥
तारन भव जीव हेतु दिव्य देह धारीहै॥
ग्राम देश नाम आदि कारन वैराग्यहूको॥
प्रगट कर बताये सब मारग जगजारीहै॥
जैनधर्म भेद पुनि लक्षण प्रमाण युक्त ॥

लावनी ।

वार्त्ता हठयोग हूकी बरनी गुरु सारी है ॥
याते हर्षयुक्त होय सेवक निज चर्णहूके ॥
करतहैं विनन्ति दूर कीन्हें भ्रमभारी है ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

सत गुरुके लक्षण कहे , वीतराग उपदेश ॥
अपवादक उत्सर्गते, बात रखी नाहिं शेष ॥ १ ॥
उगणीसे पञ्चासमें ग्रन्थ भयो यह जान ॥
कार्तिकशुक्ला पंचमी चन्द्र वार पुनिमान ॥ १ ॥

कविराज हेतुराज आत्मज मदनराज
श्री माली रतलाम ॥

इति ।

स्याद्वादानुभवरत्नाकर
संपूर्णम् ।

यह पुस्तक मुंबईमें खेमराज श्रीकृष्णदासके
"श्रीवेंकटेश्वर" छापखानामें छपवाई गई
शके १८१६ सवंत् १९५१ ई०

पुस्तक मिलनेका ठिकाणा
लक्ष्मीचन्द मणोत
नयाबाजार
अजमेर.